नदी के द्वीप

'अज्ञेय'

जन्म १९११; प्रकाशित रचनाएँ : 'भग्नदूत' (कविता) १९३३, 'विपथगा (कहानियाँ) १९३७, 'शेखर : एक जीवनी' (उपन्यास) प्रथम भाग १९४१, द्वितीय भाग १९४४, 'चिन्ता' (काव्य) १९४२, 'परम्परा' (कहानियाँ) १९४४, 'कोठरी की बात' (कहानियाँ) १९४५, 'त्रिशंकु' (निबन्ध-संग्रह) १९४५, 'इत्यलम' (कविता) १९४६, 'शरणार्थी' (कहानी-कविताएं) १९४८, 'हरी घास पर क्षण भर' (कविता) १९४९, 'जय-दोल' (कहानियाँ) १९५१, 'अरे यायावर रहेगा याद?' (भ्रमण) १९' ३ 'बावरा अहेरी' (कविता) १९५४, 'इन्द्रधनु रौंदे हुए ये' (कविता) १९५६, 'अरी ओ करुणा प्रभामय' (कविता) १९५९, 'आत्मनेपद' (निबन्ध) १९६०, 'एक बूंद उछली (भ्रमण) १९६०। अंग्रेजी में : 'प्रिज़न डेज़ एंड अदर पोएम्स' (कविताएँ) १९४६।

सम्पादित ग्रन्थ : 'आधुनिक हिन्दी साहित्य' (निबन्ध-संग्रह) १९४३, 'तार सप्तक' (कविता-संग्रह) १९४३, 'दूसरा सप्तक' (कविता-संग्रह) १९५१, 'पुष्करिणी' (कविता-संग्रह) १९५८, 'तीसरा सप्तक' (कविता-संग्रह) १९५९, रूपाम्बरा (कविता-संग्रह) १९६०। संयुक्त-रूप से : 'नेहरू अभिनन्दन ग्रन्थ' १९४९, 'नये एकांकी' (नाटक-संग्रह) १९५१, 'हिन्दी की प्रतिनिधि कहानियाँ' १९५१। अँग्रेजी में : 'इंडिया लाइब्रेरी' के अन्तर्गत 'श्रीकान्त' (शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय का अनुवाद) १९४४, 'द रेज़िग्नेशन' (जैनेन्द्रकुमार के 'त्यागपत्र' का अनुवाद) १९४६।

नदी के द्वीप

'अज्ञेय'

सरस्वती प्रेस
वाराणसी

दूसरे संस्करण की भूमिका

'नदी के द्वीप' के दूसरे संस्करण में यत्किंचित् शाब्दिक हेर-फेर के अतिरिक्त स्थान-स्थान पर उद्धृत हिन्दीतर भाषाओं के पदों का भावानुवाद भी कर दिया गया है, जिस से केवल हिन्दी जाननेवाले पाठक को असुविधा न हो। ऐसे अनुवादों में मूल का पूरा भाव तो नहीं ही आ सकता; साथ उद्धरण का पूरा तात्पर्य ग्रहण करने के लिए सन्दर्भ की भी आवश्यकता होती है। फिर भी आशा है कि पाठक को कथा-प्रवाह के और उस की अन्तःसंवेदना के साथ चलने में अधिक बाधा न होगी।

रचना ऐसी होनी चाहिए कि उसके साथ चलने में पाठक को बिलकुल परिश्रम न करना पड़े ऐसा 'नदी के द्वीप' का लेखक नहीं मानता; फिर भी वह यत्नशील है कि मार्ग बीहड़ हो कर भी अनाकर्षक न हो जाये, क्योंकि वह चाहता है कि पाठक साथ चले। साथ लेखक के नहीं, कृति के। लेखक कृति से जितना अलग है, पाठक लेखक से भी उतना ही अलग रहे, यही तीनों के लिए श्रेय है।

और आलोचक? आज हिन्दी का आलोचक केवल अपने साथ चलता है, और किसी के नहीं। ऐसा साथ फलप्रद तो क्या ही हो सकता है; वन्ध्य हो कर भी वह रुचिकर ही बना रहे ऐसी प्रार्थना उस के लिए की जा सकती है।

—लेखक

तीसरे संस्करण की भूमिका

आलोचक ने नया कुछ नहीं कहा है, इसलिए उसे नया कुछ कहने का प्रयोजन लेखक का भी नही हैं। और पाठक से तो उसे नया कहने को हो भी क्या सकता है—कृति से अलग कुछ हो ही क्यों, सिवा आलोचक द्वारा सिरजे गये पूर्वग्रहों से मुक्त रहने के अनुरोध के?

कृति पाठकों को रुचे, और उनके अन्तःकरण की समृद्धि में भाग दे, यह लेखक की सब से बड़ी सफलता होगी और इसी की वह कामना करता है।

—लेखक

क्रम

"मेनी ए ग्रीन आइल नीड्स मस्ट बी
इन द डीप वाइड सी आफ़ मिज़री
ऑर द मैरिनर, वोर्न एंड वान
नेवर दस कुड वायेज ऑन ।"*

—शैली

"दुःख सब को माँजता है
और—
चाहे स्वयं सब को मुक्ति देना वह न जाने, किन्तु—
जिन को मांजता है
उन्हें यह सीख देता है कि सबको मुक्त रखें ।"

—'अज्ञेय'

---

* कई हरे-भरे द्वीप अवश्य ही होंगे
व्यथा के गहरे और फैले सागर में
नहीं तो थका-हारा सागरिक
कभी ऐसे यात्रा करता न रह सकता ।

भुवन

गाड़ी जब तक प्रतापगढ़ से नहीं चली, तब तक भुवन ने नहीं जाना कि उसे अपने वारे में सोचने की कुछ ज़रूरत है; और गाड़ी चलने पर भी ठीक इस रूप में ही उसने यह वात जानी हो, ऐसा भी नहीं; वह केवल हक्का-वक्का-सा चलती गाड़ी का हैंडल पकड़े खड़ा रह गया—विस्मय से अपने मुक्त दूसरे हाथ की ओर देखता हुआ, मानों वह उस का नहीं, कोई पराया हाथ हो जो किसी रहस्यमय क्रिया से उस के शरीर के साथ लग गया हो और अब अपने और पराये के सन्धिस्थल उसकी कुहनी पर चुनचुनाहट हो रही हो।

वह सवार ही चलती गाड़ी पर हुआ था; उस के प्लेटफार्म पर खड़े रेखा से वातें करते-करते कब गाड़ी चल पड़ी थी यह उसे मालूम नहीं हुआ था, और अगर रेखा ही सहसा उसकी कुहनी पकड़ कर मुस्करा कर उसे ठेलती हुई न कहती—"अच्छा, जल्दी से सवार हो जाइये, आप की गाड़ी जा रही है," तो वह ज़रूर गाड़ी से रह जाता।

और यहीं से उस के विस्मय का आरम्भ होता था। क्योंकि यद्यपि वास्तव में रेखा ने उसे ठेल कर गाड़ी पर सवार करा दिया था, तथापि उस वहुत हल्के धक्के में यही लगा था कि रेखा वास्तव में उसे कुहनी पकड़ कर खींच रही है : कि उस के शब्द और उस की क्रिया भी उसके वास्तविक अभिप्राय को झुठला रहे हैं और वह वास्तव में उसे रोक ही लेना चाहती है। और जहाँ उसने भुवन की कुहनी को छुआ था, वहीं यह अद्भुत, अपूर्व-परिचित चुनचुनाहट हो रही थी—उसकी कुहनी में, जो सदा अपने साथियों पर हँसता आया है कि उन्हें स्त्री का सान्निध्य सहन नहीं होता, वें उसे सहज भाव से न ले पा कर उत्तेजित या अस्थिर हो उठते हैं—उसने यहाँ तक देखा है कि किसी स्त्री द्वारा चाय का प्याला दिया जाने पर लोगों के हाथ ऐसे काँपने लगें कि चाय छलक जाय !

और आज : एक स्त्री के द्वारा सहज भाव से ठेल कर गाड़ी पर सवार करा दिये जाने पर उसी की कुहनी में स्पर्शित स्थल पर चुनचुनाहट होने लगी है और वह यह रूमानी कल्पना कर रहा है कि रेखा ने वास्तव में उसे ठेला नहीं वल्कि खींचा था....भुवन वावू, यों हक्के-वक्के अपने हाथ की ओर ताकते और अपनी कुहनी को पहचानते न खड़े रहिए, आखिर आपको हुआ क्या है ?....

पीछे किसी ने चिड़चिड़े स्वर में कहा, "अजी साहव, फुटवोर्ड पर क्यों लटके खड़े हैं, भीतर चले आइये और दरवाज़ा वन्द कर दीजिए।"

चिड़चिड़ापन वाजिव था; क्योंकि इंटर क्लास ही सही, रात को सोते सव हैं, और तड़के तीन वजे दरवाज़ा खोल कर खड़े हो जाना दूसरे मुसाफ़िरों को न सुहाये तो अचम्भा नहीं होना चाहिए।

भुवन ने भीतर प्रवेश कर के दरवाजा वन्द किया और एक सीट पर सिमट कर बैठ गया। उस के विस्मय की जड़ता कुछ कम हुई तो उसकी स्मृति धीरे-धीरे पिछले कुछ घंटों की दृश्यावली के पन्ने उलटने लगी।

रेखा से उसका परिचय लम्वा नहीं था। वल्कि परिचय कहलाने लायक भी नहीं था, क्योंकि एक सप्ताह पहले ही अपने मित्र चन्द्रमाधव के घर पर एक छोटी चाय-पार्टी में इनकी पहली भेंट हुई थी। और उसके वाद दो-तीन वार हज़रतगंज के कोने पर या काफी हाउस में, उनका कुछ वार्त्तालाप हुआ था। भुवन को लखनऊ से इलाहावाद जाना था, रेखा किसी परिचित परिवार के पास कुछ दिन विताने प्रतापगढ़ जाने वाली थी; वातचीत के सिलसिले में यह जान कर कि दोनों एक ही दिन एक ही गाड़ी से जा रहे हैं, चन्द्रमाधव की सलाह से यह निश्चय हुआ था कि तीनों साथ हजरतगंज में कहीं भोजन कर के स्टेशन पहुँच जावेंगे और दोनों को गाड़ी पर सवार करा कर चन्द्रमाधव लौट जायगा—भुवन का सामान तो चन्द्रमाधव का नौकर ले जायगा, और रेखा का सामान उनके आतिथेय का चपरासी पहुँचा आयेगा।

यह तो विलकुल साधारण वात थी। लेकिन गाड़ी में भीड़ वहुत थी; पहले यह सोचा गया कि दोनों अलग-अलग स्थान खोजें, क्योंकि शायद ज़नाने डिव्वे में कुछ अधिक जगह हो तो रेखा क्यों अधिक कष्ट उठाये? चन्द्रमाधव उसे विठाने ज़नाने डिव्वे की ओर गया, और भुवन अपने लिए स्थान खोजने निकला। कोई पन्द्रह मिनट में, अनेक डिव्वों का मुआइना कर के आँखों-आँखों से प्रत्येक में मिल सकने वाली जगह के घन इंच और वर्ग इंच का हिसाव लगाने के वाद जव भुवन ने एक डिव्वे में खिड़की के रास्ते अपना छोटा-सा वक्स और संक्षिप्त विस्तर अन्दर ठेल दिया, और तय कर लिया कि किवाड़ के आगे लगे सामान के ढेर के कारण उधर से न जा सकने पर भी खिड़की के रास्ते घुस सकेगा, वह यह देखने लौटा कि रेखा पर कैसी वीत रही है। मन-ही-मन उसने यह भी सोचा, इसी गाड़ी में जाना ऐसा क्या ज़रूरी है? एक दिन देर भी हो सकती है। इलाहावाद पहुँचना कोई ऐसा जरूरी तो है नहीं, मुफ्त में तकलीफ़ का सफर क्यों? क्यों न कल पर टाल दिया जाय? यही सोचते-सोचते वह वहाँ पहुँचा जहाँ चन्द्रमाधव एक खिड़की के पास खड़ा था। रेखा डिव्वे के भीतर तो पहुँच गयी थी, पर डिव्वा अपना यह देसी नाम इतना सार्थक कर रहा था कि जहाँ वह खड़ी थी वहाँ उसे इधर-उधर मुड़ने लायक भी स्थान नहीं था; वह खड़ी थी तो वस, जैसे खड़ी थी वैसे खड़ी रह सकती थी।

भुवन ने मुस्कराते हुए पुकार कर अंग्रेजी में पूछा, "रेखा जी, कैसा चल रहा है?"

रेखा ने ज़रा गर्दन उनकी ओर मोड़ कर, हँसते हुए कहा, "स्विमिंग्ली! मैं जैसे सागर की मछली हूँ; ज़मीन से पैर उठा लूँ तो भी गिरूँगी नहीं, तैरती रह जाऊँगी!"

भुवन ने चन्द्रमाधव से कहा, "चन्द्र, रेखा जी का इसी गाड़ी से जाना क्या ऐसा ज़रूरी है?"

चन्द्र ने फौरन शह लेते हुए आवाज दी, "रेखाजी, अब भी सोच लीजिये, आज जाना क्या ज़रूरी है ? मेरा कल के शो का निमन्त्रण अभी ज्यों-का-त्यों है—अब भी लौट चलिए, कल रात चली जाइयेगा।"

रेखा ने भुवन की ओर उन्मुख होने की चेष्टा करते हुए पूछा, "आप को कैसी जगह मिली ?"

"सामान तो भीतर पहुँच गया है। यों तो खिड़कियों से रास्ता है—अभी तो हवा भी मजे में आ-जा सकती है।"

"तो आप का क्या मत है ?"

"मैं तो चन्द्र से बिलकुल सहमत हूँ। आप और एक दिन रुक जाइये—कल चली जाइयेगा—"

रेखा के चेहरे पर विकल्प की हल्की-सी रेखा पहचान कर चन्द्र ने जोर दिया। "हाँ, हाँ, आइये, बस ! बल्कि अभी तो आज रात का शो भी देखा जा सकता है—" और वह खिड़की में से भीतर झुक कर रेखा का सूटकेस पकड़ने लगा।

रेखा उतर आयी। उतर कर भुवन से बोली, "और आप ?" फिर चन्द्र की ओर उन्मुख होकर : "मिस्टर चन्द्र, अपने मित्र को भी रोक लीजिए न ?"

चन्द्र ने कहा, "इन्हें जाने कौन देता है ! आप रुक जायेंगी तो यह नहीं जा सकेंगे, इतने अनगैलेंट यह नहीं हो सकते—क्या हुआ प्रोफेसर हैं तो ! क्यों भुवन ? कहाँ है तुम्हारा सामान ?"

भुवन ने आनाकानी की। स्वयं उसने सफर एक दिन टाल जाने की बात सोची थी, पर रेखा को वैसा करते देख न जाने क्यों एक प्रतीप-भाव उसके मन में उमड़ आया—कि जो निश्चय किया सो किया, अब बदलना ढुलमुलपन है और ढुलमुलपन बुरी चीज़ है, आदमी की संकल्प-शक्ति दृढ़ होनी चाहिये, ऐसी दृढ़ कि बस फौलाद !

रेखा ने कहा, "हाँ, डाक्टर भुवन, आप भी रह जाइये न ? छुट्टी तो आप की अभी कई दिन और है—"

"लेकिन—"

"बस अब लेकिन-वेकिन कुछ नहीं", चन्द्र ने डपट कर कहा। "चलो आगे, बताओ सामान कहाँ रखा है।" और जिस कुली ने रेखा का सामान उठाया था, उसी को आगे करके वह भुवन के डिब्बे की ओर बढ़ चला।

स्मृति के पन्ने उलटते हुए भुवन ने सोचा, यहाँ तक भी ठीक था; रुक जाना कोई असाधारण बात नहीं हुई थी, और दोनों के रुक जाने में भी कोई बात नहीं थी ; अगर उसे इलाहाबाद में ज़रूरी काम नहीं था तो रेखा को प्रतापगढ़ में और भी कम काम था, वह घूमती हुई और एक जगह कुछ दिन बिताने जा रही थी। और चन्द्र दोनों का मित्र था, और खासा दिलचस्प आदमी, उसके आग्रह का असर होना स्वाभाविक था।

और इस प्रकार दोनों रुक गये थे, और अगली शाम को उसी प्रकार उसी गाड़ी के लिए पहुँचे थे।

फिर भीड़ थी; पर उतनी नहीं; फिर अलग-अलग डिब्बों में सवार हुआ गया—रेखा को जनाने डिब्बे में बैठने लायक स्थान मिल गया यद्यपि बिल्कुल दरवाजे के पास, और भुवन ने भी अपना बक्स जमा कर अपने बैठने लायक सीट बना ली। विदा-नमस्ते कर के सीटी के साथ वह अपने डिब्बे की ओर चला और सवार हो गया।

यहाँ तक भी ठीक था। और अगर बीच में थोड़ी-थोड़ी देर बाद गाड़ी के रुकने पर वह रेखा के डिब्बे तक जा कर उससे एक-आध बात कर आता रहा, तो यह भी कोई ऐसी असाधारण बात नहीं थी; यह साधारण शिष्टाचार ही है; और अगर रात दस बजे के बाद भी हुआ तो भी अधिक-से-अधिक कोई यह कह सकता है कि शिष्टाचार में कुछ अनावश्यक मुस्तैदी थी, या दिखावा था। वह स्वयं यही जानता था कि रेखा बड़ी मेधावी स्त्री है और उससे बातचीत विचारोत्तेजक है और मानसिक स्फूर्ति देती है, बस। बातें भी वे ऐसी ही करते आये थे; और प्रतापगढ़ में जब रेखा उतर गयी और भुवन ने कहा, "आप से भेंट कर के बहुत प्रसन्नता हुई—मेरा लखनऊ प्रवास बड़ा सुखद रहा", तो उसने अपने स्वर में शिष्टाचार से—यद्यपि हार्दिक शिष्टाचार, निरी औपचारिक शिष्टता नहीं—अधिक कुछ नहीं पाया था। रेखा ने भी वैसे ही अव्यक्तिक पर सच्चे विनय से कहा था, "मैं आप की बड़ी कृतज्ञ हूँ—और आप ने तो इस वापसी की यात्रा को भी प्रीतिकर बना दिया—"

तब ?

और फिर भुवन ने अपने हाथ और कुहनी की ओर देखा, फिर उसे लगा कि वह चुनचुनाहट अभी गयी नहीं है, वह अपनी कुहनी पर अब भी रेखा के स्पर्श का दबाव अनुभव कर सकता है, और वह दबाव ढकेलने का नहीं है, खींचने का है।

तब ?

स्पष्ट ही केवल यात्रा का प्रत्यवलोकन काफी नहीं है; थोड़ा और पीछे देखना होगा। और पीछे देखने में—या क्रम से विश्लेषणपूर्वक देखने में—उसे झिझक क्यों है, वह अनमना क्यों है ? सप्ताह-भर से कम का सामान्य सामाजिक परिचय—कौन उसमें ऐसे छायावेष्टित रहःस्थल हैं जिन में जिज्ञासा की किरण के पहुँचने से वहाँ पलती कोई छुई-मुई अनुरागानुभति मर जायगी !

* * *

आग की लौ आलोक देती है: उस से हम आलोक विकीर्ण हुआ देखते हैं। और व्यक्ति की तुलना लौ से करें तो यही ध्वनित होता है कि उस से कुछ उत्सृष्ट हो कर

फैलता है। लेकिन रेखा मानो एक शीतल आलोक से घिरी हुई, उस के आवेष्टन में सँची हुई, अलग, दूर और अस्पृश्य खड़ी थी।

भुवन ने एक वार सिर से पैर तक उसे देखा। घूरना इस बीसवीं सदी में भी अशिष्ट है, लेकिन एक ऐसी पारखी दृष्टि भी होती है जिसे घूरना नहीं कहा जा सकता और जो न केवल अशिष्ट नहीं है वलिक सौन्दर्य का नैवेद्य मानी जाती है। तव मन-ही-मन भुवन ने कहा, यों ही नहीं रेखा देवी की इतनी चर्चा होती। उन में कुछ है जिसका उन्मेष जीवन का उन्मेष है और जिसे जान सकना ही एक महान् अनुभूति होगी—फिर वह जानना सुखद हो, दुःखद हो।

और उसने मुड़कर रेखा की सुनाई में आ सकने वाले विनय के स्वर में अपने साथी से पूछा, "क्यों मिस्टर चन्द्रमाधव, रेखाजी काफ़ी पीती हैं—हम लोग काफ़ी हाउस चलें?"

इस परोक्ष निमन्त्रण का उतना ही परोक्ष उत्तर देते हुए रेखा ने कहा, "हां, चन्द्र, तुम वहुत वार काफ़ी पिला चुके हो मुझे, आज मेरा निमन्त्रण रहा; और—तुम्हारे मित्र भी आवें।"

चन्द्रमाधव ने कहा, "वाह, यह नहीं हो सकता, मैं तो स्थायी मेज़वान हूँ।"

तब भुवन ने कुछ साहस बटोर कर कहा, "रेखा देवी, अगर आज मुझे ही मेज़वान होने का गौरव प्रदान करें तो—"

रेखा ने कुछ मुस्करा कर छद्म-विनय से कहा, "आप की प्रार्थना स्वीकार की जाती है।"

हज़रतगंज का कोना यक्तप्रान्त के नागरिक जीवन की धुरी है। यह दूसरी वात है कि जीवन वहां जिया नहीं जाता; वहां केवल जीवन से विश्रान्ति की व्यवस्था है। तथापि जो लोग उस जीवन का संचालन और नियमन करते रहे हैं उनका एक स्वाभाविक संगम वह कोना है। इसी लिए भुवन जव से लखनऊ आया है तव से रोज चन्द्र के साथ काफी हाउस आता है: दिन में एक वार तो अवश्य, कभी-कभी दो-दो तीन-तीन वार—और उस रूप-रस-गन्ध-सिक्त मानव-प्रवाह को किनारे से देखकर मन-ही-मन यह समझता चला जाता है कि वह भी जीवन के प्रवाह के वीच में है, कि जीवन का तीव्र स्पन्दन जिस नाड़ी में हो रहा है, उसे वह पकड़े है, और चाहे तो दवा कर रुद्ध भी कर दे सकता है!

लखनऊ आये उसे कुल तीन दिन हुए हैं। चन्द्रमाधव उसका कालेज का सहपाठी और मित्र, स्थानीय 'पायनियर' का विशेष संवाददाता है और लखनऊ से परिचित है, यों भी वहुधन्धी आदमी है। उस के साथ रहने-घूमने से जीवन के प्रवाह को अनुशासित कर सकने का यह भ्रम सहज ही हो जा सकता है। इस से क्या कि कालेज के वाद से चन्द्रमाधव निरन्तर सनसनी की खोज में दौड़ा किया है—अफ़्रीका, अवीसीनिया, इटली, जर्मनी, चीन, कोरिया—और वह चार-छः वर्ष वैज्ञानिक खोज और देशाटन में लगा कर,

पहले से भी कुछ अधिक अन्तर्मुखी और तटस्थ हो कर एक कस्बे के कालेज में लेक्चरर हो गया है जो कि यों ही दुनिया के प्रवाह से बहुत दूर रहता है ? यह जीवन की धमनी को पकड़े रहने का भ्रम बड़ा ही लुभावना और अहं को पुष्ट करने वाला है...

और इससे क्या कि चन्द्र का कहना है, वह जीवन के निरन्तर दबाव से बच कर दो मिनट चैन से बिताने के लिए ही काफ़ी हाउस आता है ? शायद उस को वही भ्रम लुभा सकता हो....

और रेखा ?

भुवन को याद आया, तीन दिन पहले चन्द्र के यहाँ उसने पहली बार रेखा को देखा था। परिचय के समय उसने लक्ष्य किया था कि रेखा के पास रूप भी है और बुद्धि भी है, किन्तु बुद्धि मानों तीव्र संवेदना के साथ गुँथी हुई है और रूप एक अदृश्य, अस्पृश्य कवच-सा पहने हुए है; पर इस आरम्भिक धारणा को उसने तूल नहीं दिया था। प्रचलित धारणा है कि बुद्धिजीवी स्त्री के आवेग शिथिल होते हैं, और अगर किसी को चट से 'फ़्रिजिड वूमन' का बिल्ला दे दिया जा सकता हो तो उसे ले कर माथा-पच्ची कौन करे ? फलतः परिचय के साधारण शिष्टाचार के बाद भुवन अपने में खिंच गया था और रेखा चन्द्र के यहाँ जुटे हुए बुद्धिप्राण मानव-जीवों के गिरोह में खो गयी थी—चन्द्र ने भुवन को मिलाने के लिए लखनऊ का साहित्यिक समाज इकट्ठा किया था....

किन्तु उपेक्षा की जिस पिटारी में भुवन ने उसे डाल दिया था, उसे हठात् झकझोर कर रेखा बाहर निकल आयी थी। बैठक के दौरान में भुवन ने दो बार उड़ती नज़र से रेखा के चेहरे पर क्लान्ति और खेद के चिन्ह देखे थे; जब साहित्य-चर्चा ने जोर पकड़ा और वातावरण में गर्मी आयी तो भुवन की दृष्टि कौतूहलवश फिर रेखा को खोजती हुई गयी और सहसा ठिठक गयी।

रेखा कमरे की ओर शून्य के एक छोटे से वृत्त के बीचोबीच कुरसी पर बैठी थी। उस का सिर कुरसी की पीठ पर टिका था, पलकें बन्द थीं। वह बिजली के प्रकाश से कुछ बच कर बैठी थी, अतः उसका माथा और आँखें अँधेरे में थीं, बाकी चेहरे पर आड़ा प्रकाश पड़ रहा था जिससे नाक, ओठ और ठोड़ी की आकार-रेखा सुनहली हो उभर आयी थी। और इसी स्वर्णाभ निश्चलता पर भुवन का कौतूहल आ कर टिक गया था।

कहते हैं कि आँखें आत्मा के झरोखे हैं। झरोखे बन्द भी हो सकते हैं, पर ओठों की कोर एक ऐसा सूचक है कि कभी चूकता नहीं; और इन्हीं की ओर भुवन अपलक देखता रहा। वह कुछ क्षणों की तन्द्रा मानों रेखा को उस कमरे से दूर अलग कहीं ले गयी थी, जहाँ ओठों की कोरों का कसाव, बिना तनिक-सा काँपे भी, जैसे अनजाने कुछ नरम पड़ गया था; मुँह के आसपास की असंख्य शिराओं का अदृश्य तनाव कुछ ढीला हो गया था और जीवन का अदम्य लचकीलापन जैसे फिर उभर कर एक स्निग्ध लहर बन गया था। जहाँ तक भुवन जान पाया, किसी और ने यह परिवर्तन नहीं लक्ष्य किया था; पर उस क्षण

के सहज शैथिल्य के द्वारा मानों रेखा ने अपनी सारी क्लान्त शक्तियों को विश्राम देकर पुनरुद्दीपित कर लिया था। वैसे ही जैसे नास्तिकों की भीड़ में कोई भक्त अनदेखे क्षण-भर आँख बन्द कर के अपने आराध्य का ध्यान कर ले और उस के द्वारा नये विश्वास से भर कर कर्म-रत हो जाय। रेखा जैसी आधुनिका के लिए भक्त की उपमा शायद ठीक न हो पर उस तुलना के द्वारा रेखा का पार्थक्य और उभर आता था, और यह बात बार-बार भुवन के सामने आती थी कि रेखा में एक दूरी है, एक अलगाव है, कि वह जिस समाज से घिरी है और जिस का केन्द्र है उस से अछूती भी है—यद्यपि कहाँ, अस्तित्व के कौन से स्तर पर वह विभाजन-रेखा है जो दोनों को अलग रखती है, इस की कल्पना वह नहीं कर सकता था . . .

काफी पीते-पीते ये सब बातें चलचित्र-सी उस के आगे घूम गयीं। और जैसे रेखा की रहस्यमयता उसे चुनौती देने लगी। यों व्यक्तित्व की चुनौती की प्रतिक्रिया भुवन में प्रायः सर्वदा नकारात्मक ही होती है—वह अपने को समझा लेता है कि चुनौती के उत्तर में किसी व्यक्तित्व में पैठना चाहना अनधिकार चेष्टा है, टाँग अड़ाना है; क्योंकि व्यक्तित्वों का सम्मिलन या परिचय तो फूल के खिलने की तरह एक सहज क्रिया होना चाहिये। पर रेखा के व्यक्तित्व की चुनौती को उसने इस प्रकार नहीं टाला, टालने की बात ही उस के मन में नहीं आयी; रहस्यमयता की चुनौती स्वीकार करना तो और भी अधिक 'टाँग अड़ाना' है—क्योंकि किसी का रहस्य उद्‌घाटित करना चाहने वाला कोई कौन होता है?—यह भी उसने नहीं सोचा। पर अनधिकार हस्तक्षेप की भावना भी उस के मन में नहीं थी। यह जो जन-समुदाय से घिरे रह कर भी उस से अलग जा कर, किसी अलक्षित शक्ति के स्पर्श से दीप्त हो उठने जैसी बात उसने देखी थी, रह-रह कर वही भुवन को झकझोर जाती थी; जैसे किसी बड़े चौड़े पाट वाली नदी में एक छोटे-से द्वीप का तरु-पल्लवित मुकुट किसी को अपनी अनपेक्षिततता से चौंका जाय। या कि अँधेरे में किसी शीतल चमकती चीज़ को देख कर बार-बार उसे छू कर देखने को मन चाहे—कहाँ से, किस रहस्यमय रासायनिक क्रिया से यह ठंडा आलोक उत्पन्न होता है?

रेखा को देखते और इस ढंग की बात सोचते हुए भुवन कदाचित् अनमना हो गया था, क्योंकि उसने सहसा जाना, चन्द्र और रेखा में यह बहस चल रही है कि सत्य क्या है; और कब कैसे यह आरम्भ हो गयी उसने लक्ष्य नहीं किया था।

चन्द्र कह रहा था, "सत्य सभी कुछ है—सभी कुछ जो है। होना ही सत्य की एक-मात्र कसौटी है।"

रेखा ने टोका, "लेकिन होने को तो झूठ भी है, छल भी है, भ्रम भी है—क्या वह सब भी सत्य है? या कि आप होने की कुछ दूसरी परिभाषा करेंगे—पर यह कहना तो यही हुआ कि सत्य वह है जो सत्य है।"

"नहीं, सभी कुछ जो है। यानी उस में मिथ्या भी शामिल है, भ्रम भी। मुझे अगर

भ्रम है, तो उस का होना भी होना है, और इस लिए वह भी सत्य है। और मुझे भूत दीखते हैं, तो भूत सत्य हैं; यों चाहे होते हों या न होते हों। यों कह लें कि भूत मेरा सत्य है, दूसरों का चाहे न हो।"

"तो सत्य बिल्कुल मुझ पर आश्रित है—व्यक्ति-सापेक्ष्य है ? निरपेक्ष सत्य कुछ है ही नहीं ?" रेखा ने आपत्ति के स्वर में कहा, "क्यों डाक्टर भुवन, आप भी ऐसा ही मानते हैं ?"

भुवन कुछ कहे, इस से पहले ही चन्द्र ने कहा, "हाँ। सत्य सापेक्ष्य ही है। निरपेक्ष वह हो ही कैसे सकता है ? निरपेक्ष तो चीजें हैं—पदार्थ। पदार्थ सत्य नहीं है, निरा पदार्थ। सत्य तो पदार्थ का हमारा बोध है—और बोध व्यक्तिगत है।"

भुवन ने कहा, "मुझे तो लगता है कि हम सत्य और वस्तु का भेद भूल रहे हैं। भूत हों या न हों, अगर मेरे लिए हैं तो हैं—यानी यथार्थ हैं। पर सत्य—सत्य तो दूसरी बात है। यों चन्द्र जो पदार्थ और सत्य में भेद कर रहे हैं वह मैं मानता हूँ, पर वह अधूरी बात लगती है।"

"क्यों ? आगे और क्या है ?"

"पदार्थ वास्तव में एक अंश है। वास्तव में और भी बहुत कुछ आता है। विचार, कल्पनाएँ, घटनाएँ, परिस्थितियाँ—ये सब भी वास्तव के अंग हैं जिन्हें पदार्थ नहीं कहा जा सकता—"

"मैं कब कहता हूँ। लेकिन सत्य तो कहा जा सकता है ?" चन्द्र ने विजय के स्वर में कहा, "यही तो मैं कह रहा था।"

"नहीं। मैं वास्तव में और सत्य में भेद करना चाहता हूँ। या कहिए कि सापेक्ष्य और निरपेक्ष सत्य के प्रश्न को दूसरी तरह देखना चाहता हूँ।" भुवन क्षण भर रुका। "एक उदाहरण लीजिए : दो और दो चार होते हैं, इस बात को आप क्या कहेंगे ?"

"सत्य। और क्या ?"

"लेकिन मैं नहीं कहूँगा। मैं कहूँगा यह तथ्य है। और इस तरह के सब 'सत्य' केवल तथ्य हैं। सत्य की संज्ञा उन्हें तब मिल सकती है जब उनके साथ हमारा रागात्मक सम्बन्ध हो। यानी जो तथ्य हमारे भावजगत् की यथार्थता है, वह सत्य है; जो निरे वस्तु-जगत् की है, वह तथ्य है, वास्तविकता है, यथार्थता है, जो कह लीजिए, पर सत्य से वह ऊनी पड़ती है।"

क्षण भर सब चुप रहे। फिर रेखा ने, कुछ इस बात को स्वीकार करते हुए और कुछ विषयान्तर करते हुए-से, कहा, "सत्य को कटु क्यों कहते हैं, कटु वह कैसे हो सकता है ? अंग्रेजी में भी कहते हैं 'पेनफुल ट्रुथ'—अगर हम उसे सत्य मानते हैं, जानते हैं, तो वह पेनफुल क्यों होता है ?

भुवन ने कहा, "मैं तो कहूंगा कि सत्य मात्र पेनफुल है, रागात्मक सम्बन्ध का यह

मोल हमें चुकाना पड़ता है। सत्य, तथ्य का रचनात्मक, सृजनात्मक रूप है, और सृजन सब पेनफुल होता है: 'अपने ताप की तपन में सब कुछ उसने रचा'—रचना के सत्य का कितना सुन्दर वर्णन है इस वाक्य में !"

रेखा ने कहा, "यह सचमुच बड़ी सुन्दर बात है। पर पेनफुल ट्रुथ की बात इस से हल नहीं हुई—मुझे तो नहीं लगता कि हल हो गयी।"

"शायद नहीं हुई। पेनफुल सत्य का एक उदाहरण लीजिए। मान लीजिए कि 'क' 'ख' से प्रेम करता है। उन का प्रेम एक तथ्य है: आप बड़ी आसानी से कह सकते हैं कि 'क' 'ख' से प्रेम करता है—आप का अपना कोई लगाव 'क' 'ख' से नहीं है इसी लिए। अब कल्पना कीजिए उस स्थिति की जिस में अपनी ओर से यह बात कहनी हो। 'क' 'ख' से प्रेम करता है यह कह देना कितना आसान है, और 'मैं तुम से प्रेम करता हूँ' यह कह पाना कितना कठिन—कितना पेनफुल। क्योंकि एक तथ्य है, दूसरा सत्य—और सत्य न कहना आसान है, न सहना आसान है।" भुवन साँस लेने के लिए तनिक-सा रुका और फिर बोला, "अंग्रेजी की कविता है, 'द पेन आफ़ लविंग यू इज़ आलमोस्ट मोर दैन आइ कैन बेयर'—तुम्हारे प्रेम की व्यथा दुस्सह है। बड़ी सच बात है, ज़रूर दुस्सह होगी, और ज़रूर व्यथा होगी—अगर सचमुच प्रेम है।"

चन्द्र ने कुछ ठट्ठे के स्वर में कहा, "तब तो सत्य भी खतरनाक चीज़ है, और प्रेम भी। लेकिन ऋषि लोग सत्य को साध्य बता गये, प्रेम को धोखा—"

रेखा ने कहा, "वे लोग कदाचित् ऋषि न रहे होंगे मिस्टर चन्द्र; प्रेम को धोखा रोमांटिकों ने बताया है, और आप कितने भी ऋषि-भक्त क्यों न हों रोमांटिक ऋषि को नहीं पसन्द करेंगे। मैं तो यही जानती थी कि ऋषियों ने प्रेम और सत्य को एक माना है क्योंकि दोनों को ईश्वर का रूप माना है।"

"क्योंकि दोनों स्रष्टा हैं," भुवन ने जोड़ दिया। और फिर सहसा न जाने क्यों, उसे अपने बोलने पर और सारी बातचीत पर एक अजब-सी झिझक हो आयी: वह कैसे इतना बोल गया, और सो भी प्रेम का विषय लेकर? उसे याद आया, अंग्रेजी का जो काव्य-पद उसने सुनाया था, वह वास्तव में यों आरम्भ होता था, 'डीयरेस्ट, द पेन आफ़ लविंग यू', पर उद्धरण देते समय वह पहला सम्बोधन शब्द छोड़ गया था—अवश्य ही जान-बूझ कर और संकोचवश, यद्यपि उस समय उसे यह भी ध्यान न हुआ था कि वह कोई शब्द छोड़ रहा है। सत्य की चर्चा में प्रेम की बात ले आना और ऐसे सन्दर्भ देना—रेखा क्या सोचेगी कि इन प्रोफेसर साहब के दिमाग में प्रेम भरा हुआ है। और सृजन—क्या-क्या बक गया वह...

बातचीत का सिलसिला टूट गया। तीनों चुपचाप काफी पीते रहे।

चन्द्र के साथ तो भुवन टिका ही था; रेखा से भी उस के बाद प्रतिदिन भेंट होती रही। यों तो चन्द्र के नित्यप्रति काफी हाउस जाने के प्रोग्राम में शामिल हो जाना ही

काफी था—वहीं भेंट हो जाती थी और चन्द्र का विश्वास था कि अच्छे पत्रकार के लिए काफी हाउस में घण्टों बिताना आवश्यक है—'शहर में क्या हुआ है, क्या होने वाला है, क्या हो रहा है, सब काफी हाउस का वातावरण सूंघ लेने भर से भांप लिया जा सकता है।' भुवन अनुभव करता था कि दूसरे पत्रकार भी ऐसा मानते हैं, क्योंकि यहाँ प्रायः उनका जमाव रहता था और सब वहाँ ऐसे कर्म-रत भाव से निठल्ले बैठ कर, ऐसे अर्थ-भरे भाव से व्यर्थ की बातें किया करते थे कि वह चकित हो जाता था। लेकिन पत्रकार साहित्यकार नहीं है, यह वह समझता था; साहित्यकार जो क्षणिक है उस में से सनातन की छाप को, या जो सनातन है उस की तात्क्षणिक प्रासंगिकता को खोजता और उस से उलझता है, पर पत्रकार के लिए क्षणिक की क्षणिक प्रासंगिकता ही सनातन है; और जहाँ वह उस प्रासंगिकता को तत्काल नहीं पहचानता वहाँ उस का आरोप करता चलता है.... लेकिन बीच में एक दिन वह अकेला भी गया था। चन्द्र को किसी मन्त्री से आवश्यक भेंट के लिए कौंसिल हाउस जाना था; दिन में अपने को सूना पाकर भुवन हज़रतगंज की ओर चल दिया था और एक पटरी पर चलते-चलते सहसा उसने देखा था, दूसरी पटरी पर दूसरी ओर से आती हुई रेखा सड़क पार करने के लिए ठिठक कर इधर-उधर देख रही है कि मोटरें न आ रही हों। वह रुक कर उसे देखने लगा था। रेखा ने बिना किनारे की सफेद रेशमी साड़ी पहन रखी थी और वैसा ही ब्लाउज़, रेशम की सफेदी में एक स्निग्धता होती है जैसे हाथी दाँत के रंग में, और उस पर रेखा का साँवला रंग बहुत भला लग रहा था। आभरण-अलंकार कोई नहीं था, केवल उस के एक ओर मुड़ने पर भुवन ने लक्ष्य किया था कि जूड़े में एक फूल है।

रेखा के इस पार पहुँचते ही भुवन ने बढ़ कर नमस्कार करते हुए पूछा, "क्या काफी हाउस चल कर बैठना अच्छा न रहेगा? आप मालूम होता है काफी देर से घूमती रही हैं—लाइये, एक-आध बंडल मुझे दे दीजिए," क्योंकि रेखा के हाथ में कई एक पुलिन्दे थे।

"धन्यवाद, मैं अपना बोझा ढोने की आदी हूँ।" कहते-कहते भी मुस्कराती रेखा ने दो-तीन पैकेट उसे दे दिये। "मैं उपहार देने के लिए कुछ चीजें खरीद रही थी; उपहार देना यों भी अच्छा लगता है और मैं तो इतना आतिथ्य पाती हूँ कि चाहिए भी। लेकिन आज काफी हाउस का निमन्त्रण मेरा है—"

"निमन्त्रण तो—अगर आप न्याय करें तो—मेरा ही था।" भुवन ने हलके प्रतिवाद के स्वर में कहा।

रेखा केवल हँस दी।

"काफी हाउस का भी एक चस्का है," रेखा ने कहा, "काफी के चस्के से शायद ज्यादा गहरा वही है।"

"हाँ, चन्द्र को ही देखिए; अपने जीवन का छठा अंश वह यहाँ बिताता है या बिताना

चाहता है—हालांकि अच्छी और बुरी काफी की पहचान भी शायद उसे नहीं है ?"

"आपको कैसा लगता है ?"

भुवन ने सीधे उत्तर न दे कर कहा, "चन्द्र का विचार है कि जीवन से तटस्थ हो कर दो मिनट बैठने के लिए ऐसी अच्छी जगह दूसरी नहीं—तटस्थ भी हों और देखते भी चलें, यह यहाँ का लाभ है।"

"पर आप तो ऐसा न मानते होंगे—आप तो यों ही इतने तटस्थ जान पड़ते हैं—" रेखा थोड़ा हँस दी—"कि दो मिनट की तटस्थता का आप के लिए क्या आकर्षण होगा!"

भुवन उस की तीखी दृष्टि पर कुछ चौंका, पर सहज भाव से ही बोला, "हाँ, मैं तो आता हूँ कि थोड़ी देर के लिए जीवन के भरपूर प्रवाह में अपने को डाल सकूँ—मुझे तो हमेशा यह डर रहता है कि कहीं तटस्थता के नाम पर मैं बिलकुल दूर ही न जा पड़ूँ। यहाँ बैठ कर अपने को मानवता का अंग मान सकता हूँ—उसके समूचे जीवन का स्पन्दन अनुभव कर सकता हूँ—"

"लेकिन, डाक्टर भुवन, काफी हाउस में मानवता का जो अंश आता है उस का जीवन मानवता का जीवन नहीं है। वह तो—वह तो—" रेखा के स्वर में थोड़ा-सा आवेश आ गया—"वह तो केवल एक भँवर है, वह भी बहुत छोटा-सा, और जीवन का प्रवाह—" वह सहसा चुप हो गयी; फिर बोली, "और मानवता क्या है ? मुझे तो लगता है, जब आप मानव से हट कर मानवता की बात सोचने लगते हैं, तभी आप जीवन से दूर चले जाते हैं, क्योंकि जीवन मानव का है, मानव यथार्थ है, मानवता केवल एक उद्भावना—एक युक्ति-सत्य—"

भुवन ने कुछ संकुचित हो कर कहा, "आप शायद ठीक कहती हैं। लेकिन मानवता न सही, जीवन की बात जब मैं कहता हूँ, तब अपने जीवन से बड़े एक संयुक्त, व्यापक, समष्टिगत जीवन की बात सोचता हूँ—उसी से एक होना चाहता हूँ—अगर वह बहुत बड़ा प्रवाह है, तो उस की धारा को बाँहों से घेर लेना चाहता हूँ—या वह छोटे मुँह बड़ी बात लगे तो कहूँ कि उस पर एक पुल बाँधना चाहता हूँ चाहे क्षण-भर के लिए—" यहाँ वह रुक गया, क्योंकि उसे लगा कि वह बड़ी-बड़ी बातें कर रहा है, और रेखा के चेहरे पर भी उसने एक हलकी-सी आमोद की मुस्कराहट देखी। "आप हंसती हैं ? बात भी शायद हँसी की है—काफी हाउस में बैठ कर जीवन की नदी पर पुल बाँधने की बात तो अफीमची की पिनक की बात है।"

"नहीं, डाक्टर भुवन, सच कहूँ तो मुझे आप पर थोड़ी ईर्ष्या ही हो रही थी। काफी हाउस की तो बात खैर छोड़िए, वह तो एक प्रतीक बन गया जिस के सहारे हम जीवन ही के प्रति अपने दृष्टिकोण व्यक्त कर रहे हैं। इस लिए यह तो मुझे नहीं लगता कि हम यों ही बड़ी बातें कर रहे हैं। पर—पर जीवन की नदी पर सेतु बाँधने की कल्पना कर सकना ही इतनी बड़ी बात है कि मुझे ईर्ष्या होती है।"

भुवन ने कहा, "हाँ, यों सेतु बनना चाहना है बड़ी मूर्खता—क्योंकि सेतु दोनों ओर से केवल रौंदा ही जाता है।"

"हाँ, मगर सचमुच सेतु बन सकें तो दोनों ओर से रौंदे जाने में भी सुख है, और रौंदे जा कर टूट कर प्रवाह में गिर पड़ने में भी सिद्धि। पर मैं तो कह रही हूँ कि मैं तो उतनी कल्पना भी नहीं कर पाती—मैं तो समझती हूँ, हम अधिक-से-अधिक इस प्रवाह में छोटे-छोटे द्वीप हैं, उस प्रवाह से घिरे हुए भी, उस से कटे हुए भी; भूमि से बँधे और स्थिर भी, पर प्रवाह में सर्वदा असहाय भी—न जाने कब प्रवाह की एक स्वैरिणी लहर आ कर मिटा दे, बहा ले जाय, फिर चाहे द्वीप का फूल-पत्ते का आच्छादन कितना ही सुन्दर क्यों न रहा हो!"

भुवन तनिक विस्मय से रेखा की ओर देखता रहा। उस के शब्दों में, उस की वाणी में, चित्रों को उभार कर सामने रख देने की अद्भुत शक्ति थी। भुवन अपनी आँखों के सामने स्पष्ट देख सकता था—एक दिगन्तस्पर्शी प्रवाह, उस में छोटे-छोटे द्वीप—मानों तैरते दीप—और एक बड़ी अँधेरी रवहीन तरंग—नहीं, नहीं! उसने अपने को सँभाल कर कहा, "रेखाजी, आप क्यों काफी हाउस आती हैं?"

"मैं? मैं!" एक ही शब्द की दो प्रकार के स्वरों में आवृत्ति—बिना कुछ कहे भी रेखा कितना कुछ कह सकती थी। थोड़ी देर बाद उसने कहा, "मैं तो—आप मानिए!—काफी पीने ही आती हूँ। थक कर आती हूँ, पर विश्राम के लिए नहीं, काफी पी कर फिर चल पड़ने के लिए। जैसे इंजन ईंधन झोंकने या पानी लेने रुकता है या फिर साथ के लिए आती हूँ—कुछ लोगों से मिलने, बात करने—और यहाँ इस लिए कि यहाँ वे सहज भाव से मिलते हैं। और मानव और मानव का सहज भाव से साक्षात्—वही हमारा मानव जीवन से और मानवता के जीवन से एक मात्र सम्पर्क हो सकता है। नहीं तो मानवता—यानी हमारी कल्पना—एक विशाल मरु-भूमि है!"

बात कुछ अतिरिक्त गम्भीर हो गयी थी। दोनों सहसा चुप हो कर सोचते रहे। थोड़ी देर बाद भुवन ने कहा, "क्या हम लोग एक ही बात या दृष्टिकोण को समान्तर ढंग से नहीं कह रहे हैं? आप जिसे व्यक्तियों का सहज साक्षात् कहती हैं मैं उसे—"

"नहीं, डाक्टर भुवन, आप एक और सम्पूर्ण की बात कहते हैं, मैं एक और दूसरे एक की। सम्पूर्ण मेरे लिए केवल युक्ति-सत्य है—अपने-आप में कुछ नहीं, केवल एक और एक की अन्तहीन आवृत्ति से पाया हुआ एक काल्पनिक योग-फल। आप की मानवता एक विशाल मरु-भूमि है—और मेरे ये सहज साक्षात् छोटे-छोटे हरे ओएसिस। न एक हरियाली से सम्पूर्ण मरु की कल्पना हो सकती है, न असंख्य हरियालियों को जोड़ देने से एक मरुभूमि बनती है। ये चीजें ही अलग हैं—"

भुवन ने जैसे मौका पा कर कहा, "ठीक। असंख्य हरियालियों से एक मरु नहीं बनता। तो यह क्यों न मानिए कि यह मरु नहीं है, सम्पूर्ण जो है, वह जीवन का उद्यान है?"

रेखा थोड़ी देर स्थिर दृष्टि से उसे देखती रही। फिर सहसा खिल कर बोली, "इसी लिए तो मैं कहती हूँ, डाक्टर भुवन, मुझे आप से ईर्ष्या है। मैं एक-एक ओएसिस से ही इतनी अभिभूत हूँ कि दो को जोड़ नहीं सकती, और जोड़ना चाहती भी नहीं। कहिए कि इतनी पंगु हूँ कि अगर ओएसिस है तो मरु है ही ऐसा मानना ज़रूरी समझती हूँ—जब कि आप बिना मरु के ही, ओएसिस का अस्तित्व मानते हैं। आप भाग्यवान् हैं—"

भुवन समझ रहा था कि रेखा यों बात टाल रही है—या कि उसे फिर गम्भीर से उतार कर साधारण के तल पर ला रही है—काफी हाउस के उपयुक्त तल पर। पर वह आग्रह कर के बात आगे चलाना चाहता था, यद्यपि यह उसे लग रहा था कि अगर रेखा बात आगे चलाने को राजी न होगी तो उस के किये कुछ न होगा। मगर इतने में ही कुछ दूर से चन्द्र का स्वर आया, "भाग्यवान् मैं हूँ, रेखा देवी, कि आप दोनों को यहाँ पा लिया। लेकिन भुवन को किस बात पर आप बधाई दे रही हैं—क्यों भुवन, कुछ नोबेल पुरस्कार मिलने की बात है क्या ?"

रेखा ने सहसा एक और ही स्तर पर आ कर कहा, "हाँ, आप तो सब से अधिक भाग्यवान् हैं—आप तो बिना ओएसिस के मरुभूमि में ही खुश हैं !"

"अगर उस में आप लोगों का साथ हो, और अच्छी काफी मिल जाय।" चन्द्र ने बैठते हुए कहा, और पुकारा, "बेयरा !"

भुवन को विस्मय हुआ। रेखा की बात बिल्कुल चिकनी और साफ़ थी, और हलकी हँसी उस वातावरण के बिल्कुल अनुकूल, पर क्या उस में कहीं गहरे में एक विद्रूप का भाव नहीं था—विद्रूप और, हाँ, एक अस्वीकार का, तिरस्कार का ? रेखा और चन्द्रमाधव मित्र हैं, इतना ही वह जानता था, लेकिन—लेकिन . . .

"रेखा देवी, आप तो और काफी लेंगी न—और भुवन, तुम ?"

भुवन ने सँभल कर कहा, "हूँ—हाँ। बेयरा, तीन काफी और ले आओ, एक क्रीम।" बेयरा गया तो उसने पूछा, "चन्द्र, तुम्हारा इंटरव्यू कैसा रहा ? भेंट हुई तो ?"

"बताता हूँ, जरा काफी आने दो—उन की बातचीत का ज़ायका धो लूँ—"

उस विषय की ओर फिर लौटना नहीं हुआ।

* * *

जिस दिन पहली बार स्टेशन जाने का निश्चय हुआ था, उस दिन भोजन के लिए बाहर जाने से पहले रेखा चन्द्रमाधव के यहाँ भी आयी थी, तय हुआ था कि वहीं से साथ बाहर चला जायगा। घर पर अधिक बातचीत नहीं हुई, क्योंकि भुवन सामान ठीक-ठाक करने में कुछ व्यस्त था, और चन्द्र को डिनर के लिए तैयारी करनी थी। डिनर उस ने कार्लटन में ठीक किया था, और वहाँ जाने के लिए उस का कहना था कि वेश की ओर विशेष ध्यान देना आवश्यक है। यों उसे कपड़े की कोई परवाह नहीं है, पर प्रमुख दैनिक

के विशेष संवाददाता के नाते उसे सब करना ही पड़ता है—यों लोग पत्रकार को कुछ नहीं बताते पर उस के रंग-ढंग से यह लगे कि उस की अच्छे समाज में पहुँच है, तो बहुत से लोग इसी लिए कुछ बताने को राजी बल्कि आतुर हो जाते हैं कि किसी दूसरे ने तो बताया ही होगा! और अच्छे जर्नलिस्ट का काम यही है कि सब को यह इम्प्रेशन दे कि आप जो बता रहे हैं, वह वास्तव में दूसरों से उसे पता लग चुका है, फिर भी आप का बताना और चीज़ है। क्यों और चीज़ है, उसके अलग कारण हो सकते हैं—एक तो यह पत्रकार पर आप के विश्वास का सूचक है—और वह कृतज्ञ है कि आपने उसे विश्वास दिया, या वह प्रसन्न है कि आप ने उस की पात्रता को पहचाना। दूसरे बात जानना एक चीज़ है और प्रामाणिक ढंग से जानना दूसरी चीज़—आप के बताने में वह प्रामाणिकता है। प्रश्न सारा यही है कि किस व्यक्ति को कितना 'फ्लैटर' करना उचित है—आज उस का जो पद है उसे ध्यान में रखते हुए, या कल उस से जो काम निकालना है उसे देखते हुए। पम्प कर के बात निकालने के लिए उसी अनुपात में पम्प से फूँक भरना भी तो होगा—यह पंजाबी मुहावरा कितना मौज़ूँ है! और आप की चाटुकारिता को कोई कितना सीरियसली ले, यह आप की पोशाक पर निर्भर है—अगर आप अच्छे कपड़े पहने हैं तो आप की की हुई प्रशंसा ठीक है और स्वीकार्य है, आप पारखी पत्र-प्रतिनिधि हैं; अगर रद्दी कपड़े पहने हैं तो वह काम निकालने के लिए की गयी झूठी खुशामद है, आप टुटपुँजिये रिपोर्टर हैं और तिरस्कार का पूरा नुस्खा सुन लिया था। बल्कि इसी में पैकिंग में उसे देर हुई। फिर भी वह जैसे-तैसे आ कर रेखा के पास बैठ गया था।

"आप मेरी चिन्ता न कीजिए; मैं प्रतीक्षा करने की आदी हूँ और यहाँ तो बहुत-सी दिलचस्प चीजें बिखरी हैं—" रेखा ने एक पुस्तक उठाते हुए कहा, "पीटर चेनी मैंने पढ़ा नहीं, सुना है बड़ी दिलचस्प कहानियाँ लिखता है।"

"जी हाँ। चन्द्र से सुना होगा आपने। या कि आप फौजदारी अदालत की रिपोर्टरी की उम्मीदवार हैं?"

रेखा ने हँस कर किताब रख दी। भीतर से चन्द्रमाधव ने पुकारा, "मेरी साहित्यिक रुचि की बुराई कर रहे हो भुवन? लेकिन पीटर चेनी क्यों बुरा है? पीटर चेनी पढ़ने वाले कम-से-कम दूसरों की नुक्ताचीनी तो नहीं करते, अपने खुश रहते हैं। और तुम्हारे साहित्य पढ़ने वाले सुपीरियर लोग—सब को हिकारत की नज़र से देखते हैं। दोनों में कौन अच्छा है, रेखा देवी? कौन-सा दृष्टिकोण स्वस्थ है?"

"ठीक है, मिस्टर चन्द्र, आपका दृष्टिकोण कलाकार का दृष्टिकोण है—सर्व-स्वीकारी। आप के मित्र आलोचक हैं—आलोचना तो रचनाशक्ति की मृत्यु का दूसरा नाम है।"

भुवन ने फिर चौंक कर रेखा की ओर देखा। क्या वह चन्द्रमाधव पर हँस रही है? क्यों? या कि दोनों पर ही हँस रही है? रेखा ने उस की भौंचक मुद्रा को लक्ष्य किया और सहसा हँस दी। "आप ठीक सोच रहे हैं डाक्टर भुवन; मैं सिर्फ हँसी कर रही थी।"

भुवन ने पूछना चाहा, लेकिन किस की ? या किस-किस की ? पर कुछ बोला नहीं।

चन्द्रमाधव ने बाहर आ कर टाई सीधी करते हुए कहा, "अब मैं सब तरह तैयार हूँ—रेडी फॉर एनीथिंग।"

रेखा ने फिर चमकती आँखों से कहा, "हाँ, पीटर चेनी के एक दृश्य के लिए भी।"

चन्द्रमाधव ने बिना झेंपते हुए कहा, "हाँ।"

" 'सेटिंग कार्लटन होटल का डाइनिंग रूम। भोजन करते-करते रेखा देवी औंधे-मुँह सूप प्लेट पर गिर गयी—हत्या के कारण का कोई अनुमान नहीं हो सका। लखनऊ के स्टार पत्रकार चन्द्रमाधव पड़ताल कर रहे हैं! प्रोफेसर भुवन भी घटना-स्थल पर मौजूद थे'—लेकिन क्या सचमुच ? या कि तटस्थता से—"

"क्या कह रही हैं आप, रेखा देवी ? ऐसी मनहूस कल्पना मत कीजिए।"

"मैं कहाँ ? यह तो पीटर चेनी—"

"पीटर चेनी के लायक पात्र कार्लटन में ढेरों और हैं, आप को वह कष्ट नहीं देगा।"

रेखा ने कृत्रिम निराशा का भाव दर्शाते कहा, "तो मैं पीटर चेनी के लायक भी नहीं—"

भुवन अतिरिक्त सजगता से रेखा को देखने लगा था। मन-ही-मन उसने सहमत होते हुए कहा, "पीटर चेनी के लायक तो कदापि नहीं।" पर फिर किस के ? हार्डी के ? हां, ऐसी कठपुतली पा कर भाग्य भी अपना भाग्य सराहेगा। पर रेखा उतनी भोली नहीं है; उस में एक बुनियादी दृढ़ता है जो . . . दोस्तोयेव्स्की ? लेकिन क्या उस की चेतना वैसी विभाजित है—क्या उसमें वह अतिमानवी तर्क-संगति है जो वास्तव में पागलपन का ही एक रूप है ?. . . प्राचीन ग्रीक ट्रेजेडीकार—एक बनाम समूचा देव-वर्ग. . . लेकिन रेखा में उतना अहं क्या है कि देवता उसे चुनें—कि वह चुनी जा कर कष्ट पावे ?. . . तब सार्त्र—क्षण की असीमता, यातना के क्षण की असीमता . . .निस्सन्देह असीम सहिष्णुता उस में है—व्यथा पाने का असीम अन्तःसामर्थ्य, लेकिन वह इसी लिए कि आनन्द की असीम क्षमता उस में है . . . आनन्द की परा सीमा, यातना की परा सीमा—चुन सकते हैं उसे देवता, क्योंकि परा सीमाएं उस में सोती हैं; नभःकांक्षी मानव, मृत्कामी देवता—ट्रेजेडी के सहज यान—इकारस के पंख, प्रमथ्यु की आग....ग्रीक ट्रेजेडी केवल अहं की ट्रेजेडी तो नहीं है, वह मानव की सम्भावनाओं की ट्रेजेडी है . . .

कुछ-कुछ यह अनुभव करते हुए कि बात बहुत देर से कही जा रही है और कदाचित् नहीं कहनी चाहिए, उसने कहा ही : "रेखा जी, चेनी के या किसी भी लेखक के पात्र होना क्यों चाहा जाय ? हर किसी का अपना जीवन अद्वितीय होता है—"

"सो तो है। हम कदम-कदम पर अपनी अनुभूतियों की तुलना साहित्य के पात्रों से करते चलते हैं, पर हैं वे अद्वितीय और अद्वितीयता में ही वे हमारे निकट मूल्यवान् हैं। उन्हीं की अनुभूतियां भोगे—ऐसे छायाजीवी भी होते हैं।"

न जाने क्यों, भुवन ने एक बार फिर चन्द्र की ओर देखा; उसने सहसा जाना कि वह चन्द्र के चेहरे को ध्यान से देख रहा है मानों उस की रेखाओं से पूछ रहा है, "जिस अनुभूति की तुम रेखाएँ हो, वह क्या सच है, मौलिक है, या कि छाया ?" कोई शीशा आस-पास नहीं था, नहीं तो कदाचित् वह अपना चेहरा भी देखने लगता।

रेखा ने पूछा, "कार्लटन में आर्केस्ट्रा भी होगा ?" भुवन ने लक्ष्य किया कि विषय बदल दिया गया है।

* * *

उस रात स्टेशन से गाड़ी जान-बूझ कर छोड़ आने के बाद, भुवन को अपने पर हल्की-सी खीझ आयी थी। क्यों वह गाड़ी छोड़ कर लौट आया ? कुछ काम की क्षति नहीं हुई, ठीक है,पर एक निश्चय निश्चय होता है,अकारण बदलने से इच्छा-शक्ति क्षीण होती है। यों क्षण की प्रेरणाओं पर अपने को छोड़ देने से आदमी शीघ्र ही आँधी पर उड़ता तिनका बन जाता है—क्योंकि प्रत्येक बार संकल्प-शक्ति कुछ क्षीणतर हो जाती है और सहज प्रेरणा की मन्द हवा कुछ तेज हो कर आँधी-सी....क्यों नहीं वह चला गया ? रेखा न जाती तो न जाती—रेखा से उसे क्या ?

और अपने कमरे में टहलते-टहलते वह सहसा निकल कर चन्द्रमाधव के कमरे में चला गया था। चन्द्र लेट गया था और सोने की तैयारी कर रहा था, पर भुवन ने बिना भूमिका के पूछा था, "चन्द्र, यह रेखा देवी कौन हैं, क्या हैं,—मुझे उसकी बात और बताओ, जो तुम्हें मालूम हो।"

चन्द्र ने एक लम्बे क्षण तक उस की ओर देखा। फिर कुछ मुस्करा कर कहा था, "क्यों, ठेस खा गये दोस्त ? रेखा तुम्हारी केमिस्ट्री की इक्वेशन नहीं जो झट हल कर लोगे—बड़ा पेचीदा मामला है।"

"बकवास मत करो। मुझे उस से कोई मतलब नहीं है। सिर्फ एक दिलचस्प चरित्र है—मुझे बौद्धिक कौतूहल है, बस। बौद्धिकता से तुम्हारा छत्तीस का नाता है, यह जानता हूँ, पर तुम जैसा दिलफेंक स्वभाव मुझे नहीं मिला तो नहीं मिला, मैं क्या करूँ ?"

"तैश में मत आओ, दोस्त," चन्द्र ने उठ कर बैठते हुए कहा था, "वह कुरसी खींच लो और बैठ जाओ।" भुवन के बैठ जाने पर, "हाँ, अब पूछो, क्या जानना चाहते हो ?"

"जो बता दो : वह कौन है, क्या है, कहाँ की है, क्या करती रही है, क्या करती है, अकेली क्यों घूमती है—"

"रुको इतना पहले बता लूं तो और पूछना; नहीं तो मेरा सिर चकरा जायगा।"

लेकिन बता कर क्या बताया जा सकता है ? स्वयं वही जब कहता है कि तथ्य और सत्य में अन्तर है, तब निरे तथ्य जान कर सत्य तक पहुँचने की व्यर्थ कोशिश वह क्यों कर

रहा है ? "सत्य अपने अन्तर की पीड़ा से जाना जाता है।" वही मानते हो, तो ठीक है; यही क्यों न परीक्षा कर के देखो ?

तथ्य कुछ अधिक थे भी नहीं।

रेखा की आयु यही सत्ताईस के लगभग होगी; वह विवाहिता है, विवाह आठ वर्ष पहले हुआ था, पर विवाह के दो-एक वर्ष बाद ही पति-पत्नी अलग हो गये थे। कारण कोई ठीक नहीं जानता, और रेखा से पूछने का साहस किसे है ? कोई कहते हैं, विवाह से पहले रेखा का किसी से प्रेम था पर उस से विवाह हो नहीं सकता था; उसने बाद में दूसरा विवाह कर लिया तो मर्माहत रेखा ने उस के माता-पिता ने जो वर ठीक किया उसे चुप-चाप स्वीकार कर लिया पर उसे वह दे न सकी जो पति को देना चाहिए; कोई यह कहते हैं कि पति की ही आदतें शुरू से ख़राब थीं और वह पत्नी के प्रति अत्यन्त उदासीन था, मित्रों को ला कर घर छोड़ जाया करता था और स्वयं न जानें कहाँ-कहाँ जा रहता था—सच क्या है भगवान् जाने, पर छः वर्ष से दोनों अलग हैं, और तीन-चार वर्ष हुए पति एक विदेशी रबर कम्पनी में अच्छी नौकरी स्वीकार कर के मलय चला गया है; वहाँ उस के साथ मलय या एंग्लो-मलय या यूरोपियन-मलय मिश्र रक्त की कोई स्त्री भी रहती है। रेखा नौकरी करती है; पढ़ाती रहती है, फिर किसी रियासत में राजकुमारियों की गवर्नेस थी, वहाँ से हाल में इस्तीफा दे कर आयी है। अभी कुछ नहीं कर रही है लेकिन नौकरी की तलाश में है।

"और घर कहाँ है ? माता-पिता हैं ?"

"नहीं। पिता बड़े नामी डाक्टर थे; माँ भक्त थीं और मरीं तो बहुत-सी सम्पत्ति रामकृष्ण मिशन को छोड़ गयीं। वैसे शायद कश्मीरी है, पर दादा कलकत्ते में आ बसे थे और तब से तीसरी पीढ़ी बंगाली ही अधिक है—रेखा हिन्दी और बँगला दोनों बोलती है और बँगला संगीत में उसकी अच्छी पहुँच है।"

"अच्छा ? और ?"

चन्द्रमाधव ने कहा, "और क्या ? जो तुम पूछो सो बताऊँ ?"

"तुम से परिचय कब से, और कैसे हुआ ?"

"मुझ से !" चन्द्र ने तकिये के पास से टटोल कर सिगरेट का पेकेट निकाला, सिगरेट सुलगा कर, उठते हुए बोला, "मुझ से ? तुम तो जानते हो, पत्रकार का परिचय हर किसी से होता है। समझ लो वैसे ही।"

"बनो मत ! और ये सब बातें तुम्हें कैसे मालूम हुईं ?"

"मैं पहले से जानता था। बल्कि सुन रक्खी थीं, इसी लिए कौतूहल अधिक था, जब भेंट हुई तो सोचा, इस अद्भुत स्त्री से अवश्य परिचय करना चाहिए।"

"क्यों ? और वह अद्भुत क्यों है ?"

"यह मुझ से पूछते हो ? देख कर ही नहीं छाप पड़ती कि यह स्त्री कुछ भिन्न है—

असाधारण है ? और क्यों की भली पूछी। जिस स्त्री का इतिहास होता है, उस में किसे नहीं दिलचस्पी होती ?"

"भुवन ने तनिक रुखाई से कहा, "हाँ जर्नलिस्ट को तो जरूर होनी चाहिए—"

"जर्नलिस्ट ही क्यों, हर किसी को होती है। तुम्हीं क्यों इतना जानने को उत्सुक हो ?"

"मैं तो जानने से पहले ही उत्सुक था, इतिहास जान कर तो नहीं हुआ—"

"मानते हो न ? तभी तो कहता हूँ वह असाधारण स्त्री है। तुम भी मानते हो, नहीं तो पूछते क्यों ? तुम्हें किसी स्त्री में दिलचस्पी हो, यह तो कभी देखा-सुना नहीं, कालेज में भी तुम गव्वू प्रसिद्ध थे।" चन्द्र जोर से हँस दिया।

भुवन ने अन्तिम बात को अनसुनी करते हुए कहा, "और क्यों दिलचस्पी है ? और यह जो इतिहास वाली बात है, उसका आकर्षण क्या निरी लोलुपता नहीं होती कि अगर पहले से इतिहास है तो एक अध्याय शायद हम भी जोड़ लें, ऐसा कुछ लोभ ?"

"हो सकता है। आधुनिक समाज में कोई समझदार विवाहित से नहीं उलझता, यह तो तुम जानते हो—उसमें खतरा बहुत होता है। हाँ, विवाहिता मगर वियुक्ता की बात और है—उस में दोनों ओर के लाभ हैं। और यह जो लोभ की बात—"

"छिः, चन्द्र, क्या बात तुम करते हो ! यह आधुनिक समाज की नहीं, अठारहवीं सदी के यूरोप के समाज की मनोवृत्ति है—बल्कि उस समय के भी दरबारी समाज की।"

"अच्छा, अच्छा, गरम मत होओ मेरे दोस्त। और मुझे छिः-छिः कहने से क्या लाभ है—मैं तो हर किसी की बात कह रहा था, अपनी थोड़े ही ?"

"क्यों, तुमने अपनी दिलचस्पी की बात नहीं कही थी अभी ?"

"कही थी। पर वह बात और है। मैं तो रेखा देवी का बहुत सम्मान करता हूँ। बल्कि वैसी स्त्री—" सहसा चन्द्र बात अधूरी छोड़ कर चुप हो गया।

"कहो, कहो—वैसी स्त्री क्या ?"

"कुछ नहीं !" कह कर चन्द्र ने चुप लगा ली, और फिर भुवन के बहुत पूछने पर भी कुछ नहीं बोला।

* * *

अन्तिम दिन वे तीनों सिनेमा गये थे। यों शाम के शो में भी जाया जा सकता था, पर एक बजे काफी हाउस में मिलने की ठहरी थी और भुवन का प्रस्ताव था कि वहीं से तीन बजे के शो में चला जाय—ताकि शाम को थोड़ा घूमने का समय मिल सके।

अँग्रेजी चित्र था, जिस में एक दुर्घटना में नायक का स्मृतिलोप हो जाता है, और वह अपनी गृहस्थी की बात भूल कर पुनः प्रेम करने लगता है; और फिर एक वैसी ही दुर्घटना देखकर उसकी पहली स्मृति लौट आती है और नया स्मृति-संचय मिट जाता है। कहानी

भी मार्मिक थी और अभिनय भी भावोद्वेलक; पर उसे ध्यान से देखते हुए भी भुवन मन-ही-मन सोचता जाता था कि इस की रेखा पर क्या प्रतिक्रिया हो रही होगी। क्योंकि सम्पूर्ण तटस्थ भाव से तो कुछ देखा नहीं जाता; हम अनजाने कथावस्तु पर अपना आरोप करते चलते हैं, या फिर अपने पर ही कथा की घटनाएँ घटित करते चलते हैं—और मन की यह भी एक शक्ति है कि ज़रा-से भी साम्य के सहारे वह सहज ही सम्पूर्ण लयकारी सम्बन्ध जोड़ लेता है। क्या रेखा अपने को अमुक स्थिति में देख रही है? क्या....बीच-बीच में वह खीझ कर अपने को झकझोर लेता कि नहीं, रेखा की बात वह नहीं सोचेगा, पर फिर थोड़ी देर में वैसा ही प्रश्न उसके मन में उठ आता—अगर रेखा का पति . . .

बाहर आकर तीनों टहलते हुए गोमती की ओर निकल गये थे। पुल के पास घाट की सीढ़ियों पर तीनों बैठ गये थे। चलते-चलते चित्र के विषय में कुछ बात हुई थी, पर "अच्छा है" से अधिक रेखा ने कोई मत व्यक्त नहीं किया था; वह स्पष्ट ही कुछ अनमनी थी।

सहसा भुवन ने पूछा, "रेखा जी, आप गाती नहीं?"

"गाती नहीं, यह तो नहीं कह सकती, पर गाना जानती नहीं हूँ।"

चन्द्र ने साभिप्राय भुवन की ओर देखा।

"आप की मातृभाषा तो बँगला है न?"

रेखा ने एक बार दृष्टि उठा कर भुवन से मिलायी। उसमें बड़ा हल्का-सा अचम्भा था, और कुछ यह भाव कि आपने पूछा है तो उत्तर देती हूँ, पर अपने बारे में प्रश्नों का उत्तर देने का मुझे अभ्यास नहीं। फिर उसने कहा, "उँ—हाँ, वही मेरी भाषा है।"

"तो बँगला में ही एक गाना गा दीजिए न—मेरा यह आग्रह गुस्ताखी तो न होगा?"

रेखा थोड़ी देर चुप रही। फिर धीरे-धीरे बोली, "नदी का किनारा है, गान यहाँ होना ही चाहिए–आप की मान्यताएँ भी इतनी रोमांटिक होंगी ऐसा नहीं समझती थी।"

भुवन ने आहत भाव से प्रतिवाद करना चाहा, पर बोला नहीं। चन्द्र मानों आँखों से कह रहा था, "तुम हो दुस्साहसी, पर देखें तुम्हारी बात सुनती है कि नहीं—मेरी तो कभी नहीं सुनी।"

सहसा दोनों निश्चल हो गये, क्योंकि रेखा कुछ गुनगुना रही थी। फिर उसने धीमे किन्तु स्पष्ट स्वर में गाना शुरू किया:

आमार रात पोहालो शारद प्राते—
आमार रात पोहालो।
बांशी तोमाय दिये जावो काहार हाते—
आमार रात पोहालो।
तोमार बूके बाजलो धुनि, विदाय गाँथा आगमनि
कत ये फाल्गुणे श्रावणे कत प्रभाते राते—

आमार रात पोहालो।
ये कथा रय प्राणेर भीतर अगोचरे
गाने-गाने निये छिले चूरि करे
समय ये तार हल गत, निशि शेषे तारांर मत,
तारे शेष करे दाओ शिउलि फूलेर मरण साथे—
आमार रात पोहालो ! *

अन्तिम पंक्ति गाते-गाते ही वह उठी और धीरे-धीरे सीढ़ियाँ उतरने लगी, अन्तिम स्वर उस बढ़ती हुई दूरी में ही खो गये और ठीक पता न लगा कि गाना पहले बन्द हुआ कि सुनना। नीचे पहुँच कर रेखा पानी के निकट खड़ी हो गयी, एक बार मानों हाथ से पानी हिलाने के लिए झुकी, पर फिर इरादा बदल कर सीधी हो गयी। भुवन और चन्द्र दोनों ऊपर बैठे रहे। पुल के ऊपर दो-तीन बन्दर आ कर बैठ गये और कौतूहल से दोनों की ओर देखने लगे। घिरती साँझ के आकाश के पट पर बन्दरों के आकार अजब लग रहे थे।

चन्द्र ने पुकारा, "रेखा जी, अब चला जाय ?"

रेखा ने घूमते हुए आवाज़ दी, "आयी।" और धीरे-धीरे सीढ़ियाँ चढ़ने लगी।

भुवन ने कहा, "रेखा जी, आपने हमें यह कहने का मौका ही नहीं दिया कि आप बहुत अच्छा गाती हैं—"

"तो आप को आभार मानना चाहिए कि अनावश्यक शिष्टाचार से मैंने आपको बचा लिया ! जैसा गाती हूँ, वह मैं जानती हूँ, सीखना ज़रूर चाहती थी, पर—" हाथों की एक अस्पष्ट मुद्रा ने बाकी वाक्य का स्थान ले लिया।

उस के बाद स्टेशन पहुँचने तक एक अजब-सा दुराव सब के बीच में आ गया था। सभी चुप रहे थे; चलने से कुछ पहले भुवन सामान देखने का बहाना कर के अलग हट गया था कि उस की वजह से वह खिचाव हो तो दूर हो जाय; पर जब वह बाहर घूम घाम कर सीढ़ी पर पैर पटकता हुआ लौटा, तब भी दोनों चुपचाप ही बैठे थे, बल्कि तनाव कुछ अधिक ही जान पड़ रहा था—चन्द्र के चेहरे पर कुंठित-सा भाव था, और रेखा के चेहरे पर एक अनमनापन, आँखों में एक असीम दूरी, मानों वह बहुत, बहुत दूर कहीं पर हो...

भुवन ने कुछ ऊँचे स्वर से कहा, "और आज भी भीड़ हुई तो ? मैं तो जैसे-तैसे जाऊँगा ही—चाहे फुटबोर्ड पर लटकते हुए ही—"

---

* मेरी रात चुक गयी शारद प्रात में; बंशी, तुम्हें, किसके हाथ सौंप जाऊं ? कितने फागुन-सावन में, कितने प्रभात-रात में तुम्हारे हृदय में विदा से गुँथी हुई आगमनी की धुन बजी है। प्राणों के भीतर जो कथा अगोचर थी, तुमने गान में चुरा ली थी। उसका समय बीत गया निशा-शेष के तारों-सा, उसे अब शेफ़ाली के फूल के मरण के साथ समाप्त कर दो।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

रेखा ने कहा, "नहीं, आज मैं आप को रोकने का आग्रह नहीं करूँगी—कल भी आप रुक गये इस के लिए बहुत कृतज्ञ हूँ।"

भुवन ने मन-ही-मन सोचा, 'कल भी आपने कौन-सा आग्रह किया था—'पर प्रत्यक्ष उसने नहीं कहा। बोला, "कृतज्ञ मुझे—हम दोनों को होना चाहिए कि आप रुक गयीं—"

चन्द्र ने प्रकृतस्थ हो कर कहा, "हाँ, और नहीं तो क्या। बल्कि मुझे आप दोनों का—"

"चलिए, हम सब-के-सब कृतज्ञ हैं।" रेखा मुस्करा दी। "अब चलें—राह में मेरा सामान लेते चलेंगे—"

भुवन अपने कमरे की ओर सामान उठाने चला। पीछे उसने सुना, रेखा पूछ रही है, "आप के मित्र को इलाहाबाद में बहुत ज़रूरी काम है ? या घर पहुँचने की जल्दी है—बीवी—"

वह सहसा ठिठक गया। चन्द्र ठठा कर हँसा। "अरे, भुवन तो निघरा है, उसे कहीं पहुँचने की जल्दी नहीं है।" भुवन आगे बढ़ गया। रेखा ने फिर कहा, "अकेले हैं, तभी लीक पकड़ कर चलते हैं।"

इस वाक्य का कुछ भी अभिप्राय भुवन नहीं समझ सका—कोई भी अर्थ न उस पर लागू होता था, न रेखा या चन्द्र पर ही किसी तरह लगाया जा सकता था। चन्द्र ने फिर क्या कहा, यह उसने नहीं सुना।

दस बजे रात को गाड़ी लखनऊ से छूटी थी। रेखा के डिब्बे के सामने ही उस ने चन्द्र-माधव से विदा ली थी, और उसे वहीं छोड़ कर अपने डिब्बे की ओर चला गया था। रेखा का डिब्बा आगे की ओर था; गाड़ी जब चली तब प्लेटफ़ार्म पर खड़ा चन्द्र फिर उस के सामने आ गया और उस ने हाथ हिला कर फिर विदा माँग ली।

उस के बाद अगर वह ऊँघता रहता, और प्रतापगढ़ तक फिर रेखा को देखने न जाता, तो कोई असाधारण बात न होती—वैसा कुछ उस से अपेक्षित नहीं हो सकता था। बल्कि प्रतापगढ़ में भी अगर न उतरता, तो बहुत अधिक चूक न होती; चाहे रेखा ही उसे वहाँ देखकर नमस्कार करती हुई चली जाती। रेखा की यात्रा का या उस यात्रा में उसकी सुरक्षा या सुविधा का कोई दायित्व भुवन पर कैसे था ?

पर गाड़ी पैसेंजर थी, हर स्टेशन पर रुकती थी। ऊँघने की चेष्टा बेकार थी—यों भुवन ने उधर ध्यान भी नहीं दिया। पहले ही स्टेशन पर गाड़ी रुकी तो वह रेखा के डिब्बे पर पहुँच गया; दरवाजे के पास ही रेखा बैठी थी और उस की आँखें बिल्कुल सजग थीं और शायद बाहर अन्धकार की ओर देखती रही थीं !

भुवन ने कहा, "आप काफी सफ़र करती हैं ?"

"हाँ, अधिक सफ़र ही करती हूँ। इधर के बहुत कम वेटिंगरूम हैं जो मेरे अपरिचित

होंगे। जब मुसाफ़िर नहीं होती तब मेहमान होती हूँ—और दोनों में कौन अधिक उखड़ा है यह कभी तय नहीं कर पायी।"

"लेकिन उखड़ापन तो भावना की बात है, रेखा जी! मानने से होता है। व्यक्ति की जड़ें घरों में नहीं होतीं—समाज-जीवन में होती हैं—नहीं? और यायावरों का भी अपना समाज होता है—"

"तो समझ लीजिए कि मैं ज्ञान के तरु की तरह हूँ—ऊर्ध्व-मूल—मेरी जड़ें आकाश में खोयी फिरती हैं! लेकिन यह न समझिए कि मैं शिकायत कर रही हूँ—"

गाड़ी चल दी थी। अगले स्टेशन पर भुवन ने फिर कहा था, "आप जैसा व्यक्ति भटकता है तो यही मानना चाहिए कि स्वेच्छा से, पसन्द से भटकता है—लाचारी तो समझ में नहीं आती। और स्वेच्छा का भटकना तो भीतरी शक्ति का द्योतक है।"

रेखा हँस पड़ी। "भटकने से ही शक्ति आती है, डाक्टर भुवन! क्योंकि जब मिट्टी से बाँधने वाली जड़ें नहीं रहतीं, तब हवा पर उड़ते हुए जीने के लिए कहीं-न-कहीं से और साधन जुटाने पड़ते हैं। स्वेच्छा से भटकना? हाँ, इस अर्थ में ज़रूर स्वेच्छा है कि पड़ा-पड़ा पिस क्यों नहीं जाता, अँधेरे गर्त में धँस क्यों नहीं जाता, हाथ-पैर क्यों पटकता है?"

"मैं आप को क्लेश पहुंचाना नहीं चाहता था, रेखा जी—मेरा मतलब था—व्यक्तित्व जड़ें तो फेंकने लगता है बिल्कुल बचपन से और—और—" वह कुछ झिझका, "आप का भटकना—"

"कह डालिए न, आप का भटकना पाँच-छः वर्ष का ही है; आप जानते तो होंगे कि मेरा विवाह हुए आठ वर्ष हो गये और विवाह के दो वर्ष बाद से—"

भुवन चुप रह गया।

"आप की बात ठीक है। कुछ सम्बन्ध बने भी रह सकते थे, और उन्हें काट कर वह निकलना स्वेच्छा से ही हुआ। पर—जड़ों का ही रूपक लिये चलें तो—यह आप नहीं मानते कि कुछ जड़ें वास्तव में जीवन का आधार होती हैं, और सतही जड़ों का बहुत बड़ा जाल भी एक गहरी जड़ की बराबरी नहीं करता?"

"हाँ—"

"तब एक जड़ के कट जाने से भी पेड़ मर सकता है—और मरे नहीं तो भी निराधार तो हो ही सकता है। मैं मरी नहीं—"

गाड़ी फिर चल दी। इस समय शायद भुवन को गाड़ी के चल देने से तसल्ली ही हुई, क्योंकि ऐसे में क्या कहे वह सोच नहीं सकता था।

बात ज्यों-ज्यों आगे चलती थी, अगले स्टेशन पर फिर न जा पहुँचना उतना ही अनुचित जान पड़ता था; अनुचित ही नहीं, भुवन स्वयं भी बात आगे सुनने को उत्सुक था।

अगले स्टेशन पर रेखा ने कहा, "डाक्टर भुवन, मैं अपनी बात के लिए क्षमा चाहती हूं। इस तरह की बात करने की मैं बिल्कुल आदी नहीं हूँ, आप मानें। पर रेल का सफ़र

शायद इस तरह के आत्म-प्रकाशन को सहज बनाता है—चलती गाड़ी में हम अजनबी को भी बहुत-सी ऐसी निजी बातें कह देते हैं जो अपने ठिकाने पर घनिष्ट मित्रों से भी न कहें।" वह कुछ रुकी। फिर बोली, "यह शायद जड़ों वाली बात का एक पहलू है; चलती गाड़ी में मुझ-जैसे व्यक्ति को एक स्वच्छन्दता का बोध होता है जब कि स्थिरता की सूचक किसी जगह में मुझे अपना बेमेलपन ही अखरता रहता और मैं गूँगी हो जाती। इस लिए मेरी बात पर ध्यान न दें—वह चलती बात है।" अपने श्लेष पर वह स्वयं हँसी। भुवन ही नहीं हँस सका।

रेखा ने फिर कहा, "यों भी शायद मैं एग्जैजरेट कर रही हूँ—उतना गहरा आघात शायद वह नहीं था। वैसा कहना दोतरफा अन्याय है। असल में जहाँ मैं आ पहुँची हूँ, उस का कोई एक कारण नहीं है—मेरा सारा जीवन ही कारण है। और यह कहने से कुछ बात नहीं बनती—क्योंकि 'जीवन का सारा जीवन ही कारण है' यह कहने के क्या मानी हैं?"

"मानी हैं," भुवन इतना ही कह पाया; गाड़ी फिर चल दी। और अगले स्टेशन पर उसने देखा कि रेखा का चेहरा इतना बदला हुआ है कि बात का सूत्र फिर उठाने का साहस ही उसे नहीं हुआ।

रेखा ने कहा, "एक बात पूछूँ, डाक्टर भुवन? बुरा तो न मानेंगे? आपने शादी क्यों नहीं की?'

भुवन अचकचा गया। पैंतरा काटता हुआ बोला, "पहले तो डाक्टर कहना आवश्यक नहीं है रेखा जी; नहीं तो मुझे लगेगा कि श्रीमती रेखा देवी न कहने में मुझ से चूक होती रही है। दूसरे—कोई काम न करने के लिए क्यों कारण ढूँढ़ा जाय? कारण तो कुछ करने के लिए होना चाहिए, न करना तो स्वयंसिद्ध है।"

"हाँ, यों तो ठीक है, पर शादी के बारे में नहीं। वह तो धर्म है न—शास्त्रोक्त भी, स्वाभाविक भी—"

"रात के दो बजे शास्त्रार्थ करने लायक ज्ञान तो मुझ में है नहीं। और कहीं अस्वाभाविकता अपने जीवन में अखरी हो, ऐसा भी नहीं है—"

"अरे हाँ, मैं भी कैसा अत्याचार कर रही हूँ यह—बस अब अगले स्टेशन पर आप नहीं आवेंगे। मैं प्रतापगढ़ स्वयं उतर जाऊँगी। आप जा कर आराम कीजिए, डाक्टर भुवन जी!"

भुवन ने कहा, "रेखा जी, आपने जिसे अनावश्यक शिष्टाचार कहा था, यह बात भी क्या उसी के अन्तर्गत नहीं आती?"

अगला स्टेशन प्रतापगढ़ था। यहाँ तो दस-बारह मिनट गाड़ी ठहरेगी। भुवन लपक कर पहुँचा कि सामान उतरवा दे; पर यहाँ तक आते डिब्बे की सब सवारियों पर ऐसी शिथिलता छा गयी थी कि सब अपने-अपने स्थान पर पोटलियों-सी पड़ी थीं, और ऊपर की बर्थ से सामान उतार लेने में कोई अड़चन या झिझक नहीं हो सकती थी। भुवन के

पहुंचने तक रेखा ने सामान उतार लिया था, एक कुली भी आ गया था।

रेखा ने कहा, "इस स्टेशन पर तो आप के न आने की बात थी?"

"न आता तो आप 'मिस' न करतीं, यह जानता हूं; समझ लीजिए कि यह भी फालतू शिष्टाचार है—"

"जो आप अपने सौजन्य के साथ रंगे दे रहे हैं।" रेखा हंसी।

कुली ने सामान उठा लिया था। रेखा ने कहा, "वेटिंग-रूम में ले चलो, हम आते हैं।" कुली चला गया।

भुवन ने कहा, "रेखा जी, आप से भेंट करके मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। मेरा लखनऊ का प्रवास बड़ा सुखद रहा। इस बात को आप शिष्टाचार ही न मानें—" फिर तनिक-सा रुक कर, "सुखद शायद ठीक शब्द नहीं है—किन्तु ठीक शब्द तत्काल मिल नहीं रहा है, सोच कर शायद ढूंढ़ निकालूं।"

रेखा ने गम्भीर हो कर कहा, "भुवनजी, मैं भी आप की कृतज्ञ हूं। आपने इस वापसी की यात्रा को भी प्रीतिकर बना दिया। बल्कि मैं सोचती हूं, यह यात्रा कुछ और लम्बी हो सकती थी।" फिर कुछ मुस्करा कर, "बात-चीत का यह इंटरमिटेंट तरीका कुछ बुरा नहीं है—ये बीच-बीच के ब्रेक अपने-आप में एक तटस्थता दे देने वाले हैं, फिर चाहे बात-चीत कोई कैसी ही करे। मैं सोचती हूं मुझे कभी ईसाइयों की तरह कनफ़ेशन करना हो तो गिरजा में जा कर नहीं, रेलगाड़ी में ही करूँ।"

भुवन ने भी हंस कर कहा, "और कनफ़ेसर मैं होऊं—मुझे विश्वास है कि मेरा काम बहुत हलका रहे। आपने ऐसे बहुत कर्म किये होंगे जिन का आत्मा पर बोझ हो, ऐसा नहीं लगता।"

रेखा जोर से हंस दी। अंग्रेजी में उसने एक पंक्ति कही, जिस का अर्थ था 'कितना छल-रूपी होता है पापी!' फिर सहसा स्वर बदल कर गम्भीर हो कर उसने पूछा, "अच्छा सच बताइये, मैंने आप के इलाहाबाद जाने में जो एक दिन देर कर दी, उसके लिए आप नाराज तो नहीं हैं न?"

अब भुवन हंसा। "वह बात अभी तक आप को याद ही है। मुझे कहीं पहुंचना नहीं था, और एक दिन जो अधिक रह गया वह और भी अच्छा बीता—नाराजी का प्रश्न ही कैसे उठता है? कृतज्ञ—"

"नहीं, मुझे बहुत डर लगा रहता है। जो रास्ते वाले हैं उन्हें रास्ते से एक इंच भी इधर-उधर नहीं ले जाना चाहिए—मेरी बात तो दूसरी है, मेरे आगे रास्ता ही नहीं है।"

भुवन ने कहा, "स्पष्ट क्यों नहीं कहतीं? आप समर्थ हैं, रास्ता बनाती चलती हैं हम दूसरों की बनायी हुई लीकें पीटते हैं—"

रेखा ने जोर दे कर कहा, "नहीं, यह मेरा आशय बिल्कुल नहीं था।"

भुवन को रेखा की शाम को कही हुई बात याद आ गयी—"अकेले हैं, तभी लीक पकड़

कर चलते हैं।" उसने चाहा, अभी पूछ ले कि रेखा का क्या अभिप्राय था। पर वह बात उसे नहीं, चन्द्रमाधव को कही गयी थी, उसे सुननी भी नहीं चाहिए थी। उसने पूछा, "तब कुछ स्पष्ट कर के कहिए न ?"

"कुछ नहीं। दूसरों की बनायी हुई लीकों की बात मैं नहीं सोच रही थी। व्यक्तित्व की अपनी लीकें होती हैं---एक रुझान होता है। और उस के आगे, व्यक्ति अपने वर्तमान और भविष्य के बारे में जो समझता है, जो कल्पना करता है, मनसूबे बाँधता है, उन से भी तो एक लीक बनती है---लीक कहिए, चौखटा कहिए, ढांचा कहिए। या कह लीजिए दुनिया में अपना एक स्थान। मेरा यही मतलब था। आप के सामने---ऐसा मेरा अनुमान है---भविष्य का एक चित्र है, कहीं मंज़िल है, ठिकाना है। इस लिए रास्ता भी है---"

"रास्ते तो कई हो सकते हैं, और शार्ट-कट होते नहीं---"

"शार्टकट नहीं होते, पर कई रास्तों वाला तर्क बड़ा खतरनाक होता है, भुवन जी; आप के सामने एक रास्ता है, वह जिस पर आप हैं। दूसरे रास्ते हो सकते हैं पर चलता रास्ता एक ही है---जिस पर आप हैं। चलना तभी सम्भव है।"

गार्ड ने सीटी दे दी थी। गाड़ी भी सीटी दे चुकी थी। भुवन ने कहा, "रेखा जी, आप-से व्यक्तित्व को देख कर कोई यह नहीं कह सकता कि आप के सामने रास्ता नहीं है---आप का ऐसा स्पष्ट, सुनिश्चित, रूपाकार-युक्त व्यक्तित्व है कि---" वह शब्दों के लिए कुछ अटका, तो रेखा ने कहा, "आप चल कर गाड़ी पर सवार हो जाइये, फिर आगे बात होगी।"

भुवन ने कहा, "अभी चलने में बहुत देर है।" फिर कुछ शरारत से एलियट की पंक्तियाँ दुहरा दीं;

"बिट्वीन द आइडिया
एंड द रिएलिटी
बिट्वीन द मोशन
एंड द एक्ट
फाल्स द शैडो
फार दाइन इज़ द किंग्डम्---"*

रेखा हंसी, कुछ बोली नहीं। भुवन ने कहा, "लेकिन मेरा सवाल बीच ही में रह जाता है---आप के पास ऐसी स्पष्ट प्रखर दृष्टि है---"

"कि मुझे सब रास्ते एक साथ दीखते हैं।" रेखा बात काट कर हँस पड़ी। "और हर

---

* कल्पना और यथार्थ के बीच, गति और कर्म के बीच आ जाती है (तेरी) छाया, क्यों कि तू ही शास्ता है---

रास्ते के आगे एक मंजिल भी दीखती है, जिसे मरीचिका मानना कठिन है।" वह तनिक रुकी, फिर गम्भीर हो कर उस ने कहा, "और इसीलिए सब मंजिलें झूठ हो जाती हैं, और कोई रास्ता नहीं रहता। मैं सचमुच कहीं भी पहुँचना नहीं चाहती—चाहना ही नहीं चाहती। मेरे लिए काल का प्रवाह भी प्रवाह नहीं, केवल क्षण और क्षण और क्षण का योग-फल है—मानवता की तरह ही काल-प्रवाह भी मेरे निकट युक्ति-सत्य है, वास्तविकता क्षण ही की है। क्षण सनातन है।"

भुवन चुपचाप रेखा का मुंह ताकता रहा। रेखा जैसे दूर कहीं से कुछ गुनगुना उठी; भुवन ने कान देकर सुना, वह लारेंस की कुछ पंक्तियाँ दुहरा रही थी।

"डार्क ग्रासेज़ अंडर माई फ़ीट
सीम टु डैब्ल् इन मी
लाइक ग्रासेज इन ए ब्रुक।
ओः, एंड इट इज स्वीट टु बी
आल दीज थिंग्स, नाट टु बी
एनीमोर माइसेल्फ़,
फ़ार लुक—
आई एम वेयरी आफ़ माइसेल्फ़!"*

रेखा का स्वर भुवन स्पष्ट नहीं सुन सकता था और शब्द छूट जाते थे, पर कविता उसकी पढ़ी हुई थी और वह बिना पूरा सुने भी साथ गुनगुना सका; लेकिन रेखा के पढ़ने में कितनी एकात्मता थी उन पंक्तियों के आशय के साथ—मानों सचमुच ही भुवन देख सकता; वहाँ रेखा नहीं; घास की झूमती हुई पत्तियाँ हैं—पत्तियाँ भी नहीं, पानी में पड़ी हुई पत्तियों की परछाइयाँ....उसे और किसी कवि की कविता याद आयी जिसने कहा है, "सरोवर के पानी में झांक कर जो घास और शैवाल देखता है वह भगवान का मुंह देखता है और जो अपनी परछाईं देखता है वह एक मूर्ख का मुंह देखता है—" और उसने सोचा, इस समय निस्सन्देह रेखा मूर्ख का मुंह नहीं देख रही है, यद्यपि भगवान का साक्षात् वह कर रही है या नहीं, यह....

ठीक इसी समय रेखा ने उस की कुहनी पकड़ कर उसे ठेलते हुए कहा था, "अरे, आप की गाड़ी तो जा रही है"—और उसने मुड़ कर देखा था कि सचमुच पर उस का डिब्बा, जो पीछे था, अभी जहाँ वे खड़े थे वहाँ से गुजरा नहीं था। उसने कहा था, "आप चिन्ता न करें—" और सवार हो गया था; कब रेखा ने उस की कुहनी छोड़ी थी इस का उसे ठीक

*मेरे पैरों तले की घास मानों मुझ में ऊब-डूब कर रही है जैसे झरने में किनारे की घास। कितना मधुर है ये सब वस्तुएं हो जाना और अपना-आप न रहना, क्योंकि मैं अपने-आप से ऊब गया हूं।

पता नहीं था—तत्काल ही, या जब उसने डिब्बे का हैंडल पकड़ कर तख़्ते पर पैर रखा था और गाड़ी की गति ने उसे खींच लिया था तब; उसने यही देखा था कि रेखा का हाथ अभी वैसा ही ऊपर उठा हुआ है, उँगलियों की स्थिति वैसी ही अनिश्चित है जैसे किसी एक क्रिया के पूरी होने के बाद दूसरी क्रिया के आरम्भ होने से पहले होती है—संकल्प-शक्ति की उस जड़ अन्तरावस्था में।

और ठीक उस के बाद उस ने सहसा जाना था कि वह भीतर कहीं विचलित है, और उस की कुहनी चुनचुना रही है, और उस का हाथ उस का अपना अवयेव नहीं है, और सब पर्याय विपर्यय हैं और आस-पास सब कुछ एक गोरखधन्धा है जिस का हल, कम-से-कम उस समय, उसे भूल गया है—और गोरखधन्धे का हल न जानने में उतनी छटपटाहट नहीं होती जितनी जानते हुए भी उस क्षण न पा सकने में...

पटरी के मोड़ पर रेखा गाड़ी की ओट हो गयी थी; भुवन अपना हाथ देखता रह गया था। तभी एक चिड़चिड़े स्वर ने उसे वापस, ठोस धरती पर ला गिराया था।

क्षितिज में फीका-सा रंग भरने लगा था; सप्ताह-भर की घटनाओं का—यदि घटना उन्हें कहा जा सकता है—पर्यवलोकन कर के भुवन फिर वहीं-का-वहीं आ गया था। तथ्य और सत्य—सत्य वह तथ्य है जिस से रागात्मक लगाव—उँह, सब बातें हैं, तथ्य कि सत्य यह कि फाफामऊ स्टेशन आ रहा है, आगे गंगा है जिस का पाट इस धुँधली रोशनी में मुकुर-सा चमकता होगा—गंगा, प्रयाग की गंगा...

भुवन ने एक लम्बी साँस ली, फिर अपनी चढ़ी हुई आस्तीनें नीचे उतार लीं—चाहे हल्की-सी ठंड से बचने से लिए, चाहे कुहनी पर की छाप को छिपा या मिटा देने के लिए। खड़े हो कर उसने एक अंगड़ाई ली। इलाहाबाद वह नहीं ठहरेगा; वापस चला जायगा; छुट्टी के दो-चार दिन बाकी हैं तो क्या हुआ।

या कि और कहीं हो आये—बनारस, सारनाथ—मथुरा-आगरा-दिल्ली; दिल्ली में कई मित्र हैं, गौरा के माता-पिता हैं, उस के प्रोफेसर भी आज-कल हैं—

नहीं, क्या होगा कहीं जा कर, इलाहाबाद से सीधे वापस, अपनी छोटी-सी जगह अच्छी है, कुछ पढ़ना-लिखना होगा—

'अकेले है न, तभी लीक पकड़ कर चलते हैं।'

गड़गड़ाहट—यह गंगा का पुल आ गया। दूर कहीं पर अभी दीखते होंगे धुँधले-से भोर के दीप?

एक दिगन्तस्पर्शी प्रवाह, उस में छोटे-छोटे द्वीप—मानों तैरते दीप—और एक बड़ी, अंधेरी, रवहीन तरंग—नहीं, नहीं, नहीं!

चन्द्रमाधव

स्टेशन से चन्द्रमाधव की घर जाने की इच्छा नहीं हुई। हजरतगंज की सड़क पर टहला जा सकता था, और रात के दस बजे यहाँ चहल-कदमी करते नजर आना बुरा नहीं है, उस से प्रतिष्ठा बढ़ती ही है---पर अकेले टहलना चन्द्र की समझ में कभी नहीं आया--कोई बात है भला ! अकेले वे टहलते हैं जो किसी की ताक में रहते हैं--बल्कि वे भी अकेले नहीं टहलते, जैसे कि जिन की ताक में वे डोलते हैं वे भी अकेली कम ही नजर आती हैं। अकेले टहलते हैं पागल---या कवि, जो असल में पागल ही होते हैं पर रेस्पेक्टेबल होने के लिए जीनियस का ढोंग रचते हैं। शब्दों पर अधिकार--रचना--हुँह; वह अधिकार तो पत्रकार का है, वही असल रचियता है, स्रष्टा है। कुछ बात ले कर बात बनाना भी कोई बात है भला ? कला वह जो न-कुछ को ले कर खड़ा कर दे, सनसनी फैला दे, दंगे-बलवे-इनकलाब करवा दे ! कभी किसी कवि ने, कलाकार ने इनकलाब नहीं कराया, जर्नलिस्ट ही अपनी मुट्ठी में इनक़लाब लिये फिरता है। चन्द्र ने मन-ही-मन जरा सुर से कहा, 'मैं मुट्ठी में इनक़लाब लिये फिरता हूँ, आँखों-आँखों में ख्वाब लिये फिरता हूँ'---और फिर अवज्ञा से अपने को ही मुँह बिचका दिया। फिर उसने सोचा, मैं बराबर ही अपने को ही मुँह बिचकाता आता हूँ---दुनिया मेरे बनाये या चाहे ढंग से नहीं चलती तो दुनिया मुझे मुँह बिचका कर चली जाती है, मैं भला क्यों अपने को मुँह बिचकाता हूँ ? उस ने जेब टटोला, हाँ सिगरेट थे अभी ; एक सिगरेट सुलगा कर लम्बा कश खींचा, मुँह गोल कर धुएँ की पिचकारी छोड़ी---यह धुआँ अगर वैसा ही जमा-का-जमा तीर-सा जाता, हवा को छेद देता, तो उसे कुछ सन्तोष होता ; पर वह बिखर गया, कमबख्त उड़ कर उसी की आँखों में आ कर चुभने लगा। चन्द्र ने रिक्शा वाले से कहा, "सिनेमा ले चलो।"

"कौन से सिनेमा, हुजूर ? मेफेयर ?"

"हाँ।" चन्द्रमाधव बिना सोचे कह गया।

फिर सहसा उसे याद आया, मेफेयर में तो वह आज ही मैटनी देख कर गया है; बोला, "नहीं, मेफेयर तो हम दिन में गये थे। और कहीं ले चलो---"

रिक्शावाले ने कहा "एल्फिन्स्टन में 'जवानी की रीत' लगा है---वहाँ जाइयेगा ?"

"अच्छा वहीं चलो।"

रिक्शा वाला बढ़ चला। धीरे-धीरे कुछ गुनगुनाता वह पैडल फेंकता चला जा रहा था, उस की गति कुछ तेज हो गयी थी। चन्द्र ने सोचा, सिनेमा मैं जा रहा हूँ, मस्त यह हो रहा है। इसी तरह लोग दूसरों के मजे में मस्त दिन काटते चले जाते हैं---क्या जिन्दगी है! जैसे दूसरे के घर से सवेरे अस्त-व्यस्त निकली अलसाती सुन्दरी को देख कर

कोई खुश हो ले। उस का मुँह कड़वा हो आया--हुँह, सीला हुआ सिगरेट है! उसने सिगरेट निकाल कर फेंक दिया, एक ओर झुक कर जोर से थूका।

पुराने ज़माने में प्रतिनिधियों की मारफ़त शादी हो जाती थी--वर जहाँ खुद नहीं जा सकता था प्रतिनिधि भेज देता था। क्या बेहूदगी है। प्रातिनिधिक शादी हो सकती है तो प्रातिनिधिक सुहाग-रात--! पर यहाँ भी तो राजा लोग अपनी रानियों को नियोग के लिए भेजा करते थे ऋषियों के पास–वह भी तो प्रातिनिधिक......उसे असल में ऋषि होना चाहिए था–पुरानें ज़माने का; पर कमबख्त नये जमाने का महन्त भी तो न हुआ–हो गया स्पेशल रेप्रेजेंटेटिव एक अखबार का! जाट की घोड़ी के बछेरे की तरह 'माँगा था नीचे, दे दिया ऊपर।' दुनिया में इतना कुछ होता है, उसी के साथ कुछ नहीं होता; वह केवल खबरें पाता और देता है, टिप्पणी करता है--टिप्पणी भी नहीं, दूसरों की टिप्पणियों का संग्रह करता है--

रिक्शा रुक गया। सामने एलिफन्स्टन की रंगीन बत्तियाँ थीं, एक बड़े भारी पोस्टर पर वही परिचित तिरछी खड़ी कोई 'लड़की', वही परिचित कन्धे पर से झांकता हुआ 'लड़का'–पोस्टर में नहीं आया, लेकिन दाहने को जरूर एक पेड़ की शाखा होगी, जिस पर बड़ा-सा मैग्नोलिया का फूल होगा शायद कागज़ का, या दो शाखों पर दो फूल भी हो सकते हैं और लड़की-लड़के के तुक-ताल बँधे फ्लर्टेशन में बीच-बीच में दोनों पास-पास लाये जायंगे और फिर दूर हट जायेंगे, छुएँगे नहीं, क्योंकि सेंसर के नियम में चुम्बन अभारतीय है,चाहे मुँह से सटा और न्योतता मुँह पाँच मिनट तक स्क्रीन पर स्थिर खड़ा रहे, और चवन्नी वाले सिटकारियाँ मारते और फबतियाँ कसते रहें।

चन्द्रमाधव ने जेब में हाथ डाल कर पैसे निकालते हुए बड़े रूखे स्वर में रिक्शा वाले से कहा, "लो!"

उस की रुखाई से रिक्शा वाले ने समझा कि बाबू साहब थोड़े पैसे दे रहे होंगे, पर हथेली पर एक-एक रुपये के दो नोट देख कर वह चौंक गया; फिर तत्परता से हाथ उठा कर बोला, "सलाम हुजूर!" उदारता के लिए धन्यवाद देने का और तरीका ही उसे नहीं आता था।

पर चन्द्रमाधव में उदारता नहीं थी। उसने जवाब में गुर्रा कर कहा, "हूँ!" मानो कह रहा हो,'जा साले, तू भी प्रातिनिधिक फ्लर्टेशन कर ले–और क्या तेरे भाग्य में बदा है!'

* * *

फिर वह सिनेमा के पोर्च के अन्दर घुस गया।

तथ्य और सत्य के बारे में चन्द्रमाधव और भुवन की राय नहीं मिलती। कालेज ही से इस बात को ले कर उन में बहस होती आयी है। रागात्मक लगाव की बात तो दूर

रही—तथ्य ही लोगों के अलग-अलग होते हैं। इतिहास की घटनाओं से तो हमारा रागात्मक सम्वन्ध नहीं होता—फिर क्यों दो इतिहासकार दो इतिहास लिखते हैं ? इस लिए कि दोनों भिन्न-भिन्न तथ्य चुनते हैं। रागात्मक लगाव वाली बात मान लें, तो जो सत्य है, वही झूठ है क्योंकि वह पूर्वग्रह-युक्त तथ्य है—और ऐतिसासिक तथ्यों पर पूर्वग्रह लादना ही सारे झूठ की जड़ है और ऐसे झूठे इतिहासों ने ही दुनिया में फूट और लड़ाई के विष-वीज वोये हैं. . . .

चन्द्रमाधव के जीवन के ही तथ्य ले लें। भुवन को यही दीखता है कि अच्छी तरह पास कर के वह विदेश चला गया था, विदेशों में वहुत घूमा है और सदा सनसनी की खोज में—भुवन के मत से उस का सारा जीवन सनसनी की लम्बी खोज है, और वह यह भी जरूर सोचता होगा कि निरी सनसनी की खोज से व्यक्ति की सूक्ष्मतर संवेदनाएँ भोंडी हो जाती हैं और वह सिवाय तीखी उत्तेजना के कुछ समझता ही नहीं, लिहाजा चन्द्रमाधव भी एक तरह का नशेबाज है और जीवन की महत्त्वपूर्ण चीजों को नहीं पहचान सकता। भुवन का दुःख-पूजा का एक सिद्धान्त है : पीड़ा से दृष्टि मिलती है। इस लिए आतमपीड़न ही आत्म-दर्शन का माध्यम है ? क्या दलील है !

भुवन अकेला है; घर-गिरस्ती की चिन्ताएं उसने जानी नहीं, दुःख की दूर से रोमांटिक कल्पना की है, इसीलिए बातें बना सकता है। अगर सचमुच दुःख उस ने जाना होता —दुःख कैसे तोड़ कर, चूर-चूर कर के रख देता है, दृष्टि देना तो क्या, आँखों को अन्धा कर के, पपोटे निकाल कर उन में कीचड़ भर देता है, यह देखा होता—तो उस की जवान ऐंठ जाती. . . .

चन्द्रमाधव ने सनसनी खोजी है ? असल में उसने जीवन खोजा है, तीव्र वहता हुआ प्लवनकारी जीवन, और वह उसे मिला कहाँ है ? मिली हैं ये छोटी-छोटी टुच्ची अनुभूतियाँ, चुटकियाँ और चिकोटियाँ—और उस के किस दोष के कारण ? प्यार ? नहीं, बीवी-वच्चे। स्वातन्त्र्य ? नहीं, तनख़ाह। जीवनानन्द ? नहीं, सहूलियत, घर, जेव-खर्च, सिनेमा, पान-सिगरेट, मित्रों की हिर्स. . . .

कालेज छोड़ने के अगले वर्ष उस की शादी हो गयी थी। लड़की साधारण पढ़ी थी मैट्रिक और भूषण पास; साधारण सुन्दरी थी——साफ रंग, अच्छे नख-शिख; साधारण वुद्धिमती थी—घर सँभाल लेती थी, साथ घूम लेती थी, मित्रों-मेहमानों से निवाह लेती थी और पढ़े-लिखों की वातचीत में आत्म-विश्वास नहीं खोती थी। पत्नी ने उससे कुछ अधिक माँगा नहीं था, साधारण गिरस्ती की जो माँगें होती हैं वस; कुछ अधिक दिया भी नहीं था, साधारण गिरस्ती जो देती है, वस। दो वच्चे, साफ-सुथरा घर, विना झंझट के खाना-सोना, छोटा-सा वैंक वैलेंस, दिल-वहलाव की साधारण सहूलियतें।

मध्यवर्गीय मानदंडों से उस के सव कुछ था—और कोई क्या चाह सकता है ? पर दूसरे वच्चे के——पहली सन्तान लड़की थी, दूसरी लड़का——वाद वह गिरस्ती से [illegible]

गया था। कोई झगड़ा हुआ हो, शिकायत हो, ऐसी बात नहीं थी; बस यों ही तबियत उचट गयी थी, और वह पत्नी और बच्चों को छोड़ आया था। खर्चा भेज देता था, कभी-कवाह चिट्ठी लिख देता था, बस इससे अधिक उलझन नहीं थी, न वह चाहता था। बच्चे बड़े होंगे तब पढ़ाई-वढ़ाई का प्रश्न उठेगा, अभी तो कोई चिन्ता नहीं, और पहले दो-चार बरस तो माँ ही देख-भाल लेगी---फिर बड़ी तो लड़की है, उसकी पढ़ाई की कौन इतनी चिन्ता है, लड़के की शुरू से फिक्र होती है. . . .

अकेले रहना बुरा नहीं था। गिरस्ती का अनुभव हो जाने के बाद तो वह प्रीतिकर भी था---उस में एक आजादी और आत्म-निर्भरता थी जिस का मूल्य शायद बिना गिरस्ती के अनुभव के समझा ही नहीं जा सकता था। और वह जो काफी हाउस का उस के जीवन में एक स्थान बन गया है, यह भी एक चीज है। उसे समझने के लिए भी वैसा बैकग्राउंड चाहिए। बिना भोगे कोई इस स्थिति को नहीं समझ सकता है।

बिना भोगे। लेकिन बिना क्या भोगे ? क्या उसी ने कोई कष्ट भोगा है, दुःख जाना है ? बराबर ही तो साधारण सहूलियत का जीवन उसने बिताया है---बड़े पैमाने पर ऐश नहीं की तो दरिद्र हो कर टुकड़ों को भी तो नहीं तरसा---ऐसे में दुःख भी अगर हो तो उसी स्केल पर तो होगा, साधारण छोटा दुःख ! पर यही तो असल बात है---यह साधारणपन ही तो असली खा जाने वाला घुन है; यह तो सब से बड़ा, सब से चुभने वाला, अकिंचनता की कसक से बराबर सालते रहने वाला दुःख है ! 'तुम्हें साधारण से बड़ा दुःख नहीं होगा'--यही तो बड़े आनन्द की, बड़े सुख की, विराट् की अनुभूति की मौत का परवाना है।--'तुम्हें साधारण से बड़ा कुछ नहीं होगा !'

लेकिन--क्या वह द्राविड़ प्राणायाम से भुवन वाले नतीजे पर पहुँचा है ? क्या वह भी बड़े दुःख की पूजा कर रहा है ? नहीं, दुःख अपने आप में इष्ट है यह वह कहाँ मानता है ? लेकिन बड़ा दुःख बड़ी सम्भावना का द्योतक तो है; सम्भावना हो, अनुभूति की सामर्थ्य हो, तभी तो बड़ी अनुभूति होगी. . . .

पर क्या भुवन दुःख को इष्ट मानता है ? क्या रेखा भी वैसा मानती है ? विराट् अनुभूति के प्रति खुले रहने का ही क्या वे अनुमोदन नहीं करते---विराट् के प्रति समर्पित होने का ?

रेखा। रेखा क्षण के प्रति समर्पित होने की ही बात करती है। क्षण को ही विराट् मानती है।

लेकिन क्या सचमुच मानती है ? क्या जब भी क्षण के प्रति आत्म-समर्पण का अवसर आया है, उसने इनकार नहीं किया है ? वह अपने को सँजो-सँजो कर रखती है, कोई असूर्यम्पश्या भी इस तरह बचा-बचा कर कदम न रखती होगी---और बात करती है क्षण के प्रति समर्पण की। जैसे भुवन अनुभूति से बचता है, और विराट् अनभूति के प्रति समर्पण की बात करता है। असल में सब सिद्धान्त क्षतिपूरक होते हैं: आप जो हैं, जैसे हैं,

उस से ठीक उल्टा सिद्धान्त गढ़ कर उस का प्रचार करते फिरते हैं। इस से एक तो आप अपने लिए एक सन्तुलन स्थापित कर लेते हैं, दूसरे औरों को गलत लीक पर डाल देते हैं ताकि आप को ठीक-ठीक कोई पकड़ न पा सके। रेखा ही कहती है कि मैं कुछ नहीं हूँ, जीवन के प्रवाह में एक अणु हूँ—पर कितना अहं है उस में, कि . . .

चन्द्रमाधव का रेखा से परिचय पुराना था। रेखा के पति को भी वह थोड़ा जानता था; विवाह के कुछ समय बाद ही दोनों से उस की पहले-पहल भेंट हुई थी। यद्यपि कोई घनिष्टता किसी से नहीं थी, तथापि तब से वह उन में रेखा के पति का ही परिचित गिना जाता था, और उन के विच्छेद के बाद जब वह रेखा से मिला, तब पहले रेखा ने उस से पति के मित्र के अनुकूल ही व्यवहार किया था—शिष्ट, विनीत पर बिल्कुल असम्पृक्त और दूर। उन के विच्छेद की बात सहसा नहीं फैली थी, क्योंकि दोनों के दुराव को लोगों ने धीरे-धीरे ही जाना था : पति के मलय चले जाने के बाद भी लोग यही समझते रहे थे कि वह नौकरी के लिए ही गया है, और बहुधा रेखा से उस का हाल-चाल भी पूछ लेते थे। इतना ही अचम्भा उन्हें होता था कि वह पत्नी को साथ क्यों नहीं ले गया। पीछे जब रेखा ने अलग नौकरी कर ली, और यह भी खुल गया कि मलय में उस के पति के साथ कोई और स्त्री रहती है, तभी लोगों को उन के दुराव का पूरा पता लगा। और ऐसे में जैसा होता है, लोगों को पहले इसी बात का गुस्सा आया कि वे इतने दिनों तक भुलावे में ही क्यों रहे—या रखे गये। पति तो दूर चला गया था, रेखा पर यह गुस्सा भरपूर प्रकट हुआ। एक के बाद एक कई नौकरियाँ उसे छोड़नी पड़ीं; और उस के साथ-साथ यह भी बात बन चली कि वह कहीं टिकती नहीं, दो-चार महीने बाद काम छोड़ देती है, जिस से आगे नौकरी मिलने में क्रमशः कठिनाई बढ़ती गयी।

इसी बीच चन्द्रमाधव फिर से मिला था। उस की स्थिति पर सहानुभति प्रकट कर के, कुछ शिकायत भी की थी कि रेखा ने उसे क्यों न याद किया, वह जरूर कुछ सहायता करता। रेखा ने सहज विस्मय से कुछ झिझकते हुए कहा था, "आप तो—उन के मित्र हैं; मैं समझती थी कि आप जानते होंगे—और आप से सहानुभूति की आशा भी कैसे कर सकती थी ?" चन्द्र इस बात से कट गया था, पर उसने प्रकट नहीं होने दिया था, और सहायता करने और काम दिलाने का वचन दिया था।

वह उसने किया भी था। कई जगह उसने बात की थी; फिर एक जगह नौकरी मिल भी गयी थी। चन्द्र बीच-बीच में आ कर उस से मिल भी जाता था।

लेकिन यह नौकरी भी और नौकरियों की तरह छूट गयी थी। बल्कि, रेखा चाहे न जानती हो, उस के छूट जाने में चन्द्र का भी हाथ था। उस के बार-बार मिलने आने पर स्कूल की कमेटी के एक सदस्य ने उस से पूछा था तो उस ने कहा था कि रेखा के पति के मित्र के नाते वह अभिभावक है; पर रेखा, जिसे यों भी छिपाव पसन्द नहीं था और जो जानती थी कि छिपाना है भी व्यर्थ, लोग जान तो जावेंगे ही, कमेटी को पहले बता चुकी

गया था। कोई झगड़ा हुआ हो, शिकायत हो, ऐसी बात नहीं थी; बस यों ही तबियत उचट गयी थी, और वह पत्नी और बच्चों को छोड़ आया था। खर्चा भेज देता था, कभी-कबाह चिट्ठी लिख देता था, बस इससे अधिक उलझन नहीं थी, न वह चाहता था। बच्चे बड़े होंगे तब पढ़ाई-बढ़ाई का प्रश्न उठेगा, अभी तो कोई चिन्ता नहीं, और पहले दो-चार बरस तो माँ ही देख-भाल लेगी--फिर बड़ी तो लड़की है, उसकी पढ़ाई की कौन इतनी चिन्ता है, लड़के की शुरू से फिक्र होती है....

अकेले रहना बुरा नहीं था। गिरस्ती का अनुभव हो जाने के बाद तो वह प्रीतिकर भी था--उस में एक आजादी और आत्म-निर्भरता थी जिस का मूल्य शायद बिना गिरस्ती के अनुभव के समझा ही नहीं जा सकता था। और वह जो काफी हाउस का उस के जीवन में एक स्थान बन गया है, यह भी एक चीज है। उसे समझने के लिए भी वैसा बैकग्राउंड चाहिए। बिना भोगे कोई इस स्थिति को नहीं समझ सकता है।

बिना भोगे। लेकिन बिना क्या भोगे? क्या उसी ने कोई कष्ट भोगा है, दुःख जाना है? बराबर ही तो साधारण सहूलियत का जीवन उसने बिताया है--बड़े पैमाने पर ऐश नहीं की तो दरिद्र हो कर टुकड़ों को भी तो नहीं तरसा--ऐसे में दुःख भी अगर हो तो उसी स्केल पर तो होगा, साधारण छोटा दुःख! पर यही तो असल बात है---यह साधारणपन ही तो असली खा जाने वाला घुन है; यह तो सब से बड़ा, सब से चुभने वाला, अकिंचनता की कसक से बराबर सालते रहने वाला दुःख है! 'तुम्हें साधारण से बड़ा दुःख नहीं होगा'--यही तो बड़े आनन्द की, बड़े सुख की, विराट् की अनुभूति की मौत का परवाना है।--'तुम्हें साधारण से बड़ा कुछ नहीं होगा!'

लेकिन--क्या वह द्राविड़ प्राणायाम से भुवन वाले नतीजे पर पहुँचा है? क्या वह भी बड़े दुःख की पूजा कर रहा है? नहीं, दुःख अपने आप में इष्ट है यह वह कहाँ मानता है? लेकिन बड़ा दुःख बड़ी सम्भावना का द्योतक तो है; सम्भावना हो, अनुभूति की सामर्थ्य हो, तभी तो बड़ी अनुभूति होगी....

पर क्या भुवन दुःख को इष्ट मानता है? क्या रेखा भी वैसा मानती है? विराट् अनुभूति के प्रति खुले रहने का ही क्या वे अनुमोदन नहीं करते---विराट् के प्रति समर्पित होने का?

रेखा। रेखा क्षण के प्रति समर्पित होने की ही बात करती है। क्षण को ही विराट् मानती है।

लेकिन क्या सचमुच मानती है? क्या जब भी क्षण के प्रति आत्म-समर्पण का अवसर आया है, उसने इनकार नहीं किया है? वह अपने को सँजो-सँजो कर रखती है, कोई असूर्यम्पश्या भी इस तरह बचा-बचा कर कदम न रखती होगी---और बात करती है क्षण के प्रति समर्पण की। जैसे भुवन अनुभूति से बचता है, और विराट् अनभूति के प्रति समर्पण की बात करता है। असल में सब सिद्धान्त क्षतिपूरक होते हैं: आप जो हैं, जैसे हैं,

उस से ठीक उल्टा सिद्धान्त गढ़ कर उस का प्रचार करते फिरते हैं। इस से एक तो आप अपने लिए एक सन्तुलन स्थापित कर लेते हैं, दूसरे औरों को गलत लीक पर डाल देते हैं ताकि आप को ठीक-ठीक कोई पकड़ न पा सके। रेखा ही कहती है कि मैं कुछ नहीं हूँ, जीवन के प्रवाह में एक अणु हूँ—पर कितना अहं है उस में, कि . . .

चन्द्रमाधव का रेखा से परिचय पुराना था। रेखा के पति को भी वह थोड़ा जानता था; विवाह के कुछ समय बाद ही दोनों से उस की पहले-पहल भेंट हुई थी। यद्यपि कोई घनिष्टता किसी से नहीं थी, तथापि तब से वह उन में रेखा के पति का ही परिचित गिना जाता था, और उन के विच्छेद के बाद जब वह रेखा से मिला, तब पहले रेखा ने उस से पति के मित्र के अनुकूल ही व्यवहार किया था—शिष्ट, विनीत पर बिल्कुल असम्पृक्त और दूर। उन के विच्छेद की बात सहसा नहीं फैली थी, क्योंकि दोनों के दुराव को लोगों ने धीरे-धीरे ही जाना था : पति के मलय चले जाने के बाद भी लोग यही समझते रहे थे कि वह नौकरी के लिए ही गया है, और बहुधा रेखा से उस का हाल-चाल भी पूछ लेते थे। इतना ही अचम्भा उन्हें होता था कि वह पत्नी को साथ क्यों नहीं ले गया। पीछे जब रेखा ने अलग नौकरी कर ली, और यह भी खुल गया कि मलय में उस के पति के साथ कोई और स्त्री रहती है, तभी लोगों को उन के दुराव का पूरा पता लगा। और ऐसे में जैसा होता है, लोगों को पहले इसी बात का गुस्सा आया कि वे इतने दिनों तक भुलावे में ही क्यों रहे—या रखे गये। पति तो दूर चला गया था, रेखा पर यह गुस्सा भरपूर प्रकट हुआ। एक के बाद एक कई नौकरियाँ उसे छोड़नी पड़ीं; और उस के साथ-साथ यह भी बात बन चली कि वह कहीं टिकती नहीं, दो-चार महीने बाद काम छोड़ देती है, जिस से आगे नौकरी मिलने में क्रमशः कठिनाई बढ़ती गयी।

इसी बीच चन्द्रमाधव फिर से मिला था। उस की स्थिति पर सहानुभति प्रकट कर के, कुछ शिकायत भी की थी कि रेखा ने उसे क्यों न याद किया, वह जरूर कुछ सहायता करता। रेखा ने सहज विस्मय से कुछ झिझकते हुए कहा था, "आप तो—उन के मित्र हैं; मैं समझती थी कि आप जानते होंगे—और आप से सहानुभूति की आशा भी कैसे कर सकती थी ?" चन्द्र इस बात से कट गया था, पर उसने प्रकट नहीं होने दिया था, और सहायता करने और काम दिलाने का वचन दिया था।

वह उसने किया भी था। कई जगह उसने बात की थी; फिर एक जगह नौकरी मिल भी गयी थी। चन्द्र बीच-बीच में आ कर उस से मिल भी जाता था।

लेकिन यह नौकरी भी और नौकरियों की तरह छूट गयी थी। बल्कि, रेखा चाहे न जानती हो, उस के छूट जाने में चन्द्र का भी हाथ था। उस के बार-बार मिलने आने पर स्कूल की कमेटी के एक सदस्य ने उस से पूछा था तो उस ने कहा था कि रेखा के पति के मित्र के नाते वह अभिभावक है; पर रेखा, जिसे यों भी छिपाव पसन्द नहीं था और जो जानती थी कि छिपाना है भी व्यर्थ, लोग जान तो जावेंगे ही, कमेटी को पहले बता चुकी

ा कि पति से उस का वर्षा से कोई सम्बन्ध नहीं है। बात समिति तक गयी थी, और न्होंने रेखा को—यद्यपि बड़े शिष्ट ढंग से—नोटिस दे दिया था।

इस के बाद रियासत में गवर्नेस का पद दिलाने में भी चन्द्रमाधव ने सहायता की ी। पत्र-प्रतिनिधि के नाते रियासतों में उस की वाकफ़ियत भी काफी थी, आतंक भी ुछ था—राष्ट्रीय उत्तेजना के उस जमाने में रियासतों का पत्रकारों से डरना स्वाभाविक ी था!

यहाँ भी चन्द्र बराबर मिलने आता था। एक बार दो-एक दिन ठहर भी गया। दुबारा जब आ कर ठहरने की बात उस ने की तो रेखा के उत्तर से वह भाँप सका कि वह नहीं चाहती, और तड़ाक से पूछ बैठा, "रेखा देवी, अब मेरे आने पर आप को आपत्ति है ?"

रेखा ने धीरे-से कहा, "मैं आप की बहुत कृतज्ञ हूँ, मिस्टर चन्द्रमाधव ! आप जरूर आइये—और अब की बार अपनी पत्नी को भी साथ लाइये—उन्हें क्यों नहीं लाते आप ?"

चंद्रमाधव थोड़ी देर सन्न रह गया, मानों किसी ने उसे चपत मार दिया हो। फिर उसने कहा, "तो आप को मुझ पर विश्वास नहीं है—आप मुझ से डरती हैं।"

"विश्वास की बात नहीं है, मिस्टर चन्द्र। पर वह शोभन है। और मैं उन से भेंट करना भी चाहती हूँ।"

चन्द्रमाधव उठ कर थोड़ी देर कमरे में टहलता रहा। टहलते-टहलते उसने एक बड़ा निश्चय किया। बोला, "रेखा जी, आप शायद मेरे बारे में बहुत कम जानती हैं। मैं अपनी जीवन-कहानी आप को सुनाना चाहता हूँ। सुनेंगी ?"

रेखा ने झिझकते स्वर में कहा, "आप सुनाना चाहते हैं, तो जरूर सुनूंगी। पर कहानी जितनी अपने-आप कही जाय, उतनी ही ठीक होती है। जो सुनायी जाती है, उस पर पीछे अनुताप भी हो सकता है और मैं नहीं चाहती कि आप ऐसा कुछ करें जिस से पीछे अनुताप हो—मेरे कारण ऐसा करेंगे तो मेरा बोझ—"

"नहीं, आप को सुनना होगा। क्योंकि आपने अभी जो बात मुझे कही, वह दुबारा कहें, ऐसा मौका मैं नहीं आने देना चाहता।"

जितनी देर चन्द्रमाधव बोलता रहा, रेखा एक शब्द नहीं बोली। न उसने चन्द्र की ओर देखा ही। बल्कि जब कहते-कहते चन्द्र का स्वर कुछ भर्रा आया, तब उसने नीरव पैरों से उठ कर बड़े टेबल लैम्प का प्रकाश मन्द कर दिया, और फिर अपनी जगह आ कर बैठ गयी। खिड़की के बाहर एक शेफाली का छोटा पेड़ था, उसकी ओर देखती रही।

चन्द्र चुप हो गया। रेखा तब भी नहीं बोली। देर तक दोनों चुप रहे। फिर चन्द्र ने धीरे से कहा, "रेखा जी।" उस का स्वर अभी आविष्ट था।

रेखा ने धीमे, किन्तु साफ और ठंडे स्वर में पूछा, "यह सब आप मुझे क्यों बताते हैं ?"

चन्द्र सहसा खड़ा हो गया। नये आवेश से बोला, "अब भी मुझ से यह पूछ सकती हो, रेखा ! रेखा !"

रेखा सहसा खड़ी हो गयी, यद्यपि अपने स्थान से हिली नहीं, न शेफाली की ओर से उसने मुँह फेरा। केवल उस का हाथ तनिक-सा मुड़ कर ऊंचा हो गया, उँगलियों में एक हल्का-सा निषेध या वर्जना का भाव आ गया।

चन्द्र ने फिर कहा, "तुम कैसे यह पूछ सकती हो, रेखा !" एक अधूरा कदम उस ने रेखा की ओर बढ़ाया, पर ठिठक गया; रेखा की विमुख निष्कम्प देह-वल्ली को उसने एक बार सिर से पैर तक देखा, फिर उस के उस मुड़े हुए हाथ को; फिर बोला, "रेखा ! रेखा देवी ! मुझे क्षमा कीजिए रेखा देवी—" और जल्दी से बाहर चला गया।

लौट कर उसने एक क्षमा-याचना का पत्र भी लिखा। दो-तीन दिन बाद ही रेखा का उत्तर आया, उस में सारी घटना का कोई उल्लेख ही नहीं था—यही लिखा था कि चन्द्र-माधव को बार-बार वहाँ आने में कष्ट होता है, अब की बार वही मिलने आवेगी। उस के ठहरने के लिए चन्द्र को कष्ट नहीं करना होगा, रियासत वालों का एक गेस्ट हाउस लखनऊ में है और वहीं उसे ठहरने की अनुमति मिल गयी है। बच्चे रानी के साथ ननि-हाल जा रहे हैं अतः उसे कुछ दिन की छुट्टी है।

* * *

भुवन से जब रेखा की भेंट हुई, उस से पहले भी एकाधिक बार रेखा लखनऊ आ कर रह गयी थी। अकसर वह रियासत के गेस्ट हाउस में ही रहती थी, एक-आध बार लड़-कियों के कालेज के होस्टल में भी किसी परिचिता के पास रह गयी थी। चन्द्रमाधव से वह बराबर मिलती, पर अपने ठिकाने पर उसे कभी नहीं ले गयी थी; चन्द्र पहुँचाने जाता तो फाटक पर ही उसे विदा कर के भीतर चली जाती। एक बार चन्द्र ने कहा भी था, "आप अपने पास किसी को आने नहीं देतीं, जैसे—"

रेखा ने तुरन्त हंस कर कहा था, "मेरे आसपास दुर्भाग्य का एक मंडल जो रहता है, उस के भीतर किसी को नहीं आने देती कि छूत न लग जाय !"

पर अगर उसने यह कहा होता कि 'मेरे आसपास एक प्रभामंडल है जो किसी के छूने से मैला हो जायगा', तो चन्द्र को लगता कि उसने अपने मन के अधिक निकट की बात कही है।

अपनी जीवन-कहानी कह देने के बाद से फिर कभी चन्द्र ने घनिष्टता की कोई [illegible] नहीं की थी। रेखा ने भी कभी उस की याद नहीं दिलायी; उस के व्यवहार में कोई [illegible] या दुराव नहीं था न कोई अधिक समीपता ही थी, पर उस का स्वर पहले से कुछ [illegible]

नरम रहता था और चन्द्र को कभी-कभी लगता था कि उस की आँखों में एक करुणा भी है। कभी-कभी वह चन्द्र को 'तुम' भी कहने लगी थी; उसने भी सोचा था कि उसे 'तुम' कहे, पर उस दिन के अपने विस्फोट की बात याद कर के रह जाता था--रेखा ही जब उसे कहेगी तभी कहेगा अब...

बड़े दिनों की छुट्टियों में जब रेखा आयी, तब अपनी संरक्षित कुमारियों के साथ ही आयी थी--रानी भी आयी थीं, और सब गेस्ट हाउस में ही ठहरे थे। आने के तीसरे दिन तक वह चन्द्रमाधव से मिलने नहीं गयी; जा ही नहीं सकी क्योंकि रानी के अनुरोध से बच्चों को ले कर घुमाती रही। तीसरे दिन शाम के लगभग वह चन्द्रमाधव के घर गयी तो देखा, वह अंगीठी में आग जलाये उस के निकट झुका बैठा है; घुटनों पर कुहनियाँ, हथेलियों पर ठोड़ी टेके, निर्निमेष दृष्टि से आग को देख रहा है। उस की झुकी हुई पीठ, शिथिल पैर, माथे पर लटके हुए बाल, उदासी की उस मूर्ति को देख कर रेखा में सहसा करुणा उमड़ आयी, उसने द्वार से ही पुकारा, "चन्द्र--क्या बात है चन्द्र ?"

चन्द्र नहीं बोला।

रेखा ने फिर कहा, "अच्छे तो हो, चन्द्र ? बोलते क्यों नहीं ?"

चन्द्र फिर नहीं बोला। रेखा ने उस के कन्धे पर हल्का हाथ रख कर कहा, "अगर मैं डिस्टर्ब कर रही हूँ तो चली जाऊँ ? सवेरे फिर आ जाऊँगी--"

चन्द्र ने बिना हिले कहा, "आप को मिल गयी .फ़ुरसत इधर आने की ? अभी शाम को आने की क्या जल्दी थी--कल ही आ सकती थीं--

रेखा को धक्का लगा। पर साथ ही तसल्ली भी हुई, क्योंकि बात उस की समझ में आ गयी।

"चन्द्र, मैं रानी साहिबा और बच्चों के साथ आयी हूँ, उन्होंने छोड़ा नहीं। अभी थोड़ी फ़ुरसत मिली है--वे सब किसी पार्टी में गये हैं--"

"आप को नहीं ले गये ? आप भी जातीं--"

"चन्द्र, मैं सचमुच पहले आ सकती तो आती--परसों से आयी हुई हूँ--"

"परसों से ? मैंने तो कल--नहीं, मैं कौन होता हूँ, मेरी ओर से तो आप अभी आयी हैं--"

रेखा ने मुस्कराहट दबा कर पूछा, "तुमने कब जाना--देखा था ?"

"और नहीं तो। बच्चों को लिये बनारसीबाग के फाटक पर मूँगफली खरीद रही थीं--वहाँ से यह स्थान कुछ भी दूर नहीं है--"

"अच्छा, आज सुबह ! तुम ने देखा था तो तुम्हीं आ जाते--"

चन्द्र ने फिर तुनुक कर कहा, "जहाँ ज़रूरत न हो, वहाँ ज़ा घुसने की आदत मेरी नहीं है।"

रेखा ने कहा, "बहुत अच्छी आदत है तुम्हारी। अच्छा उठो, घूमने चलना है, फिर

काफी पियेंगे। फिर मुझे ठिकाने तक छोड़ आना। और सर्दी है, कोट पहन लो।"

चन्द्र अनमना उठ खड़ा हुआ।

बाहर घूमते हुए उसे लगा, रेखा ने न केवल उसे क्षमा कर दिया है बल्कि उस के निकट भी आ गयी है। उसे अचम्भा भी नहीं हुआ, क्योंकि स्त्रियों में यह होता ही है, जब बहुत अधिक दुत्कार देती हैं तब भीतर द्रवित भी हो जाती हैं। रेखा लाख असाधारण हो, पर स्त्री तो है! उस का बुझा हुआ मन धीरे-धीरे खिलने लगा। उसने कहा, "रेखा जी, मेरे इन मूड्स का बुरा तो नहीं मानतीं?"

रेखा ने मानों किसी दूसरी विचार-तरंग में उत्तर दिया—बल्कि प्रश्न पूछा, "चन्द्र, तुम्हें अपना बचपन याद है?"

"हाँ तो; क्यों?"

"यों ही। अच्छे दिन होते हैं बचपन के।"

चन्द्र उसकी बात ठीक-ठीक नहीं समझा। "मैं तो कभी-कभी सोचता हूँ, फिर आ सकते तो—आप को कभी लगता है कि फिर आ सकते तो कितना अच्छा होता?"

"स्त्रियाँ बड़ी व्यावहारिक होती हैं—यह किसी तरह नहीं भूल सकतीं कि बीते दिन फिर नहीं आते और असम्भव कभी माँगती नहीं। यों भी-मुझे निरन्तर बड़े होते चलना अच्छा लगता है—"

"बड़े होना—यानी बूढ़े होना; आप ऐसी बात कैसे कह सकती हैं?"

"जो क्षण में जीता है, क्षण को स्वीकार कर लेता है, वह बूढ़ा होता ही नहीं। यों अगर मैं कहूँ कि पुरुष की तुलना में स्त्री हमेशा बूढ़ी होती है तो आप समझ लेंगे मेरी बात?"

चन्द्र ने प्रतिवाद करते हुए कहा, "रेखा जी, आप पर यह बात बिल्कुल लागू नहीं होती। आप—" पर फिर झिझक कर रुक गया—मुँह से कुछ ऐसी-वैसी बात निकल गयी तो फिर नाराज हो जायगी..... सँभल कर बोला, "आप की बात ठीक है, क्षण को मान लेने वाला कभी बूढ़ा नहीं होता, आप इस की ज्वलन्त प्रमाण हैं।" इस ढंग से कह देने में तो कोई आपत्ति हो नहीं सकती...

रेखा ने कहा, "उस का मैं प्रमाण हूँ या नहीं, नहीं जानती, पर इस का आप जरूर हैं कि पुरुष की तुलना में स्त्री हमेशा बूढ़ी होती है—" फिर सहसा विषय बदल कर बोली, "आप शामें कैसे बिताते हैं?"

चन्द्र ने कहा, "मैं कहाँ बिताता हूँ। अपने-आप न जाने कैसे बीतती हैं। पहले काफी हाउस जाता था, पर अब—अब आप के साथ जाने की आदत पड़ गयी है और अच्छा नहीं लगता। रेखा जी, आप—यू आर वेरी गुड कम्पनी—"

रेखा ने भी अंग्रेज़ी में, पर हलके स्वर में कहा, "एंड दैट्स ए वेरी [illegible] कम्पि-मेंट!" फिर कुछ गम्भीर होकर, "मगर चन्द्र, तुम कभी [illegible] ने बा[illegible]

लेकिन चन्द्रमाधव ने भुवन को पत्र लिखने में लगभग एक महीने की देर कर दी थी। और जब लिखा था, तब रेखा का कोई उल्लेख नहीं किया था। वह जानता था कि किसी स्त्री से भेंट कराने की बात से ही भुवन बिदक जायगा; फिर वह परिचय कराना ठीक चाहता ही था यह कहना भी कठिन है। भुवन से उसकी पुरानी मैत्री थी, ठीक है, पर मैत्री-मैत्री में भी फर्क होता है, और रेखा के साथ भुवन की बात वह कभी सोच ही न सकता अगर उसे यह ध्यान न आता कि वैसे शान्त-गम्भीर 'सूफियाना' तबीयत के आदमी की उपस्थिति शायद रेखा की दृष्टि से उपयोगी हो, नहीं तो अकेले चन्द्र के साथ तो वह पहाड़ कभी नहीं जा सकती....दोनों का परिचय वह उतना ही चाहता था जिससे रेखा की तसल्ली हो जाय, पर भुवन की मनहूसियत उस पर हावी न हो जाय!

लेकिन ईस्टर की छुट्टियों में भुवन के लखनऊ में बिताये हुए एक सप्ताह का ठीक वही असर हुआ, यह उसे नहीं लगा। बल्कि उसे अचम्भा, निराशा—और कुछ खीझ भी हुई, कि न तो भुवन उतना गब्बू ही साबित हुआ जितना वह जानता (और चाहता) था; और न उस की उपस्थिति से चन्द्र की ब्रिलियेंस का वह प्रभाव ही रेखा पर पड़ा जिस की उसने आशा की थी। जिस मुहावरे में सोचने का वह आदी था उस में भुवन उस से 'बाज़ी ले गया' था; स्पष्ट ही रेखा उस की बातों से प्रभावित हुई थी, और उस की अप्रगल्भ गहराई के प्रति एक सम्मान का भाव उस में आ गया था—मानों अप्रगल्भता ही गहराई हो। 'तावदेव शोभते—',पर भुवन बोला तो काफी था,प्रभाव उस की चुप्पी का नहीं था..... भुवन पढ़ता-वढ़ता रहता है, कोटेशन भी उसे बहुत याद हैं; और यह जो बारीक-बारीक भेद करने की बात है, इस का प्रभाव भी शायद स्त्रियों पर बहुत पड़ता है—वे खुद जो मोटी-मोटी व्यावहारिक बातें सोचती हैं। यों रेखा भी सोचने वाली है, पर एक बात यह भी है कि पुरुष की उदासीनता का अपना एक आकर्षण होता है—खास कर उस स्त्री के लिए, जो बराबर पुरुषों का अटेंशन पाती रही हो.....रेखा सुन्दर है—अपने यू०पी०-पंजाब के स्टैंडर्ड से चाहे न हो, जहाँ गोरा-चिट्टा होना ही रूप है, यों चाहे चीनी का खिलौना हो, या कि रंगीन रोएँदार इल्ली जैसी तितली निकलने से पहले होती है—पर वैसे अत्यन्त रूपवती है, और उस का रूप एक सप्राण, तेजोमय पर्सनेलिटी के प्रकाश से भीतर से दीप्त है, भले ही एक कड़ा रिज़र्व उस प्रकाश को भी घेरे है—चन्द्र को एक बड़ी सी चन्द्रकान्त मणि का ध्यान आता, जो बाहर चिकनी सफेद होती है, अन्दर बिखरे से इन्द्र-धनु के रंग लिये, पर एकदम भीतर कहीं एक सुलगती आग का लाल आलोक—और पत्थरों का 'पानी' देखा जाता है,पर चन्द्रकान्त में 'आग' से ही उस का मोल आँका जाता है....और ऐसी मणि आज कई बरस से पारखी की खोज में भटकती फिर रही है!—तो क्या निरन्तर ही एडमायरर उसे न घेरे रहते होंगे? यही वह देखता है, उसी के यहाँ रेखा को जिसने आते-जाते देखा है, उस के बारे में पूछे बिना नहीं रह सका है; और जिसने पूछा है, उस की मानों दीठ से ही टपकती लार का लिसलिसापन वह अनुभव कर सका है.....जब से रेखा उस के यहाँ

आती-जाती है, तब से उसके मित्र भी मानों बढ़ गये हैं। और काफी हाउस में भी लोग 'हैलो' करने आ जाते हैं, और काफी पिलाने का आग्रह करते हैं . . . और ऐसे में एक आदमी आये जिसके लिए स्त्री और एक रासायनिक फार्मूला एक बराबर हैं कि देखा और हल कर के एक तरफ रख दिया—

पर भुवन के आकर्षण का अपने लिए सन्तोषजनक कारण पा लेना तो काफी नहीं था; वह तो मानव-सम्बन्धों का अध्ययन करने नहीं बैठा है, वह जिन्दगी का तमाशाई नहीं है, वह खिलाड़ी है, नायक है, वह जिन्दगी को अंगूर के गुच्छे की तरह तोड़ कर उस का रस निचोड़ लेगा, लता को झंझोड़ डालेगा, कुंज में आग लगा देगा, वह आराम से नहीं बैठेगा! एक पैनी ईर्ष्या की नोक उसे सालने लगी : भुवन को रेखा ने देख लिया है, भुवन जायगा तो वह पहाड़ चलने को राजी हो जायगी, पर चन्द्र को भुवन और रेखा के साथ नहीं जाना है, भुवन को चन्द्र और रेखा के साथ जाना है; क्योंकि एक ओट के रूप में उस की उपयोगिता है। भुवन को बुलाया तो जायगा, पर उसे ठीक जगह रखने की भी व्यवस्था करनी होगी। और जल्दी ही कुछ करना होगा—रेखा को छुट्टी की अड़चन अब न हो, यह तो पक्का हुआ; पर और भी कई 'कुछ' अभी बाकी हैं . . .

छुट्टी की अड़चन न हो, इस की व्यवस्था से वह अपने पर खुश था। रेखा के जाने के कुछ समय बाद लखनऊ में रियासती प्रतिनिधियों की एक बैठक हुई थी, बात-चीत के सिलसिले में चन्द्र ने एक उच्च अधिकारी से अमुक रियासत की राजकुमारियों की गवर्नेस की कुछ चर्चा कर दी थी। फिर पूछे जाने पर उस की नेकी, सच्चरित्रता और लगन की बड़ी प्रशंसा की थी। 'क्या वह उसे काफी देर से जानता है?' 'हाँ, उसे ही नहीं, उस के पति को भी जानता है, उस के दो-एक प्रेमिकों को भी—रेखा देवी बड़ी समझदार और सावधान स्त्री है, कभी अपने पर आँच नहीं आने देती, न कभी किसी को संकट में डालती है; उस से कभी किसी की बुराई नहीं सुनी गयी।'....यों आजकल ऋषि-मुनियों का जमाना थोड़े ही है; अच्छा वह जिसके नाम पर कोई धब्बा न हो, इस से आगे किसी के निजी जीवन को कुरेदना भी नहीं चाहिए। 'मैं रेखा देवी को बहुत अच्छी तरह जानता हूँ—जी हाँ, इतना कि मैं चाहूँ तो . . . अपनी बात कहनी नहीं चाहिए, पर वहाँ उन्हें नौकरी भी मैंने ही दिलायी थी—' और चन्द्र कुछ ऐसे ढंग से मुस्कराया था, कि रेखा को जानने में, और उसे नौकरी दिलाने की लाचारी में, कोई सम्बन्ध हो—और चन्द्रमाधव जैसा उत्तरदायी आदमी जिसे अपने निकट लेता है, उस का ध्यान रखता है—उस की उचित व्यवस्था करता है...

चन्द्र के सामने कोई स्पष्ट योजना रही हो, ऐसा नहीं था; कुछ तो शेखी में वह बात करता था, कुछ इस प्रकार रेखा को अहसान से बाँधने की नीयत से, और कुछ शायद यह भी था कि रेखा की चर्चा से रियासत में लोगों की आँखें उसकी ओर जायेंगी, कुछ तनाव पैदा होगा और रेखा फिर उस से साहाय्य चाहेगी...यही हुआ भी, क्योंकि ये [illegible] लौट

कर रेखा से मिले, रेखा को पार्टी पर निमन्त्रित किया; रेखा नहीं गयी, पर उनके निमन्त्रण के वाद और भी निमन्त्रण उसे मिले, लोग उसके घर पर मिलने भी आये। वह जो सदा किसी की आँखों के आगे होने से बचती थी, सहसा अपने को इस हलचल का केन्द्र पा कर समझ न सकी कि मामला क्या है। रानी ने भी दो-एक वार हल्की-सी चुटकी ली, यद्यपि उस में नापसन्दी या आलोचना की भावना विल्कुल न थी। तव एक दिन सहसा रेखा ने इस्तीफा दे दिया—कारण उसने यही वताया कि उस का स्वास्थ्य कुछ ठीक नहीं है और वह विश्राम चाहती है। रानी ने वास्तविक अनिच्छा से उसे छोड़ दिया; यह भी कहा कि वह चाहे तो लम्वी छुट्टी ले ले और फिर लौट आये, और जव रेखा ने नहीं माना तो यह भी कहा कि भविष्य में जव भी वह पुनः आना चाहे आ सकती है, उन्हें हर्ष ही होगा। कभी उनकी सहायता की जरूरत हो तो वह निस्संकोच उन्हें लिखे।

इस प्रकार, सर्वथा सद्भाव के साथ, रेखा नौकरी छोड़ आयी। स्थिति-परिवर्तन का कारण उसे ज्ञात न था। चन्द्र को उसने पत्र लिख कर सूचना दे दी, कारण ठीक-ठीक लिख दिया कि रियासत के कर्मचारियों की उस में आवश्यकता से अधिक दिलचस्पी है। चन्द्र मन-ही-मन मुस्कराया; फिर उसने लिखा कि रेखा लखनऊ आ जाय; दो-एक और नौकरियाँ उस की निगाह में हैं पर रेखा के आने से उस की सलाह से प्रवन्ध करेगा।

रेखा तत्काल नहीं आयी थी; आते-आते ईस्टर निकट आ गया था और लखनऊ से वह एक परिचित परिवार के यहाँ कुछ दिन विताने प्रतापगढ़ जाने को वचनवद्ध हो आयी थी।

चन्द्र ने संवेदना वता कर यह भी प्रस्ताव किया था कि अव गर्मी के वाद ही रेखा नया काम करे—कुछ घूम-घाम ले और पहाड़ भी हो आये। और इस सिलसिले में जाड़ों की वात की याद भी दिला दी थी, पर आग्रह नहीं किया था। ईस्टर में भुवन आयेगा, यह भी वता दिया था।

* * *

भीड़ के साथ सिनेमाघर से वाहर निकला, तव चन्द्रमाधव की मानसिक स्थिति में विशेष परिवर्तन नहीं हुआ था। एक खीझ अव भी उस के मन में भरी थी; पर खीझ जैसे केवल विमुख करती है, वैसा भाव उस में नहीं था। खीझ में एक अन्तर्धारा किसी गोपन आशंका की थी; मानों एक चिन्ता उसे खा रही हो कि कुछ जल्दी करना है नहीं तो न जाने क्या एक शोचनीय वात हो जायगी। न उस शंकनीय वात को, न उस काम को जो करना होगा, वह कोई नाम दे सकता था, या देना चाहता था; पर खीझ के भीतर से जैसे इस चावुक की प्रेरणा उसे हाँक रही थी। उसने रिक्शा नहीं लिया, पैदल ही तेज चाल से घर की ओर चल पड़ा। सिनेमा से छूटी हुई भीड़ क्रमशः फैलती और छंटती गयी। मरही वाले मोड़ पर वचे-खुचे लोग भी मुड़ गये और वह रास्ते पर अकेला रह गया। हवा

बहुत तेज़ चल रही थी, धूल उस इलाके में अधिक नहीं फिर भी कभी-कभी कोई नुकीला कण आ कर उसके गाल पर चिनगी-सा चुभ जाता—हवा इतनी तेज न होती तो शायद इस रास्ते पर नींबू के फूलों का सौरभ पाया जा सकता, पर अब तो कोई गन्ध नहीं है, उसी के कपड़ों में से सिगरेट के सीले हुए धुंए की महक आ रही है जो सिनेमाघरों की विशेष देन है—दूसरों की धूमिल साँसों की गन्ध. . .बहुत से लोग इसी से तंग आ कर सिग-रेट पीना शुरू कर देते होंगे—दूसरों की गन्ध से हरदम दम घुटता रहे, इससे अच्छा है कि स्वयं अपना दम घोंट लो—अपने ज़हर से साँप नहीं मरता ? चन्द्र और भी तेज़ चलने लगा। अपना ज़हर. . .नहीं, वह भुवन को निमन्त्रित करेगा ही; और इतना ही नहीं, रेखा को लिखेगा कि वह भी भुवन को निमन्त्रित करे, दोनों के निमन्त्रण से भुवन अवश्य आ जायगा, और फिर रेखा को आना ही होगा—उसी के निमन्त्रण पर भुवन आवे और फिर वह रह जाय यह कैसे हो सकता है? भीतर से रेखा इन औपचारिक बातों को जितना ही नगण्य मानती है, बाहर से उनके निर्वाह में उतनी ही सतर्क रहती है. . .

घर पहुंच कर उसने सब खिड़कियाँ बन्द कीं; सहसा स्तब्ध हो गये वातावरण में उसने कपड़े बदले, बालों को उँगलियों से थोड़ा मसल कर, हाथों में थोड़ा कोलोन-जल डाल कर माथे पर और कनपटी पर मल लिया, फिर कंघी से बाल सँवारे और टेबल लैम्प जला कर पत्र लिखने बैठ गया।

भुवन को जो पत्र लिखा गया वह छोटा ही था। भुवन के जाने के तत्काल बाद क्यों पत्र लिखा जा रहा है, इसकी सफ़ाई देते हुए उसने लिखा कि 'यह बात वह बहुत दिनों से कहना चाह रहा था पर कुछ झिझक ही रही क्योंकि भुवन एक तो अपने वैज्ञानिक कार्यों और पढ़ाई में व्यस्त रहता है, दूसरे चन्द्र को यह भी डर रहता है कि वह कहीं खाहमखाह भुवन के स्वायत्त, स्वतःसम्पूर्ण जीवन में टाँग न अड़ा रहा हो। उसकी बहुत दिनों से इच्छा है कि भुवन के साथ कहीं पहाड़ की यात्रा करे, पर कभी मौका नहीं बना है; क्या अब की छुट्टियों में वह सम्भव हो सकेगा? यदि भुवन चलने को राजी हो तो वह भी एक महीने की छुट्टी ले रखेगा—उसके काम में तो पहले से छुट्टी का प्रबन्ध कर रखना नितान्त आवश्यक है, इसी लिए वह इतना पहले पूछ रहा है। और जाने के लिए वह तो कुलू की बात सोच रहा है, पर भुवन की जहाँ इच्छा हो वहीं जाया जा सकता है; उसे भरोसा है कि भुवन अच्छी ही जगह चुनेगा क्योंकि वह तो और भी अधिक शान्त-एकान्त जगह चाहता है।'

फिर 'पुनश्च' कर के उसने जोड़ दिया था : 'रेखा देवी ने भी पहाड़ जाने की इच्छा प्रकट की थी; और कुलू या वैसे ही किसी एकान्त स्थल की। पर तुम जानते हो, उस के साथ अकेले मेरा जाना कैसा लगेगा, वह तो सर्वथा मुक्त विहंगम है, पर मेरी तुम समझ सकते हो कि कैसी स्थिति होगी—मेरे काम में एक विशेष प्रकार की प्रतिष्ठा की बड़ी आवश्यकता है, क्यों कि जर्नलिस्ट को यों ही लफंगा समझ लिया जाता है और इस लिए

उस के लिए दामन बचा कर चलने की विशेष आवश्यकता है। अगर तुम भी साथ चलो, तो आपत्ति की कोई बात न होगी; तुम्हारा उत्तर आने पर मैं रेखा देवी को सूचना दे दूँगा। आशा है कि तुम्हें उसके साथ पर आपत्ति न होगी।'

रेखा को उसने लिखा : 'आप को यह बताने को भूल गया कि इस बार भुवन ने स्वयं कहीं पहाड़ चलने की बात की थी। मेरा विचार है कि अब गर्मियों में चलने का प्रोग्राम बनाया जाय तो वह सहर्ष चलेगा। यह नहीं कह सकता कि उसका साथ आप को कैसा लगेगा। है तो वह बिलकुल किताबी दुनिया का जीव, पर यों दिल का भला है, सामाजिक पालिश उस में नहीं है पर पहाड़-जंगल में उस के अनगढ़पन को कौन देखेगा, उस का सामीप्य कोई कठिनाई नहीं पैदा कर सकता। आप का विचार हो, तो हो न हो आप भी उसे एक पत्र लिख दीजिए---मैंने अभी तक तो नहीं कहा कि आप भी चलेंगी पर आप स्वयं लिखें तो बहुत अच्छा होगा। आप काम के विषय में चिन्तित होंगी; मैं उस के लिए दत्तचित्त हूँ। और शीघ्र ही कुछ कर सकने की आशा करता हूँ। पर मेरी राय यही है कि आप गर्मियों के बाद कार्यारम्भ करें; वही ठीक सीजन है और उस समय अच्छा काम मिलने की सम्भावना होती है, गर्मियों में तो ऐसे लोग काम देते हैं जो वेतन दे कर खरीदने और खून चूसने के आदी होते हैं . . .'

फिर नये पैरा में उस ने उसी रात देखे हुए फिलम का वर्णन किया था। रेखा के चले जाने के बाद उस का जी नहीं लगा; मन बहलाने वह सिनेमा चला गया था। 'रेखा नहीं जानती है, पर उस के लखनऊ में बिताये हुए दिन चन्द्रमाधव के लिए एक सुनहली धूप के दिन होते हैं : उनकी मधुर गरमाई उसे देर तक अभिभूत किये रहती है पर साथ ही एक कसक भी छोड़ जाती है क्योंकि तुलना में और दिन फ़ीके और एक अजीब कुहासे से निरालोक-से जान पड़ते हैं।'

यहाँ पर पृष्ठ समाप्त कर के चन्द्र कुछ देर रुक गया था। इतना भी उसने अटक-अटक कर लिखा था; इस के बाद उस ने अपने सामने एक नया पन्ना रखा और थोड़ी देर लैम्प के छादन की ओर सूनी दृष्टि से ताकता हुआ बैठा रहा। आँत के बने हुए उस छादन पर एक काली छायाकृति अँकी हुई थी---दोनों हाथ ऊँचे उठाये एक नंगी स्त्री-आकृति, हाथों में कमल के आकार के फूल. . .अनमने से भाव से उस ने लैम्प को घुमा दिया; दूसरी ओर वैसी ही एक आकृति घुटने टेके आगे को झुकी हुई थी। आगे बढ़े हुये हाथों में फूल थे; कुहनी और घुटनों के बीच में कुचों को कुछ अतिरिक्त प्रशस्तता मिल जाती थी---उन का नुकीलापन बाकी आकार की प्रवहमान गोलाई को एक नया लचकीलापन दे देता था। सहसा आगे झुक कर चन्द्रमाधव ने जल्दी-जल्दी लिखना शुरू किया। बड़े डाकघर के घड़ियाल ने दो खड़काये तब वह अभी लिख रहा था, कई पन्ने रँग कर उस ने एक ओर को गिरा दिये थे। रुक कर उस ने उन्हें सँवारा और अनुक्रम से रखा, फिर संख्या दी---३, ४, ५, ६. . .१३, १४, १५। फिर पन्ना उलट कर उस ने १६ लिखने को हाथ बढ़ाया और

खींच लिया; सारे कागज़ एक साथ उठाये और दो-एक बार उलटे-पलटे, फिर सब फाड़ कर छोटी-छोटी चिन्दियाँ बना कर रद्दी की टोकरी में डाल दीं और उठ कर टहलने लगा। थोड़ी देर बाद आ कर उसने पहले के दो पन्ने उठाये और उन्हें शुरू से अन्त तक पढ़ डाला; बैठ कर फिर नया पन्ना लिया और दो-तीन पंक्तियाँ जोड़ कर पत्र समाप्त कर दिया। दोनों पत्र लिफाफों में डाल कर बन्द किये, पते लिख कर मेज़ के एक कोने में रख दिये, ऊपर दाब के लिए आलपीनदान रख दिया। फिर वह टहलने लगा।

अनन्तर रात में उसने फिर पैड सामने खींच कर कलम हाथ में साधा; थोड़ी देर कागज़ को देखते रह कर वह उठा; मेज़ पर जितने कागज़, किताबें, पुराने पत्र, कलमदान, फूलदान, अखबार के कटिंग वगैरह थे, सब समेट कर उठाये और ले जा कर मैंटल पर रख दिये, दुबारा आ कर ताज़े लिखे हुए दोनों पत्र भी उठाये और अन्य सब चीज़ों के ऊपर उसी प्रकार दाब दे कर रख दिये। सूनी मेज़ पर रह गया केवल पैड, कलम, और टेबल लैम्प। उसे भी चन्द्र ने घुमा कर ऐसे रखा कि दोनों ओर की कोई आकृति उसे न दीखे, केवल बीच का अन्तराल; आँत के मैले पीले रंग में से पार का आलोक मद्धिम हो कर आता था और उस से छादन में जहाँ आँत का जोड़ था वहाँ एक धुँधली-सी, कहीं आलोकित और कहीं घनी टेढ़ी-तिरछी लकीर झलक उठी थी, जैसे पहाड़ी प्रदेश के नकशों में कोई नाला आँका गया हो। एक सन्तुष्ट दृष्टि पूरे पैड पर डाल कर उसने फिर लिखा: 'प्रिय गौरा'।

यह पत्र समाप्त कर के वह जब उठा, तब भोर का आकारहीन फीकापन क्षितिज पर छा गया था। डाकघर का गजर खड़कता रहा कि नहीं, चन्द्रमाधव ने नहीं सुना।

मेंटल पर रखे हुए पत्रों में से भुवन वाला पत्र उसने फिर उठाया, और सावधानी से खोल लिया। 'पुनश्च' के नीचे लिखा: "दूसरी बार पुनश्च: गौरा आजकल कहाँ है? उस से तुम्हारा पत्र-व्यवहार होता है? उसे पत्र लिखो, तो मेरा नमस्कार भी लिखना, और लिखना कि उस का कुशल-समाचार पा कर मैं अपने को धन्य मानूँगा। शायद मैं भी उसे लिखूँ।"

पत्र फिर बन्द कर के उसने पूर्ववत् रखा, बत्ती बुझा दी, और बिछौने पर धम से लेट गया। बाहर क्षितिज कुछ स्पष्ट होने लगा था; एक बार त्यौरियाँ चढ़े चेहरे से चन्द्र ने उधर ताका, फिर औंधा हो कर तकिये में मुँह छिपा लिया, ज़रा हिल-डुल कर शरीर को ढीला किया, नाक के सामने से तकिये को दबा कर साँस की सुविधा की, फिर बाँह मोड़ कर चेहरे को उस की ओट दे दी और अधखुली मुट्ठी सिर पर ऐसी लगने लगी मानो चोट से बचने को ओट की गयी हो।

दो-तीन मिनट बाद ही उस की साँस नियमित चलने लगी—उस नियम से जो हमारी संकल्पना का नहीं, उस से निरपेक्ष प्रकृति का अनुशासित है; और उस के औंधे शरीर की सब रेखाओं में एक बेबस शिथिलता आ गयी।

उस के लिए दामन बचा कर चलने की विशेष आवश्यकता है। अगर तुम भी साथ चलो, तो आपत्ति की कोई बात न होगी; तुम्हारा उत्तर आने पर मैं रेखा देवी को सूचना दे दूँगा। आशा है कि तुम्हें उसके साथ पर आपत्ति न होगी।'

रेखा को उसने लिखा : 'आप को यह बताने को भूल गया कि इस बार भुवन ने स्वयं कहीं पहाड़ चलने की बात की थी। मेरा विचार है कि अब गर्मियों में चलने का प्रोग्राम बनाया जाय तो वह सहर्ष चलेगा। यह नहीं कह सकता कि उसका साथ आप को कैसा लगेगा। है तो वह बिलकुल किताबी दुनिया का जीव, पर यों दिल का भला है, सामाजिक पालिश उस में नहीं है पर पहाड़-जंगल में उस के अनगढ़पन को कौन देखेगा, उस का सामीप्य कोई कठिनाई नहीं पैदा कर सकता। आप का विचार हो, तो हो न हो आप भी उसे एक पत्र लिख दीजिए---मैंने अभी तक तो नहीं कहा कि आप भी चलेंगी पर आप स्वयं लिखें तो बहुत अच्छा होगा। आप काम के विषय में चिन्तित होंगी; मैं उस के लिए दत्तचित्त हूँ। और शीघ्र ही कुछ कर सकने की आशा करता हूँ। पर मेरी राय यही है कि आप गर्मियों के बाद कार्यारम्भ करें; वही ठीक सीजन है और उस समय अच्छा काम मिलने की सम्भावना होती है, गर्मियों में तो ऐसे लोग काम देते हैं जो वेतन दे कर खरीदने और खून चूसने के आदी होते हैं . . .'

फिर नये पैरा में उस ने उसी रात देखे हुए फिल्म का वर्णन किया था। रेखा के चले जाने के बाद उस का जी नहीं लगा; मन बहलाने वह सिनेमा चला गया था। 'रेखा नहीं जानती है, पर उस के लखनऊ में बिताये हुए दिन चन्द्रमाधव के लिए एक सुनहली धूप के दिन होते हैं : उनकी मधुर गरमाई उसे देर तक अभिभूत किये रहती है पर साथ ही एक कसक भी छोड़ जाती है क्योंकि तुलना में और दिन फ़ीके और एक अजीब कुहासे से निरालोक-से जान पड़ते हैं।'

यहाँ पर पृष्ठ समाप्त कर के चन्द्र कुछ देर रुक गया था। इतना भी उसने अटक-अटक कर लिखा था; इस के बाद उस ने अपने सामने एक नया पन्ना रखा और थोड़ी देर लैम्प के छादन की ओर सूनी दृष्टि से ताकता हुआ बैठा रहा। आँत के बने हुए उस छादन पर एक काली छायाकृति अँकी हुई थी---दोनों हाथ ऊँचे उठाये एक नंगी स्त्री-आकृति, हाथों में कमल के आकार के फूल. . .अनमने से भाव से उस ने लैम्प को घुमा दिया; दूसरी ओर वैसी ही एक आकृति घुटने टेके आगे को झुकी हुई थी। आगे बढ़े हुये हाथों में फूल थे; कुहनी और घुटनों के बीच में कुचों को कुछ अतिरिक्त प्रशस्तता मिल जाती थी---उन का नुकीलापन बाकी आकार की प्रवहमान गोलाई को एक नया लचकीलापन दे देता था। सहसा आगे झुक कर चन्द्रमाधव ने जल्दी-जल्दी लिखना शुरू किया। बड़े डाकघर के घड़ियाल ने दो खड़काये तब वह अभी लिख रहा था, कई पन्ने रँग कर उस ने एक ओर को गिरा दिये थे। रुक कर उस ने उन्हें सँवारा और अनुक्रम से रखा, फिर संख्या दी---३, ४, ५, ६. . .१३, १४, १५। फिर पन्ना उलट कर उस ने १६ लिखने को हाथ बढ़ाया और

खींच लिया; सारे कागज़ एक साथ उठाये और दो-एक बार उलटे-पलटे, फिर सब फाड़ कर छोटी-छोटी चिन्दियाँ बना कर रद्दी की टोकरी में डाल दीं और उठ कर टहलने लगा। थोड़ी देर बाद आ कर उसने पहले के दो पन्ने उठाये और उन्हें शुरू से अन्त तक पढ़ डाला; बैठ कर फिर नया पन्ना लिया और दो-तीन पंक्तियाँ जोड़ कर पत्र समाप्त कर दिया। दोनों पत्र लिफाफों में डाल कर बन्द किये, पते लिख कर मेज़ के एक कोने में रख दिये, ऊपर दाब के लिए आलपीनदान रख दिया। फिर वह टहलने लगा।

अनन्तर रात में उसने फिर पैड सामने खींच कर कलम हाथ में साधा; थोड़ी देर कागज़ को देखते रह कर वह उठा; मेज़ पर जितने कागज़, किताबें, पुराने पत्र, कलमदान, फूलदान, अखबार के कटिंग वगैरह थे, सब समेट कर उठाये और ले जा कर मैंटल पर रख दिये, दुबारा आ कर ताज़े लिखे हुए दोनों पत्र भी उठाये और अन्य सब चीज़ों के ऊपर उसी प्रकार दाब दे कर रख दिये। सूनी मेज़ पर रह गया केवल पैड, कलम, और टेबल लैम्प। उसे भी चन्द्र ने घुमा कर ऐसे रखा कि दोनों ओर की कोई आकृति उसे न दीखे, केवल बीच का अन्तराल; आँत के मैले पीले रंग में से पार का आलोक मद्धिम हो कर आता था और उस से छादन में जहाँ आँत का जोड़ था वहाँ एक धुँधली-सी, कहीं आलोकित और कहीं घनी टेढ़ी-तिरछी लकीर झलक उठी थी, जैसे पहाड़ी प्रदेश के नकशों में कोई नाला आँका गया हो। एक सन्तुष्ट दृष्टि पूरे पैड पर डाल कर उसने फिर लिखा : 'प्रिय गौरा'।

यह पत्र समाप्त कर के वह जब उठा, तब भोर का आकारहीन फीकापन क्षितिज पर छा गया था। डाकघर का गजर खड़कता रहा कि नहीं, चन्द्रमाधव ने नहीं सुना।

मैंटल पर रखे हुए पत्रों में से भुवन वाला पत्र उसने फिर उठाया, और सावधानी से खोल लिया। 'पुनश्च' के नीचे लिखा : "दूसरी बार पुनश्च: गौरा आजकल कहाँ है? उस से तुम्हारा पत्र-व्यवहार होता है? उसे पत्र लिखो, तो मेरा नमस्कार भी लिखना, और लिखना कि उस का कुशल-समाचार पा कर मैं अपने को धन्य मानूँगा। शायद मैं भी उसे लिखूँ।"

पत्र फिर बन्द कर के उसने पूर्ववत् रखा, बत्ती बुझा दी, और बिछौने पर धम से लेट गया। बाहर क्षितिज कुछ स्पष्ट होने लगा था; एक बार त्यौरियाँ चढ़े चेहरे से चन्द्र ने उधर ताका, फिर औंधा हो कर तकिये में मुँह छिपा लिया, ज़रा हिल-डुल कर शरीर को ढीला किया, नाक के सामने से तकिये को दबा कर साँस की सुविधा की, फिर बाँह मोड़ कर चेहरे को उस की ओट दे दी और अधखुली मुट्ठी सिर पर ऐसी लगने लगी मानो चोट से बचने को ओट की गयी हो।

दो-तीन मिनट बाद ही उस की साँस नियमित चलने लगी—उस नियम से जो हमारी संकल्पना का नहीं, उस से निरपेक्ष प्रकृति का अनुशासित है; और उस के औंधे शरीर की सब रेखाओं में एक बेबस शिथिलता आ गयी।

गौरा

गौरा से भुवन का परिचय यों तो चौदह-पन्द्रह वर्ष का गिना जा सकता है, जब वह पाँच-छः वर्ष की थी और दो चोटियाँ गूँथ कर फ़्राक पहने स्कूल जाया करती थी। वह चित्र भुवन को याद है, यह भी याद है कि कभी-कभी वह भुवन को खिझाने के लिए बड़ी तीखी किलकारी मारा करती थी। बच्चों को यों भी किलकारी मारने में आनन्द मिलता है; पर भुवन तीखी आवाज़ सह नहीं सकता यह जान कर ही वह उसके पास आ कर किलकारती थी और भाग जाती थी; भुवन का सारा शरीर झनझना जाता था और तब वह दौड़ कर हँसती हुई गौरा को पकड़ कर उठा लेता और डराने के लिए उछाल देता था। डर कर गौरा और भी किलकती थी और उसके गले से चिपट जाती थी; उसके रूखे बालों की सोंधी गन्ध भुवन के नासा-पुटों में भर जाती थी, तब वह यह कह कर कि "ठहरो, तुम्हारे बाल सुलझा दें", उस की दोनों चोटियाँ पकड़ कर सिर के ऊपर गाँठ बाँध देता था और हँसता था। गौरा झल्लाती थी और फिर किलकारने की धमकी देती थी, पर भुवन 'सुलह' कर लेता था और गौरा उसे 'माफ़' कर देती थी। चोटियाँ सिर बाँधे उसका नयी धूप-सा खिला बाल-मुखड़ा भुवन को इतना सुन्दर जान पड़ता था कि वह प्रायः कहता, "तुम्हारा नाम जुगनू है; गौरा भी कोई नाम होता है भला?" और गौरा कहती, "धत्! जुगनू तो सीली-सड़ी जगह में होते हैं!" या "गौरा तो देवी पार्वती का नाम है, हिमालय की चोटी पर रहती है वह।" भुवन कहता, "नहीं, गौरा सरस्वती का नाम है; वह उजली होती है और उजले कपड़े पहनती है। तुम तो—"फिर सहसा दुष्टता से भर कर, "हाँ, हिडिम्बा हो, हिडिम्बा!"

मगर वह तो बहुत पहले की बात है, उसके बाद कई वर्षों का अन्तराल था इस लिए उसे नहीं भी गिना जा सकता है। अतः कहना चाहिए कि परिचय आरम्भ हुआ १९३२ में, जब उसने मैट्रिक के लिए जम कर तैयारी करनी शुरू की। भुवन तब नया-नया एम० एस-सी० कर चुका था, रिसर्च के लिए छात्र-वृत्ति मिलेगी या नहीं यह अनिश्चित था और वह कुछ छोटे-मोटे काम की ताक में था जिससे मन भी लगा रहे और कुछ आय भी हो। आय की दृष्टि से तो गौरा को पढ़ाने का महत्त्व नहीं था—भुवन ने ही गौरा के पिता का वह प्रस्ताव टाल दिया था—पर मन लगने के लिए यह अच्छा था; गौरा ने स्वयं उस से पढ़ने की बात उठायी थी और उस का कालेज का रेकार्ड तो उसकी पात्रता का प्रमाण था ही। भुवन ने उसे पढ़ाना आरम्भ कर दिया था, और आय के लिए एक आई० सी० एस० अधिकारी के बिगड़े हुए और पढ़ाई के प्रति उदासीन लड़के की ट्यूशन भी स्वीकार कर ली थी जिस से उसे सवा सौ मासिक मिल जाता था।

गौरा पढ़ने में तेज़ थी। विज्ञान यद्यपि उस के लिये हुए विषयों में गौण ही स्थान रखता था—मैट्रिक का साइंस होता ही क्या है?—पर भुवन को साहित्य आदि में भी यथेष्ट रुचि रही थी और इस लिए उसकी पढ़ाई गौरा के लिए जितनी उपयोगी थी उसके लिए भी उतनी ही रुचिकर। पहले ही दिन तेरह वर्ष की इस लम्बी, कृशतनु, गम्भीर गौरा को देख कर वह थोड़ी देर देखता रहा था, फिर उसने पूछा था, "सुना है, तुमने स्वयं मुझे मास्टर चुना है—क्यों!"

गौरा ने आँखें नीची किये ही सिर हिला दिया था, "हाँ।"

"क्यों? मैं तो बड़ी कस कर पढ़ाई करूँगा—उतनी मेहनत करोगी?"

गौरा ने फिर वैसे ही सिर हिला दिया था।

गम्भीरता को तोड़ने के लिए भुवन ने पूछा था, "और अगर मेरे कान में किलकारी मारी तो?"

एक अवश मुस्कान सहसा उसके चेहरे पर बिखर गयी थी; उसका चेहरा ईषत् लाल हो आया था। उस शब्दहीन खिलखिलाहट में भुवन ने सात-आठ वर्ष पहले की बालिका को पहचान लिया था। फिर तत्काल ही गौरा ने आँचल से मुँह चाँप कर हँसी दबा ली थी, थोड़ी देर बाद पहले-सी गम्भीर मुद्रा बना कर कहा था, "आप हिडिम्बा कहेंगे?"

भुवन ने कुछ पसीज कर कहा था, "नहीं, लेकिन समझौता कर लो कि गौरा पार्वती का नहीं, सरस्वती का नाम है। तभी विद्या आयेगी।"

तब से वह परिचय बना ही हुआ था। दो वर्ष बाद गौरा ने मैट्रिक कर लिया था। प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हो कर कालेज में भर्ती हो गयी थी। उसके बाद पढ़ाई तो बन्द हो गयी थी, पर परिचय बढ़ता रहा था, क्योंकि गौरा कालेज में भी जब-तब उससे न केवल विज्ञान बल्कि साहित्य के विषय में बहुत कुछ पूछती रहती थी, और भुवन जब यह कह कर अपनी अपात्रता जताता था कि, "भई, मेरा विषय तो विज्ञान है, वह भी भौतिक विज्ञान, ये बातें तो तुम्हारे प्रोफ़ेसर ही बतायेंगे," तब वह आग्रह करके कहती थी, "इसी लिए तो आप ठीक बतायेंगे। उनका जो विषय है वे लोग किताबों में से बताते हैं, आप रुचि से बताते हैं, आप की बात ज्यादा सच होती है और मेरी समझ में जल्दी आ जाती है।" भुवन हँसी में कहता, "इसका मतलब है कि विज्ञान पढ़ने तुम उनके पास जाओगी? अच्छी बात है, अब विज्ञान अपने अंग्रेजी के प्रोफ़ेसर से पूछना, खबरदार मुझसे कभी कोई प्रश्न पूछा जो!" पर साथ ही मन लगा कर उस की जिज्ञासाओं का उत्तर भी देता। कभी-कभी इस में स्वयं उसे काफी परिश्रम करना पड़ता; पर वह मानता था कि अध्यापन का श्रेष्ठ सम्बन्ध वही होता है जिसमें अध्यापक भी कुछ सीखता है, और इस परिश्रम में कोताही नहीं करता था। बल्कि इस तरह अपने साहित्य-ज्ञान के विकास में उसे अतिरिक्त आनन्द मिलता था।

गौरा ने विधिवत् संगीत सीखना भी आरम्भ कर दिया था, और कालेज की नाटक

आदि अन्य कार्रवाइयों में हिस्सा लेना भी। इस के लिए भी वह बहुधा भुवन से परामर्श लेती; भुवन इन मामलों में बिल्कुल कोरा होने की दुहाई देता तो वह कहती, "और सब भी तो कोरे हैं—आप कुछ ढूंढ़ दीजिए न, या सोच कर बताइये न!" और उसके आग्रह की प्रेरणा से भुवन तरह-तरह की पुस्तकें पढ़ता, खोज करता, अनुमान भिड़ाता और उनकी पुष्टि के लिए फिर और पढ़ता या कभी दूर-दूर के विशेषज्ञों से पत्र-व्यवहार करता। इस प्रकार विभिन्न क्षेत्रों की शोध में, उन के असमान सम्बन्ध में क्रमशः परिवर्तन होता गया था, 'मास्टर जी' से वह क्रमशः 'भुवन मास्टर जी' होकर 'भुवन दा' हो गया था और एक नया, समान प्रीतिकर सख्य भाव उन में आ गया था।

जाड़ों में एक दिन गौरा ने आ कर सहसा कहा, "भुवन दा, आप हमें मालविकाग्निमित्र का एक रूपान्तर कर देंगे। बड़े दिनों में हम नाटक खेलना चाहते हैं, और किसी ने सुझाया है।"

भुवन ने अचकचा कर कहा, "क्या?"

"जी। मालविकाग्निमित्र। शायद संस्कृत के प्रोफ़ेसर साहब की राय थी—"

"तुम्हारा दिमाग़ ख़राब है क्या? मैंने तो पढ़ा भी नहीं—इतना जानता हूँ कि कालिदास का नाटक है; मालविका के नृत्य का एक चित्र भी कहीं देखा है, बस—"

"तो क्या हुआ, पढ़ लीजिए न? कितनी देर लगती है? कहानी तो मैं अभी बता देती हूँ—"

"यह खूब रही। अरे भई, एडैप्टेशन किसी जानकार का काम है, मैं कैसे कर सकता हूँ? और तुम क्या मालविका का पार्ट करोगी? नाचना आता है?"

गौरा कुछ सकपका गयी। फिर बोली, "सीखना तो शुरू किया है।"

"अच्छा! तब तो और मुसीबत हुई। कल को मुझ से त-त-थेई और त्राम्-त्राम् के मतलब पूछोगी—"

"नहीं भुवन दा, ये तो कथक बोल हैं, मालविका तो भारत नाट्य करेगी।"

"हाँ तो। पर उस के बोल कैसे होते हैं यह तो मुझे नहीं मालूम न! मेरे लिए तो त्राम्-त्राम् ही है। यानी त्राहि माम्।"

"आप पढ़ तो लीजिए न। मैं साथ लायी हूँ। संस्कृत भी, एक अंग्रेजी अनुवाद भी।"

"बाप रे! तुम्हारी एफ़िशेंसी तो वैज्ञानिक की है। काश कि बुद्धि भी वैसी होती। हो तुम निरी—"

"देखिये भुवन दा! चिढ़ाइये मत! नहीं तो मैं भी वैसा ही जवाब दूंगी—"

सहसा वह सकपका कर चुप हो गयी और उस का चेहरा तमतमा गया, क्योंकि साथ के दूसरे कमरे से एक व्यक्ति ने बाहर निकल कर कहा, "भुवन, मेरा इंटरपशन माफ़ करना; मैं थोड़ी देर बाहर जा रहा हूँ।" और फिर गौरा की ओर तनिक कौतुक-भरी

दृष्टि से देख कर फिर भुवन की ओर मुड़ कर पलकें उठायीं, मानो कहता हो, "यह कौन हैं, परिचय—"

भुवन ने कहा, "ओह, गौरा जी, यह हैं मेरे मित्र और पुराने सहपाठी चन्द्रमाधव, विलायत जाने वाले हैं, आज ही यहाँ आये हैं। चन्द्र, यह हैं गौरा जी, कालेज में पढ़ती हैं —पहले कुछ दिन मैंने भी पढ़ाया था—"

"तुम्हारी पढ़ाई के लक्षण तो देख ही रहा हूँ!" चन्द्र ने दबी दुष्टता के साथ कहा, "मिस गौरा, आप से मिल कर बड़ी प्रसन्नता हुई; इस लिए और भी अधिक कि भुवन के परिचितों में कोई ऐसा भी है जिसे साहित्यिक रुचि है—भुवन तो विज्ञान में ग़र्क हो गया है।"

गौरा ने कुछ दूर से कहा, "मास्टर साहब से मैंने साहित्य भी पढ़ा है।"

"सो तो है, सो तो है। साहित्य ही क्यों, देखता हूँ कि मेरे साथ के बाद से उन्हें नाटक, संगीत, नृत्य बहुत-से विषयों में रुचि हो गयी है, बल्कि पहुँच भी रखते हैं अब—"

भुवन ने कहा, "रहने दो चन्द्र, गौरा-जी के सामने उनके मास्टर का मज़ाक बनाना क्या उचित है?"

"आइ एम सॉरी, आइ बेग योर पार्डन, गौरा जी। मुझे इजाज़त दीजिए—ज़रा बाहर जाना है। मुझे आशा है आप का नाटक सफल होगा। मैं तो समझता हूँ, भुवन उस में अभिनय भी करें तो—"

भुवन ने थोड़ा घुड़क कर कहा, "फिर?"

चन्द्र चला गया तो गौरा ने पूछा, "आप ने बताया क्यों नहीं?"

भुवन ने हँस कर पूछा, "क्या?"

"आप बहुत बुरे हैं। मुझे क्या मालूम था कि दूसरे कमरे में वह हैं, नहीं तो मैं कभी ऐसी बात न करती! आप भी—"

"तो हुआ क्या? ऐसी कौन-सी बात थी?"

"नहीं, मेरे मास्टर जी का मज़ाक बनाने वाला कोई कौन होता है? और मैंने ही उस में मदद दी—"

भुवन ज़ोर से हँस दिया। बोला, "अच्छा, मालविकाग्निमित्र छोड़ जाओ, पढ़ डालूँगा। कल फिर सलाह कर लेंगे।"

दूसरे दिन गौरा ने आ कर बड़े अदब से नमस्कार किया। फिर चारों ओर एक नज़र दौड़ा कर कहा, "भुवन मास्टर साहब, आप ने पुस्तक पढ़ ली? अब बताइये—"

भुवन ने हँस कर कहा, "इतने तकल्लुफ़ की ज़रूरत नहीं, गौरा, चन्द्रमाधव बाहर गया है।"

"हाँ तो भुवन दा, आप की क्या राय है?"

"मेरी राय तो यही है कि यह नाटक तुम न खेलो। क्यों नहीं कोई आधुनिक हिन्दी नाटक लेतीं ?"

"जैसे ?"

"प्रसाद का कोई छोटा नाटक, 'राज्यश्री' या 'ध्रुवस्वामिनी'——"

"ये मैंने नहीं पढ़े——"

भुवन ने हँस कर कहा, "तो यह थी एफ़िशेंसी की पोल ! खुल गयी न ?"

गौरा ने थोड़ा रूठकर कहा, "सर्वज्ञ तो सिर्फ़ वैज्ञानिक होता है। फिर मैं वैसे ही अनपढ़ हूँ। क्या करूँ, आपने कुछ पढ़ाया ही नहीं——"

"ठीक है। तो लो, अब प्रायश्चित्त करता हूँ। तुम कल तक दोनों नाटक पढ़ कर आओ——"

"और अगर उनमें भी कुछ हेर-फेर करना पड़ा तो ? आप करेंगे न ?"

"देखा जायगा," भुवन हँसा, "तुम्हारी बात तो ऐसी है मानो नाटक से उस का एडैप्टेशन ही ज्यादा महत्त्व का हो।"

"हाँ, मेरे काम में आप का भाग ज़रूरी है, भुवन दा।" कह कर गौरा कुछ रुक गयी। "आप के मित्र तो कहते थे, आप अभिनय भी कर सकते हैं, तो——"

"एक वह पागल है और एक तुम !" भुवन कुछ और कहने जा रहा था पर रुक गया। "पुस्तकें तुम्हें मिल जायेंगी न ?"

"ज़रूर।"

बाहर शब्द सुनाई दिया। "लो, चन्द्रमाधव भी आ गये। नाटकों के बारे में तो इन से पूछो——यह साहित्य और कला के विद्यार्थी हैं——"

"हलो, गौरा जी। क्या बात है——आप के अभिनय की क्या बात ठहरी ? भुवन तो रात सोये नहीं, आप की दी हुई पुस्तकें पढ़ते रहे।"

गौरा जल्दी चली गयी। चन्द्र ने कहा, "यार, अपनी इस विद्यार्थिन की कुछ बात तो बताओ। लड़की तो तेज़ मालूम होती है, तुम्हारे साथ कैसे उलझ गयी ?"

भुवन ने गम्भीर हो कर कहा, "हाँ, मैंने दो वर्ष उसे पढ़ाया था। अच्छी पास हुई है। और उस में जीवन है, जीवन की लालसा है——ऐसी जो उसे कई दिशाओं में अन्वेषण की प्रेरणा देती है। पढ़ने में बहुत अच्छी है, लेकिन सोचता हूँ, आगे क्या ? तो खेद होता है कि हमारे देश में लड़की के लिए सिवाय मास्टरी के या इधर कुछ-कुछ डाक्टरी के और कोई केरीयर ही खुला नहीं है। और ये दोनों गौरा के लिए नहीं हैं। उस का व्यक्तित्व बहुत कोमल भी है, बहुत सम्पन्न भी, उस की अभिव्यक्ति इन में नहीं है। वह कोई रचनात्मक एक्सप्रेशन चाहता है, न जाने क्या।"

"क्यों ? भारतीय नारी का जो सब से पहला केरीयर है——गृहस्थी——वह तुम ठी नहीं समझते ?"

दृष्टि से देख कर फिर भुवन की ओर मुड़ कर पलकें उठायीं, मानो कहता हो, "यह कौन हैं, परिचय—"

भुवन ने कहा, "ओह, गौरा जी, यह हैं मेरे मित्र और पुराने सहपाठी चन्द्रमाधव, विलायत जाने वाले हैं, आज ही यहाँ आये हैं। चन्द्र, यह हैं गौरा जी, कालेज में पढ़ती हैं—पहले कुछ दिन मैंने भी पढ़ाया था—"

"तुम्हारी पढ़ाई के लक्षण तो देख ही रहा हूँ!" चन्द्र ने दबी दुष्टता के साथ कहा, "मिस गौरा, आप से मिल कर बड़ी प्रसन्नता हुई; इस लिए और भी अधिक कि भुवन के परिचितों में कोई ऐसा भी है जिसे साहित्यिक रुचि है—भुवन तो विज्ञान में ग़र्क हो गया है।"

गौरा ने कुछ दूर से कहा, "मास्टर साहब से मैंने साहित्य भी पढ़ा है।"

"सो तो है, सो तो है। साहित्य ही क्यों, देखता हूँ कि मेरे साथ के बाद से उन्हें नाटक, संगीत, नृत्य बहुत-से विषयों में रुचि हो गयी है, बल्कि पहुँच भी रखते हैं अब—"

भुवन ने कहा, "रहने दो चन्द्र, गौरा जी के सामने उनके मास्टर का मज़ाक बनाना क्या उचित है?"

"आइ एम सॉरी, आइ बेग योर पार्डन, गौरा जी। मुझे इजाज़त दीजिए—ज़रा बाहर जाना है। मुझे आशा है आप का नाटक सफल होगा। मैं तो समझता हूँ, भुवन उस में अभिनय भी करें तो—"

भुवन ने थोड़ा घुड़क कर कहा, "फिर?"

चन्द्र चला गया तो गौरा ने पूछा, "आप ने बताया क्यों नहीं?"

भुवन ने हँस कर पूछा, "क्या?"

"आप बहुत बुरे हैं। मुझे क्या मालूम था कि दूसरे कमरे में वह हैं, नहीं तो मैं कभी ऐसी बात न करती! आप भी—"

"तो हुआ क्या? ऐसी कौन-सी बात थी?"

"नहीं, मेरे मास्टर जी का मज़ाक बनाने वाला कोई कौन होता है? और मैंने ही उस में मदद दी—"

भुवन ज़ोर से हँस दिया। बोला, "अच्छा, मालविकाग्निमित्र छोड़ जाओ, पढ़ डालूँगा। कल फिर सलाह कर लेंगे।"

दूसरे दिन गौरा ने आ कर बड़े अदब से नमस्कार किया। फिर चारों ओर एक नज़र दौड़ा कर कहा, "भुवन मास्टर साहब, आप ने पुस्तक पढ़ ली? अब बताइये—"

भुवन ने हँस कर कहा, "इतने तकल्लुफ़ की ज़रूरत नहीं, गौरा, चन्द्रमाधव बाहर गया है।"

"हाँ तो भुवन दा, आप की क्या राय है?"

"मेरी राय तो यही है कि यह नाटक तुम न खेलो। क्यों नहीं कोई आधुनिक हिन्दी नाटक लेतीं ?"

"जैसे ?"

"प्रसाद का कोई छोटा नाटक, 'राज्यश्री' या 'ध्रुवस्वामिनी'—"

"ये मैंने नहीं पढ़े—"

भुवन ने हँस कर कहा, "तो यह थी एफ़िशेंसी की पोल ! खुल गयी न ?"

गौरा ने थोड़ा रूठकर कहा, "सर्वज्ञ तो सिर्फ़ वैज्ञानिक होता है। फिर मैं वैसे ही अनपढ़ हूँ। क्या करूँ, आपने कुछ पढ़ाया ही नहीं—"

"ठीक है। तो लो, अब प्रायश्चित्त करता हूँ। तुम कल तक दोनों नाटक पढ़ कर आओ—"

"और अगर उनमें भी कुछ हेर-फेर करना पड़ा तो ? आप करेंगे न ?"

"देखा जायगा," भुवन हँसा, "तुम्हारी बात तो ऐसी है मानो नाटक से उस का एडैप्टेशन ही ज्यादा महत्त्व का हो।"

"हाँ, मेरे काम में आप का भाग ज़रूरी है, भुवन दा।" कह कर गौरा कुछ रुक गयी। "आप के मित्र तो कहते थे, आप अभिनय भी कर सकते हैं, तो—"

"एक वह पागल है और एक तुम !" भुवन कुछ और कहने जा रहा था पर रुक गया। "पुस्तकें तुम्हें मिल जायेंगी न ?"

"ज़रूर।"

बाहर शब्द सुनाई दिया। "लो, चन्द्रमाधव भी आ गये। नाटकों के बारे में तो इन से पूछो—यह साहित्य और कला के विद्यार्थी हैं—"

"हलो, गौरा जी। क्या बात है—आप के अभिनय की क्या बात ठहरी ? भुवन तो रात सोये नहीं, आप की दी हुई पुस्तकें पढ़ते रहे।"

गौरा जल्दी चली गयी। चन्द्र ने कहा, "यार, अपनी इस विद्यार्थिन की कुछ बात तो बताओ। लड़की तो तेज़ मालूम होती है, तुम्हारे साथ कैसे उलझ गयी ?"

भुवन ने गम्भीर हो कर कहा, "हाँ, मैंने दो वर्ष उसे पढ़ाया था। अच्छी पास हुई है। और उस में जीवन है, जीवन की लालसा है—ऐसी जो उसे कई दिशाओं में अन्वेषण की प्रेरणा देती है। पढ़ने में बहुत अच्छी है, लेकिन सोचता हूँ, आगे क्या ? तो खेद होता है कि हमारे देश में लड़की के लिए सिवाय मास्टरी के या इधर कुछ-कुछ डाक्टरी के और कोई केरीयर ही खुला नहीं है। और ये दोनों गौरा के लिए नहीं हैं। उस का व्यक्तित्व बहुत कोमल भी है, बहुत सम्पन्न भी, उस की अभिव्यक्ति इन में नहीं है। वह कोई रचनात्मक एक्सप्रेशन चाहता है, न जाने क्या।"

"क्यों ? भारतीय नारी का जो सब से पहला केरीयर है—गृहस्थी—वह तुम ठीक नहीं समझते ?"

"उसे वेटीक कैसे समझा जा सकता है ? और एक प्रकार की रचनात्मक अभिव्यक्ति उस में भी हो सकती है, मैं मानता हूँ, पर—"

"पर गौरा के लिए तुम वह ठीक नहीं समझते।"

"नहीं यह नहीं, मैं समझता हूँ कि उस दृष्टि से तो वह आदमी बहुत भाग्यवान् होगा जिसे गौरा जैसी पत्नी मिलेगी। पर सोच यह भी तो सकता हूँ कि उसे पा कर गौरा भी भाग्यवती होगी या नहीं ? और वैसा कौन होगा, यह सोच नहीं सकता।"

चन्द्र ने चिढ़ाते हुए कहा, "यह सोच गौरा पर छोड़ देना क्या उचित न होगा ?"

"आफ़ कोर्स, आफ़ कोर्स।" भुवन थोड़ा-सा झेंप गया। "हर मामले में सलाह देते-देते कुछ आदत पड़ गयी है कि सब सवालों के जवाब पहले से सोच रखूँ ?" वह हँस दिया।

"तो क्या यह सवाल जल्दी उठने वाला है ?"

"अभी तो कोई लक्षण नहीं हैं। लेकिन क्या मालूम। लड़की जब हुई परायी थाती; तब कभी भी सौंपने का सवाल उठ सकता है; सौंप देने का नहीं तो कम-से-कम बद देने का तो ज़रूर—"

"हूँ।"

भुवन ने विषय बदलने को कहा, "सुनो, चन्द्र, तुम तो नाटक-वाटक खेलते रहे हो; तुम क्यों नहीं उसे कुछ सलाह देते ? 'राज्यश्री' या 'ध्रुवस्वामिनी' का एडैप्टेशन कर दो न—"

"अरे, हिन्दी ! राम-राम। हिन्दी नाटक मैं नहीं छूने का—"

"यही तो मुश्किल है। कोई छूता नहीं, हर साल सब कालेज-वालेज अंग्रेजी नाटक खेलते हैं; हिन्दी में भी अंग्रेजी नाटक अनुवाद कर के—"

"सो तो होगा। वे खेले जा सकते हैं, खेलने के लिए लिखे जाते हैं। हिन्दी नाटक तो पढ़ना भी टार्चर है। एक तो ज़बान ही ऐसी होती है—"

"लेकिन तुम अगर रूसी के अंग्रेजी अनुवाद के हिन्दी अनुवाद की भाषा अपने अनुकूल बना कर उसे खेल सकते हो, तो क्या सीधे हिन्दी की भाषा नहीं ठीक कर सकते ?" कालेज में चन्द्रमाधव ने चेखोव के 'चेरी आर्चर्ड' के अभिनय में भाग लिया था, उसी की ओर भुवन का इशारा था।

"यही तो बात है। रूसी दूर है। उनके लिखे को उलट-पलट लो, कोई कुछ नहीं कहेगा। लेकिन अपने देश के लेखक का एक वाक्य इधर-उधर कर तो लो—जान को आ जायेंगे सब। हमारे यहाँ कोई नाटक थोड़े ही लिखता है ? सब शास्तर लिखा जाता है; सब लेखक ऋषि होते हैं—'आर्षवाक्यं प्रमाणम्', और तुम झख मारते रहो। शेक्सपियर भी स्टेज पर जा कर एक्टरों से सीख कर अपने डायलाग बदलता था, लेकिन यहाँ सब सीखे-सिखाये कोख से निकलते हैं।"

"तुम्हारी बात में सार है, मैं मानता हूँ। लेकिन दूसरा पक्ष भी कुछ हो सकता है।

एडैप्ट कर के अपने देश-काल में ले आना हमेशा ठीक नहीं होता; खुद भी दूसरे देश-काल में जा सकना चाहिए। अगर आज 'शाकुन्तल' ज्यों का त्यों स्वाभाविक नहीं, तो ज़रूरी नहीं है कि शकुन्तला को ड्राइंगरूम हिरोइन बनाया जाय; हमीं क्यों न कण्व के आश्रम में जा सकें? ग्रीक नाटक तक तो हम चले जाते हैं—"

"वह दूसरी बात है। लेकिन हमारे देश में न स्टेज है, न एक्टर हैं, न नाटक हैं, फिर नाटक-लेखक ऐंठे किस बात पर रहते हैं? सब कुछ हमीं को सीखना है, उन्हें कुछ नहीं सीखना है?"

"ऐंठ का जवाब ऐंठ हो भी सकता है, पर उस से स्थिति नहीं बदलती। हिन्दी नाटक ले कर कुछ कर के दिखाओगे, तभी तो आगे कुछ होगा; नहीं तो आगे भी यही स्थिति रहेगी—न स्टेज, न एक्टर, न नाटक।"

"हाँ, तो मेरी ओर से रहे। खुदाई खिदमतगारी का शौक तुम्हें है, तुम करो। मैं तो दुनिया को जैसी है वैसी ले कर चलता हूँ।"

भुवन ने कहा, "तो जाने दो।" बात समाप्त हो गयी।

लेकिन शाम को चन्द्रमाधव घूमने गया, तो दोनों नाटक लेता आया। रात में पढ़ डाले, फिर पेंसिल ले कर बहुत से निशान लगाये, हाशिये में नोट लिखे, क्या अंश छोड़ा जा सकता है, क्या हेर-फेर हो सकता है, वाचिक में क्या परिवर्तन अपेक्षित है, इत्यादि। बीच-बीच में शब्दों पर वह झल्लाता, फिर रेखांकित कर के हाशिये में दूसरे शब्द या पद लिख देता जिनसे वार्त्तालाप अधिक सहज और स्वाभाविक बन सके।

* * *

दूसरे दिन गौरा आयी तो चन्द्रमाधव मौजूद था। दोनों को नमस्कार कर के गौरा ने कहा, "मास्टर साहब, मैंने नाटक पढ़ लिये, और भी दो-एक लड़कियों से सलाह कर ली। हम 'ध्रुवस्वामिनी' खेलेंगे, लेकिन—"

"लेकिन यह कि मुझे मेहनत करनी होगी; यही न?"

"हाँ।"

यहाँ पर चन्द्रमाधव ने कहा, "मेरी बात टाँग अड़ाना न समझी जाय, तो निवेदन करूँ कि मैंने 'ध्रुवस्वामिनी' पर कुछ नोट लिये हैं अगर वे कुछ काम आ सकें—"

भुवन ने कुछ विस्मय से भँवें ऊँची कीं, लेकिन तुरत सँभल कर बोला, "गुड फ़ेलो! लाओ देखें—"

चन्द्रमाधव उठ कर भीतर गया तो गौरा ने घने उलाहने से भरी आँखें भुवन पर टिका दीं, और एकटक उसे देखती रही। वह चितवन भुवन तक पहुँची, पर उसने जान-बूझ कर उसे न देख कर सम स्वर से कहा, "लो, तुम्हारा काम आसान हो गया।"

"मेरा क्या, आप का कहिए। आप ने क्यों—"

वाक्य अधूरा रह गया। चन्द्रमाधव पुस्तक ले आया, भुवन ने पन्ने उलट-पलट कर देखे और कहा, "ठीक तो है।" फिर पुस्तक गौरा को दे दी। गौरा ने अनिच्छुक भाव से उसे लिया, इधर-उधर देखा; फिर मानो कर्त्तव्य का ध्यान कर सधे शब्दों में कहा, "आप के मित्र ने बहुत परिश्रम किया है, मैं उन की बड़ी कृतज्ञ हूँ।" फिर चन्द्रमाधव की ओर मुड़ कर कहा, "आप का बहुत-बहुत धन्यवाद। बल्कि मास्टर साहब की ओर से भी, जिन का कष्ट बचाने के लिए आप को मेहनत करनी पड़ी।" कहते-कहते उसने कनखियों से भुवन की ओर देखा, कि यह चोट ठीक बैठी है कि नहीं।

चन्द्रमाधव ने सफ़ेद झूठ बोलते हुए कहा, "नहीं मिस गौरा, मुझे धन्यवाद देने की कोई बात नहीं है——मास्टर साहब की ओर से भी नहीं, क्योंकि ये नोट तो मेरे पहले के हैं। पिछले साल एक बार हमने अभिनय करने की सोची थी, तब के। तब स्टेज की दृष्टि से भी विचार किया था——"

भुवन ने भँवें उठा कर स्थिर दृष्टि से चन्द्रमाधव को देखा, एक बहुत दबी मुस्कान उस के ओठों की कोर में ही खो गयी। फिर उसने गौरा की ओर मुड़ कर कहा, "लीजिये, मेरा एलिबाई पक्का है न? मेरे लिए चन्द्र ने वह नहीं किया, अपने ही लिए किया है।"

गौरा ने आँखें सकोच कर उस की ओर क्षण-भर देखा, मानों कहती हो, "जाइये!" फिर चन्द्रमाधव से पूछा, "तो आपने पोशाकों की बात भी सोची होगी?"

"ज़रूर——"

"अच्छा, हमारी ड्रेस रिहर्सल तक अगर आप यहाँ ठहरें तो एक बार आइयेगा।" फिर भुवन की ओर मुड़ कर, "मास्टर साहब, उस दिन आप इन्हें भी साथ लाइयेगा, मैं कह दूंगी——"

"यानी ?"

"यानी यह कि निर्देशन आप करेंगे——आप को रोज़ आना पड़ेगा।" गौरा ने स्थिर दृष्टि से उसे देखा, फिर कहा, "हाँ-आँ!"

भुवन हँस दिया। चन्द्र ने कहा, "मैं अधिक तो ठहर नहीं रहा, अभी एक-आध दिन आ सकता हूँ, फिर पीछे मास्टर साहब निर्देशन करते ही रहेंगे।"

"अच्छा देखिए, तय हो जाय——"

गौरा चली गयी तो चन्द्र ने कहा, "अब बताओ, कास्टयूम का क्या होगा?"

भुवन ने कहा, "तुम जानो; तुमने तो पहले से सोच रखा है न, पिछले साल से?"

"मैंने तुम्हारी इज्ज़त बचा ली है। अब——"

"ओह, तो इज्ज़त के बदले इज्ज़त चाहिए। लेकिन मैंने तो ऐसा सौदा नहीं किया?"

"मैं नहीं जानता; मैं तुम पर टाल दूंगा।"

दो-एक दिन चन्द्रमाधव कालेज जा कर गौरा और अन्य अभिनेताओं से मिल आया। इधर-उधर की कई बातें उसने कीं, पोशाक का प्रश्न उठने पर उसने कहा कि उसने अपने

नोट सब भुवन को दे दिये हैं, उन से पूरा निर्देश मिल जायगा।

चन्द्रमाधव को स्टेशन छोड़ने भुवन के साथ गौरा भी गयी थी, उस की दो-एक और सहपाठिनियाँ भी। चन्द्र ने कहा, "गौरा जी, आप के नाटक के कोई फ़ोटो लिये जायें तो एक-आध मुझे भी भेजिएगा, मुझे बहुत दिलचस्पी रहेगी।"

गौरा ने कहा, "मास्टर साहब अगर खिंचवा देंगे तो होंगे। तब आप उन्हीं से मँगा भी लीजिएगा।"

चन्द्र नहीं समझ सका कि इस में केवल भुवन के प्रति सहज सम्मान है, या भुवन को ही कोई अस्पष्ट उलहना; या कि चन्द्र के आत्मीयता-प्रकाशन की ही परोक्ष अवहेलना——'आप का परिचय मुझ से नहीं, भुवन से है, उन्हीं की मारफ़त में......'। उसने कहा, "विलायत से मैं पत्र लिखूँ तो उत्तर देंगी न?" फिर गौरा के चेहरे को देख कर उस के कुछ उत्तर देने से पहले ही उसने जोड़ दिया, "मेरे मित्र बहुत थोड़े हैं; और भुवन मास्टर साहब तो शायद पत्र लिखना ही गवारा न करें; उनकी ओर से ही आप——"

गौरा ने कहा, "अच्छा; मास्टर साहब को भी मैं कोंच दिया करूँगी——" और हँस दी।

"थैंक यू।"

लेकिन भुवन को कोंचने के अवसर गौरा को अधिक न मिले; अगले सेशन में भुवन को रिसर्च के लिए एक वृत्ति मिल गयी और वह बंगलोर चला गया। वहाँ दो वर्ष में अपना प्रायोगिक काम पूरा कर के उसने फिर नौकरी कर ली: थीसिस वह वहाँ से भी लिख कर भेज सकेगा इस की सुविधा उसे थी। छः महीने का काम उस के लिए अपेक्षित था: उस के बाद थीसिस तो अगले वर्ष ही जायगा, इस लिए काम कर लेना ही अच्छा है......गौरा से पत्र-व्यवहार भी उस का बहुत अनियमित था; गौरा के पत्रों में भी उस हठीले उत्साह का स्थान एक गाम्भीर्य ले रहा था और भुवन तो यों ही कम लिखता था। उस की धारणा थी कि अच्छा पत्र-व्यवहार कभी नियमित हो ही नहीं सकता: जीवन में जब-तब ही पत्र लिखे जायें तभी अच्छे होते हैं।

चन्द्रमाधव से गौरा का पत्र-व्यवहार भी अनियमित चलता रहा। चन्द्र उसे जब-तब पुस्तकें या चित्र भेज देता; पत्र में ऐसे स्थलों के वर्णन भी जिन में गौरा को दिलचस्पी हो सके——इंगलैंड में शेक्सपियर के घर का, ताल-प्रदेश का जहाँ वर्ड्स्वर्थ और कोलरिज की काव्य-प्रतिभा मुखरित हुई, फ्रांस के ह्यूगो के स्मारक का, नोत्रदाम का, लूव्र संग्रहालय का, जर्मनी में गयटे के घर का, ओबरामरगाउ के ईसा के जीवन-नाटक का। दो-एक अपने फोटो भी उसने भेजे थे, पहले अव्यक्त आशा में कि गौरा भी उसे अपना फोटो भेजेगी, फिर इस स्पष्ट प्रार्थना के साथ। गौरा ने अपना कोई फोटो नहीं भेजा था, पर दो-तीन पत्रों के आग्रह के बाद 'ध्रुवस्वामिनी' का एक ग्रुप भेज दिया था जिस में अभिनेतृ-समुदाय के साथ भुवन भी था। पत्रों में वह प्रायः भुवन के समाचार ही अधिक देती: अपने विषय

में कम लिखती या लिखती तो कालेज की 'एक्टिविटीज़' का वर्णन कर देती। चन्द्र के पत्रों में व्यक्तिगत अधिक होता, विदेशों में मिले लोगों और विशेषकर स्त्रियों की बातें होतीं, और निरन्तर वहाँ की स्वाधीनता और यहाँ के बन्धनों की तुलना और उस पर एक आक्रोश का स्वर उस के पत्रों में पाया जाता। गौरा ने एक बार लिखा, "स्वाधीनता केवल सामाजिक गुण नहीं है। वह एक दृष्टिकोण है, व्यक्ति के मानस की एक प्रवृत्ति है। हम कहते हैं कि समाज हमें स्वाधीनता नहीं देता; पर समाज दे कैसे ? हमीं तो अपने दृष्टिकोण से समाज बनाते हैं। मैं अपने-आप को बद्ध नहीं मानती हूँ, और स्वाधीनता के लिए अपने मन को ट्रेन करती हूँ। सफलता की बात नहीं जानती, उतनी शक्ति मेरे भीतर होगी तो क्यों नहीं होऊँगी सफल ? और मैं सोचती हूँ कि सब लोग यत्नपूर्वक अपने को स्वाधीनता के लिए ट्रेन करें तो शायद हमारा समाज भी स्वाधीन हो सके।"

चन्द्र ने उत्तर में उसे बधाई देते हुए लिखा था, "आप ऐसा मान सकती हैं, और ट्रेनिंग की सुविधा पा सकती हैं,क्योंकि आपका जीवन संरक्षित है,उसे छत्रच्छाया मिली है। उन की सोचिए जो जीवन के अथाह सागर पर फेंक दिये जाते हैं एक खाली टीन के डिब्बे की तरह : क्या वे भी स्वाधीन हैं, अपने को ट्रेन कर सकते हैं ? जीवन वैसा ही है—और हम सब बह रहे हैं, बह रहे हैं, खाली डिब्बा ऊब-डूब करता है तो समझता है कि मैं स्वाधीन हूँ, और सागर पर सवार हूँ, पर कहाँ छोर है, कब वह जा लगेगा, या कि राह में डूब जायगा—क्या वह जानता है ? या उस के बारे में कुछ कर सकता है ? नहीं गौरा जी, हमें जिस को जहाँ जितना थोड़ा-सा सुख मिलता है, उतना ही हमें आतुर और कृतज्ञ हाथों ले लेना चाहिए—उसी का नाम स्वाधीनता है, बाकी सब संघर्ष है, संघर्ष, अन्तहीन आशाहीन संघर्ष......"

औरा गौरा ने : "शायद हम अलग-अलग दुनिया में रहते हैं, अलग-अलग मुहावरे बोलते हैं। आप को यूरोप के समकालीन निराशावाद ने पकड़ लिया है—है न ? इस यूरोप के लिए आशा नहीं है। यह तो मरेगा ही। पर क्या एक दूसरा यूरोप नहीं उठेगा ? नहीं, ऊब-डूब करते डिब्बों का यूरोप नहीं, फिर एक स्वाधीन यूरोप, लेकिन जिस की स्वाधीनता नये और दृढ़तर पायों पर टिकी हो ? मैं तो समझती हूँ, हम यहाँ हिन्दुस्तान में भी न केवल अपनी वरन् यूरोप की भी स्वाधीनता का उद्योग कर सकते हैं : हर कोई हर जगह सारे विश्व की स्वाधीनता की लड़ाई लड़ सकता है क्योंकि अविभाजित और अविभाज्य स्वाधीनता ही स्वाधीनता है, जब तक वह नहीं तब तक स्वाधीनता हो कर भी अधूरी और अरक्षित है।"

दो-एक ऐसे पत्रों के बाद चन्द्रमाधव विषय को छोड़ देता था और फिर बिलकुल व्यक्तिगत बातों पर आ जाता था, उस में से फिर कोई साधारण सूत्र उठाकर गौरा दूर हट जाती थी।

उतराने को मानता है, वह डूबता-उतराता है, जो स्वाधीनता के लिए साधना
—

यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति ।
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम् ॥

* * *

त्री, सख्य, प्रेम—इन का विकास धीरे-धीरे होता है ऐसा हम मानते हैं; 'प्रथम से ही प्रेम' की सम्भावना स्वीकार कर लेने से भी इस में कोई अन्तर नहीं आता । धीरे-धीरे होता हुआ भी वह सम गति से बढ़ने वाला विकास नहीं होता, सीढ़ियों की ह बढ़ने वाली उसकी गति होती है, क्रमशः नये-नये उच्चतर स्तर पर पहुँचने वाली । ली का प्रस्फुटन उस की ठीक उपमा नहीं है, जिस का क्रम-विकास हम अनुक्षण देख सकें : धीरे-धीरे रंग भरता है, पंखुड़ियाँ खिलती हैं, सौरभ संचित होता है और डोलती हवाएँ रूप को निखार देती जाती हैं । ठीक उपमा शायद साँझ का आकाश है : एक क्षण सूना, कि सहसा हम देखते हैं, अरे, वह तारा ! और जब तक हम चौंक कर सोचें कि यह हमने क्षण भर पहले क्यों न देखा—क्या तब नहीं था ? तब तक इधर-उधर, आगे, ऊपर कितने ही तारे खिल आयें, तारे ही नहीं, राशि-राशि नक्षत्र-मंडल, धूमिल उल्का-कुल, मुक्त-प्रवाहिनी नभ-पयस्विनी—अरे, आकाश सूना कहाँ है, यह तो भरा हुआ है रहस्यों से जो हमारे आगे उद्घाटित हैं....प्यार भी ऐसा ही है; एक समोन्नत ढलान नहीं, परि-चिति के, आध्यात्मिक संस्पर्श के नये-नये स्तरों का उन्मेष....उस की गति तीव्र हो या मन्द, प्रत्यक्ष हो या परोक्ष, वांछित हो या वांछातीत । आकाश चंदोवा नहीं है कि चाहे तो तान दें, वह है तो है, और है तो तारों-भरा है, नहीं है तो शून्य शून्य ही है जो सब-कुछ को धारण करता हुआ रिक्त बना रहता है....

गौरा से भुवन का चौदह वर्ष का—या कि सात-आठ वर्ष का—परिचय भी ऐसा था । इस लम्बे अन्तराल के बाद जो नया परिचय हुआ था, वह पहले परिचय से बिल भिन्न स्तर पर था; दूसरे स्तर पर वह सम गति से चल रहा था कि सहसा एक झों वह एक स्तर और उठा—या गहरे में चला गया ।

भुवन को कालेज की नौकरी करते एक वर्ष हुआ था । थीसिस भी उसने भे था, वर्ष-भर के अन्दर उसे परिणाम की सूचना मिलेगी और, जैसा कि उसे पूरा है, अगर उसे डाक्टर की उपाधि मिल जायगी तो कालेज में उन्नति तो होगी काम की सुविधा भी मिलेगी, शायद विश्वविद्यालय में भी कुछ कर सके । उस के मानसिक जीवन में आ गयी थी जो गतिहीनता नहीं थी, सधी हुई, की सूचक थी ।

गौरा ने बी० ए० की परीक्षा दे दी थी, साथ ही संगीत की एक परी

भुवन ने उसे एक उत्साह-वर्द्धक पत्र लिखा था, और लिखा था, कि वह आशा करता है कि गौरा अच्छी तरह पास होगी क्योंकि वह चाहता है कि गौरा जो कुछ करे अच्छी तरह करे; पर साथ ही उस की यह भी धारणा है कि गौरा में जो कलात्मक संवेदना है उस की अभिव्यक्ति और निष्पत्ति बी० ए०-एम० ए० की डिगरियों में नहीं, रचनात्मक कर्म में है, अपनी प्रतिभा का उपयोग न करना, प्रस्फुटित होने का मार्ग न देना, उसे जीवनानन्द की शोध में न लगाना निष्क्रिय आत्म-हनन है, अन्धकार को आत्म-समर्पण है जब कि वह गौरा को हमेशा एक उजली और दौड़ती हुई धूप के रूप में ही देखता है : पहाड़ पर बदली में से फूटी हुई किरण जैसे धन-खेतों पर लहरती दौड़ती चली जाती है, वैसी ही।

उस के पत्र के उत्तर में देर हुई थी। जब आया था, तब जो आया था, उस के लिए वह बिलकुल तैयार नहीं था। उस में उसके पत्र की किसी बात का कोई उल्लेख नहीं था; बहुत छोटे पत्र में उतना ही लिखा था :

भुवन दा,

आप क्या दो-चार दिन के लिए भी नहीं आ सकते ! मुझे आगे मार्ग नहीं दीखता है, और मैं अँधेरे में डूबना नहीं चाहती, नहीं चाहती ! जल्दी आइये।

आप की
गौरा

भुवन की समझ में कुछ भी न आया। उसे ध्यान आया, गौरा का परीक्षा-फल निकल गया होगा : गौरा ने लिखा क्यों नहीं ? कहीं फ़ेल तो नहीं हो गयी—पर असम्भव ! उसने रजिस्ट्रार को जवाबी तार दे कर परीक्षा-फल माँगा; उसी रात उत्तर आ गया : "प्रथम श्रेणी, दूसरा स्थान।" हाँ, यही हो सकता था, फ़ेल होने की कल्पना भी क्यों उस के मन में आयी ? पर बात क्या है ? गौरा को वह क्या उत्तर दे? क्या चला जाय ? लेकिन क्यों—पहले जाने तो कि बात क्या है ?

और तब, सहसा, आकाश में एक तारा फूट आया था। तो गौरा के विवाह का प्रश्न उठा है। आखिर उठा ही.....और वह आगे मार्ग नहीं देख पा रही है, और भुवन.....हाँ, भुवन उसे जानता है, बहुत निकट से जानता है—आज अगर गौरा जीवन के इतने बड़े निर्णय के सामने उस की राय पूछ रही है और उसी पर चल पड़ेगी, इतना बड़ा दायित्व उस पर थोप रही है तो क्यों ? क्योंकि उसने पहले देखा है जो भुवन को पहले देखना चाहिए था : कि भुवन उसे, उस की सम्भावनाओं को, उस से भी अच्छी तरह पहचानता है।

और आकाश तारों से भर गया था। भुवन तटस्थ है, पर गौरा के भविष्य में उसे गहरी दिलचस्पी है; वह क्या करती है या नहीं करती है—उस का क्या होता है—यह भुवन के लिए अत्यन्त महत्त्व रखता है....क्यों ? क्योंकि वह उस की भूतपूर्व शिष्या है ?

नहीं, यद्यपि हाँ, वह भी––उस नाते वह किसी हद तक उस के भविष्य का उत्तरदायी है ......पर मुख्यतया इस लिए कि वह कुछ है जो जीवन से भुवन ने पाया है और जिस के सहारे उसने स्वयं अपने को अधिक पाया है....सहसा उस का अन्तर गौरा के प्रति स्नेह ही नहीं, एक अद्‌भुत कृतज्ञता से द्रवित हो आया। 'अच्छा अध्यापन वही है जिस में अध्यापक भी सीखता जाय' इतना ही नहीं, वह स्थायी सम्बन्ध है जिस का आलोक भविष्य में भी दोनों का मार्ग उज्ज्वल करता है...

भुवन ने गौरा को लिखा :

गौरा,

तुम्हारा पत्र मिला है। तुम्हारे स्नेह का दावा मुझ पर सदैव रहा है; पर इतनी दूर से तुम सहसा बिना कारण बताये बुला भेजोगी, यह नहीं सोचा था। मेरे पत्र की किसी बात का उत्तर तुमने नहीं दिया; और परीक्षा-फल तक नहीं सूचित किया––क्या मैंने कभी कल्पना की थी कि तुम्हारा परीक्षा-फल रजिस्ट्रार को तार दे कर मँगाना पड़ेगा ? पर तुम्हारे कारण न देने से ही शायद मैं कारण का ठीक-ठीक अनुमान लगा सका हूँ। और तुम्हारे मौन से मुझे आलोक मिला है, शक्ति मिली है––जिस के सहारे मैं दो-एक बातें लिखने बैठ गया हूँ जो कदाचित् तुम्हारे कुछ काम आवें।

गौरा, कोई किसी के जीवन का निर्देशन करे, यह मैं सदा से गलत मानता आया हूँ तुम जानती हो। दिशा-निर्देशन भीतर का आलोक ही कर सकता है; वही स्वाधीन नैतिक जीवन है, बाकी सब गुलामी है। दूसरे यही कर सकते हैं कि उस आलोक को अधिक द्युतिमान बनाने में भरसक सहायता दें। वही मैंने जब-तब करना चाहा है, और उस प्रयत्न में स्वयं भी आलोक पा सका हूँ, यह मैं कह ही चुका। तुम्हारे भीतर स्वयं तीव्र संवेदना के साथ मानों एक बोध भी रहा है जो नीति का मूल है; तुम्हें मैं क्या निर्देश देता ?

अभी किस प्रश्न को लेकर तुम चिन्तित हो, यह शायद मैं समझ सका हूँ। पर उस प्रश्न में सहसा इतनी चिन्त्य तात्कालिकता क्यों आ गयी कि तुम ने मुझे बुला भेजा, यह तुम्हारी ओर से किसी सूचना की अनुपस्थिति में कैसे जानूँ ? यह प्रश्न आगे-पीछे उठना ही; मैं समझता हूँ कि परीक्षा-फल के साथ-साथ ही भविष्य-निर्णय का प्रश्न तुम्हारे माता-पिता के सामने उठा होगा। यह भी हो सकता है कि उन्होंने पहले से कुछ सोच रखा हो ––चाहे कह भी रखा हो––और अब, जब उन की समझ में तुम्हारी शिक्षा पूरी हो गयी और वय भी हो गयी, तब तुम्हें पूछा या बताया हो। उन पर मेरी श्रद्धा है और मैं समझता हूँ कि तुम्हारा अहित उन से नहीं होगा; इतना ही नहीं, मैं यह भी समझता हूँ कि तुम्हारे हिताहित के विषय में तुम्हारी धारणा को वे अमान्य नहीं करेंगे––उस से क्लेश होगा तब भी नहीं। एक बार तुम्हारे पिता ने मुझ से कहा था "सन्तान को पढ़ा-लिखा कर फिर अपनी इच्छा पर चलाना चाहने का मतलब है स्वयं अपनी दी हुई शिक्षा-दीक्षा

को अमान्य करना, अपने को अमान्य करना; क्योंकि बीस बरस में माँ-बाप सन्तान को स्वतन्त्र विचार करना भी न सिखा सके तो उन्होंने क्या सिखाया ?" जो व्यक्ति ऐसी बात मान सकता है, उस के विचार-परिपाटी के बुनियादी मान ठीक हैं, और मुझे विश्वास है कि वह चाहे वचन-बद्ध भी हो चुके हों—जो मेरी समझ में न हुए होंगे—उन से साफ़-साफ़ बात करना शुभ परिणाम देगा।

पर यह बाहर की बात है। तुम्हारे भीतर ? यहाँ कुछ कहते दोहरा संकोच होता है, फिर भी कुछ कहूँगा ही : हाँ, इसे तुम मेरा मत ही समझो, वह भी पूर्वग्रह-दूषित मत, उस से अधिक कुछ नहीं। आगे-पीछे इस प्रश्न का सामना करना ही होता है; और जहाँ तक निरे सिद्धान्त का प्रश्न है, मैं मानता हूँ कि जब तक कोई स्पष्टतया मनोवैज्ञानिक 'केस' न हो विवाह सहज धर्म है और है व्यक्ति की प्रगति और उत्तम अभिव्यक्ति की एक स्वाभाविक सीढ़ी। लेकिन सिद्धान्त के प्रतिपादन से ही प्रश्न का उत्तर नहीं हो जाता; व्यक्तित्व के प्रश्न के आगे व्यक्ति का जो प्रश्न है, वह बना रहता है। उस के विषय में यह कह सकता हूँ कि व्यक्ति का स्वतन्त्र विकास जब तक पूरा नहीं हो जाता, तब तक उसे इकाई से बाहर प्रसृत करने का प्रश्न नहीं उठता, वह प्रश्न तभी उठना चाहिए जब उस के बिना और विकास के मार्ग न हों। और प्रश्न उठने के बाद फिर व्यक्ति-विशेष की खोज होती है : उस में जोखम अनिवार्य है; पर आन्तरिक आलोक कुछ भी काम नहीं देता यह कैसे माना जाय ? जोखम भी कौन-सा उठाने लायक है, कौन-सा नहीं, इस के निर्णय में अन्तःकरण का साक्ष्य अवश्य सहायक होता है। राह चलना हो, तो हर मोड़, हर चौराहे पर राही को जोखम उठाना होता है और वह उठाता है; उस समय आँखें बन्द कर के दूसरे के निर्देश पर अपने को नहीं छोड़ देता। और गार्हस्थ्य एक लम्बी यात्रा है—बल्कि पथ-यात्रा नहीं, सागर-यात्रा, जिस में मोड़-चौराहे पर नहीं, क्षण-क्षण पर संकल्प-पूर्वक जोखम का वरण करना होता है और कोई लीकें आँकी हुई नहीं मिलतीं, नक्शे और कम्पास और अन्ततोगत्वा अपनी बुद्धि और अपने साहस के सहारे चलना होता है।

तुम्हें जो राह दीखती है, उस पर चलो, गौरा। धैर्य के साथ, साहस के साथ। और हाँ, जो तुम से सहमत नहीं हैं उनके प्रति उदारता के साथ, जो बाधक हैं उन के प्रति करुणा के साथ। और राह पर जब ऐसा साथी मिलेगा जिस का साथ तुम्हें प्रीतिकर, वांछनीय, कल्याणप्रद लगे, तब किसी की बात न सुनना, जान लेना कि अब स्वतन्त्र रूप से जोखम वरने का समय आ गया।

यही मैं मानता हूँ। स्वयं उस आदर्श को नहीं पाता, वह दूसरी बात है। पर वह ठीक है इस के बारे में मुझे ज़रा भी संशय नहीं है।

और अभी क्या लिखूं ? तुम क्या करती हो, क्या करोगी, लिखना। अब भी अगर बुलाओगी, तो आ जाऊँगा। यों छुट्टियों से तत्काल पहले छुट्टी मिलना कठिन होता है पर

आना हो तो एकदम छुट्टियों में ही आने से काम न चलेगा ?

तुम्हारा
भुवन दा

गौरा के दूसरे पत्र से भुवन ने जाना कि बात विवाह की ही थी। प्रस्तावित लड़का गौरा के कालेज में पढ़ता रहा था, उस से तीन-चार वर्ष आगे; उस के पिता की ओर से बात पहले उठायी गयी थी जब गौरा ने इंटर पास किया था—लड़का तब विदेश में था। गौरा के माता-पिता ने तब इसी आधार पर टाल दिया था कि लड़का तो विदेश है, पर माँ यही मानती थीं कि वे लगभग वचन-बद्ध हैं। लड़का जाड़ों में लौट आया था इंजीनियर बन कर, तब से बात चल रही थी और गौरा की परीक्षा के बाद ही प्रबल हो कर उठी। यों लड़के वाले राजी थे कि गौरा आगे भी पढ़ना चाहे तो पढ़े; पर पक्की बात वे तुरत चाहते थे, और विवाह भी इसी वर्ष नहीं तो अगले वर्ष। लड़के को गौरा ने देखा अवश्य था पर उसकी बहुत हल्की-सी स्मृति ही उसे थी, और यह कहने का कोई कारण नहीं था कि उन में कोई विशेष अनुकूलता है। विवाह की बात लड़के की इच्छा पर ही उठी थी, पर एक बी० ए० के विद्यार्थी का एक फर्स्ट ईयर की लड़की के प्रति आकर्षण अपने-आप में कोई महत्त्व नहीं रखता।

गौरा ने यह भी लिखा था कि भुवन के पत्र से उसे बहुत सहारा मिला और आगे का मार्ग कुछ-कुछ उसे दीखता भी है, माँ की अनशन की धमकी स्वयं एक महत्त्वपूर्ण तथ्य है; पिता तो दुःखी पर चुप हैं, किन्तु माँ का कहना है कि उन दोनों के जीवन का दारोमदार इसी पर है। गौरा इसे स्पष्ट अन्याय समझती है, पर क्या माता-पिता की इच्छा पर अपने को उत्सर्ग कर देना भी एक रास्ता नहीं है ? सारी परम्परा तो इसी का समर्थन करती है कि यही रास्ता है : और ऐसे आत्म-बलिदान में सुख भी होता है यदि वह कल्याण की भावना से किया जाय; खीझ कर, आत्म-दहन की भावना से नहीं। यही सब वह सोचती है, और किसी निर्णय पर नहीं पहुँच पाती; पर भुवन दा की यह बात वह खूब समझती है कि अन्ततोगत्वा निर्णय उस के माता-पिता का नहीं, उसी का है, वह जो कुछ भी करे, परि-णामों के लिए उत्तरदायी वही होगी। शीघ्र ही वह कुछ तय कर लेगी : और बिलकुल नहीं ही कर सकी, तो फिर भुवन दा को बुला भेजेगी : छुट्टी वह न लें, अवकाश आरम्भ होते ही आ जावें और तब तक वह बात टाल लेगी....

भुवन ने फिर एक छोटा-सा पत्र उसे लिखा :

गौरा,

तुम्हारे पत्र से पूरी बात मालूम हुई। नया मुझे कुछ नहीं कहना है।

ठीक है, तुम्हारे निर्णय की प्रतीक्षा करूँगा। पूरे विश्वास के साथ कि जो भी तुम करोगी, भूल नहीं करोगी।

आत्म-बलिदान की बात हमारी पीढ़ी की हर युवती सोचती है। युवती ही क्यों, युवक भी। बलिदान ही हो, तो कोई दूसरा क्या कह सकता है ? अपनी जिन्दगी लुटाने का हक हर किसी को है; और ऐसे मौके भी हो सकते हैं जब अन्याय को चुनौती देने का कोई दूसरा उपाय ही न रहे, यह मैं समझता हूँ। ("जानते हो, मैं तुम्हारी जान ले सकता हूँ ?" "हाँ, दस्यु; और तुम जानते हो, मैं जान गँवा कर तुम्हारी अवहेलना कर सकता हूँ ?") यह उत्तर कायर का नहीं, साहसी का है। पर आत्म-बलिदान आत्म-प्रवंचना नहीं है, यह खूब अच्छी तरह पड़ताल कर के देख लेना चाहिए। और मैं नहीं मानता कि इस मामले में हमारे सब युवक-युवतियाँ सतर्क रहती हैं। इस तरह का झुकना बलिदान नहीं, पलायन है कटु निर्णय से, स्वाधीनता के जोखम से पलायन। स्वाधीनता साहस माँगती है; दुस्साहस भी माँग सकती है। स्वाधीनता साहसी का धर्म है।

हमारा संस्कार है, हाँ; पर श्रवणकुमार का जो आदर्श है, वही—ज़रा-सी चूक पर !—हमारी सारी पीढ़ी की पराजय और क्लीवता का बड़ा अच्छा प्रतीक भी है। कन्धे पर लदी हुई बहँगी पितृभक्ति का, आदर्श-परायणता का, आत्म-बलिदान का प्रतीक नहीं; जड़-पूजा का, आत्म-प्रवंचना का, स्वाधीन जीवन की अपात्रता का प्रतीक है ! श्रवण के लिए वह क्या था, इस का निर्णय करना मेरे लिए आवश्यक नहीं है; मेरी पीढ़ी के लिए वह क्या है यह मैं ठीक जानता हूँ।)

तुम पर मुझे आस्था है। आत्म-बलिदान करती हो, तो मेरा श्रद्धापूर्ण प्रणाम लो। सच्चा बलिदान भी स्वाधीन व्यक्ति का कर्म है।

पत्र दोगी ? मैं देखो कितने तपाक से पत्र लिख रहा हूँ !

तुम्हारा
भुवन

:

इसका उत्तर उसे बहुत दिनों तक नहीं मिला। पहले कुछ दिन उसने प्रतीक्षा की; फिर मान लिया कि गौरा ने विवाह की स्वीकृति दे दी है; और दे दी है तो भुवन को और लिखने को अभी क्या होगा ? दो-चार मास बाद—या क्या जाने, विवाह के बाद !—ही वह लिखेगी। आवकाश आरम्भ हो गया, उसने सामान तैयार किया कि अगर गौरा बुलायेगी तो वहाँ, नहीं तो कुछ दिन के लिए पहाड़-वहाड़ कहीं चला जायगा; पर चार-छः दिन ऐसे भी बीत गये। सहसा एक दिन मद्रास से गौरा का पत्र आया :

भुवन दा,

मैंने एक साथ कई निश्चय कर लिये। वह बात समाप्त हो गयी है। माँ बहुत रोयीं-धोयीं, पर मान लेंगी ऐसा विश्वास है। पिता ने भी यही कहा; बोले, "बेटी, हम दोनों तुम्हारा कल्याण चाहते हैं, यह विश्वास न खोना। तुम्हारी माता समझ जायेगी और

विश्वास तुम पर बना है, यह मैं तुम्हें कहता हूँ ।" और कुछ उन से कहते कहते तो शायद मैं न सह सकती ।

निश्चय : मैं आगे पढ़ाई नहीं कर रही । संगीत के लिए आयी हूँ । एक वर्ष एक वर्ष मैसूर में रहूँगी, इतनी दूर स्पष्ट दीखता है, और इस में इतना काम है ेखना अभी ज़रूरी नहीं जान पड़ता । यों यह भी लगता है कि असल चुनाव मैंने ा है; आगे इतनी कड़ी परीक्षा अब न होगी ।

वन दा, पलायन इधर भी हो सकता है, उधर भी । बिना मन के भीतर घुसे, केवल आधार पर कोई निर्णय नहीं दिया जा सकता । आप ने एक बार कहा था, "आत्मा शे नहीं होते कि हम चट से फैसला दे दें : इस सीमान्त के इधर स्वदेश, उधर विदेश, पुण्य उधर पाप । आत्मा के प्रदेश में सीमान्त हर क्षण, हर साँस के साथ बदल सकता योंकि हर क्षण एक सीमान्त है ।"

वह बात आज समझ रही हूँ । जीवन एक बार का वरण नहीं है, वह अनन्त वरण है; येक क्षण हम स्वीकार और परिहार करते चलते हैं ।

भुवन दा, मैं भाग कर नहीं आयी, माँ के दुःख से भी नहीं । सामने काम है, और बड़ा अर्जेंट, बड़ा ज़रूरी काम । इसी झंझट में मैंने इतनी देर कर दी, पर आप ज़रूर-ज़रूर मेरी बात ठीक-ठीक समझेंगे और तब आप को यह देर भी अच्छी लगेगी ।

आप की कृतज्ञ
गौरा

पुनश्च :

अब मैं आप को नहीं बुलाऊँगी ! अवकाश आप कहाँ बितायेंगे ? कहीं पहाड़ चले जाइये । पिता जी मसूरी जायेंगे : वहीं आप जायें तो उनसे मिलिएगा, आप से मिल कर उन्हें तसल्ली होगी ।

गौरा

उसी डाक में बंगलौर से पत्र आया कि उस का थीसिस स्वीकृत हुआ है और डाक्ट-रेट प्रदान करने का अनुमोदन किया गया है : अगले कनवोकेशन में उसे डिगरी मिल जायगी ।

*   *   *

दक्षिण में ही गौरा ने पहले-पहल समझा कि कलाकार कैसे देश-काल के बन्धन मुक्त हो जाता है : कोई भी लगन, कोई भी गहरी साधना व्यक्ति को इन बन्धनों से ले जाती है । देह का अपना धर्म है; उस से तो मुक्ति नहीं मिलती; पर आत्मा—या अ की बात न करें क्योंकि उस के साथ तो अजर-अमर होने की प्रतिज्ञा ही है—मन भी मुक्त, चिर युवा रह जाता है : एक दिन साधक सहसा पाता है कि अरे, यह देह त

हो गयी जब कि भीतर का जीव ज्यों-का-त्यों है, बल्कि अधिक स्फूर्तियुक्त, अधिक समर्थ ......तब अगर वह मन को देह पर छोड़ देता है तभी मन भी जरा का अनुगत हो जाता है, नहीं तो अन्त तक––देह के विघटन-विलयन तक––भी वह वैसा ही अछूता चला जायगा, ऐसा गौरा को लगता है। पढ़ाई के साथ-साथ भी वह संगीत-साधना करती रही थी, पर वहाँ वह गौण थी, अपने को उस में बहा नहीं दिया जा सकता था, समर्पण नहीं हो सकता था : और साधना शर्तबन्द नहीं होती, वह आंशिक नहीं होती। या होती है, या नहीं होती.....और अब.....

यों सम्पूर्ण साधक कम ही होते हैं : अधिकतर या तो सब समय अधूरा समर्पण, या कुछ समय पूरा समर्पण दे सकते हैं––सब समय पूरा समर्पण तो पागलपन है जो देवत्व का समकक्षी है, वह तो दुर्लभ है.....गौरा जानती है कि वह वैसी सम्पूर्ण साधिका–– बल्कि वैसी सम्पूर्णता हो तो साधिका क्यों, सिद्ध––नहीं है, और भीतर यह भी अनुभव करती है कि वैसी वह होना भी नहीं चाहती। पर जितनी साधना, या जितना शोध, जितनी तपश्चर्या उसे करनी है, वह सम्पूर्ण हो यह वह चाहती है, और इस के लिए कृत-संकल्प है। उसने पाया कि संगीत के अध्ययन के साथ संस्कृत का अध्ययन आवश्यक है, वह भी उसने आरम्भ कर दिया; फिर उसी से सम्बद्ध संस्कृत काव्यों का अध्ययन; इस में उसने पाया कि संगीत अकेला नहीं खड़ा होता, उसे वास्तव में स्वायत्त करने के लिए थोड़ा इधर-उधर भी बढ़ना आवश्यक है; नाटच-शास्त्र तक पहुँचते न पहुँचते उसने जान लिया कि दो वर्ष तो क्या होते हैं, उसे बीस वर्ष भी थोड़े हैं। पर व्यक्ति की कुछ सीमाएँ हैं जिन्हें वह मान ही लेना चाहती है : सम्पूर्ण साधक उन्हें अमान्य भी कर सकता, वह जानती है, और वैसी लगन के लिए जो कठोरता और एक विशेष प्रकार की आत्म-परता चाहिए उसे वह निरी स्वार्थ-परता नहीं कहेगी; पर उसे अभी वह इष्ट नहीं है, वह इन मर्यादाओं को स्वीकार ही कर लेगी....दो वर्ष पूरे कर के कहीं काम करना होगा––पिता-माता पर निर्भर करना अब उचित न होगा ––और काम के साथ-साथ ही संगीत-साधना आगे चलानी होगी।

बीच-बीच में वह भुवन को पत्र लिखती : उसमें अपना उत्साह, अपनी चिन्ताएँ ,अपने संकल्प,सभी व्यक्त करती। पर भुवन के पत्र फिर विरले हो गये थे; एक बार उसने लिखा कि "तुम्हारी लगन से मुझे अपनी चूक का ध्यान हो आता है––साधना से समझौता मैंने भी किया है क्योंकि नौकरी में भी करता हूँ, पर समझौते में जितना अपनी साधना को देना चाहिए वह तो कम-से-कम निरालस, निर्बन्ध भाव से देना चाहिए...." गौरा इस पत्र से मुदित भी हुई, पर उस के बाद से उसने अपने पत्र भी विरल कर दिये, महीने में एक पत्र से अधिक वह न लिखती, कभी दो महीने भी हो जाते। भुवन बंगलोर आयेगा शायद तब भेंट होगी, यह आशा उस के मन थी, पर उसने व्यक्त न की; भुवन नहीं आया और निराशा भी व्यक्त करने का कोई प्रश्न न उठा।

परीक्षा-फल निकलने के तुरत बाद उसे चन्द्रमाधव का बधाई का पत्र मिला था। उसने उत्तर तत्काल नहीं दिया था—तब वह अशान्त थी; मद्रास आने पर उत्तर देने से पहले चन्द्र का एक और लम्बा पत्र उसे मिला। चन्द्र ने लखनऊ में अपने नये कार्य की बात लिखी थी, और उस के पिछले पत्र का, जो एक वर्ष से अधिक पूर्व उस के भारत लौटने से पहले गौरा ने उसे लिखा था, हवाला देते हुए कहा था कि "यूरोप का निराशावाद शीघ्र ही सारी दुनिया पर छा जायगा; एक महान् विस्फोट आ रहा है, गौरा जी, और उस की लपटें भारत को अछूता न छोड़ जायेंगी! स्वाधीनता का आन्दोलन है, ठीक है, लेकिन उस लपट का धुआँ व्यक्ति के स्वातन्त्र्य का दम घोट जायगा; ऊब-डूब की ही स्वाधीनता रह जायगी, बस! देखें, आप का आशावाद क्या करता है तब..."अनन्तर और कई बातों के बाद लिखा था, "सुना था कि आप के विवाह का निश्चय हुआ था, फिर सुना कि बात टूट गयी: यह भी सुना कि 'मास्टर साहब' के परामर्श से...आप इसे मेरी अनधिकार चर्चा न समझें, गौरा जी; स्वाधीनता का मैं खूब सम्मान करता हूँ और यूरोप से लौट कर मुक्त रहने का महत्त्व और भी समझने लगा हूँ—पर भुवन जैसे विज्ञान के नशेबाज़ की बात को ज़रूरत से ज़्यादा अहमियत भी दे दी जा सकती है। वह तो ऊब-डूब भी नहीं है डूब ही डूब है: और उस सागर से उबरना नहीं होता! यों आप के सामने निश्चय ही, स्पष्ट कर्तव्य-पथ होगा ऐसा मेरा विश्वास है...."

इस पत्र ने गौरा के पहले पत्र का उत्तर न देने का संकोच मिटा दिया था, और उसने दो महीने तक कोई पत्र नहीं लिखा था। फिर जब लिखा था, तब क्षमा-याचना करते हुए यह भी लिख दिया था कि दूसरे पत्र से वह विरक्त हो गयी थी। "आप जो सुनते हैं, सुन सकते हैं; पर हर सुनी बात की पड़ताल आवश्यक नहीं होती। और मास्टर साहब के बारे में आपने जो लिखा है, उस से मैं पूर्ण सहमत हूँ, पर आप उस से जो परिणाम निकालते हैं उस से नहीं। वह विज्ञान में डूबे हैं, ठीक है; उसे आप नशा भी कह लीजिए। पर इस लिए वह राय नहीं दे सकते, यह मैं नहीं मानती। यों वह राय कभी देते ही नहीं, पर जब देंगे तब वह अधिक सम्मान्य होगी क्योंकि वह अनासक्त होगी, ऐसा मैं जानती हूँ। जिसे आप नशेबाज़ कहते हैं और मैं—आप अनुमति दें—साधक कहूँगी वह अपने नशे मे इतर बातों में बिल्कुल असम्पृक्त होता है यही उस की शक्ति है। आप कहते हैं कि वह इस लिए अविश्वास्य है, मैं कहती हूँ कि इसी लिए वह विश्वास्य है, क्योंकि विश्वास-अविश्वास दोनों ही उसे नहीं छूते....पर अपने भविष्य-निर्णय के बारे में मेरा कोई मत ही नहीं था, ऐसा आपने क्यों मान लिया? क्या यूरोप के निराशावाद में यह उदासीनता भी शामिल है?"

चन्द्रमाधव ने तुरत क्षमा-याचना कर ली थी। आप को क्लेश पहुँचाना, या आप की या भुवन जी की अवहेलना करना मुझे बिल्कुल अभीष्ट न था; आप की शुभाशंसा से ही मैंने यह सब लिखा था....वापस लेता हूँ। आप के पत्र से स्पष्ट विदित होता है कि

आप में प्रबल संकल्प-शक्ति है और आप को आप के मनोनीत पथ से कोई नहीं हटा सकता; मैं इस पत्र से आश्वस्त ही नहीं, बहुत प्रभावित भी हुआ हूँ..."आगे चल कर उसने पूछा था कि गौरा दक्षिण में क्या कर रही है, और क्या विश्व की इस संकटापन्न अवस्थिति में उसे संगीत की साधना पर्याप्त जान पड़ती है ?

गौरा ने उस की क्षमा-याचना शिष्ट ढंग से स्वीकार कर ली। संगीत के बारे में उसने लिखा, "मैंने पहले भी एक बार लिखा था कि हम लोग भिन्न-भिन्न भाषा बोलते हैं, हमारा मुहावरा अलग है। फिर भी कहूँ कि मेरी समझ में तो एक विश्व-संकट यह भी है कि साधना आज इतनी नगण्य हो गयी है; कि हमारा साध्य जीवन का आनन्द न रह कर जीवन की सुविधाएँ रह गया है यानी जीवन की हमारी परिभाषा ही बदल गयी है, वह जीवन का नहीं, जीवन की क्रियाओं का नाम हो गया है। इस लिए आज हम जीवन के शोध की नहीं, जीवन की दौड़ की बात कहने लगे हैं; जीवन का बाह्यीकरण करते-करते हमने उस का बहिष्कार ही कर दिया है। आप यह बात नहीं समझेंगे : क्योंकि आप 'दूसरी तरफ़' हैं, आप दौड़ में हैं। गणित की भाषा में कहूँ—जो शायद हमारे आप के मुहावरे के अध-बीच आ सके—तो कहूँगी कि दौड़ का अर्थ है देश ÷ काल, जब कि शोध का अर्थ है देश × काल। आप विभाजन-फल माँगते हैं, मैं (या कह ही लेने दीजिए अपने समूचे वर्ग की ओर से, हम) गुणन-फल के अन्वेषी हैं। आप की माँग का अन्तिम परिणाम है न-कुछ, यानी कुछ इतना स्वल्प कि नगण्य; हमारी साध का अन्त है सब-कुछ, कुछ इतना विशाल कि आप भी उस में समा जायें ! यह अहंकारोक्ति लगती है न ? पर है नहीं, मैं न-कुछ हो कर ही सब-कुछ की शोध में हूँ; अहंकार इस तरफ़ नहीं हो सकता, अहंकार तो सब से बड़ा विभाजक है...."

*　　　　*　　　　*

सितम्बर १९३९ : यूरोप में युद्ध आरम्भ हो गया, तो चन्द्रमाधव और गौरा में और दो-एक पत्रों का विनिमय हुआ। और तब भुवन का भी एक पत्र गौरा को मिला। भुवन के पत्र में गहरी वेदना थी। विज्ञान की एफ़िशेंसी स्वयं साध्य बन कर मानव को कहाँ ले जाती है, युद्ध की घोषणा में इस का भीषण परिणाम उसे दीख रहा था। पुराने ज़माने में जब वैज्ञानिक और नीतिज्ञ एक ही था, तब विज्ञान नीति को पुष्ट करता था; और विज्ञान के विकास का इतिहास पहले एक पुष्ट नैतिकता का ही इतिहास रहा : नैतिकता ने किसी दैवी, अलौकिक प्रतिमान पर आधारित एक अन्ध-विश्वास या तर्कातीत श्रद्धा से हट कर एक बुद्धि-संगत, लौकिक, मानववादी नैतिक बोध का रूप लिया। यहाँ तक वैज्ञानिक सब नीतिज्ञ नहीं तो नैतिक अवश्य थे, और यहाँ तक विज्ञान का रेकार्ड वैज्ञानिकों के लिए गौरव का विषय है। मध्ययुग में बुद्धि की महानिशा में वैज्ञानिक सन्तों ने ही ज्ञान के टिमटिमाते आलोक को अपनी गुदड़ी के भीतर छिपा कर उसकी रक्षा की...पर किस

लिए ? कि औद्योगिक क्रान्ति के साथ वह सुविधा का गुलाम बन कर एक के बाद एक विभ्राट् उत्पन्न करता चले ? क्या यही मानव का भविष्य है क्योंकि यह उसकी श्रेष्ठ उपलब्धि विज्ञान का भविष्य है ? वह यह नहीं मान सकता.....पर निस्सन्देह यह विज्ञान का सूक्ष्म-काल तो है ही; और उस के साथ नैतिकता का भी क्राइसिस है; संस्कृति का भी; क्योंकि विज्ञान का क्राइसिस वैज्ञानिक नैतिकता और वैज्ञानिक संस्कृति का भी क्राइसिस है। इस से यह सीखना होगा कि नीति से अलग विज्ञान बिना सवार का घोड़ा है, या बिना चालक का एंजिन : वह विनाश ही कर सकता है। और संस्कृति से अलग विज्ञान केवल सुविधाओं और सहूलियतों का संचय है, और वह संचय भी एक को वंचित कर के दूसरे के हक़ में; और इस अम्बार के नीचे मानव की आत्मा कुचली जाती है, उस की नैतिकता भी कुचली जाती है, वह एक सुविधावादी पशु हो जाता है.. और यह केवल युद्ध की बात नहीं है, सुविधा पर आश्रित जो वाद आजकल चलते हैं वे भी वैज्ञानिक इसी अर्थ में हैं कि वे नीति-निरपेक्ष हैं : मानव का नहीं, मानव-पशु का संगठन ही उन का इष्ट है। कोई भी नीति-निरपेक्ष व्यवस्था अनिवार्यतः सर्वसत्तावादी व्यवस्था होगी, क्योंकि नीति को छोड़ देने के बाद दूसरा प्रतिमान सत्ता का रह जाता है.... "मेरे लिए यही इस युद्ध का सबक है। यह युद्ध किस लिए लड़ा जा रहा है, सहसा नहीं कह दिया जा सकता, ठीक स्वाधीनता के लिए ही है, यह कह देना भोलापन होगा क्योंकि 'स्वाधीनता' के साथ कितने इतर स्वार्थ भी तो मिले हुए हैं; पर यह ज़रूर कहा जा सकता है कि इस युद्ध से आरम्भ कर के हमें संस्कृति के उन मानों के लिए संघर्ष करना है जिन को स्वयं हमारी इस संस्कृति ने ही नष्ट कर दिया या जोखम में डाल दिया। हमें केवल युद्ध नहीं जीतना है, हमें शान्ति भी नहीं जीतनी है, हमें संस्कृति जीतनी है, विज्ञान जीतना है, नीति जीतनी है : हमें मानव की स्वाधीनता और प्रतिष्ठा जीतनी है। क्या इस युद्ध का सबक हमें वैसे वैज्ञानिक देगा जो विज्ञान को नीति से नहीं, नीति के लिए मुक्त रखेंगे ? हमें आशा नहीं खोनी होगी....."

चन्द्रमाधव के पत्र में निराशा भी थी, और कुछ गर्व का भाव भी कि उस की दुर्वाणी सच निकली। "यह संस्कृति का अन्तिम युद्ध है, क्योंकि जिसे हम संस्कृति कहते हैं वह एक सड़ा हुआ चौखटा है। और उस में जो जीव बन्द है, वह जीव इसी लिए है, कि वह पशु है; अगर पशु न हो कर तथा-कथित संस्कृत मानव होता तो वह भी मर गया होता—जैसे कि सर्वत्र संस्कृत मानव मर गया है। इस युद्ध में से एक नयी वर्बरता निकलेगी और सारी दुनिया पर राज्य करेगी : मैं कहता हूँ आने दो उस वर्बरता को। जिस तल पर हम हैं उस तल से ऊँचे की व्यवस्था स्वयं एक अभिशाप है क्योंकि उस से हमारा सम्पर्क हो ही नहीं सकता। डिमाक्रेसी धोखा है, गिनतियों का राज बनिये का राज है....." आगे चल कर फिर उसने प्रश्न उठाया था, "क्या आप अब भी मानती हैं कि कलाओं का और संगीत का कोई आत्यन्तिक मूल्य है—इस जीवन में कोई स्थान है ? है शायद—युद्ध के कार्यों को

आप में प्रवल संकल्प-शक्ति है और आप को आप के मनोनीत पथ से कोई नहीं हटा सकता; मैं इस पत्र से आश्वस्त ही नहीं, बहुत प्रभावित भी हुआ हूँ.."आगे चल कर उसने पूछा था कि गौरा दक्षिण में क्या कर रही है, और क्या विश्व की इस संकटापन्न अवस्थिति में उसे संगीत की साधना पर्याप्त जान पड़ती है ?

गौरा ने उस की क्षमा-याचना शिष्ट ढंग से स्वीकार कर ली। संगीत के बारे में उसने लिखा, "मैंने पहले भी एक बार लिखा था कि हम लोग भिन्न-भिन्न भाषा बोलते हैं, हमारा मुहावरा अलग है। फिर भी कहूँ कि मेरी समझ में तो एक विश्व-संकट यह भी है कि साधना आज इतनी नगण्य हो गयी है; कि हमारा साध्य जीवन का आनन्द न रह कर जीवन की सुविधाएँ रह गया है यानी जीवन की हमारी परिभाषा ही बदल गयी है, वह जीवन का नहीं, जीवन की क्रियाओं का नाम हो गया है। इस लिए आज हम जीवन के शोध की नहीं, जीवन की दौड़ की बात कहने लगे हैं; जीवन का बाह्यीकरण करते-करते हमने उस का बहिष्कार ही कर दिया है। आप यह बात नहीं समझेंगे : क्योंकि आप 'दूसरी तरफ़' हैं, आप दौड़ में हैं। गणित की भाषा में कहूँ—जो शायद हमारे आप के मुहावरे के अध-बीच आ सके—तो कहूँगी कि दौड़ का अर्थ है देश ÷ काल, जब कि शोध का अर्थ है देश × काल। आप विभाजन-फल माँगते हैं, मैं (या कह ही लेने दीजिए अपने समूचे वर्ग की ओर से, हम) गुणन-फल के अन्वेषी हैं। आप की माँग का अन्तिम परिणाम है न-कुछ, यानी कुछ इतना स्वल्प कि नगण्य; हमारी साध का अन्त है सब-कुछ, कुछ इतना विशाल कि आप भी उस में समा जायें! यह अहंकारोक्ति लगती है न ? पर है नहीं, मैं न-कुछ हो कर ही सब-कुछ की शोध में हूँ; अहंकार इस तरफ़ नहीं हो सकता, अहंकार तो सब से बड़ा विभाजक है...."

* * *

सितम्बर १९३९ : यूरोप में युद्ध आरम्भ हो गया, तो चन्द्रमाधव और गौरा में और दो-एक पत्रों का विनिमय हुआ। और तब भुवन का भी एक पत्र गौरा को मिला। भुवन के पत्र में गहरी वेदना थी। विज्ञान की एफ़िशेंसी स्वयं साध्य बन कर मानव को कहाँ ले जाती है, युद्ध की घोषणा में इस का भीषण परिणाम उसे दीख रहा था। पुराने ज़माने में जब वैज्ञानिक और नीतिज्ञ एक ही था, तब विज्ञान नीति को पुष्ट करता था; और विज्ञान के विकास का इतिहास पहले एक पुष्ट नैतिकता का ही इतिहास रहा : नैतिकता ने किसी दैवी, अलौकिक प्रतिमान पर आधारित एक अन्ध-विश्वास या तर्कातीत श्रद्धा से हट कर एक बुद्धि-संगत, लौकिक, मानववादी नैतिक बोध का रूप लिया। यहाँ तक वैज्ञानिक सब नीतिज्ञ नहीं तो नैतिक अवश्य थे, और यहाँ तक विज्ञान का रेकार्ड वैज्ञानिकों के लिए गौरव का विषय है। मध्ययुग में बुद्धि की महानिशा में वैज्ञानिक सन्तों ने ही ज्ञान के टिमटिमाते आलोक को अपनी गुदड़ी के भीतर छिपा कर उसकी रक्षा की...पर किस

लिए ? कि औद्योगिक क्रान्ति के साथ वह सुविधा का गुलाम बन कर एक के बाद एक विभ्राट् उत्पन्न करता चले ? क्या यही मानव का भविष्य है क्योंकि यह उसकी श्रेष्ठ उपलब्धि विज्ञान का भविष्य है ? वह यह नहीं मान सकता.....पर निस्सन्देह यह विज्ञान का सूक्ष्म-काल तो है ही; और उस के साथ नैतिकता का भी क्राइसिस है; संस्कृति का भी; क्योंकि विज्ञान का क्राइसिस वैज्ञानिक नैतिकता और वैज्ञानिक संस्कृति का भी क्राइसिस है। इस से यह सीखना होगा कि नीति से अलग विज्ञान बिना सवार का घोड़ा है, या बिना चालक का एंजिन : वह विनाश ही कर सकता है। और संस्कृति से अलग विज्ञान केवल सुविधाओं और सहूलियतों का संचय है, और वह संचय भी एक को वंचित कर के दूसरे के हक में; और इस अम्बार के नीचे मानव की आत्मा कुचली जाती है, उस की नैतिकता भी कुचली जाती है, वह एक सुविधावादी पशु हो जाता है.. और यह केवल युद्ध की बात नहीं है, सुविधा पर आश्रित जो वाद आजकल चलते हैं वे भी वैज्ञानिक इसी अर्थ में हैं कि वे नीति-निरपेक्ष हैं : मानव का नहीं, मानव-पशु का संगठन ही उन का इष्ट है। कोई भी नीति-निरपेक्ष व्यवस्था अनिवार्यतः सर्वसत्तावादी व्यवस्था होगी, क्योंकि नीति को छोड़ देने के बाद दूसरा प्रतिमान सत्ता का रह जाता है.... "मेरे लिए यही इस युद्ध का सबक है। यह युद्ध किस लिए लड़ा जा रहा है, सहसा नहीं कह दिया जा सकता, ठीक स्वाधीनता के लिए ही है, यह कह देना भोलापन होगा क्योंकि 'स्वाधीनता' के साथ कितने इतर स्वार्थ भी तो मिले हुए हैं; पर यह जरूर कहा जा सकता है कि इस युद्ध से आरम्भ कर के हमें संस्कृति के उन मानों के लिए संघर्ष करना है जिन को स्वयं हमारी इस संस्कृति ने ही नष्ट कर दिया या जोखम में डाल दिया। हमें केवल युद्ध नहीं जीतना है, हमें शान्ति भी नहीं जीतनी है, हमें संस्कृति जीतनी है, विज्ञान जीतना है, नीति जीतनी है : हमें मानव की स्वाधीनता और प्रतिष्ठा जीतनी है। क्या इस युद्ध का सबक हमें वैसे वैज्ञानिक देगा जो विज्ञान को नीति से नहीं, नीति के लिए मुक्त रखेंगे ? हमें आशा नहीं खोनी होगी....."

चन्द्रमाधव के पत्र में निराशा भी थी, और कुछ गर्व का भाव भी कि उस की दुर्वाणी सच निकली। "यह संस्कृति का अन्तिम युद्ध है, क्योंकि जिसे हम संस्कृति कहते हैं वह एक सड़ा हुआ चौखटा है। और उस में जो जीव बन्द है, वह जीव इसी लिए है, कि वह पशु है; अगर पशु न हो कर तथा-कथित संस्कृत मानव होता तो वह भी मर गया होता—जैसे कि सर्वत्र संस्कृत मानव मर गया है। इस युद्ध में से एक नयी बर्बरता निकलेगी और सारी दुनिया पर राज्य करेगी : मैं कहता हूँ आने दो उस बर्बरता को। जिस तल पर हम हैं उस तल से ऊँचे की व्यवस्था स्वयं एक अभिशाप है क्योंकि उस से हमारा सम्पर्क हो ही नहीं सकता। डिमाक्रेसी धोखा है, गिनतियों का राज बनिये का राज है....." आगे चल कर फिर उसने प्रश्न उठाया था, "क्या आप अब भी मानती हैं कि कलाओं का और संगीत का कोई आत्यन्तिक मूल्य है—इस जीवन में कोई स्थान है ? है शायद—युद्ध के कार्यों को

आगे बढ़ाने में वे सहायक हो सकती हैं...कला यानी पोस्टर; संगीत यानी फौजी बैंड... और साहित्य यानी पैम्फ़लेट, परचे, अखबारनवीसी, रिपोर्ताज का नया माध्यम जो न पूरा तथ्य है न पूरी कल्पना—क्योंकि तथ्य और कल्पना का अन्तर उस परम्परा का अवशिष्ट है, जिस में सनातन सत्य कुछ होता था और उस का शोध होता था; अब तथ्य ही तथ्य है, सत्य केवल तथ्य का वह रूप है जिसे आज हम देखते या जानते या भाँपते हैं—यानी तथ्य—हमारी कल्पना या हमारा पूर्वग्रह.....सत्य अगर पूर्वग्रह-युक्त तथ्य है, तो रिपोर्ताज श्रेष्ठ साहित्य है, सीधी बात है.....कैसी उथल-पुथल है : जो कुछ था, जैसे उसके नीचे से धरती खिसकी जा रही है : हमारे इस बेपेंदी के जगत् को देख कर एक बार अट्टहास करने को जी होता है—हा-हा-हा-हा !"

गौरा ने पहले उत्तेजित हो कर उत्तर लिखना चाहा, थोड़ा-सा लिखा था फिर फाड़ दिया। क्या उत्तर हो सकता है इस का ?

भुवन को उसने लिखा :

भुवन दा,

आप के पत्र कभी-कभी आते हैं, पर जब भी आते हैं, तो मैं अपने को आप के समानान्तर चलता पाती हूँ। इस पत्र में जो व्यथा है उसे मैं ठीक-ठीक पकड़ सकती हूँ यह कैसे कहूँ—मैं बहुत छोटी और क्षुद्र हूँ—पर मैं चाहती हूँ कि आप के साथ-साथ चल सकूँ। 'मानव की स्वाधीनता और प्रतिष्ठा' का मूल्य कुछ-कुछ मैंने भी समझा है आप की सीख से, मेरा क्षेत्र (यद्यपि उसे 'मेरा' कहना कितनी बड़ी स्पर्धा है मेरी !) आप के क्षेत्र से दूर है, पर उस में भी मेरी थोड़ी-सी शक्ति के लिए कुछ करने को है.....इस संकट में हम हार जायेंगे मैं नहीं मानती, और मुझे लगता है कि यह न मानना भी स्वयं एक मोर्चा है क्योंकि मानव-नियति में विश्वास खोना मानव की प्रतिष्ठा की लड़ाई हार जाना है..... भुवन दा, आप बड़े हैं, मैं जैसे राम जी की सेवा में गयी गिलहरी से अधिक कुछ नहीं हूँ; पर आप के आदेश से कुछ भी कर सकूँ तो अपना गौरव मानूँगी....." फिर सहसा विषय बदल कर उसने मैसूर की अपनी संगीत-शिक्षा की कुछ बातें लिखी थीं, और अन्त में लिखा था कि आगामी गर्मियों में वह लौट जायगी। यही उसने कुछ दिन बाद चन्द्रमाधव को भी लिख दिया।

२६ जून १९४० को सवेरे जब गौरा दिल्ली पहुँची, तब रेडियो से घोषणा हो रही थी कि फ्रांस की लड़ाई समाप्त हो गयी; सारा फ्रांस जर्मनी का अधिकृत हो गया। गौरा ने सोचा था कि वह दिल्ली पहुँचते ही भुवन को सूचना देगी कि वह वहाँ है और भुवन आ कर मिल जावे; पर आने के बाद वह पत्र नहीं लिख सकी। उस के अनेक कारण हुए; यह दूसरी बात है कि भुवन ने न पत्र लिखने की उस की इच्छा जानी, न पत्र न लिखने के कारण ।

चन्द्रमाधव को उसने लिखा :

प्रिय श्री चन्द्रमाधव,

आप के दोनों पत्र मिल गये। भुवन दा के जो समाचार आप ने दिये, उनके लिए आभारी हूँ। आप ने मुझे उन्हें पत्र लिखने को कहा है, पर मेरे पास अपनी ओर से अभी कुछ लिखने को नहीं है और आप ने जो बातें लिखी हैं, उन के बारे में कुछ कहने का अधिकार अगर भुवन दा समझेंगे तो स्वयं मुझे लिख ही देंगे। तब तक मैं इस के सिवा क्या समझ सकती हूँ कि उन के जीवन में हस्तक्षेप करने का मेरा कोई अधिकार नहीं है? वह बड़े हैं, और मेरे श्रद्धेय हैं, इतना मेरे लिए काफ़ी है।

आप शीघ्र यहाँ आने वाले हैं, आइये। मैं अभी यहीं हूँ, कुछ दिन तो रहूँगी ही। काम की तलाश करूँगी ।

आपकी

गौरा

पत्र भेज कर वह फिर एकान्त में बैठ कर चन्द्र के दोनों पत्र उलट-पलट कर देख गयी: एक-आध स्थल पर उसने कोई वाक्य पढ़ा पर वैसे लगातार पढ़ नहीं सकी; अक्षर उसकी आँखों के आगे तैर गये। उसने पत्र हटा दिये और संगीत की एक कापी उठा कर जल्दी-जल्दी उलट कर एक जगह से खोली, उस के पन्ने पर अपने हाथ की लिखावट पर आँखें जमा दीं। लेकिन उस की अपनी लिखाई भी तैर गयी : सहसा दो बड़ी-बड़ी बूँदें उस पर पड़ीं और लिखाई फैल गयी। गौरा ने आँचल से उसे पोंछा, पर उस से फैली हुई स्याही का एक लम्बा धब्बा कागज़ पर बन गया। सहसा गौरा बिल्कुल अवश हो गयी और कापी पर बाँहें और सिर टेक कर फफक कर रो उठी।

अन्तराल

रेखा द्वारा चन्द्रमाधव को :

प्रिय चन्द्र,

तुम्हारा पत्र मिला है। सोचती तो हूँ कि चलो, हो ही आऊँ कुछ दिन पहाड़ पर, मगर कुछ निश्चय नहीं कर पाती हूँ। यों अभी सोचने और निश्चय करने के लिए काफ़ी समय भी तो है।

पर तुम्हारे मित्र को मैं क्यों लिखूं ? और मेरी बात का उन पर क्या असर होगा ? उन की बातचीत और सम्पर्क से मैं बहुत प्रभावित हुई हूँ निस्सन्देह, और लखनऊ से प्रतापगढ़ तक की यात्रा तो एक 'रेवेलेशन' ही था मानो—तुम जानते हो, रेलगाड़ी में बिलकुल अजनबी से कभी-कभी ऐसा निकट सम्पर्क हो जाता है जिसे साधारण सामाजिक जीवन में प्राप्त करते बरसों भी लग सकते हैं; समाज में आदमी अपने सब छद्म, कवच, अस्त्र-शस्त्र जो धारण किये रहता है और सब ओर से चौकस रहता है, रेल में वह उन्हें उतार कर सहज स्वाभाविक मानव प्राणी हो जाता है . . . लेकिन यह मैं अपनी बात कहती हूँ; डा० भुवन स्वयं असम्पृक्त और दूर हैं और वह जो तय करेंगे अपने मन से ठीक-बेठीक और सुविधा विचार कर ही करेंगे। फिर भी, तुम ने कहा है, इसलिए यह पत्र साथ में है, तुम्हीं अपने पत्र के साथ उन्हें भेज देना !

इस बार लखनऊ का प्रवास सुखद रहा। इसके लिए तुम्हारी बहुत कृतज्ञ हूँ। सच-मुच, चन्द्र, मेरे लिए तुम जो कुछ करते रहे हो, जब सोचती हूँ तो गड़ जाती हूँ—कितने अपात्र को तुमने अपनी करुणा दी है। यों मैं तुम से बड़ी हूँ, पर . . . लेकिन जो नहीं कह सकूंगी, उसे कहने का यत्न नहीं करूँगी। पर मैं सच तुम्हारी ऋणी हूं।

आशा है तुम प्रसन्न हो, और यथावत् काफ़ी हाउस जाते हो। दो-एक प्याले काफ़ी के मेरी ओर से भी पी लेना—पर काफ़ी अधिक मत पिया करो !

तुम्हारी
रेखा

इस के साथ का पत्र, रेखा द्वारा भुवन के नाम :

प्रिय भुवन जी,

यह पत्र लिख तो रही हूँ चन्द्र के आग्रह से, पर इससे आपको एक बार फिर सच्चे

मन से धन्यवाद देने का जो अवसर मिला है उस का अभिनन्दन करती हूँ। आप का परिचय मेरे इधर के धुँधले वर्षों में एक प्रखर ज्योति-किरण सा है; मैं तो किसी हद तक कर्मवादी हूँ और सोचती हूँ कि मेरा इस बार का लखनऊ जाना और आप से भेंट होना और आप के साथ प्रतापगढ़ तक लौटना 'लिखा हुआ' था। यों तो मानव-जीवन एक अकारण, अनिर्दिष्ट, आकारहीन गतिमयता-सा लगता है; पर मेरा ख़याल है, बीच-बीच में विधि मानवों के जीवन में थोड़ा-सा हस्तक्षेप ज़रूर करती है—एक-एक गोट को उठा कर एक-एक दिशा दे देती है . . . इस सब को वैज्ञानिक थ्योरी मान कर इस का खंडन-मंडन न करें—मैं अपनी भावना की बात कहती हूँ।

चन्द्र का पहाड़ चलने का आग्रह है। मैंने अभी कुछ निश्चय नहीं किया; मेरी कठिनाइयाँ तो आप देखेंगे ही। चन्द्र का विचार था कि आप भी चलें, क्या ऐसा हो सकेगा? बल्कि आप भी चलें, और अपने परिचित और किसी को भी साथ लें—पुरुष, स्त्री, परिवार, जो आप चाहें और जिनका साथ आप को प्रीतिकर रहे। 'चलें' तो मैं कह गयी, पर अपने जाने का निश्चय तभी करूँगी जब आप का पक्का पता आ जाय।

मेरा पता ऊपर दिया है। आप उत्तर चाहें मुझे दें, चाहे चन्द्रमाधव को ही सीधे दे दें।

विनीत
रेखा

(यह पत्र चन्द्रमाधव के पत्र के साथ भुवन को मिला तो उसके हाशिये पर जगह-जगह चन्द्र के नोट थे। 'ज्योति-किरण' वाली बात के बराबर लिखा था : "मेरी बधाई स्वीकार करो, दोस्त!" 'विधि के हस्तक्षेप' वाली के बराबर लिखा था : "अब निस्तार नहीं है—विधि ने जो दिशा दे दी वह तो पकड़नी ही होगी!" अन्त में लिखा था : "न, तुम उत्तर सीधे ही देना—तुम्हारी गति उसी दिशा में है।")

भुवन द्वारा रेखा को :

प्रिय रेखा जी,

आप के पत्र के लिए कृतज्ञ हूँ, यद्यपि उस से साथ ही अपनी अकिंचनता का बोध बड़े ज़ोर से हो आया। आप अगर कर्मवादी हैं तो धन्यवाद देने का प्रश्न यों भी नहीं उठना चाहिए; फिर मैं तो किसी तरह अधिकारी नहीं हूँ। बल्कि मुझ से कूप-मंडक को जब-तब कोई बाहर का प्रकाश दिखा दे, तो मुझे कृतज्ञ होना चाहिए—भले ही उस प्रकाश से चौंध भी लगे!

पहाड़ की बात चन्द्र ने भी लिखी है। निमन्त्रण के लिए मैं आप दोनों का आभारी हूँ। और जा सकता तो मुझे बड़ी प्रसन्नता होती; पर अभी कुछ ठीक नहीं कह सकता।

इस की बहुत काफ़ी सम्भावना है कि ग्रीष्मावकाश में मुझे एक वैज्ञानिक मंडल के साथ, या उस की ओर से कहीं जाना पड़े। बहुत सम्भव है कि पहाड़ ही जाना पड़े, क्योंकि कॉस्मिक रश्मियों के सम्बन्ध का काम है और उस के लिए मापक यन्त्रों को पहाड़ी ऊँचाइयों पर या जल की गहराई में ले जाना होगा। यदि ऐसा हुआ, तो सम्भव है, कुछ दिन के लिए मैं कहीं पहाड़ पर आप लोगों को मिल जाऊँ। नहीं तो फिर किसी सुअवसर की प्रतीक्षा करनी होगी। पर कुलू कदाचित् न हो सके—उधर जोजी-ला पर एक दूसरा दल जायगा यह निश्चित है। मैं या भूमध्य रेखा की ओर लंका में कहीं जाऊँगा या किसी निर्जन पहाड़ी झील पर—शायद कश्मीर में। कुछ निश्चय होते ही सूचित करूँगा।

आशा है आप प्रसन्न हैं।

आप का
भुवन

भुवन द्वारा चन्द्रमाधव को :

प्रिय चन्द्र,

तुम्हारा पत्र और उस के साथ रेखा देवी का पत्र और उस पर तुम्हारी बदतमीज़ियाँ सब मिलीं। रेखा जी को मैंने उत्तर तभी दे दिया था। लिख दिया था कि मेरे जा सकने का कोई ठीक नहीं है, क्योंकि मैं शायद काम से कहीं जाऊँ। तुम्हें चिट्ठी लिखने में इसी लिए देर की कि कुछ पक्का पता लग जाय। अब यह तय है कि मैं कश्मीर जाऊँगा; पहलगाँव से ऊपर तुलियन झील है, वहाँ पर। मैं कॉस्मिक रेज़ पर कुछ काम करता रहा हूँ, तुम जानते हो, उसी सिलसिले में कुछ नये मेज़रमेंट लेने होंगे अन्यत्र लिये गये मेज़रमेंट की चेकिंग के लिए। एक टोली रोहतंग के पार जोज़ी-ला जा रही है ऊँचाइयों पर माप लेने के लिए; मैं तुलियन झील में पानी की गहराई में माप लूँगा।

इस लिए कुलू का तो कोई सवाल नहीं है। अधिक-से-अधिक एक बात हो सकती है। अगर तुम लोग कश्मीर जाओ, तो मैं चार-छः दिन शायद कहीं मिल सकता हूँ। यहाँ से कुछ यन्त्र वग़ैरह साथ ले कर चलूँगा; दिल्ली से उन्हें बुक कर देना होगा और उन के पहुंचने में कुछ दिन लगेंगे ही। यह समय या तो दिल्ली में बिता सकता हूँ, या फिर आगे कहीं जा सकता हूँ। तुम लोग जैसा प्रोग्राम बनाओगे, मुझे सूचना देना।

रेखा जी को अलग पत्र नहीं लिख रहा हूँ। मैंने कहा तो था कि पक्का होते ही सूचना दूंगा, पर तुम्हीं लिख देना; फिर जैसा तय होगा मुझे बता देना।

और क्या हाल-चाल है? लखनऊ अभी क़ायम है या कि तुमने उलट दिया अपनी अख़बारनवीसी से?

भुवन द्वारा गौरा को :

प्रिय गौरा,

यह विना तुम्हारी ओर से प्रेरणा या 'कोंच' के लिखा गया पत्र पाकर तुम्हें अचम्भा होगा। होगा न ? पर कोई कोयला इतना काला नहीं होता कि सुलग कर राख न हो सके ! मुझे भी दैवी अनुकम्पा कभी छू जाती है और नेक काम कर बैठता हूँ।

ग्रीष्मावकाश में, शायद, तुम से भेंट न हो सके। मैं काम से कश्मीर जा रहा हूँ। कॉस्मिक रश्मियों की तलाश में। कभी सोचता हूँ, इन रश्मियों को हम ठीक समझ सकें; विश्व में विखरी हुई इस मुक्त शक्ति को काम में ला सकें, तो मानव का कितना बड़ा कल्याण उसके द्वारा हो सकेगा---सच ही 'शिव' सर्वत्र फैला हुआ, घटघटव्यापी और अन्तर्यामी है, उसे पहचान सकने, उससे सम्पृक्त हो सकने की ही बात है.....फिर ध्यान आता है, आज जो इतनी तत्परता कॉस्मिक रश्मियों की खोज में दिखायी जा रही है, वह क्या उनकी कल्याणकारी सम्भावनाओं के लिए ? या कि ध्वंस के रथ-चक्र में एक और अरा लगा देने के लिए, जिस से उस की गति और तीव्र हो सके ? लेकिन उस डर से विज्ञान को रुकना नहीं होगा : वैज्ञानिक को तथ्य की शोध भी करनी होगी और विवेक को भी जगाना होगा....

कुछ दिन पहले लखनऊ गया था। चन्द्रमाधव अच्छी तरह है; काफ़ी और शहर का स्कैंडल---राजनैतिक-सामाजिक---उस का मुख्य खाद्य है। और वह इस पर पनप भी रहा है। उस के यहाँ एक और रिमार्केबल व्यक्ति से परिचय हुआ---एक श्रीमती रेखा देवी से। तुम उन्हें देखती तो अवश्य प्रभावित होती---एक स्वाधीन व्यक्ति जिसका व्यक्तित्व प्रतिभा के सहज तेज से नहीं, दुःख की आँच से निखरा है। दुःख तोड़ता भी है पर जब नहीं तोड़ता या तोड़ पाता, तब व्यक्ति को मुक्त करता है। ऐसा ही कुछ मुझे उनमें लगा। हम लोगों की कई तरह की बहस हुई---सत्य पर, मानवता पर, काफ़ी पीने पर ! एक गाना भी उनसे सुना---बँगला का---गला बहुत अच्छा है पर गाने की बात पर न जाने किस रागात्मक गाँठ का बोझ है। जो अच्छा गा सकता है, वह क्यों नहीं गाते समय सब राग-विराग से मुक्त हो ? संगीत को तो गायक को ही नहीं, श्रोता को भी राग-मुक्त कर देना चाहिए। परिणाम यही निकलता है कि संगीत से उन का कलाकार का सम्बन्ध नहीं है, भावुक का है। पर तर्कवाद को यहाँ तक क्यों ले जाया जाय ? उन की आवाज़ बहुत अच्छी थी, और उस में 'सोज़' था।

तुम क्या कर रही हो---कब इधर आती हो ? कश्मीर से लौट कर तो शायद भेंट होगी ही। आगे क्या करने का विचार है ? लिखना ! और क्या जाने, दैव-कृपा फिर मुझे छू जाय और मैं फिर पत्र लिख दूँ।

तुम्हारा स्नेही

भुवन

चन्द्र द्वारा रेखा को :

प्रिय रेखा जी,

भुवन का पत्र आया है। कुलू तो वह नहीं जा सकेगा—कश्मीर जा रहा है कुछ रिसर्च के सिलसिले में—पर उसने लिखा है कि अगर हम लोग कश्मीर में कहीं मिल सकें तो वह कुछ दिन हमारे साथ रहना चाहेगा। क्यों न वैसा ही प्रोग्राम बनाया जाय? कश्मीर चलें; वहीं भुवन साथ हो लेगा और वहाँ से फिर उसे आगे जहाँ जाना होगा चला जायगा। आप चाहे वहीं रह जाइयेगा चाहे लौट आइयेगा। यह भी हो सकता है कि हम सब दिल्ली मिलें और वहीं से साथ चलें। मैंने छुट्टी ले ली है, अब आप अगर न चलेंगी तो मुझे बहुत-बहुत सख्त सदमा पहुँचेगा।

मेरे ख़याल में सब से अच्छा होगा कि हम लोग मिल कर कुछ पक्का प्रोग्राम बना लें, और भुवन को सूचना दे दें। उसने भी यही लिखा है। आप एक-आध दिन फिर लखनऊ आ जाइये न—या मुझे लिखें, मैं प्रतापगढ़ आ जाऊँ? दो घंटे का तो रास्ता है।

प्रतीक्षा में,

आप का

चन्द्र

पुनः चन्द्र द्वारा रेखा को :

रेखा,

तुम (हाँ, मैं जानता हूँ तुम इस सम्बोधन से चौंकोगी; यद्यपि तुम मुझे तुम कह सकती हो, पचासों औरत-आदमी एक दूसरे को तुम कहते हैं और कोई नहीं चौंकता; पर तुम्हारा चौंकना ठीक भी है क्योंकि मैं हज़ारों की तरह तुम्हें तुम नहीं कह रहा हूँ, वैसे कह रहा हूँ जैसे एक एक को कहता है) तुम यहाँ आओगी, दिन-भर के लिए और रात की गाड़ी से वापस चली जाओगी। ठीक है, इतना ही सही। यह भी हो सकता है कि इतना भी तुम इस लिए कर रही हो कि भुवन के पास जाने की बात है, नहीं तो न आतीं। वह भी सही। यह होता ही है कि स्त्रियाँ जहाँ उदासीनता देखती हैं, वहाँ आकृष्ट होती हैं। पर रेखा, तुम नहीं जानतीं कि मैंने कितनी बार तुम्हें बुलाना चाहा है, 'तुम' कह कर ही नहीं, 'तू' कह कर—कुछ न कह कर केवल आँखों से, मन से, हृदय की धड़कन से, अपने समूचे अस्तित्व से! तुम अगर डेस्टिनी को मानती हो तो कहूँ कि जब से तुम्हें देखा है; तब से यह जानता रहा हूँ कि डेस्टिनी ने मुझे तुम्हारे साथ बाँधा है, और मैं चाहूँ न चाहूँ इसके सिवाय कोई उपाय नहीं है कि मैं तुम्हारी ओर बढ़ता जाऊँ, तुम दूर जाओ तो तुम्हारे पीछे जाऊँ पृथ्वी के परले छोर तक भी! और आज तीन वर्षों से यह बात मैं तुम से कहना चाहता हूँ, एक-आध दफ़े मैंने ठान कर प्रयत्न भी किया है पर तुम टाल गयी हो। पर आज मैंने निश्चय किया है कि मैं कहूँगा ही, किसी तरह नहीं रुकूँगा।

उस दिन जब मैंने अपने जीवन की, अपने विवाह की कहानी तुम्हें सुनायी थी, तब तुमने पूछा था कि यह सब क्यों मैं तुम्हें बता रहा हूँ। उस दिन भी मैंने चाहा था कि पूरी बात तुम से कह दूँ। फिर बड़े दिनों में भी—पर तब भी तुम और-और बातें करके टाल गयी थीं। पिछली बार भुवन के कारण कोई मौका ही नहीं मिला। पर एक तरह से मैं उससे खुश ही हूँ। क्योंकि उस बार मुझे और भी स्पष्ट दीख गया कि तुम्हारे बिना मेरी गति नहीं है। यह भी तब मैंने अनुभव किया—तुम चाहे इसे न मानो—कि तुम्हारे अधूरेपन को मैं ही पूरा कर सकता हूँ, मैं ही, और कोई नहीं, कोई नहीं! तुम अधूरेपन से भी इनकार करोगी, तुम भविष्य से भी इनकार करती हो—तुमने अपने को बचाये रखने के लिए बहुत-सी बोगस थ्योरियाँ गढ़ रखी हैं जिन्हें तुम भी नहीं मानती हो, मैं जानता हूँ! और भुवन से तुम्हारे व्यवहार में यह मुझे स्पष्ट दीखा कि तुम्हारी सब थ्योरियाँ केवल एक रक्षा कवच हैं, तावीज की तरह तुम ने उन्हें बाँध रखा है क्योंकि तुम्हारी सारी प्रवृत्तियाँ उनके विरुद्ध हैं और तुम स्वयं अपनी प्रवृत्तियों से डरती हो। क्यों डरती हो? जो सहज प्रवृत्तियाँ हैं; वे कल्याणकारी हैं। और तुम्हारी प्रवृत्तियाँ और मेरी प्रवृत्तियाँ समानान्तर हैं, रेखा! भुवन दूसरी दुनिया का आदमी है। हो सकता है कि मुझ से ऊँचा, अच्छी दुनिया का ही हो, पर वह दूसरी दुनिया है, दूसरा स्तर है, और वह स्तर हमारे-तुम्हारे स्तर को कहीं नहीं काटता। क्यों तुम और अपनी प्रतारणा करती हो—क्या तुम्हारे जीवन में पहले ही यथेष्ट प्रतारणा नहीं रही?

रेखा, तुम बार-बार कह देती हो कि तुम मुझ से बड़ी हो, पर यह भी एक कवच है तुम्हारा। उम्र में भी तुम मुझ से दो-तीन बरस छोटी तो हो ही; वैसे भी किस बात में बड़ी हो? यों मैं तुम्हारा सम्मान करता हूँ, सदा करूँगा, तुम्हारे पैर चूमूँगा, वह बात दूसरी है; पर कौन-सा अनुभव तुम्हें इतनी दूर ऊपर उठा ले जाता है? मैं बच्चा नहीं हूँ, रेखा, दो बच्चों का पिता हूँ: क्लेश तुम ने भोगा है अवश्य, पर [illegible] अछूता होऊँ यह नहीं है। और विवाह के बाद मैं यूरोप घूमा हूँ—युद्ध के आसन्न सं[illegible] नीति-हीन प्रतिमान-हीन यूरोप—और उस में जो अनुभव मैंने पाये हैं वे—क्ष[illegible] विवा[illegible] और एक विच्छेद से कहीं अधिक तीखे, कटु और पका देने वाले हैं[illegible] फिर मैं गृहस्थी में खप न सका; घर गया, कुछ रहा; हाँ, पत्नी के [illegible] से एक बच्चा भी पैदा किया; पर इन सब अनुभवों ने उस गर्म क[illegible] उस तेल को और तचाया ही जिस में जल कर मैं आज वह बना हूँ [illegible] कहा था कि तुम्हारे आसपास दुर्भाग्य का एक मंडल है, पर मैं देख[illegible] करता हूँ कि तुम मेरी आत्मा के घावों की मरहम हो, तुम्हारा सा[illegible] —यदि तुम वह मुझे दे सको तो—तुम्हारा प्यार मेरे लिए ज[illegible] रहा हूँ, जीवन से मैंने बहुत माँगा है, छोटी चीज कभी नहीं मा[illegible] आया हूँ, मैं सच कहता हूँ कि इस से आगे मेरी और कोई माँग न[illegible]

सारी चाहनाओं, कल्पनाओं, वासनाओं, आकांक्षाओं की अन्तिम सीमा है, मेरे अरमानों की इति, मेरी थकी प्यासी आत्मा की अन्तिम मंजिल। रेखा, तुम में असीम करुणा है—तुम तत्काल प्यार नहीं दे सकतीं तो करुणा ही दो, मुक्त करुणा, फिर उसी में से प्यार उपजेगा।

मैं लालची हूँ, मैं स्वार्थी भी हूँ। पर इतना स्वार्थी नहीं, रेखा, कि इस बात को मैंने तुम्हारी ओर से न सोचा हो। तुम अकेली हो, मुक्त हो, नौकरियाँ करती हो। पर कहाँ तक? किस लिए? मुक्ति आज नारी चाहती है, चलो ठीक है, यद्यपि आज मुक्त कोई नहीं है और है तो इस महायुद्ध के बाद शायद वह भी न रहेगा—पर नौकरी तो कोई नहीं चाहता? मुक्ति के लिए नौकरी, नौकरी के लिए मुक्ति, दोहरा धोखा है। सेक्योरिटी हर कोई चाहता है, और उसी में मुक्ति है। पुरुष के लिए भी, और स्त्री के लिए और भी अधिक।

इन बातों की यहाँ क्या रेलेवेंस है? बताता हूँ। हेमेन्द्र (हम दोनों के बीच कभी उसका नाम नहीं लिया गया है, आज ले रहा हूँ, लाचारी है) मलय में जिसके साथ रहता है उसके या और किसी के साथ शीघ्र ही शादी करना चाहेगा—या न चाह कर भी करेगा क्योंकि इस के बग़ैर उसका वहाँ अधिक दिन रहना सम्भव नहीं होगा—जंग दोनों को अलग कर देगा और हेमेन्द्र को यहाँ ला फेंकेगा या जेल में डाल देगा। और इस के लिए वह तुम्हें डाइवोर्स करेगा ही। उस के लिए सब से आसान तरीका यह होगा कि धर्म-परिवर्तन कर के डाइवोर्स माँगे—तुम न धर्म-परिवर्तन करोगी, न उस के पास जाओगी, बस। तुम डाइवोर्स माँगती तो वह न देता—और शादी के लिए माँगती तो और भी नहीं, तुम्हें वह गुलाम रख कर सताना ही चाहता—पर अपनी सुविधा के लिए वह सब करेगा।

और मैं? तुम्हारा सिविल विवाह था, तुम्हारी बात और है। मेरी स्थिति दूसरी है। पर मैं अपने विवाह को विवाह कभी नहीं मान सका हूँ—ऐसा विवाह सन्तान को जायज़ करने की रस्म से अधिक कुछ नहीं है, न हो सकता है। मैं अलग हूँ, अपने को अलग और मुक्त मानता हूँ, और मेरा परिवार भी मुझसे न कुछ चाहता है, न कुछ अपेक्षा रखता है सिवाय खर्च के जो मैं भेजता हूँ और भेजता रहूँगा। सच रेखा, मुझे कभी उस बेचारी स्त्री पर बड़ी दया आती है। बल्कि उसका किसी से प्रेम हो, वह किसी से शादी करना चाहे, तो मैं कभी बाधा न दूँ बल्कि भरसक मदद करूँ—खुद जाकर कन्या-दान कर आऊँ—जो कुमारी नहीं है उसे कन्या कहना असम्मत तो नहीं है न?

रेखा भविष्य है, होता है, तुम मानो! पर तुम्हारे बिना मेरा भविष्य नहीं है, यह मैं क्षण-क्षण अनुभव करता हूँ। मैं चाहता हूँ, किसी तरह अपनी सुलगती भावना की तपी हुई सलाख से यह बात तुम्हारी चेतना पर दाग दूँ, कि तुम्हारी और मेरी गति, हमारी नियति एक है, कि तुम मेरी हो, रेखा, मेरी, मेरी जान, आत्मा, मेरी डेस्टिनी, मेरा सब कुछ—कि मुझसे मिले बिना तुम नहीं रह सकोगी, नहीं रह सकोगी; तुम्हें मेरे पास आना

उस दिन जब मैंने अपने जीवन की, अपने विवाह की कहानी तुम्हें सुनायी थी, तब तुमने पूछा था कि यह सब क्यों मैं तुम्हें बता रहा हूँ। उस दिन भी मैंने चाहा था कि पूरी बात तुम से कह दूं। फिर बड़े दिनों में भी—पर तब भी तुम और-और बातें करके टाल गयी थीं। पिछली बार भुवन के कारण कोई मौका ही नहीं मिला। पर एक तरह से मैं उससे खुश ही हूँ। क्योंकि उस बार मुझे और भी स्पष्ट दीख गया कि तुम्हारे बिना मेरी गति नहीं है। यह भी तब मैंने अनुभव किया—तुम चाहे इसे न मानो—कि तुम्हारे अधूरेपन को मैं ही पूरा कर सकता हूँ, मैं ही, और कोई नहीं, कोई नहीं! तुम अधूरेपन से भी इनकार करोगी, तुम भविष्य से भी इनकार करती हो—तुमने अपने को बचाये रखने के लिए बहुत-सी बोगस थ्योरियाँ गढ़ रखी हैं जिन्हें तुम भी नहीं मानती हो, मैं जानता हूँ! और भुवन से तुम्हारे व्यवहार में यह मुझे स्पष्ट दीखा कि तुम्हारी सब थ्योरियाँ केवल एक रक्षा कवच है, तावीज की तरह तुम ने उन्हें बाँध रखा है क्योंकि तुम्हारी सारी प्रवृत्तियाँ उनके विरुद्ध हैं और तुम स्वयं अपनी प्रवृत्तियों से डरती हो। क्यों डरती हो? जो सहज प्रवृत्तियाँ हैं; वे कल्याणकारी हैं। और तुम्हारी प्रवृत्तियाँ और मेरी प्रवृत्तियाँ समानान्तर हैं, रेखा! भुवन दूसरी दुनिया का आदमी है। हो सकता है कि मुझ से ऊँचा, अच्छी दुनिया का ही हो, पर वह दूसरी दुनिया है, दूसरा स्तर है, और वह स्तर हमारे-तुम्हारे स्तर को कहीं नहीं काटता। क्यों तुम और अपनी प्रतारणा करती हो—क्या तुम्हारे जीवन में पहले ही यथेष्ट प्रतारणा नहीं रही?

रेखा, तुम बार-बार कह देती हो कि तुम मुझ से बड़ी हो, पर यह भी एक कवच है तुम्हारा। उम्र में भी तुम मुझ से दो-तीन बरस छोटी तो हो ही; वैसे भी किस बात में बड़ी हो? यों मैं तुम्हारा सम्मान करता हूँ, सदा करूँगा, तुम्हारे पैर चूमूँगा; वह बात दूसरी है; पर कौन-सा अनुभव तुम्हें इतनी दूर ऊपर उठा ले जाता है? मैं बच्चा नहीं हूँ, रेखा, दो बच्चों का पिता हूँ: क्लेश तुम ने भोगा है अवश्य, पर मैं उससे अछूता होऊँ यह नहीं है। और विवाह के बाद मैं यूरोप घूमा हूँ—युद्ध के आसन्न संकट से निराश, नीति-हीन प्रतिमान-हीन यूरोप—और उस में जो अनुभव मैंने पाये हैं वे—क्षमा करना—एक विवाह और एक विच्छेद से कहीं अधिक तीखे, कटु और पका देने वाले हैं.... तभी तो, लौट कर फिर मैं गृहस्थी में खप न सका; घर गया, कुछ रहा; हाँ, पत्नी के साथ सोया भी और उस से एक बच्चा भी पैदा किया; पर इन सब अनुभवों ने उस गर्म कड़ाहे को और तपाया ही, उस तेल को और तचाया ही जिस में जल कर मैं आज वह बना हूँ जो मैं हूँ। तुम ने एक बार कहा था कि तुम्हारे आसपास दुर्भाग्य का एक मंडल है, पर मैं देखता हूँ, जानता हूँ, अनुभव करता हूँ कि तुम मेरी आत्मा के घावों की मरहम हो, तुम्हारा साया मेरे लिए राहत है, और—यदि तुम वह मुझे दे सको तो—तुम्हारा प्यार मेरे लिए जन्नत है. . . . मैं बड़ा लालची रहा हूँ, जीवन से मैंने बहुत माँगा है, छोटी चीज कभी नहीं माँगी, बड़ी से बड़ी माँगता आया हूँ, मैं सच कहता हूँ कि इस से आगे मेरी और कोई माँग नहीं है; न होगी—यह मेरी

सारी चाहनाओं, कल्पनाओं, वासनाओं, आकांक्षाओं की अन्तिम सीमा है, मेरे अरमानों की इति, मेरी थकी प्यासी आत्मा की अन्तिम मंजिल। रेखा, तुम में असीम करुणा है—तुम तत्काल प्यार नहीं दे सकतीं तो करुणा ही दो, मुक्त करुणा, फिर उसी में से प्यार उपजेगा।

मैं लालची हूँ, मैं स्वार्थी भी हूँ। पर इतना स्वार्थी नहीं, रेखा, कि इस बात को मैंने तुम्हारी ओर से न सोचा हो। तुम अकेली हो, मुक्त हो, नौकरियाँ करती हो। पर कहाँ तक? किस लिए? मुक्ति आज नारी चाहती है, चलो ठीक है, यद्यपि आज मुक्त कोई नहीं है और है तो इस महायुद्ध के बाद शायद वह भी न रहेगा—पर नौकरी तो कोई नहीं चाहता? मुक्ति के लिए नौकरी, नौकरी के लिए मुक्ति, दोहरा धोखा है। सेक्योरिटी हर कोई चाहता है, और उसी में मुक्ति है। पुरुष के लिए भी, और स्त्री के लिए और भी अधिक।

इन बातों की यहाँ क्या रेलेवेंस है? बताता हूँ। हेमेन्द्र (हम दोनों के बीच कभी उसका नाम नहीं लिया गया है, आज ले रहा हूँ, लाचारी है) मलय में जिसके साथ रहता है उसके या और किसी के साथ शीघ्र ही शादी करना चाहेगा—या न चाह कर भी करेगा क्योंकि इस के बग़ैर उसका वहाँ अधिक दिन रहना सम्भव नहीं होगा—जंग दोनों को अलग कर देगा और हेमेन्द्र को यहाँ ला फेंकेगा या जेल में डाल देगा। और इस के लिए वह तुम्हें डाइवोर्स करेगा ही। उस के लिए सब से आसान तरीका यह होगा कि धर्म-परिवर्तन कर के डाइवोर्स माँगे—तुम न धर्म-परिवर्तन करोगी, न उस के पास जाओगी, बस। तुम डाइवोर्स माँगती तो वह न देता—और शादी के लिए माँगती तो और भी नहीं, तुम्हें वह गुलाम रख कर सताना ही चाहता—पर अपनी सुविधा के लिए वह सब करेगा।

और मैं? तुम्हारा सिविल विवाह था, तुम्हारी बात और है। मेरी स्थिति [illegible] है। पर मैं अपने विवाह को विवाह कभी नहीं मान सका हूँ—ऐसा विवाह [illegible] जायज़ करने की रस्म से अधिक कुछ नहीं है, न हो सकता है। मैं अलग [illegible] अलग और मुक्त मानता हूँ, और मेरा परिवार भी मुझसे न कुछ चाह[illegible] अपेक्षा रखता है सिवाय खर्चे के जो मैं भेजता हूँ और भेजता रहूँ[illegible] कभी उस बेचारी स्त्री पर बड़ी दया आती है। बल्कि उसका [illegible] से शादी करना चाहे, तो मैं कभी बाधा न दूं बल्कि भरसक मदद [illegible] दान कर आऊँ—जो कुमारी नहीं है उसे कन्या कहना अस[illegible]

रेखा भविष्य है, होता है, तुम मानो! पर तुम्हारे [illegible] में क्षण-क्षण अनुभव करता हूँ। मैं चाहता हूँ, किसी तरह [illegible] हुई सलाख से यह बात तुम्हारी चेतना पर दाग दूं, कि [illegible] नियति एक है, कि तुम मेरी हो, रेखा, मेरी. मेरी [illegible] कुछ—कि मुझसे मिले बिना तुम नहीं रह सकोगी, [illegible]

ही होगा, मुझसे मिलना ही होगा, एक होना ही होगा।

तुम्हारा अभिन्न और तुम से दूर
च०

पुनश्च :

यह पत्र शायद प्रतापगढ़ भेजना ठीक न होगा। तुम आओगी, तो यहीं तुम्हें दूंगा। तुम दोपहर को पहुँचोगी, स्टेशन से ही सीधे काफ़ी हाउस चलेंगे, वहाँ से पुरानी रेज़िडेंसी; उस के खँडहरों में एकान्त में बैठ कर ही तुमसे वात करूँगा—वहीं यह पत्र तुम्हें दूंगा, वहीं पढ़वाऊँगा.....मैं देखना चाहता हूँ इसे पढ़ते हुए तुम्हारे चेहरे की एक-एक सूक्ष्म-से-सूक्ष्म गति—क्योंकि उस में मेरा भाग्य लिखा होगा..... रेखा, अभी तक मैं भी खँडहर हूँ। तुम भी खँडहर हो; पर वहाँ से हम खँडहर नहीं, एक नयी, सुन्दर, सम्पूर्ण, जगमगाती इमारत निर्माण कर के निकलेंगे ऐसा मेरा मन कहता है....

चन्द्रमाधव द्वारा गौरा को :

प्रिय गौरा जी,

वहुत दिनों से आपने मुझे याद नहीं किया। मैंने पिछले महीने जो पत्र लिखा था, उसकी पहुँच भी आपने न दी। फिर भी संगीत के तरन्नुम में हम वेसुरे लोगों को बिलकुल भूल न गयी होंगी ऐसी आशा करता हूँ।

पर आज कोई बेसुरा तर्क भी मैं छेड़ने नहीं जा रहा हूँ; मैंने निश्चय किया है कि अव अपनी वात नहीं किया करूँगा, हर किसी से उस के प्रिय विषय की चर्चा किया करूँगा। समझ लीजिए कि यही मेरी साधना होगी—देखिए, मैं भी साधना-धर्म क़ो मान गया, और यह आप की व्यक्तिगत विजय है।

भुवन जी यहाँ आये थे, यह मैंने आप को पिछले पत्र में लिखा था। रेखा देवी के विषय में भी लिखा था। वह वास्तव में वड़ी प्रभावशालिनी महिला हैं, नहीं तो भुवन सरीखा आदमी अपनी यात्रा का प्रोग्राम किसी के साथ के लिए वदल दे, यह क्या सम्भव है ?

रेखा जी अभी हाल में फिर यहाँ आयी थीं। इधर भुवन से उन का कुछ पत्र-व्यवहार भी हुआ था; उन्होंने भुवन को पहाड़ चलने के लिए निमन्त्रित किया था। पहले मेरे भी साथ चलने की वात थी, पर अव प्रोग्राम कुछ वदल गया है। भुवन जी रिसर्च के लिए कश्मीर जा रहे हैं न, मैं तो वहाँ न जा सकूँगा, पर रेखा जी कदाचित् कश्मीर ही जायेंगी। इधर वह कोई नौकरी नहीं कर रही हैं, इसीलिए पूरी छुट्टी है।

मैं सोचता हूँ मैं भी जा सकता। डा० भुवन जैसे लगन वाले वैज्ञानिक के साथ पहाड़ में कहीं कुछ दिन रह सकता, तो कुछ सीख ही लेता। वह हैं भौतिक विज्ञान के माहिर, पर और कितना कुछ जानते हैं.....एक मैं हूँ कि स्वयं अपने विषय का ऊपरी ज्ञान रखता हूँ—पर जर्नलिज़्म की यही तो मार है; कहीं गहरे नहीं जाने देता, सव कुछ का ज्ञान होना

चाहिए, पर उथला ज्ञान, कहीं भी गहरे गये कि दूसरे जर्नलिस्ट सन्देह से देखने लगते हैं, यह कौन उज्बक हमारे बीच में आ गया.....

भुवन के गुणों से मैं क्रमशः अधिकाधिक प्रभावित होता जाता हूँ। पर सब से बड़ा गुण उन का यह मानता हूँ कि उन के द्वारा मेरा आप से परिचय हुआ। है स्वार्थ-दृष्टि, पर मेरे लिए तो यही गुण सब से अधिक सुखद सिद्ध हुआ न!

यह पत्र न मालूम आप को समय पर मिलेगा या नहीं, आप कदाचित् दक्षिण से चल देने वाली हों। पर वहाँ न भी मिला तो आशा है रिडायरेक्ट तो हो ही जायगा। दिल्ली पहुँचें तो मुझे सूचित कीजिएगा। मैं कुछ दिन के लिए वहाँ जाने की सोच रहा हूँ। छुट्टी पहाड़ जाने के लिए ली थी, पर भुवन दा का साथ तो हुआ नहीं, अब यह सोचता हूँ कि दिल्ली हो कर मसूरी ही कुछ दिन रह आऊँ। आप का क्या मसूरी जाने का विचार नहीं है! आप के पिताजी तो जायेंगे—बल्कि वहीं होंगे?

आप का स्नेही

चन्द्रमाधव

चन्द्र द्वारा भुवन को :

भाई भुवन,

रेखा जी दो-चार दिन पहले यहाँ आयी थीं। मेरा पहाड़ जाना तो न हो सकेगा। मेरा साथ उन्हें अभीष्ट भी नहीं है। वह तुम्हारे साथ ही जाना चाहती हैं। खुशकिस्मत हो, दोस्त! बुद्धू हो तो क्या हुआ।

कभी जब पहाड़ से उतरोगे, तो मुझे भी याद कर लेना। मैं वही का वही हूँ, चन्द्रमाधव, जर्नलिस्ट, तुम्हारा अनुगत और प्रशंसक, और अब तुम्हारे तेज से अभिभूत।

चन्द्र

रेखा द्वारा भुवन को :

प्रिय भुवन जी,

आप के पिछले पत्र के बाद आशा की थी कि कुछ निश्चय होने पर आप फिर लिखेंगे। आप का कोई पत्र नहीं आया। हाँ, चन्द्रमाधव जी की ओर से सूचना मिली थी कि उनको आप का पत्र आया है, जिस में आप ने कश्मीर की बात लिखी थी। वही [illegible] बताने के लिए उन्होंने मुझे लखनऊ बुलाया भी था, और मैं एक दिन दुपहर को जा कर रात की उसी गाड़ी से लौट आयी थी जिस से हम लोगों ने साथ यात्रा की थी।

भुवन जी, पहाड़ जाने के सारे प्रोग्राम को रद्द समझे। वह प्रोग्राम चन्द्रमाधव जी की प्रेरणा से बना था, उन्हीं के साथ हम लोगों के जाने की बात थी और इसी से [illegible] मैंने भी आप से अनुरोध किया था; पर अब मैं उन के साथ न जा सकूँगी—न अकेले न पार्टी में—इसलिए जाने की बात छोड़ देनी चाहिए। हाँ आप अगर और लोगों के

साथ ले कर जाने वाले हों तो मैं चल सकूँगी और आप का साथ पा कर प्रसन्न हूँगी—हाँ, आप मेरा साथ चाहें तब।

आप को व्यर्थ ही इतना कष्ट देने के लिए क्षमा चाहती हूँ।

आप की
रेखा

(आगे नया पन्ना जोड़ कर :)

भुवन जी, चन्द्रमाधव जी आप के मित्र हैं और उन का आप का परिचय बहुत पुराना है। ऐसे में मैं कोई कटुता लाना नहीं चाहती, और जिस स्थिति में फँस गयी हूँ उस के कारण लज्जा और संकोच के मारे गड़ी जा रही हूँ। फिर भी मैंने जो लिखा कि चन्द्रमाधव जी के साथ कहीं न जा सकूँगी उस के स्पष्टीकरण में कुछ तो कहना ही होगा। चन्द्रमाधव जी ने मुझे लखनऊ बुलाया था, मैं दोपहर को पहुँची तो पहले हम लोग क़ाफ़ी हाउस गये। वहाँ आप के विषय में बातें होती रहीं, मैंने लक्ष्य किया कि उन की बातों में बार-बार एक छिपी ईर्ष्या व्यक्त हो उठती है जिस का कारण न समझ सकी। फिर उन्होंने कहा, "यहाँ से रेज़िडेंसी चला जाय।" बाहर आँधी के आसार थे—आजकल धूल के कैसे झक्कड़ आते हैं, आप तो जानते हैं—मैंने आपत्ति की तो बोले, "रेखा जी, तुम ज़रा-सी आँधी से डरती हो?" वह मुझे सदा आप कहते हैं, आप और तुम की खिचड़ी कुछ अद्भुत लगी पर शायद दिल्ली का मुहावरा है इसलिए मैंने ध्यान न दिया, यह भी न लक्ष्य किया कि उन का स्वर आविष्ट है—बाद में यह भी याद आया।

हम लोग रेज़िडेंसी पहुँचे तो बड़े ज़ोर की आँधी आयी। वह ज़ोर से हँसे और बोले, "ठीक है, बिल्कुल मौजूँ है।" तब मैंने सँभल कर वापस चलने को कहा, पर उन्होंने कहा, "यहाँ तक आयी हो तो मेरी बात सुन कर जाओ।"

भुवनजी, आप समझदार हैं और मैं स्त्री हूँ। पूरी बात कहने की आवश्यकता भी नहीं है और उसमें व्यर्थ सब को ग्लानि ही होगी; आप को इस कीचड़ में खींचना भी न चाहिए। संक्षेप में कहूँ कि चन्द्रमाधव ने अपना प्रेम निवेदन किया—ज़बानी भी और एक लिखा हुआ पत्र दे कर भी। पत्र मैंने वहाँ नहीं पढ़ा, उन की बातों से ही स्तब्ध और अवाक् हो गयी क्योंकि मैं उन्हें अपना हितैषी, मित्र और सहायक मानती थी—उस नाते उन की बहुत कृतज्ञ भी हूँ—यह नहीं जानती थी कि उन के हृदय में कैसे भाव भरे हैं। मैं वहाँ से तत्काल एक शब्द भी कहे बिना लौट आयी; वह वहीं रहे—पीछे मैंने सुना कि रो रहे हैं पर मैं रुकी नहीं—फिर ताँगा पा कर मैं सीधी स्टेशन पहुँची, क़ाफ़ी पीने बैठी तो ध्यान आया कि उन का पत्र मेरे हाथ में है। वह मैंने नहीं पढ़ा। फिर वेटिंग रूम में बैठी रही, रात की गाड़ी से लौट आयी।

प्लेटफ़ार्म पर चन्द्रमाधव जी थे। उन्होंने मुझ से पूछा कि चिट्ठी का उत्तर क्या

उन्हें दूँगी ? मैंने कहा कि अपनी समझ से उत्तर तो मैं दे आयी जब चली आयी। तब उन्होंने अपना पत्र वापस माँगा। मैंने दे दिया।

भुवन जी, मैं बहुत ही लज्जित हूँ सारी घटना से, पर समझ में नहीं आता कि क्यों मेरे साथ ऐसी बात होती है—सिवा इसके कि फिर नियति की बात कहूँ ! मेरे साथ दुर्भाग्य का एक मंडल चलता है—जो छूता नहीं, ग्रसता है.....क्या आप मुझे क्षमा दे सकेंगे ?

रेखा

रेखा द्वारा भुवन के नाम :

प्रिय भुवन जी,

परसों एक पत्र भेज चुकी हूँ। आज फिर कष्ट दे रही हूँ। साथ में चन्द्रमाधव जी का पत्र है जो मुझे अभी इसी डाक से मिला है। पत्र अपनी बात स्वयं कहता है।

आप से अनुरोध करती हूँ कि मेरे कारण आप उन के प्रति अपने मन में मैल न आने दें। मैत्री दुर्लभ चीज़ है, और मेरी लिखी बातों की उन के जीवन में कोई अहमियत होगी ऐसा नहीं है, वह शीघ्र ही भूल जायेंगे। इसी लिए यह भी प्रार्थना करती हूँ कि आप उन्हें न जतावें कि मैंने यह सब आप को लिखा है : मैं नहीं चाहती कि यह जानकर उन्हें और ग्लानि हो और आप के उन के बीच में सदा के लिए ग्लानि की दरार पड़ जाय।

आप की चिट्ठी की बाट देखती रहूँगी। अब बल्कि सोचती हूँ, कुछ दिन आप के निकट इसी लिए रह सकूँ कि जानूँ, आप ने मुझे क्षमा कर दिया है, नहीं तो एक गहरा परिताप मुझे सालता रहेगा।

आप की
रेखा

इस के साथ का पत्र, चन्द्रमाधव की ओर से रेखा को :

रेखा,

मैंने अपनी ही मूर्खता और अपटुता से तुम्हें खो ही दिया, तो अब तुम से यही प्रार्थना करता हूँ कि अब मुझ से कोई सम्पर्क न रखना; मेरा मुँह न देखना, न अपना मुँह मुझे दिखाना। लखनऊ आना बेशक; जहाँ तुम्हारी इच्छा हो आना-जाना, पर कभी मुझ से अचानक मुठभेड़ हो ही जाय तो मुझे पहचानना मत, बुलाना-बोलना मत—कहीं रहो, खुश रहो : पर मेरे जीवन से निकल जाओ, बस !

यही नहीं कि मैं तुम्हें चाहता नहीं, या कि उस पत्र में लिखी बातें सच नहीं हैं। पर—बस ! और कुछ लिखने की सामर्थ्य मुझ में नहीं है।

तुम्हारा अभागा
च०

रेखा

रेखा स्टेशन पर गाड़ी रुकते-न-रुकते उतर पड़ी, पर प्लेटफ़ार्म की पटरी से पैर छूते ही मानो उसके भीतर की स्फूर्ति सुन्न हो गयी; उसने एक बार नज़र उठाकर इधर-उधर देखा भी नहीं कि कोई उसे लेने आया है या नहीं। यन्त्रवत् उस ने सामान उतरवाया, कुली के सिर-कन्धे उठवाया, कुली के प्रश्न 'बाहर, बीबी जी ?' के उत्तर में अस्पष्ट 'हाँ' कहा, और फिर कुली की गति से मन्त्रबद्ध-सी खिची चल पड़ने को थी कि पास ही भुवन के स्वर ने कहा, "नमस्कार, रेखा जी !"

तब वह चौंकी नहीं। एक धुन्ध-सी मानो कट गयी; मानो वह जानती थी कि भुवन आयेगा ही ; वह मुड़ी तो एक खुला आलोक उस के चेहरे पर दमक रहा था : "नमस्कार भुवन जी; मैंने तो समझा कि आप नहीं आयेंगे।"

"आप बड़ी जल्दी उतर पड़ीं—मैं तो डिब्बों की ओर ही देखता रहा। अच्छी तो हैं ? देखने से तो पहले से अच्छी ही मालूम होती हैं—"

रेखा ने किंचित् विनोदी दृष्टि से उसे सिर से पैर तक देख कर कहा, "और आप—पहले से भी अधिक व्यस्त और अन्तर्मुखी—"

"नहीं तो—ये तो मेरी छुट्टियाँ हैं।"

"हाँ, काम से नहीं, काम के लिए ! पर अच्छा है—काम में ही मुक्ति दीख सके, कितना बड़ा सौभाग्य होता है !"

कुली ने पूछा, "जी, चलूँ ?"

"हाँ चलो, बाहर ले चलो," भुवन ने कहा। "चलिए, रेखा जी—"

"हाँ। सुनिए, मैं वाई० डब्ल्यू० में ठहरूँगी—मैंने पहले सूचना दे रखी है। आत्म-निर्भर अर्थात् नौकरी करने वाली स्त्रियाँ वहाँ रह सकती हैं—"

"ठीक है, वहीं सही। मैं तो कालेज में ठहरा हूँ, एक प्रोफेसर के साथ।"

"रहेंगे ?"

"यही चार-छ: दिन रहूँगा। यहाँ से सामान भेज कर फिर कश्मीर जाऊँगा।"

"हाँ—चन्द्रमाधव ने लिखा था—"कह कर रेखा सहसा चुप हो गयी। एक बोझल मौन उन के बीच में आ कर जम गया।

ताँगे पर सवार हो कर रेखा ने फिर पूछा, "भुवन जी, एक स्वार्थ की बात कहूँ ?"

"क्या—"

"मैं दो-चार दिन यहाँ रुक जाऊँ, तो आप अपना कुछ समय मुझे देंगे ? दिल्ली में मेरे परिचित तो बहुत हैं, पर वह खुशी की बात अधिक है या डर की, नहीं जानती !"

रेखा स्टेशन पर गाड़ी रुकते-न-रुकते उतर पड़ी, पर प्लेटफ़ार्म की पटरी से पैर छूते ही मानो उसके भीतर की स्फूर्ति सुन्न हो गयी; उसने एक बार नज़र उठाकर इधर-उधर देखा भी नहीं कि कोई उसे लेने आया है या नहीं। यन्त्रवत् उस ने सामान उतरवाया, कुली के सिर-कन्धे उठवाया, कुली के प्रश्न 'बाहर, बीबी जी?' के उत्तर में अस्पष्ट 'हाँ' कहा, और फिर कुली की गति से मन्त्रबद्ध-सी खिंची चल पड़ने को थी कि पास ही भुवन के स्वर ने कहा, "नमस्कार, रेखा जी!"

तब वह चौंकी नहीं। एक धुन्ध-सी मानो कट गयी; मानो वह जानती थी कि भुवन आयेगा ही; वह मुड़ी तो एक खुला आलोक उस के चेहरे पर दमक रहा था: "नमस्कार भुवन जी; मैंने तो समझा कि आप नहीं आयेंगे।"

"आप बड़ी जल्दी उतर पड़ीं—मैं तो डिब्बों की ओर ही देखता रहा। अच्छी तो हैं? देखने से तो पहले से अच्छी ही मालूम होती हैं—"

रेखा ने किंचित् विनोदी दृष्टि से उसे सिर से पैर तक देख कर कहा, "और आप—पहले से भी अधिक व्यस्त और अन्तर्मुखी—"

"नहीं तो—ये तो मेरी छुट्टियाँ हैं।"

"हाँ, काम से नहीं, काम के लिए! पर अच्छा है—काम में ही मुक्ति दीख सके, कितना बड़ा सौभाग्य होता है!"

कुली ने पूछा, "जी, चलूँ?"

"हाँ चलो, बाहर ले चलो," भुवन ने कहा। "चलिए, रेखा जी—"

"हाँ। सुनिए, मैं वाई० डब्ल्यू० में ठहरूँगी—मैंने पहले सूचना दे रखी है। आत्म-निर्भर अर्थात् नौकरी करने वाली स्त्रियाँ वहाँ रह सकती हैं—"

"ठीक है, वहीं सही। मैं तो कालेज में ठहरा हूँ, एक प्रोफेसर के साथ।"

"रहेंगे?"

"यही चार-छः दिन रहूँगा। यहाँ से सामान भेज कर फिर कश्मीर जाऊँगा।"

"हाँ—चन्द्रमाधव ने लिखा था—" कह कर रेखा सहसा चुप हो गयी। एक बोझल मौन उन के बीच में आ कर जम गया।

ताँगे पर सवार हो कर रेखा ने फिर पूछा, "भुवन जी, एक स्वार्थ की बात कहूँ?"

"क्या—"

"मैं दो-चार दिन यहाँ रुक जाऊँ, तो आप अपना कुछ समय मुझे देंगे? दिल्ली में मेरे परिचित तो बहुत हैं, पर वह खुशी की बात अधिक है या डर की, नहीं जानती!"

"मुझे तो यहाँ कोई काम नहीं है; दो-एक व्यक्तियों से ही मिलता-जुलता हूँ; मेरे पास बहुत समय है।"

"उबाऊँगी नहीं, यह वचन देती हूँ।" रेखा हँस दी। "ऊब आने से पहले ही हट जाऊँगी—मुझे और कुछ तो नहीं आता पर ऊब के पूर्व-लक्षण खूब पहचानती हूँ। कहूँ कि मेरे जीवन का मुख्य पाठ यही रहा है—ऊब की सात सीढ़ियाँ!"

"वह खतरा मुझे नहीं है, मैं ही उबा सकता हूँ; क्योंकि मेरे पास कहने को बहुत कम है; अधिक बात जिस विषय की कर सकता हूँ वह स्वयं उबानेवाला है—विज्ञान!"

"भुवन जी, आप अपने बारे में बात करते हैं—करते रहे हैं?"

"नहीं तो—या बहुत कम। वह भी कोई विषय है?"

"तो ठीक है; कहना चाहिए कि वह नया विषय है—मेरे लिए तो है ही, आपके लिए भी है!" रेखा की आँखें हँसी से चमक उठीं। "और मैं वायदा करती हूँ, इस विषय से नहीं उबूँगी—आप ही जब छोड़ें तो छोड़ें। बल्कि मैं फिर-फिर लौट आऊँ तो आप बुरा तो न मानेंगे?"

भुवन ने थोड़ा-सा सकुचाते हुए, यद्यपि कुछ तोष भी पा कर, कहा, "न—नहीं तो; पर मैं फिर आप को वार्न करता हूँ, वह विषय बड़ा नीरस है, और कहीं पहुँचाता नहीं।"

"मैं तो पहले ही बता चुकी हूँ कि कहीं पहुँचने का लोभ ही मुझे नहीं है—ऐसी यात्रा पर हूँ जो कहीं पहुँचती ही नहीं, अन्तहीन है, यही क्या कहीं पहुँच जाना नहीं है?"

"यह भी एक दृष्टिकोण हो तो सकता है—" कह कर भुवन निरुत्तर-सा कुछ सोचने लग गया।

कश्मीरी गेट में वाई० डब्ल्यू० में समान उतार कर दुमंजिले पर पहुँचाया गया; भुवन को 'लाउंज' में बिठा कर रेखा ने कहा, "आप ज़रा बैठिए, मैं अभी आती हूँ" और सामान के साथ अपने कमरे की ओर चली गयी।

जब तक वह मुँह-हाथ धो कर लौट कर आवे, तब तक मन बहलाने के लिए भुवन कुछ ढूँढ़ने लगा—इस लिए भी कि जब-तब कोई स्त्री आती और लाउंज में उसे देख कर लौट जाती; कोई कौतूहल से उसे घूर कर, कोई सकपका कर—और वह खाली बैठने के संकोच से मुक्त होना चाहता था। पर कुछ भी उसे नहीं मिला। एक ताक में कुछ पत्र रखे हुए थे, उस ने निकाले। 'लेडीज़ होम जर्नल', 'वोग' 'वूमन एंड होम'—कहीं उस का मन रमा नहीं। वह सब पुनः वहीं रखने को था कि ताक के भीतर एक छोटे आकार का पत्र उसे दीखा, उसने खींच कर निकाला: 'मेन ओनली।' उस ने मुस्करा कर उसे वहीं रख कर ऊपर सब दूसरे पत्र लाद दिये।

वह सोचने लगा, पुरुषों के लिए जो पत्र होते हैं, उनका क्षेत्र तो इतना संकुचित नहीं होता—स्त्रियों के पत्र क्यों ऐसे होते हैं? पर पुरुषों के पत्र वास्तव में केवल उनके नहीं होते, सबके होते हैं, और स्त्रियों के केवल 'स्त्रियोपयोगी'... लेकिन क्या स्त्री के लिए बस

यही बातें उपयोगी हैं—'हाउ टु विन ए मैन'—'हाउ टु होल्ड ए मैन'—'फीड द ब्रूट'—'द वे टु ए मैन्स हार्ट—थ्रू हिज़ बेली'—आदमी को फांसो कैसे, वश में कैसे रखो, रिझाओ कैसे—मानो सम्मोहन-वशीकरण के तन्त्र-मन्त्र के युग से हम अभी कुछ भी आगे नहीं गये। और स्वयं स्त्री केवल यह नहीं चाहती, इस का प्रमाण वह नीचे छिपा हुआ 'मेनओनली' है; हो सकता है कि उस में केवल यह कौतूहल हो कि पुरुष क्या पढ़ते हैं, कैसे मज़ाक आपस में या स्त्रियों के बारे में करते हैं—वैसा ही कौतूहल, जैसा बहुत-से पुरुषों को स्त्रियों के बारे में हुआ करता है जिस के कारण वह स्त्रियों के जमाव की बातें किवाड़-दरारों में कान लगा कर सुना करते हैं!

एक काल्पनिक समस्या उस के सामने आयी। अगर ये सब पत्र-पत्रिकाएँ बिछी हों, और कोई देखने वाला न हो तो अकेली स्त्री कौन-सा पत्र उठायेगी? क्या किसी का चेहरा देख कर तय किया जा सकता है? कौतुकवश उसने सोचा, अच्छा, अब जो स्त्री लाउंज में आयेगी उसे देख कर अनुमान लगाऊँगा कि वह 'वोग' पढ़ेगी कि 'लेडीज़ होम' कि 'मेन ओनली'—

धत! पहली स्त्री जो आयी वह रेखा थी। भुवन ने तुरन्त अपना खेल बन्द कर दिया। रेखा ने पूछा, "मैंने बहुत देर कर दी न? आप इतनी देर क्या करते रहे? यहाँ आप के पढ़ने लायक भी तो कुछ नहीं है—"

भुवन ने पूछा, "रेखा जी, ये जो इतने जर्नल यहाँ हैं, इन में आप को कौन-सा पसन्द है?"

"कौन-से? अरे ये! ये तो मैंने कभी देखे नहीं। कभी बुनाई वग़ैरह के डिज़ाइन के लिए कोई देखा हो, पर इन्हें पढ़ूं, ऐसी हालत तो कभी नहीं हुई।"

"यही मैं सोच रहा था—कि इन्हें कौन पढ़ता होगा। और सब के नीचे मैंने देखा, 'मेन ओनली' दबा पड़ा है।"

रेखा हँस पड़ी। "हाँ! वह तो स्वाभाविक है। स्त्रियों की दिलचस्पी किस चीज़ में है? इन 'मेन ओनली'। यह यहाँ का स्थायी मज़ाक है।"

एक कुरसी खींच कर वह बैठ गयी। "अच्छा, अब बताइये, यहाँ क्या-क्या किया जायगा—आप का क्या प्रोग्राम है?"

"आप ही प्रोग्राम बनाइये—"

तय हुआ कि उस दिन रेखा आराम करेगी, तीसरे पहर अगर भुवन आ जाय तो वह घूमने चलेगी—अगर भुवन को अवकाश है। लेकिन अभी तत्काल चल कर काफ़ी तो पी ही जाय।

दोनों नीचे उतरे। भुवन ने देखा, रेखा ने कपड़े बदल लिये थे। गाड़ी में वह रंगीन साड़ी पहने थी, अब फिर सफ़ेद रेशम पहन लिया था—भुवन को ध्यान आया कि रेखा को उसने रंगीन साड़ी कम ही पहने देखा है, पर सफ़ेद पहने तो कभी देखा ही नहीं. सफ़ेद

वह पहनती है तो रेशम, जो वास्तव में सफ़ेद नहीं होता, उस में हाथी दाँत की-सी, या मोतिये के फूल-सी, या पिसे चन्दन-सी एक हल्की आभा होती है . . . यों तो शुभ्र श्वेत भी ऐसा होता है कि पहननेवाले को दूर अलग ले जाता है, पर यह रेशमी सफ़ेद तो और भी दूर ले जाता है, दूर ही नहीं, एक ऊँचाई पर भी; रेखा मानो उस के साथ चलती हुई भी एक अलग मर्यादा से घिरी हुई चल रही है।

रेखा ने कहा, "क्या सोच रहे हैं, भुवन जी ?"

"ऊँ—कुछ नहीं। आपकी बात सोच रहा था—नहीं, कुछ सोच नहीं रहा था, केवल आप को देख रहा था—"

"देखिए आप को काम्प्लिमेंट देना भी नहीं आता न ? कितने अच्छे हैं आप, जिस के साथ सतर्क नहीं रहना पड़ता !"

अब की बार भुवन हँस दिया। पर क्यों, यह वह स्वयं नहीं जान पाया।

काफ़ी पीते-पीते रेखा ने पूछा, "भुवन जी, आप ने पहाड़ जाने के लिए और किसी को आमन्त्रित नहीं किया ?"

"नहीं तो। फिर मेरा जाना ही तो नहीं हुआ—"

"अच्छा, आप जहाँ रिसर्च के लिए जाना चाहते हैं वहाँ मैं आ जाऊँ तो आप के काम का बहुत हर्ज होगा ?"

भुवन ने चौंक कर कहा, "वह तो एकदम बियाबान जंगल है रेखा जी। वहाँ—"

"फिर भी—फ़र्ज कीजिए,—"

"नहीं—आप ही हर्ज करना न चाहें तो—खास नहीं होगा—इतना ही कि आप की असुविधा का ध्यान हमेशा रहेगा—"

"और काम में बाधक होगा !" रेखा हँस दी। "ठीक है, मैं तो यों ही कह रही थी।"

वापस पहुंच कर रेखा ने नीचे ही कहा, "जीना चढ़ने की कोई आवश्यकता नहीं है—मैं यहीं से विदा लेती हूँ। मैं यहीं रहूँगी—आप तीसरे पहर जब भी आवें। मैं तैयार मिलूँगी।"

* * *

कुदसिया बाग में उन दिनों फूल लगभग नहीं होते—कोई फूल ही उन दिनों में नहीं होता सिवा वैजयन्ती के, जो चटक रंगीन चूनर ओढ़े बीबी शटल्लो बनी धूप में खड़ी रहती है। लेकिन खँडहर पर चढ़ी हुई 'बेगमबैरिया' लता की छांह सुहावनी थी—फूल इसमें भी कई तेज़ रंगों के भी होते हैं, पर इसकी लम्बी पतली बाँहों में, हवा में झूमते गुच्छा-गुच्छा फूलों में एक अल्हड़पन होता है जो वैजयन्ती के भूनिष्ठ आत्म-सन्तोष से सर्वथा भिन्न होता है . . . और फिर इस विशेष लता के फूल भी तेज़ रंग के नहीं थे, एक

धूमिल गुलाबी रंग ही उन में था जो पत्तियों के गहरे हरे रंग की उदासी कुछ कम कर देता था, बस।

भुवन नीचे घास पर कोहनी टेके बैठा बेंच पर बैठी रेखा को देख रहा था। रेखा पहले बेंच पर बैठ गयी थी; जब भुवन नीचे बैठा तो वह भी उतरने लगी पर भुवन ने कहा, "नहीं-नहीं, आप वहीं रहिए; इस बैकग्रांउड पर आप की साड़ी बहुत सुन्दर दीखती है।" रेखा ने एक फीके कोकनी रंग की साड़ी पहन रखी थी, बेगमबैरिया के फूल उस का सन्तुलन कर रहे थे, मानो एक ही गीत दो स्वरों में गाया जा रहा हो, रेखा का मन्द्र, अन्तर्मुख और गहराई खोजता हुआ, लता का तार, बहिर्निवेदित और उड़ना चाहने वाला . . .

रेखा को एक आदत थी—सहसा, मानो अनजाने, उस का हाथ उठता और कनपटी के पास मानो कुछ खोजने लगता, फिर बालों की किसी छूटी हुई लट—कभी-कभी काल्पनिक ही लट !—को कानों के पीछे डालता हुआ धीरे-धीरे लौट आता। सारी क्रिया एक बड़े कोमल और आयासहीन ढंग से दुहरायी जाती थी। चलते हुए भी दो-चार बार भुवन ने लक्ष्य किया था, बाग़ में आने से पहले वे जमुना के किनारे-किनारे थोड़ा भटके थे और थोड़ी देर घाट की सीढ़ी पर पानी के निकट बैठे थे तब भी—तब बल्कि हाथ पानी में डुला कर रेखा ने कनपटियाँ भिगो ली थीं . . . वह मुद्रा बड़ी आकर्षक थी; रेखा की उँगलियाँ वैसी तो नहीं थीं जिन्हें सुन्दरता का आदर्श माना जाता है—उन के जोड़ उभरे हुए थे और रूप-तत्त्व की अपेक्षा मनस्तत्त्व की ओर ही इंगित करते थे—पर वे थीं पतली और व्यंजना-पटु—संवेदनशील उँगलियाँ। अभी बैठे-बैठे उस का हाथ फिर उठा तो भुवन ने पूछा, "आप थक तो नहीं गयीं ? हम लोग काफ़ी भटके—"

"नहीं—मुझे तो पता ही नहीं लगा—"

"और रेत में भी चले—उस से बड़ी थकान होती है।"

"नहीं, मैं अभी और चल सकती हूँ। पर यहाँ बैठना भी बहुत मधुर है।"

भुवन हँस दिया। फिर एक लम्बा मौन रहा। दोनों आकाश को देखते रहे। मई का दिल्ली का आकाश—उस की नीलिमा सभ्यता की भाप से मुरझा कर फीकी पड़ जाती है, और आकाश सभ्यता की तरह अपने ही रंग का ओप अपने पर नहीं चढ़ाता ! पर प्रकृति के विभिन्न भावों की झांई उसे नाना रंग दे जाती है: इस समय उस के आगे ताँबे के रंग का एक झीना-सा जाल था, जो धीरे-धीरे धुँधला पड़ रहा था।

रेखा ने कहा, "शहरों का आकाश भी क्या चरित्रहीन आकाश होता है—फिर गर्मियों में ! यों मैं साँझ को घनी होते देखते घंटों बैठी रह सकती हूँ—पर गर्मियों में शहर में लगता है सब से अच्छी दोपहर है—साँय-साँय सन्नाटा, धूप ऐसी कि चौंधिया दे, पर उस की चिलक ही जैसे दृश्य को मांज जाती है; सभ्यता के भीतर से मानव हृदय की स्तब्ध धड़कन तब सुनी जा सकती है ....."

भुवन कुछ नहीं बोला। रेखा का स्वर उसे अच्छा लग रहा था, उस की गति मानो लययुक्त थी, एक भावाक्रान्त उतार-चढ़ाव मानो अलग से कहता था, "बात के अर्थ से अलग और भी अर्थ है मुझ में, अकथित, अकथ्य अभिप्राय, ज़रा कान दे कर सुनो . . ."

रेखा ने ही फिर कहा, "यों तो पहाड़ पर या सागर के किनारे ही आकाश देखना चाहिए, पर देहातों में और खास कर आख़िरी बरसात में—तब आकाश बोलता है, गाता है—कैसे-कैसे अर्थ-भरे गाने .... शहर का आकाश—शहर का सूर्यास्त—जैसे ड्राइंग-रूम की बातचीत, सब कोई बोल रहे हैं लेकिन सब कोई जैसे छिपे हुए, जैसे अनुपस्थित, केवल स्वरों के रेकार्ड, केवल यन्त्र-लिखित उत्साह और आवेश !"

भुवन ने धीरे-से कहा, "रेखा जी, आप का इस वक्त का आविष्ट स्वर मुझे तो अनुपस्थित नहीं लग रहा है—"

"मैं!" रेखा कुछ रुक गयी। फिर मुस्करा कर बोली, "भुवन जी, आप चाहें तो मैं भी ड्राइंग-रूम वाली बातों का कल खोल दे सकती हूँ—आप नहीं जानते कि मेरे पास कितनी बड़ी टंकी उस बँधे पानी की जमा है ! लेकिन आप का समय मैंने माँगा था, तो उस के लिए नहीं।" वह फिर गम्भीर हो गयी। "असल में मेरे भी दो पहलू हैं—एक चरित्रवान्, प्रकृत, मुक्त ; एक सभ्य और चरित्रहीन—"

"रेखा जी, यों पहलू तो हर किसी के चरित्र में होते हैं, पर चरित्र को इस तरह डिब्बों में बाँटना तो बड़ा ख़तरनाक है—व्यक्ति को एक और सम्पूर्ण होना चाहिए—यह विभाजन तो ह्रास की भूमिका है।"

"है। मैं जानती हूँ। और सभ्यता जो ह्रासोन्मुख हो जाती है वह किस लिए ? कि समर्थ प्रकृत चरित्र सभ्यता के पोसे हुए पालतू चरित्र के नीचे दब जाता है—व्यक्ति चरित्र-हीन हो जाता है। तब वह सृजन नहीं करता, अलंकरण करता है। नये बीज की दुर्निवार शक्ति से जमीन फोड़ कर नये अंकुर नहीं फेंकता, पल्लवित नहीं होता; झरे फूल चुनता है, मालाएँ गूँथता है, मालाओं से मूर्तियाँ सजाता है। जब मूर्ति पर मालाएँ सूख जाती हैं तब हमें ध्यान होता है कि सभ्यता तो मर चली—पर वास्तव में मरना तो वहाँ आरम्भ हुआ है जहाँ हम ने झरे फूल का सौन्दर्य देखना शुरू किया—डाल से टूटे फूल का !"

रूपक को अपने सामने मूर्त्त करते हुए भुवन ने कहा, "उस समय भी हम वृक्ष की ओर वापस जा सकते हैं—अंकुर की ओर—"

"हाँ, अगर वह हमारी उपेक्षा से सूख न गया हो। पर आज के हम सभ्य लोग अभी उतने अभागे नहीं हैं : अभी हम में झरे फूल भी हैं, जो आदृत हैं और गहरी जड़ें भी हैं जो नये अंकुर फेंकेंगी लेकिन जिन की कद्र नहीं है। यही मैं कह रही थी—दो पहलुओं की बात—"

वह चुप हो गयी। फिर एक मौन छा गया। अब तक थोड़ी-थोड़ी हवा चल रही थी, वह भी बन्द हो गयी।

भुवन ने कहा, "उमस हो रही है। थोड़ा टहला जाय ?"

"चलिए।"

दोनों बाग में इधर-उधर टहलने लगे। खँडहर और लता के कुंज के दूसरी ओर हरियाली में जहाँ-तहाँ बच्चों के दल खेल रहे थे; अब तक सब आयाओं द्वारा किलकते-फुदकते अज-शावकों की तरह घेरे जा कर अपने-अपने बाड़ों की ओर ले जाये जा चुके थे; एक दम तोड़ता हुआ-सा अँधेरा छा गया था।

रेखा ने सहसा कहा, "भुवनजी, मैं आप को अपने प्रकृत, स्वस्थ, मुक्त पहलू से ही जानना चाहती हूँ—उसी के सम्पर्क में आप को रखना चाहती हूँ। पर उस के लिए ईमानदारी का तकाज़ा है कि दूसरा पहलू आप से छिपाऊँ नहीं।"

बात भुवन की संवेदना को छू गयी, पर उसे समझ नहीं आया कि क्या कहे। उस का हाथ तनिक-सा रेखा की ओर बढ़ा और रह गया। वह कहने को हुआ, 'थैंक यू, रेखा जी,' पर बात कुछ ओछी लगी। फिर उस ने कहा, "रेखा जी, मैंने अपने बारे में इतनी गहराई से कभी नहीं सोचा, पर अगर मुझ में भी ऐसा विघटन है—होगा ही—तो मैं भी यत्न करूँगा कि—"

"नहीं, आप में वैसा नहीं है। आप को—शायद विज्ञान ने बचा लिया। या—" रेखा हँस पड़ी, "कहूँ कि आप अभी उतने सभ्य नहीं हुए!"

भुवन भी हँस दिया।

"लेकिन—मैं आप को देर तो नहीं कर दे रही हूँ ? आप के मेज़बान—"

"शाम के भोजन का बन्धन मैं नहीं पालता, वह प्रतीक्षा नहीं करेंगे। पर आप को भी तो लौटना होगा—आप की तो शायद हाज़री लगेगी—"

"आज देर से आने की छूट है—सप्ताह में दो दिन होती है।"

"लेकिन कुछ खायेंगी तो ?"

"मैं तो केवल काफ़ी पीती हूँ—मैंने कहा न, बहुत सभ्य हूँ! पर आप—"

"मैं भी काफी ही पियूँगा—"

"नहीं, आप को कुछ खाना होगा। चलिए—"

तय हुआ कि टहलते हुए परले फाटक से निकल कर कश्मीरी दरवाज़े के अन्दर जा कर कुछ खाया-पिया जाय, और दोनों धीरे-धीरे उधर बढ़ने लगे।

कार्लटन में सन्नाटा था। शाम को उधर खाने कौन आता है ? पीने आते हैं कुछ लोग, पर उन का समय निकल गया—नौ बजे तक कौन ठहरता है . . पर खाने को मामूली कुछ मिल जायगा—सैंडविच, कटलेट, वगैरह . .

"सभ्य जीवन बड़ा भारी वेटिंग-रूम है मानो," रेखा बोली, "और होटल वगैरह भी

सब वक्त काटने के---बीच का एक रिक्त भरने के साधन हैं। लेकिन वेटिंग किस के लिए---रिक्त किस के और किस के बीच? कोई नहीं जानता। इधर-उधर फिर रिक्त है।"

"दो रिक्तों के बीच का रिक्त भरने के लिए रिक्त---तो फिर रेखा जी, ये पार्टिशन क्यों करती हैं, सारा ही तो एक रिक्त हुआ! सभ्यता की आप की परिभाषा बड़ी डरावनी है। और उसे भरने के लिए भी रिक्त---विज्ञान तो सिर पीट लेगा जो मानता है कि प्रकृति भरणधर्मा है---रिक्त नहीं सहती।"

"प्रकृति न? लेकिन सभ्यता नहीं। आप देखते नहीं कि सभ्यता किस दर्प से कहती है कि प्रकृति असभ्य है? क्योंकि सभ्यता अप्राकृतिक है।"

दोनों फिर कुदसिया बाग लौट गये। अब एक और भी गहरा मौन वहाँ पर था, और उस ने जैसे दोनों को बाँध दिया। कई फेरे दोनों ने चुपचाप लगा लिये; सहसा दूर कहीं दस का गजर हुआ।

"रेखा जी, ऐसी बात कहना है तो शील के विरुद्ध शायद; लेकिन मैं कई बार सोचता हूँ आप को गृहस्थी में सुखी होना चाहिए था---या यह कहूँ कि आप के साथी को; ऐसा क्या हुआ कि---"

रेखा रुक गयी। अँधेरे में एक-दूसरे का चेहरा साफ़ नहीं दीखता था, पर रेखा के साँवले चेहरे में उस की आँखों के कोये स्पष्ट झलक गये; उस ने स्थिर दृष्टि से भुवन को देखते हुए कहा, "पर वह सब तो आप को चन्द्रमाधव ने---आप को मालूम ही होगा---"

"यह तो नहीं कह सकता कि नहीं बताया---या कि स्वयं मैंने ही नहीं पूछा," भुवन ने चन्द्रमाधव पर दोष न मढ़ने की नीयत से कहा, "पर यों तो कोई कारण होता ही है---लेकिन उस में आन्तरिक कारणत्व न हो तो प्रश्न उठता ही है कि क्या कोई एडजस्टमेंट नहीं हो सकता था? क्योंकि बाहरी सब कारणों पर व्यक्ति विजय पा सकता है---क्योंकि वह मशीन से अधिक एडैप्टेबल है, लचकीला है।"

"आप ठीक कहते हैं। हर घटना की एक आन्तरिक संगति होती है---हर दुर्घटना की भी। लेकिन क्या आप सचमुच वह सब सुनना चाहते हैं?"

"अगर आप को कहने में क्लेश या संकोच न हो तो---हाँ।" भुवन ने हिचकते कोमल स्वर में कहा।

पास की बेंच पर रेखा बैठ गयी।

"संकोच होता भी है, नहीं भी होता। कहते हैं न कि अच्छा स्वप्न कह देने से उस की सम्भावना कम हो जाती है, उसी तरह बुरा सपना कहने से उस का भी बोझ हल्का हो जाता है। मैं जब भी अपनी बात कहती हूँ या कहने का संकल्प करती हूँ तो उस की छाया की एक परत कम हो जाती है, सोचती हूँ कि कह-कह कर ही उसे कह डाला जा सकता है---उस से मुक्त हुआ जा सकता है---पर कहने का निश्चय करना ही बड़ा कठिन होता है क्योंकि---" रेखा ने वाक्य अधूरा छोड़ दिया।

"मैं समझता हूँ", भुवन ने कहा, "आग्रह नहीं करूँगा। आप—"

"नहीं, आपसे शायद कह सकूँगी—कहना चाहूँगी।"

थोड़ी दूर पर पद-चाप सुनाई दी—धीमी, फिर सहसा स्पष्ट—घास पर से सड़क पर। ठेठ खड़ी बोली के स्वर ने कहा, "बाबूजी, यहाँ नहीं बैठ सकते।"

"क्यों ?"

"बाबू जी, दस बजे के बाद इड्ड बैट्ठणे का हुकुम नहीं है—अब तो साड्ढे दस हो लिये—"

"अच्छा, अच्छा जाते हैं।"

चौकीदार बगल से लाठी टेक कर कुछ दूर पर खड़ा हो गया।

रेखा उठ खड़ी हुई। "चलिए।"

कुदसिया बाग के दो खंड हैं, बीच में अलीपुर रोड पड़ती है। दोनों निकल कर दूसरे खंड में चले गये। सागू के पेड़ों के चिकने सफ़ेद तने मानो किसी बड़े मंडप के स्तम्भ थे, जिसमें रातरानी की दिग्विमूढ़ गन्ध भटक रही थी। मुख्य वीथी से हट कर दोनों घास की छहेल पटरी पर टहलने लगे। लेकिन मूड कुछ बदल गया था।

रेखा ने पूछा, "बैठेंगे ?"

"बेंचें उधर हैं—बुत के पास।" भुवन ने कहा; इस में इनकार भी नहीं था, कोई अनुकूलता भी नहीं थी।

खड़ी बोली की व्यापकता प्रमाणित करता हुआ एक स्वर यहाँ भी नेपथ्य में से बोला, "कौन है ?"

"हम हैं—टहलने आये हैं," भुवन ने चिकने स्वर में उत्तर दिया।

खड़ा स्वर कुछ कम खड़ा हुआ : "बाबू जी, अब बड़ी देर हो गयी; दस बजे बाग बन्द हो जाता है।"

रेखा ने कहा, "द हाउंड्स आफ़ हेवन आर एवरी हेयर !"[1]

स्त्री-स्वर सुनकर नेपथ्य की वाणी कुछ और भी नरम पड़ कर बोली, "बाबू जी, इतनी रात को इधर नहीं घूमते; जमाना ठीक नहीं है। बड़े चोर बदमास फिरे हैं—"

दूर पर चौकीदार की छायाकृति दीख गयी। भुवन ने कहा, "अच्छा भइया, जाते हैं। आजकल तो यही वक्त होता है घूमने का—इतनी गर्मी होती है—"

चौकीदार ने कहा, "सो तो ठीक है बाबू जी, मगर—" उस के स्वर में कुछ नरमाई भी थी, कुछ दूरी भी, मानो कह रहा हो, "हाँ, आप सदाशय हैं, माना; पर बच्चे हैं, घर जाइये—"

फाटक के बाहर लैम्प के खम्भे के नीचे आ कर दोनों ठिठक गये। सहसा एक-दूसरे

---

[1]स्वर्ग के शिकारी कुत्ते सर्वत्र हैं।

की ओर देखा और मुस्करा दिये। रेखा ने कहा, "प्लोमर की एक कविता है जिसमें पार्क में घूमने वाले दो जन खदेड़े जाते हैं—आप ने पढ़ी है ?"

"नहीं—मैंने प्लोमर का सिर्फ़ नाम पढ़ा है—"

"मुझे याद नहीं है, लेकिन उस में सिपाही कहता है : 'आउटलाज टू आउटरेज बाई-लॉज़ आर द डेविल[1] !' और कविता का अन्त है : 'एंड दस वी कीप आवर सिटीज़ क्लीन[2] !' "

"हूँ।"

दोनों कश्मीरी दरवाज़े की ओर बढ़ रहे थे। दरवाज़ा वास्तव में दो दरवाजे हैं, एक आने का मार्ग है, एक जाने का, दोनों सड़कों के बीच में घास की एक लम्बी पटरी है, रास्ते के मोड़ के साथ मुड़ती चली गयी है।

भुवन ने हँस कर कहा, "यहीं बैठना चाहिये। यहाँ से तो कोई नहीं उठायेगा।"

रेखा ने कहा, "अजब बात है कि शहर में अगर कोई प्राइवेट स्थान है तो पब्लिक सड़क के बीचोंबीच।"

भुवन ने साभिप्राय कहा, "प्राइवेट फ़ेसेज़ इन पब्लिक प्लेसेज़,*—" रेखा बैठ गयी। भुवन ने कहा, "सचमुच ?"

"और नहीं तो खदेड़े जाने की कड़वाहट मिटाने के लिए।"

भुवन ने बैठते हुए कहा, "इसे ठीक ही कहते हैं 'सड़क का द्वीप'—दोनों ओर बहते जन-प्रवाह में निश्चलता का एक द्वीप—"

"है न ? मेरे साथ कुछ ही दिन में आप सर्वत्र द्वीप देखने लगेंगे—हमीं द्वीप हैं, मानवता के सागर में व्यक्तित्व के छोटे-छोटे द्वीप; और प्रत्येक क्षण एक द्वीप है—खास कर व्यक्ति और व्यक्ति के सम्पर्क का, कांटैक्ट का प्रत्येक क्षण—अपरिचय के महासागर में एक छोटा किन्तु कितना मूल्यवान् द्वीप !" रेखा ने आँखें भुवन की ओर उठायीं; भुवन से उसकी आँखें मिलीं तो उन में कुछ प्रबल, कुछ तेजस्वी और संकल्प-भरा था जिस ने भुवन की दृष्टि को कई क्षण तक बाँध रखा। फिर उस ने आँखें झुका लीं, और उस का हाथ उसी परिचित मुद्रा में उस की कनपटी की ओर उठ गया।

न जाने क्यों भुवन के मन में विचार उठा, 'हाँ; मैं तुम्हें पहचानता हूँ, रेखा; लेकिन —तुम मुझ से क्या चाहती हो ?' पर तत्क्षण ही विलीन हो गया, इतनी जल्दी कि वह उसे ठीक से पकड़ भी न पाया।

---

[1] जो अवैध लोग उपनियमों की मर्यादा तोड़ते हैं बड़े दुष्ट हैं।

[2] और इस प्रकार हम अपने शहरों को स्वच्छ रखते हैं।

*टी० एस० एलियट की एक पंक्ति का अंश : सार्वजनिक स्थलों में निजी चेहरे (निजी स्थलों में सार्वजनिक चेहरों से कहीं अधिक अच्छे होते हैं)।

"चलें ?" रेखा ने कहा, और साथ ही उठ खड़ी हुई । उस के बाद कोई कुछ नहीं बोला; रेखा जब वाई० डब्ल्यू० के फाटक पर पहुँची और अन्दर प्रविष्ट हो गयी तभी उस ने कहा, "नमस्कार, भुवन जी ।" और उस ने जल्दी से कहा, "नमस्कार !"

* * *

पब्लिक स्थलों पर प्राइवेट चेहरा रखा जा सकता है ज़रूर, और प्रीतिकर भी होता है, पर उसे देखने के लिए पब्लिक स्थलों से खदेड़ा जाना कोई पसन्द नहीं करता ।

जन्तर-मन्तर में इधर-उधर भटकते, इमारतों के बीच में से कई प्रकार की आकृतियाँ बनाते और सीढ़ियाँ चढ़ते-उतरते रेखा और भुवन बीच में आ कर रुक गये थे, सूर्य डूब गया था और मैले लाल आकाश का रंग नीचे पानी में और भी मैला होकर प्रतिबिम्बित हो रहा था ।

"ऊपर चलेंगी ?"

"हाँ ।"

दोनों सीढ़ियाँ चढ़ गये । ऊपर हवा थी । पास-पास खड़े हो कर दोनों पश्चिमी क्षितिज को देखते रहे ।

सहसा रेखा ने कहा, "चलिए अब ।"

भुवन ने कुछ विस्मय से उस की ओर देखा—इतनी जल्दी क्यों ?

"यहाँ भी तो बन्द होने का समय होता होगा—यहाँ भी—"

भुवन समझ गया । उस ने कहा, "नहीं, यहाँ सूचना की घंटी बजती है—"

लेकिन उस से क्या ? जाने का निर्देश जाने का निर्देश है, घंटी का हो, खड़ी बोली का हो ! उससे पहले ही . . .

रेखा ने क्षीणतर आग्रह से कहा, "चलिए ।"

"अच्छा तनिक और रुक जाइये, सान्ध्य तारा देखकर चलेंगे—"

रेखा ने सहसा बड़े तीखे काँपते स्वर में कहा, "चलिए—चलिए !" भुवन ने चौंक कर देखा, उस का स्वर ही नहीं, वह स्वयं भी काँप रही है । लड़खड़ाती-सी उस ने भुवन का हाथ पकड़ा और किसी तरह जल्दी-जल्दी, कुछ उस पर झुकती हुई, कुछ उसे खींचती हुई नीचे उतर गयी ।

नीचे पहुँच कर भी वह काँप रही थी । भुवन ने चिन्तित, आग्रहयुक्त स्वर में पूछा, "क्या बात है, रेखा जी—तबियत तो ठीक है न—या कि सीढ़ियाँ चढ़ने से—"

सहसा अपने में सिमट कर रेखा ने कहा, "नहीं, नहीं, कुछ नहीं; आप मुझे थोड़ी देर छोड़ जाइये—"

भुवन ने अनिच्छा से कहा, "लेकिन—"

"मैं ठीक हूँ ।"

भुवन खड़ा रहा ।

"चले जाइये !" कह कर रेखा नीचे चौंतरे पर बैठ गयी। दोनों हाथ उठा कर उस ने माथा पकड़ लिया, आँखें बन्द कर लीं।

भुवन कुछ परे हट कर अनिश्चित-सा खड़ा रहा।

थोड़ी देर में रेखा ने सिर उठाया, उसकी आँखें सूनी थीं। भुवन को वहाँ देख कर पहले बहुत ही छोटे निमिष के लिए सूनी ही रहीं, फिर सहसा उस पर केन्द्रित हो आयीं। उस ने जल्दी-जल्दी कहा, "अच्छा लीजिए, सुनिए, सुन लीजिए—हेमेन्द्र—हेमेन्द्र का नाम आप जानते हैं न, मेरा पति—अपने एक युवा बन्धु को ले कर यहाँ आया था—यहाँ तारे को देख कर दोनों ने वफ़ा की कसमें खायी थीं—हेमेन्द्र ने मुझे बताया था—"

भुवन स्तब्ध रह गया। उस की समझ में कुछ न आया। फिर रोशनी एक बड़ी पैनी कटार-सी उसे भेद गयी : वह सब समझ गया; उस ने चाहा कि रेखा को कन्धे से लगा कर धीरे-धीरे थपथपा दे.....पर वह अपने स्थान से हिल भी नहीं सका, वहीं खड़े-खड़े उस ने पूछा, "तो—तो आप ने विवाह क्यों किया था—" पूछना वह यह चाहता था कि 'हेमेन्द्र ने आप से विवाह क्यों किया था ?' पर प्रश्न को इस रूप में वह न रख सका।

"क्यों कि—मेरा चेहरा उस मित्र से मिलता था !" रेखा का स्वर एक अजीब पतली अवश चीख-सा हो गया था।

भुवन जहाँ था, वहीं बैठ गया। थोड़ी देर स्तब्ध बैठा रहा, निर्निमेष आँखों से, मरे हुए पानी में, बुझे हुए आकाश का प्रतिबिम्ब देखता। फिर वह धीरे-धीरे उठा, रेखा के पास जा कर उस ने बिना कुछ कहे रेखा की बाँह पकड़ी, मृदु किन्तु दृढ़ हाथ से उसे उठा कर खड़ा किया, और बाँह पर सहारा देता हुआ फाटक की ओर ले चला। दो-तीन कदम चलते-चलते रेखा का शरीर सहसा कड़ा पड़ गया—उस ने बाँह छुड़ा ली और कहा, "मैं ठीक हूँ, भुवन जी !" उस का स्वर भी अपने सहज स्तर पर आ गया था, यद्यपि अब भी आविष्ट था।

फाटक के पास उसने रुक कर कहा, "भुवन जी, मैं क्षमा चाहती हूँ।"

भुवन ने कहा, "नहीं, रेखा जी, दोष मेरा है, मैं दुराग्रह—"

रेखा ने धीरे-से उस के हाथ पर हाथ रख कर उसे चुप करा दिया, मानो कह रही हो, "रहने दीजिए, मैं जानती हूँ कि दोष किस का था।"

फिर उस ने कहा "मैं बिलकुल ठीक हूँ। आप अब कुछ पूछना चाहें तो पूछ लीजिए। मैं अभी बता सकती हूँ। फिर शायद—न सकूँ। या सकूँ तो भी ये बातें बार-बार याद करने की नहीं हैं, आप मानेंगे—"

"नहीं रेखा जी, मुझे कुछ पूछना नहीं है।" भुवन ने गम्भीर हो कर कहा। "एक बार भी याद दिलाने का कारण बना, इसी की मुझे बहुत ग्लानि है। आप और कुछ न बताइये, न याद कीजिए।"

कोई बीस मिनट बाद, दोनों कनाट प्लेस में बैठे धीरे-धीरे काफी पी रहे थे। रेखा

की दृष्टि अब भी खोयी हुई थी। भुवन पर एक अजीब जगुप्सा-मिश्रित संकोच छाया हुआ था। रेखा को देखते हुए एक प्रश्न बार-बार उस के मन में उभर आता था जिस से वह लज्जित हो जाता था; जिसे दबा देने की चेष्टाओं की असफलता, गहरी आत्म-ग्लानि उस में भर रही थी.....हेमेन्द्र ने कब, कैसी स्थिति में उसे वह बात बतायी होगी ?.....

वह साहस कर के पूछ ही डालता, तो रेखा उस समय शायद बता भी देती। क्यों कि उस की खोयी हुई दृष्टि उसी स्थिति को देख रही थी, उसी ग्लानि को मन-ही-मन दुहरा रही थी.....

देर रात को हेमेन्द्र कहीं बाहर से आया था। रेखा का शरीर अलसा गया था, आँखें थकी थीं; पर वह पलंग के पास की छोटी लैम्प जलाये पढ़ रही थी। लैम्प पर हरे काँच की छतरी थी, उस से छन कर आये हुए प्रकाश में रेखा का साँवला चेहरा अतिरिक्त पीला दीख रहा था; बाकी कमरे में बहुत धुँधला प्रकाश था।

हेमेन्द्र के लौटने पर उस से किसी प्रकार का दुलार या स्नेह-सम्बोधन पाने की आशा उस ने न जाने कब से छोड़ दी थी; वैसा कुछ उन के बीच में नहीं था—उन के निजी जीवन में नहीं, यों समाज में जो रूप था—पब्लिक चेहरा !—वह दूसरा था। इस लिए वह उस के लिए तैयार नहीं थी जो हुआ : हेमेन्द्र ने पीछे से आ कर बड़े उतावलेपन से और बड़ी कड़ी पकड़ से उस के दोनों कन्धे पकड़े, उसे उठाते और उस के कन्धे के ऊपर से अपना मुँह उस के मुँह की ओर बढ़ाते हुए कहा, "मेरी जान—मेरी जान—"

किताब रेखा के हाथ से छूट गयी, सारा कमरा एक बार थोड़ा डोल गया। सहसा घूम कर, कुछ विमूढ़ किन्तु सायास कोमल रखे गये स्वर में उस ने कहा, "हेमेन्द्र—"

हेमेन्द्र को जैसे बिच्छू ने डंक मार दिया हो, वह सहसा रेखा के कन्धे छोड़ कर पीछे हट गया, फिर उस ने कमरे की मुख्य बत्ती जला दी। थोड़ी देर अजनबी दृष्टि से रेखा को देखता रहा; रेखा की परिचित् किंचित विद्रूप-भरी मुस्कराहट उस के चेहरे पर आ गयी। बोला, "हलो, रेखा, सॉरी आइ'म सो लेट—" और पलंग के पास खूँटी की ओर बढ गया।

ऐसा तो रोज होता था। पर आज रेखा यह स्वीकार न कर सकी थी। अभी क्षण भर पहले की घटना मानो असंख्य तपे हुए सुओं से उसे छेद रही थी—उसे समझना होगा, समझना होगा.....

रेखा ने हाथ का काफ़ी का प्याला रख दिया कि हाथों का काँपना न दीखे; फिर जोर से सिर हिलाया कि यह विचार, यह दृश्य उस की आँखों के आगे से हट जाय—पर नहीं...

उस ने भी जा कर हेमेन्द्र के कन्धे पकड़ लिये थे और पूछा था, "हेमेन्द्र, तुम्हें बताना होगा, इस का अर्थ क्या है ?"

"और न बताऊँ तो ?" वह विद्रूप की रेखा और स्पष्ट हो आयी थी। फि[illegible]सा

उस ने बहुत रूखे पड़ कर, रेखा को धक्का दे कर पलंग पर बिठाते हुए कहा था, "लेकिन नहीं, बता ही दूँ—रोज़-रोज़ की झिक-झिक से पिंड छूटे—पाप कटे! तो सुनो, मैं तुम से प्रेम नहीं करता, न करता था। न करूँगा!"

"यह तो बताने की शायद ज़रूरत नहीं है। पर तब मुझ से विवाह क्यों किया था—"

"यह भी जानना चाहती हो! अच्छा। यह भी जानेगी। अब सब जानोगी तुम!"

रेखा जैसे खड़ी होने को हो गयी—फिर बैठ गयी।

भुवन ने कहा, "रेखा जी, स्वस्थ होइये। चलिए, मैं आप को टैक्सी में पहुँचा आऊँ—"

रेखा पत्थर हो गयी। "नहीं। मैं ठीक हूँ। पर इस समय आप को यहाँ बिठाना शायद अन्याय है। आप मुझे यहीं छोड़ जाइये, मैं पीछे चली आऊँगी।"

"यह तो नहीं हो सकता रेखा जी, चाहे आप की अवज्ञा ही करनी पड़े। पर आप को एकान्त की ज़रूरत है, यह तो समझ रहा हूँ। तो चलिए, मैं आप को टैक्सी में बिठा देता हूँ, साथ नहीं जाऊँगा।"

रेखा कुछ नहीं बोली।

भुवन ने बिल चुकाया और दोनों बाहर आये। रेखा टैक्सी में बैठ गयी, तो भुवन ने मौन नमस्कार किया। तब रेखा ने बड़े आयास से एक फीकी मुस्कान चेहरे पर लाकर कहा, "लेकिन भुवन जी, दिस इज़ नाट द एंड, आइ होप! कल मैं फिर तीसरे पहर तैयार मिलूँगी।"

भुवन ने फिर चिन्तित स्वर में पूछा था, "आर यू शोर यू आर आल राइट? या मैं चलूँ—"

"नहीं, भुवन जी! ड्राइवर, चलो, कश्मीरी गेट।"

गाड़ी जब सरकी तो रेखा ने फिर भुवन की ओर उन्मुख हो कर कहा, "गाड ब्लेस यू।"

भुवन तनिक विस्मित हुआ, पर तुरन्त सँभल कर बोला, "एंड यू।"

टैक्सी चल दी। तब रेखा पीछे ऐसी गिरी मानो अब नहीं उठेगी, नहीं उठेगी; चारों ओर से अतल दूरी से असंख्य काले और उजले तारे उसकी ओर बढ़े चले आ रहे हैं, शून्य का अतल गर्त सिमट कर छोटा हुआ आ रहा है और उसे ऐसे जकड़ लेगा जैसे लोहे का सन्दूक—और उसी के अन्दर वह घुट जायगी, नहीं रहेगी, न कुछ हो जायगी... स्मरण के टापू...आह, विस्मृति का महामरुस्थल, आह...

* * *

"क्यों आप ढूँढ़ रहे हैं न कि कल वाली रेखा कहाँ गयी?"

भुवन अवाक् रेखा का मुँह ताक रहा था। उस पर कहीं कोई व्यथा की, चिन्ता की रेखा नहीं थी, जागर की छाया नहीं थी। रेखा ने फिर वही सादी रेशमी साड़ी पहन रखी थी, लेकिन आज विना किनारे की नहीं, प्योंड़ी के-से मटीले पीले रंग के चौड़े पाड़ वाली, जिस का पीलापन उस के साँवले रंग को एक सुनहली दमक दे रहा था। हाँ, माथे और कनपटियों पर आज उस ने कोलोन-जल लगा रखा था, नीवू के फूलों की-सी हल्की महक उस से आ रही थी।

भुवन जैसे पकड़ा जा कर मुस्करा दिया।

"लेकिन अचम्भे की कोई वात नहीं है। मैं क्षण-से-क्षण तक जीती हूँ न, इस लिए कुछ भी अपनी छाप मुझ पर नहीं छोड़ जाता। मैं जैसे हर क्षण अपने को पुनः जिला लेती हूँ।

"तुमने एक ही बार वेदना में मुझे जना था, माँ,
पर मैं बार-बार अपने को जनता हूँ
और मरता हूँ
पुनः जनता हूँ और पुनः मरता हूँ
और फिर जनता हूँ,
क्योंकि वेदना में मैं अपनी ही माँ हूँ।"*

भुवन ने कहा, "आप अपने को ऐसे पुनः जिला लेती हैं, यही शायद मुझे आप की सब से पहली स्मृति है।"

रेखा ने सचेत हो कर पूछा, "कैसे?"

भुवन ने लखनऊ की पार्टी वाली वात वता दी, जव उस ने रेखा को सहसा विश्राम करते हुए देखा था। फिर कहा, "लेकिन तव उस का पूरा अभिप्राय नहीं समझ सका था; अव समझता हूँ।"

रेखा ने विषय वदलते हुए कहा, "आप के जाने का कुछ निश्चय हुआ?"

"नहीं, अभी दो-चार दिन तो और हैं ही; फिर कश्मीर जाऊँगा। फिर वहाँ भी शायद दो-चार दिन रुकना पड़े।"

"मैं सोचती हूँ, मैं कल नैनीताल चली जाऊँ?"

"क्यों?"

"यहाँ अधिक रहूँगी, तो कदाचित् आप के काम में वाधक हूँगी—अव भी नहीं हूँ, यह मानना मुश्किल है। आप पता ही नहीं लगने देते—"

"यह बात विलकुल नहीं है रेखा जी; मैं विलकुल खाली हूँ। मित्र भी विशेप नहीं हैं। प्रोफसर-समाज में तो ठहरा ही हूँ; एक परिचित और हैं, उनसे कभी मिल लेता हूँ—"

---

*अर्न्स्ट टॉलर

"कौन ?"

"मेरी एक छात्रा थी—गौरा, उस के पिता।"

"छात्रा थी—आप को अभी पढ़ाते कितने वर्ष हुए हैं ?"

"मैंने उसे सात-आठ वरस पढ़ाया था—मैट्रिक में। अब तो वह बी० ए० भी दो वरस हुए कर चुकी—अब मद्रास में है।"

"ओह।"

थोड़ी देर मौन रहा। फिर रेखा ने कहा, "कल रात वाली गाड़ी से चली जाऊँगी।" फिर कुछ नटखट भाव से : "लेकिन वहाँ मन न लगा तो कश्मीर आ जाऊँगी, कहे देती हूँ ! आप भी खदेड़ देंगे यह कह कर कि हुकुम नहीं है ?"

भुवन ने हँस कर कहा, "मैं क्या करूँगा, यह बताने का भी हुकुम नहीं है ! लेकिन—" वह कुछ रुका, "आप की गाड़ी कितने वजे जाती है ?"

"नौ वजे शायद।"

"ओह।" भुवन कुछ सोच रहा है, देख कर रेखा ने पूछा, "क्यों, क्या वात है ?"

"कुछ नहीं, कल मैं उधर भोजन करने वाला था। पर कोई वात नहीं—मैं छुट्टी ले लूंगा—"

"नहीं, वैसा न कीजिए। मैं स्वयं स्टेशन पहुँच जाऊँगी—"

अन्त में यह निश्चय हुआ कि भुवन पहले आ कर सात ही वजे रेखा को ले कर स्टेशन के वेटिंग-रूम में बिठा देगा; फिर जा कर गाड़ी के समय आ जायगा और रेखा को गाड़ी पर सवार करा देगा। रेखा ने मान लिया। वोली, "स्टेशन तो मैं खुद भी आ सकती हूँ। पर बिदा करने आप आवेंगे तो मुझे अच्छा लगेगा।"

थोड़ी देर वाद भुवन ने पूछा, "यह तो कल का तय हुआ। और अव ?"

"अव आप जो कहें। कुछ स्पेशल। सिनेमा जाना चाहेंगे ?"

"न-नहीं। हाँ, कुछ स्पेशल हो और आप की इच्छा हो तो चलिए।"

"नहीं। तव नहीं। चलिए, नदी पर चलें—"

"पानी तो कुछ है नहीं—"

"पार वालू पर—टापू में या परले किनारे पर—काश कि दिल्ली में समुद्र होता।"

"सच, तव यहाँ इतनी क्षुद्रता का राज न होता शायद—कुछ तो सागर की महत्ता का प्रभाव पड़ता—"

"धन्य है आप का आशावाद ! आप का खयाल है वम्वई में कम क्षुद्रता है ! कुछ कम होगी तो इस लिए कि शासन का केन्द्र दिल्ली है। शासन वहाँ ले जाइये तो—"

"आप ठीक कहती हैं शायद। पर इस समय मैंने वैज्ञानिक वुद्धि को छुट्टी दे रखी है। अच्छी कल्पना में क्या हर्ज है ?"

"तो और चलिए. देखिए, मैं इसी को सागर का किनारा मान लेती हूँ; और रेत का

टापू कोई सागर-द्वीप हो जायगा जिस पर हम तूफान में वह कर आ लगे हैं—दो अजनवी जिन्हें साथ रहना है—कम-से-कम कुछ देर !"

"एक मिस राविनसन क्रूसो, और उन का अनुगत मैन फ़्राइडे !"

"हाँ। और वहाँ पर किसी राक्षस के पदचिन्ह मिले तो ?"

"परवाह नहीं, मैन फ़्राइडे जादू जानता है ।"

नाव में उन्होंने नदी की इधर की शाखा पार की। नाव वाले ने पूछा, "यहीं ठहरूँ ?"

"चाहे ठहरो चाहे डेढ़-दो घंटे में आ जाना।" भुवन ने लापरवाही से कहा।

"अच्छा, नहीं तो आप रुक्का दे देना।"

"अच्छा !"

सूखी स्वच्छ रेत पर आ कर भुवन ने एक वार चारों ओर देखा, फिर ऊपर। फिर वह कहने को हुआ, "तारे कितने हैं—" पर "ता–" कह कर रुक गया; तारों की ओर रेखा का ध्यान न खींचना होगा !

रेखा ने कहा, "रुक क्यों गये ?"

"कुछ नहीं, यों ही—"

"कहिए न ?"

"नहीं।"

रेखा ने कहा, "आप तारों के वारे में कुछ कहने जा रहे थे—"

भुवन ने सकपका कर स्वीकार कर लिया।

"तो रुक क्यों गये ?"

भुवन चुपचाप उसकी ओर देखने लगा।

"ओ—मैं समझ गयी। तारों से मैं नहीं डरती, भुवन जी, कभी नहीं डरी। और मैंने कहा था न, जो दुःस्वप्न कह लूँगी, उस से मुक्त हो जाऊँगी ? अभी तक कह नहीं पायी थी, यही उस की ताकत थी। अव—अव नहीं ! आप कहिए तो तारे गिन डालूँ आकाश के ?"

"न ! गिनने से कम हो जाते हैं ! और तारा एक भी कम करना कोई क्यों चाहेगा ? न जाने कौन तारा किस का है ?"

"और जो टूटते हैं सो ?"

"फिर विज्ञान ? टूट कर एक के दो वनते हैं। या वीस। तारे कभी कम हुए हैं आकाश में ?"

रेखा इस नये भुवन को देखने लगी। फिर उसने कहा, "अच्छा, मैन फ़्राइडे, तुम्हारा तारा कौन-सा है ?"

भुवन का वह मूड वहुत छोटे क्षण के लिए लड़खड़ा गया....न जाने क्यों उसे गौरा

का वह पत्र याद आया जिस में गौरा ने उसे बुलाया था—'मैं अँधेरे में डूबना नहीं चाहती, नहीं चाहती !' इंटर के समय गौरा को उसने ब्राउनिंग की कुछ कविताएँ पढ़ायी थीं; पाठ्य कविताओं से आगे वे दोनों कुछ कविताएँ और भी पढ़ गये थे जिन में एक का शीर्षक था "मेरा तारा"....लेकिन एक बहुत छोटे क्षण के लिए ही, फिर उस ने कहा, "लो, क्या गलती हुई मुझ से—मैं तो उस पर लेबल लगाना ही भूल गया। अब क्या होगा, मिस राबिनसन ? इतने बड़े आकाश में कैसे उसे ढूँढूँगा ?" उसने ऐसा दयनीय चेहरा बनाया कि रेखा को हँसी आ गयी।

उस ने दिलासे के स्वर में कहा, "कोई बात नहीं फ़ाइडे, तारा खुद तुम्हें ढूँढ़ लेगा।"

भुवन बालू में बैठ गया। बोला, "अच्छा, तारों की चिन्ता छोड़ें। इस टापू में ही रहना है, तो घर-वर बनाना चाहिए। रेखा जी, आप को बालू के घर बनाने आते हैं ?"

रेखा ने सहसा कहा, "भुवन जी, और मैंने ज़िन्दगी-भर किया क्या है ?"

भुवन ने तर्जनी से उसे धमकाते हुए कहा, "बिग्यान को माना है। बांगाली हिन्दी आप समझता हाय ?"

"खूब समझती हूँ। पर सूखी रेत के घर तो मैं भी नहीं बना सकती। पानी लाऊँ ?"

"कैसे ? चलनी कहाँ है ?"

"आँचल भिगो कर—"

"कोई ज़रूरत नहीं है। मैन फ़ाइडे कुआँ खोद कर पानी पीता है। देखिए, मैं यहीं से गीली रेत निकालता हूँ।"

भुवन ने दोनों हाथों से रेत हटाना शुरू किया। रेखा भी बालू में बैठ गयी, ऐसी जगह जहाँ से वह भुवन को और उसकी हरकतों को भी देख सके, और पुल तथा किनारे की बत्तियों को भी। जब-तब आती-जाती मोटरों की मुड़ती हुई आलोक-शिरा एक उछटते हुए प्रकाश में दोनों को चमका जाती, फिर अँधेरा हो जाता।

भुवन ने कहा, "यह देखो गीली रेत। और खोदूँ—कुआँ बन जायगा; और ज़्यादा खोदूँगा तो अतलान्त सागर निकल आयेगा—और ज़्यादा तो धरती के उस पार निकल आयेंगे। उस पार के आकाश में क्या तारे हैं, देखोगी ? पर पैरों के नीचे तारे निकालने अच्छा नहीं, रौंदे जायेंगे। ज़रूरत भी नहीं है—गीली रेत ही तो चाहिए।"

वह पैर पर बालू थोप कर घर बनाने लगा। पैर निकाल कर गुफा का मुँह काट कर सीधा किया, फिर ऊपर न जाने क्या बनाया, फिर सामने जगह समान की, चारों ओर मेंड़ बनायी, सीढ़ियाँ, फिर एक ओर को दूसरा घर, फिर सड़क.....साथ-साथ धीरे-धीरे बोलता जाता : "यह घर बन गया—यह आँगन—यहाँ बगीचा लगेगा—ढूँढ कर आर्किड ला कर लगाने होंगे—यह चार-दीवारी है—यहाँ फ़ाइडे रहेगा—यहाँ...."

रेखा मुग्ध दृष्टि से उसे देख रही थी। सचमुच इस भुवन को उसने देखा नहीं था, जाना नहीं था, अनुमान से भी नहीं। वैज्ञानिक डाक्टर भुवन के अन्दर एक गम्भीर संवे-

दनाशील और खरा मानव छिपा है, यह तो उस ने जाना था, लेकिन उस निश्छल ऋजुता के नीचे इतना भोला, इतना कौतुक-प्रिय शिशु-हृदय भी है, यह उस की सजग दृष्टि भी न देख पायी थी..... उसे अपना बचपन याद आया—कलकत्ते के उस घिरे हुए हरे-भरे उद्यान में खेलते हुए उस ने माता-पिता का स्नेह पाया था, अगाध-स्नेह और उस निधि के लिए वह चिर-कृतज्ञ है, लेकिन जिस तरह उस स्नेह का स्थान कुछ और नहीं ले सकता, उसी तरह वह अपार स्नेह भी एक समवयस बालक के कौतुक-भरे सख्य का स्थान नहीं ले सकता....बड़ों के स्नेह से घिरी हुई वह अकेली ही रह गयी थी—और उस अकेलेपन ने उसे पका कर स्वयं भी 'बड़ा' बना दिया था : एक ओर वह पाती थी कि उस के कौतुक-जगत् के बीच में एक दीवार है, दूसरी ओर वह देखती थी कि स्वयं उस के स्नेह-सम्पृक्त परिपक्व रूप, और उस के कौतुक-वेष्टित शिशु-रूप के बीच में भी एक दीवार खड़ी थी.....न सही अधिक कुछ, न सही प्यार; यह यन्त्रणा और ग्लानि और अपमान ही सही जो उसने पाया; पर बचपन में अगर उसे दो-एक वर्ष ही ऐसा कोई बाल-साथी मिल गया होता—तो कम-से-कम आज उसके पीछे ऐसा कुछ होता जिसमें वह सम्पूर्णता देख सकती, अपने जीवन की निष्पत्ति देख सकती.....एक भाई आया था, पर तब वह आठ वर्ष की हो चुकी थी, भाई छः वर्ष का हुआ तब तक तो वह यों भी वह कौतुक-युग पार कर चुकी थी और उस के बाद के स्वप्न दूसरे थे—कितने भिन्न ! और फिर तीन वर्ष बाद भाई मर गया था—माता-पिता के दिल टूट गये थे, और उसके स्वप्नों की दूसरी खेप भी नष्ट हो गयी थी....

और भुवन—वह डाक्टरेट कर चुका है, वैज्ञानिक रिसर्च में नाम पा रहा है, वय में उस से बड़ा है, और यहाँ बैठकर बालू के घर बना रहा है और मुग्ध हो सकता है.... ईर्ष्या का कोई सवाल नहीं है—ईर्ष्या क्या होगी—पर क्यों उसे उस सुरक्षा और स्नेह में भी वह सम्पूर्णता, वह मुक्ति नहीं मिली—क्यों, क्यों, क्यों....

भुवन ने अपने काम में लगे-लगे ही पूछा, "मिस राबिनसन—रेखा जी, कलकत्ते में आप बचपन में जहाँ रहीं, वहाँ बालू थी ? लेकिन वहाँ तो नदी के किनारे कीचड़ होता है—"

क्यों उस के विचार रेखा के विचारों के समान्तर चल रहे हैं जब वह खेल में डूबा है, क्यों वह छूता है उस दुखते स्थल को जिसे रेखा छिपा लेना चाहती है—सब की दृष्टि से, सब से अधिक इस भुवन की दृष्टि से जो इतना भोला है, जो केवल खुली हँसी है, जाड़ों की धूप की तरह खिली हुई हँसी—नहीं, वह अपनी परछाईं नहीं पड़ने देगी यहाँ पर, वह चली जायगी—

उस ने मुँह ऊपर कर लिया कि आँखों में उमड़ते आँसू बाहर न बह आयें।

भुवन कहता गया, "नहीं, कलकत्ता अच्छा नहीं है। इस बालू के टापू के मुकाबले में कोई जगह अच्छी नहीं है। लीजिए आप का घर तैयार हो गया !"

अब की बार भी उत्तर न पा कर भुवन ने विस्मय से उधर देखा। रेखा आकाश की ओर मुँह उठाये निर्निमेष बैठी थी, खेल से बहुत दूर। अचकचा कर भुवन खड़ा हुआ; मोटर की मुड़ती रोशनी के पलातक आलोक में उस ने सहसा चौंक कर और लजा कर देखा, रेखा की आँखों में आँसू हैं। उस के हाथ अनैच्छिक गति से रेखा के आँसू पोंछने को हुए, पर फिर उसे ध्यान हुआ कि बालू से सने हैं,और वे अनिश्चित से अध-बीच रुक गये। सहसा किंकर्तव्यविमूढ़ करुणा से भरा हुआ वह झुका और रेखा की गीली पलकें उसने चूम लीं।

तभी वह कुछ बोल सका। "रोती हो? बालू के घरों वाले रोया नहीं करते—"

"नहीं भुवन, ये दुःख के आँसू नहीं हैं—" कहती-कहती भी रेखा आँसू झटक कर खड़ी हो गयी। बोली, "आप ही से छिपाना चाहती हूँ, आप ही को—" फिर जल्दी से विषय बदलने के लिए उस ने कहा, "नहीं, कलकत्ते में बालू नहीं थी। वहाँ मैं मिस राबिन-सन नहीं थी, राजकुमारी थी, जादू के उद्यान में रहती थी, बड़ा हरा-भरा—बालू तो क्या, मिट्टी भी कहीं नहीं दीखती थी।"

भुवन ने भी हल्का स्तर स्वीकार करते हुए कहा, "ओ, तब तो आप इस गरीब बालू के घर का सौन्दर्य क्या देखेंगी!"

"उलटे अधिक समझती हूँ, भुवन जी!" रेखा हँसी, पर हँसी के नीचे गम्भीरता थी।

"तो अब चला जाय?"

"चलिए।"

भुवन चलने को हुआ तो रेखा ने पूछा, "इस बालू के घर को गिरायेंगे नहीं?"

"क्यों?"

"क्योंकि वास्तव में गिर नहीं सकता। उसकी छाप अतलान्त तक जो है। ऊपर से मिटा देना चाहिए, नहीं तो उसका जादू दूसरे जान जायेंगे।"

भुवन ने उसे परचाते हुए कहा, "हाँ, यह तो है।" और पैर की गति से घर-बगीचा सब मटियामेट कर दिया। फिर कुछ आगे बढ़ कर उसने नाव वाले को आवाज़ दी: "नाव वाले!"

किनारे पर लग कर उस ने कहा, "और इस प्रकार क्रूसो सभ्यता को लौट आया।"

रेखा ने कहा, "अगर क्रूसो कभी लौटते हैं तो।"

* * *

लेकिन भुवन ने कुछ अधिक बारीक हिसाब लगाया था। रेखा को स्टेशन तो उस ने सात से पहले पहुँचा दिया; पर नयी दिल्ली जा कर लौटने में उसे अधिक देर लगी यद्यपि खाना भी उस ने लगभग नहीं खाया, छू कर छोड़ दिया। स्टेशन पहुँचा तो नौ में दो मिनट

थे। उस ने सोचा कि रेखा शायद प्लेटफ़ार्म पर चली गयी हो; पहले सीधा उधर गया, फिर हड़बड़ा कर वेटिंग-रूम आया—रेखा उद्विग्न-सी बाहर खड़ी राह देख रही थी। उस ने कहा—"मैं पहले उधर गया था—देर हो गयी—चलिए—आप प्लेटफ़ार्म पर क्यों न—"

"मैं बाकायदा विदा किये बिना नहीं जाऊँगी, क्या आप नहीं जानते थे ? गाड़ी में बैठ जाती और आप न आते तो—"

उस की बात में उलहना नहीं था, केवल सच की सीधी उक्ति थी।

गाड़ी की सीटी सुनाई दी। भुवन ने कहा, "गाड़ी तो अब—"

"जाने दीजिए। नहीं मिलेगी। मैं घबड़ायी हुई नहीं दौड़ूँगी।" सहसा वह हँस दी, जिस से तनाव एकाएक शिथिल हो गया।

भुवन ने कहा, "अब ?"

"वापस वाई० डब्ल्यू तो मैं नहीं जाऊँगी। अगली गाड़ी कब जाती है ?"

"पता करें। मेरे ख़याल में तो रात में और नहीं जाती, तड़के शायद—"

"वही सही, रात वेटिंग रूम में काट दूँगी। आप जाइये; पर सवेरे कैसे आयेंगे—या मत आइयेगा, अभी थोड़ी देर में चले जाइयेगा, बस।"

भुवन ने कहा, "इस परम्परा का निर्वाह तो तब होगा जब रात-भर यहीं बातें की जायें, और तड़के गाड़ी पकड़ी जाय। एक प्रमाद जब हो जाय, तब यही उस का उपाय होता है।"

"सच ?" रेखा का चेहरा खिल आया। "मैं राज़ी हूँ। पर चलिए, पहले आप को कुछ खिला दूँ। मैं खिलाऊँगी—स्टेशनों पर मेरा राज है।"

"लेकिन मैं तो खा आया।"

"गलत बात है। खा कर आते, तो या तो पहुँचते नहीं, या पहले आते। ठीक वक्त पर आये तो मतलब है कि खाना सामने छोड़ आये हैं।"

"यह तर्क मेरी समझ में नहीं आया—"

"न आये। यह स्त्री-तर्क है। इस के आगे विज्ञान नहीं चलता। चलिए। रास्ते में गाड़ी का पता भी करते चलेंगे। और टिकट वापस कर के नया लेना होगा।"

गाड़ी सुबह साढ़े चार बजे जाती थी। टिकट भुवन ने वापस कर दिया; नया टिकट रात बारह के बाद मिलेगा—नयी तारीख हो जाने पर, क्योंकि रेखा इंटर का सफ़र करती थी, सेकेंड होता तो तभी मिल जाता।

कुछ खा कर और काफ़ी पी कर दोनों रिफ्रेशमेंट रूम से निकले तो रेखा ने कहा, "मुझे जनाने वेटिंग रूम में जाने को मत कहिएगा। और जहाँ कहें—प्लेटफ़ार्म पर घूमने को, बेंच पर बैठने को, आगे बजरी पर बैठने को, पुल पर चढ़ कर रेलिंग से झांकने को—जो कहेंगे सब करूँगी !"

भुवन ने कहा, "टहलेंगे।"

पुल से पार एक अपेक्षाकृत सूने प्लेटफ़ार्म पर दोनों टहलने लगे। अभी डेढ़ घंटे बाद टिकट मिलेगा; गाड़ी तीन वजे प्लेटफ़ार्म पर आ लगेगी, तब उस में बैठा जा सकता है।

प्लेटफ़ार्मों पर भटकते, कभी बेंच पर बैठते, कभी छती हुई पटरी से आगे बढ़ कर वजरी पर चल कर तारे और कभी पुल पर खड़े-खड़े सिगनलों की लाल वत्तियाँ देखते, इंजिनों का स्वर सुनते और उन के धुएँ की गुँजलकों को आँखों से सुलझाते हुए दोनों ने चार घंटे तक क्या बातें कीं, इस का सिलसिलेवार ब्यौरा देना कठिन है। सिलसिला उस में अधिक था भी नहीं, भले ही उस समय उन दोनों को यही दीखा हो कि प्रत्येक बात एक से एक अनिवार्यत: निकलती और सुसंगत गति से चलती गयी है। साढ़े बारह के लगभग भुवन जा कर नया टिकट ले आया और अपने लिए नया प्लेटफ़ार्म। तीन वजे जब गाड़ी आ लगी, तब वह कुली ढूंढ़ कर लाया, रेखा से बोला, "अब तो वेटिंग-रूम में जायेंगी या अब भी मैं ही सामान उठवा कर लाऊँगा ?" फिर दोनों गाड़ी पर चले गये।

जनाने डिब्बे में पहिले ही से कई सवारियाँ थीं—बच्चे-कच्चे लिये औरतें। सामान उस में एक तरफ़ रखवा रेखा बाहर निकल आयी; बोली, "चलिए कहीं और बैठें—फिर यहाँ आ जाऊँगी।"

साधारण इंटरों में एक खाली था। दोनों उस में जा बैठे, बातें फिर होने लगीं। भुवन ने कश्मीर के अपने प्लान बताये—कब जायगा, कहाँ रहेगा, क्या करेगा—तुलियन झील पर कैसे दिन काटेगा, वगैरह। रेखा ने पूछा, "वहाँ बालू होगी ?"

"बालू ? क्यों ?"

रेखा हँस दी। "घरौंदे बनाने के लिए—"

भुवन भी हँस दिया। फिर उस ने पूछा, "नैनीताल में क्या करेंगी आप दिन-भर ?"

"झील की ओर ताका करूंगी। कागज़ की नावें चलाया करूँगी— नहीं, कागज़ की भी नहीं, सपनों की। काल्पनिक यात्राएँ करूँगी। आप को क्या मालूम है,मध्य-वर्ग की बेकार औरत कितनी लम्बी लड़ी गूंथ सकती है सपनों की !"

चार बजे उस डिब्बे में भी दो-चार व्यक्ति आ गये। रेखा ने कहा, "फिर थोड़ा टहला जाय ?"

"चलिए—"

दोनों फिर प्लेटफ़ार्म पर टहलने लगे। लेकिन भीड़ होने लगी थी। भुवन ने कहा, "आप को एक बार अपने सामान की फ़िक्र करनी चाहिए।"

जनाने डिब्बे में भीड़ भर गयी थी। रेखा ने अपना सामान देख-देख कर, अपना अधिकार स्थापित कर देने के लिए सीट पर थोड़ी जगह करायी और वहाँ पर बैठ गयी। भुवन बाहर खिड़की पर खड़ा हो गया !

भीतर बड़ी किटकिट थी। बात करना असम्भव था। रेखा ने अपना पर्स खोल कर उस में से छोटी-सी कापी निकाली और पेंसिल से उस में कुछ लिखने लगी।

भुवन ने पूछा, "क्या लिख रही हैं ?"

रेखा ने हँस कर सिर हिला दिया।

थोड़ी देर बाद उस ने कापी भुवन की ओर बढ़ायी। उस में लिखा था, "उस डिब्बे में बैठ कर थोड़ी देर के लिए मैं अपने को यह मना सकी थी कि हम साथ ही इस गाड़ी में यात्रा कर रहे हैं। पर अब—अब लगता है कि आप मुझे विदा कर चुके और उपचार बाकी है।"

भुवन ने कुछ न कह कर कापी लौटा दी।

रेखा ने फिर लिखा : "अगले स्टेशन पर आप प्रतापगढ़ से आगे बात चलाने आवेंगे ?"

अब की बार भुवन ने कहा, "ज़रा पेंसिल दीजिए।" और लिखा : "आप ही ने तो कहा था, 'अब अगले स्टेशन पर न आना।' "

सहसा रेखा ने कहा, "सुनिए, आप मुझे छोड़ने क्या दो-चार स्टेशन भी न चलेंगे ? हापुड़ से लौट आइयेगा—"

भुवन सिर्फ हँस दिया, कुछ बोला नहीं।

रेखा के चेहरे पर एक हलकी-सी उदासी खेल गयी। कापी में उस ने लिखा, "नहीं, मेरी ज़्यादती है।"

भुवन ने फिर कापी ले ली। जेब से कलम निकाल कर सुस्पष्ट अक्षरों में लिखा, 'अकेले हैं न, तभी लीक पकड़ कर चलते हैं।' फिर तनिक रुक कर उस पर दुहरे उद्धरण-चिन्ह लगा दिये "—"

रेखा ने कापी देखी तो अचकचा कर बोल उठी, "यह—यह आप से किस ने कहा ?"

भुवन हँसने लगा। फिर उस ने लिखा, "मैंने कहा था न, मैन फ़्राइडे जादू जानता है ?"

रेखा ने कापी ले ली, और अपलक दृष्टि से भुवन को देखने लगी। फिर उस की आँखें कुछ विकेन्द्रित हो गयीं, जैसे उस के विचार कहीं दूर चले गये हों।

भुवन ने कहा, "मैं अभी आया—" और ओझल हो गया।

प्लेटफ़ार्म पर चहल-पहल सहसा बढ़ गयी, जैसा गाड़ी चलने का समय हो जाने पर होता है। रेखा कापी में लिखने लगी—"ठीक गाड़ी के जाने के समय आप कहाँ चले गये ? मैं गाड़ी चलने से पहले ही मानो खो गयी हूँ। इन स्त्रियों की बातें सुनती हूँ, और अनुभव करती हूँ कि मैं गृहस्थिन तो पहले ही नहीं थी, अब शायद स्त्री भी नहीं रही—कितनी दूर, कितनी दूर हैं मुझ से ये बातें। एक तीन बच्चों की माँ है, एक पाँच की। एक के 'वह' लाम पर गये हैं। वहाँ से चाँदी के लच्छे न जाने कैसे भिजवाये थे—चाँदी के मगर फ़िरोज़े जड़े। दूसरी के 'वह'...."

गार्ड ने सीटी दी। रेखा ने हड़बड़ा कर इधर-उधर देखा, फिर घसीट कर कापी म लिखा, "कहाँ चले गये तुम, भुवन—गाड़ी चलने वाली है—क्या अन्त में बिना विदा के

ही मुझे जाना होगा ?" कापी उस ने बन्द की और खड़ी हो कर दरवाज़े की ओर बढ़ी, बाहर झुकी—

सामने भुवन खड़ा मुस्करा रहा था।

"बड़े नालायक हैं आप !" रेखा सहसा कह गयी। "मुझे यों डराना अच्छा लगता है ?"

भुवन ने कहा, "अभी तो बहुत टाइम है। डरा मैं नहीं गार्ड रहा है। आप बेशक बाहर चली आइये—"

रेखा उतर आयी और गाड़ी से कुछ हट कर भुवन के बगल खड़ी हो गयी। भुवन मुस्कराता ही जा रहा था। रेखा उस की ओर देखने लगी : हाँ, यही अच्छा है, इसी प्रकार मुस्कराते हुए ही हट जाना चाहिए, वह भी मुस्करायेगी—एक मिनट की तो बात होती है, ज़रा से धीरज की, ज़रा मज़बूत नर्व्ज़ की—बाद में चाहे जो हो....

भुवन ने सहसा जेब में से कुछ निकाला, अंगूठे और उँगली से मसल कर उस की गोली बनायी और ठोकर मार कर फुटबाल की तरह उछाल दी। रेखा ने कहा, "क्या था ?"

गार्ड ने और गाड़ी ने एक साथ सीटी दी।

भुवन ने कहा, "मेरा प्लेटफ़ार्म टिकट।"

रेखा भौंचक उसे देखने लगी। भुवन बोला, "क्यों, यह गाड़ी भी छोड़नी है क्या ? मैं चल रहा हूँ साथ—हापुड़ नहीं, मुरादाबाद।"

उस के साथ ही लपक कर रेखा अगले इंटर की ओर बढ़ी—कितना अच्छा था उस के साथ कदम मिला कर लपकना ! उसे सवार करा कर भुवन भी उछल कर चलती गाड़ी में सवार हो गया।

रेखा बैठ गयी; जगह कम थी, भुवन खड़ा रहा। रेखा ने एक बार बेबस उस की ओर देखा, फिर कापी निकाल कर लिखा, "भीड़ है, नहीं तो मैं इस वक्त गाना गा कर सुना देती।"

भुवन उस की ओर मुस्करा दिया। फिर कापी ले कर लिख दिया, "भीड़ की सजा मुझे मिलेगी ?"

रेखा फिर असहाय-सी उस की ओर देखने लगी। फिर उस ने घूम कर खिड़की से मुँह बाहर निकाला और धीरे-धीरे गाने लगी। भुवन दरवाज़े पर था ही, दरवाज़ा खोल कर खड़ा हो गया। सर्‌सराती हवा के साथ गाने के स्वर उस के कानों को छूने लगे :

महाराज, ए कि साजे एले मम हृदय-पुर माझे।
चरण तले कोटि शशि-सूर्य मरे लाजे।
महाराज, ए कि साजे—

गर्व सब टूटिया
मूर्छि पड़े लूटिया
सकल मम देह-मन वीणा सम बाजे।
महाराज ए कि साजे--*

जमुना के पुल की गड़गड़ाहट में आगे गान खो गया। पुल जब पार हुआ, तब रेखा चुप हो गयी थी, क्षितिज में कुछ हलकापन दीखने लगा था।

*   *   *

तल्ली-ताल में मोटर से उतर कर भुवन ने एक नज़र नैनीताल की झील को देखा—तीसरे पहर की धूप एक तरफ़ की पहाड़ी पर ऊँचे पर थी, झील घनी छांह में थी और आकाश ऐसा दूर था मानो किसी गहरी तलहटी में से ऊपर देख रहे हों—तो उसने जाना कि यहाँ तक आने का निश्चय तभी हो गया था जब उसने मुरादाबाद का टिकट लिया था। मुरादाबाद में जब रेखा ने पूछा था, "सुनिए, आप सचमुच यहाँ से लौट जायेंगे?—अब मुझे पहुँचा ही आइये न?" तब जैसे यह प्रश्न उस के मन में पहले पूछा जा चुका हो, ऐसे ही बिना अचम्भे के उस ने कहा था, "हो तो सकता है—"

और रेखा ने चिढ़ाया था, "तो मैन फ़्राइडे अभी से सकने की बातें सोचने लगा जादू भूल कर?"

"भई, अभी दिन-दुपहर है, जादू का वक्त अभी कहाँ हुआ है?"

मुरादाबाद से वे बरेली हो कर नहीं गये थे: रामपुर गये थे और वहाँ से मोटर में काठगोदाम होते हुए नैनीताल—तीसरे पहर ही यहाँ पहुँच गये थे। रास्ते में रेखा धीरे-धीरे न जाने क्या गुनगुनाती आयी थी, बोली बहुत कम थी; एक अलौकिक दीप्ति उस के अलस शान्त चेहरे पर थी: बीच-बीच में वह आँखें बन्द कर लेती और भुवन समझता कि सो गयी है, पर सहसा उस की पलकें उस अनायास भाव से खुल जातीं जिस से स्वस्थ शिशु की आँखें खुलती हैं और वह फिर कुछ गुनगुना उठती.... भुवन ने कहा था, "थोड़ा ऊंघ लीजिए, रात भर जागी हैं—" तो सहसा सजग हो कर बोली थी, "अभी? ऊँघने के लिए तो सारा जीवन पड़ा है, थोड़ा-सा जाग ही ली तो क्या हुआ!" और एक कोमल मुस्कान से खिल कर उसे निहारने लगी थी। फिर भुवन ऊँघ गया था.....

होटल साफ़-सुथरा था, पर लोग काफी थे। मैनेजर से भुवन ने पूछा कि ठहरने की जगह मिल सकेगी? तो उस ने तपाक से उत्तर दिया: "जी हां, डबल-रूम—कितने दिन

---

*महाराज, यह किस सज्जा में मेरे हृदय-पुर में आये? कोटि शशि-सूर्य लज्जित होकर पैरों में लोट रहे हैं। मेरा गर्व टूट कर मूछित पड़ा है, मेरा देह-मन वीणा की तरह बज रहा है। --रवीन्द्रनाथ ठाकुर

के लिए ?" और रजिस्टर की ओर हाथ बढ़ाते हुए, "किस नाम से—"

क्षण-भर के लिए वह झिझक गया। मैनेजर के प्रश्न के साथ ही सभ्यता की जो समस्याएँ सहसा उस की नजर के आगे कौंध गयीं, उन पर उस ने आते हुए विचार नहीं किया था। सँभल कर बोला, "अभी हमने निश्चय नहीं किया है कि यहीं ठहरेंगे या और आगे जायेंगे : ज़रा चाय-वाय पी लें तब तक सोचते हैं—"

"जी हाँ, अभी लीजिए", कह कर मैनेजर ने आवाज़ दी, "बाय !"

'बाय' आया तो उस से कहा, "साहब का आर्डर ले लो—चाय केक-पेस्ट्री वगैरह जो चाहें—"

रेखा कुछ पीछे थी। भुवन ने कहा : "आप ज़रा यहीं बैठिए, मैं अभी आया—सामान—"

पर रेखा साथ बाहर की ओर चली। बोली, "क्या बात है, भुवन ?"

"कुछ नहीं।" भुवन क्षण भर रुक गया। फिर बोला, "मैं यहाँ नहीं ठहरूँगा—नैनीताल में ही नहीं।"

रेखा उसे देखती रही। उस का चेहरा उतर गया। "अभी वापस जाओगे ?"

"यहाँ तो नहीं रहूँगा। या तो आगे चलें—"

"चलो—"

"अच्छा, मैं आता हूँ—"

"लेकिन जा कहाँ रहे हो ? बताओ तो—"

"भई, कुछ सामान-वामान तो मुझे चाहिए, आ तो गया—"

"मेरे पास सभी कुछ फ़ालतू है, बिस्तरा, कम्बल—"

भुवन ने एक मुदित-सी खीझ के साथ कहा, "अच्छा, एक टूथ-ब्रश तो ले आऊँ !"

रेखा हँस पड़ी। फिर बोली, "मैं भी साथ चलूँ ?"

"नहीं, मैंने चाय का आर्डर दिया है, मैं अभी लौट कर आया।"

रेखा मान गयी। भुवन चलने लगा तो बोली, "पर हम यहाँ ठहर नहीं रहे हैं, यह उदास जगह है। आगे कहीं भी चलो—मुझे छोड़ आना होगा।"

भुवन चला गया। रेखा भीतर बैठ कर क़ापी में कुछ लिखने लगी। उसे नहीं मालूम हुआ कि भुवन कब लौटा; सहसा उस का स्वर सुन कर चौंकी। भुवन मैनेजर से कह रहा था : "हम लोग आगे जा रहे हैं सात-ताल, अभी चले जायेंगे चाय के बाद—आप का शुक्रिया।"

"दैट्स आल राइट, सर ! चाय आ गयी है।"

दोनों ने एक साथ ही प्रश्न किये :

"ले आये टूथ-ब्रश ?"

"क्या लिख रही हैं—कविता ?"

रेखा ने पहले उत्तर दिया : "हाँ समझ लो ।"

भुवन ने नकल लगाते हुए कहा, "और मैं भी, हाँ, समझ लो ।" फिर कहा, "अच्छा, जल्दी से चाय पी लीजिए—आगे जाना है तुरन्त ।"

"कहाँ ?"

"आगे । इंटु द ब्लू । क्रूसोलैंड । चाय का मज़ा क्यों बिगाड़ती हैं—पी लीजिए और चलिए ।"

रेखा मुस्करा दी । चाय से उठ कर वे बाहर आये तो भुवन ने कहा, "आप के बक्स-वक्स में कहीं जगह हो तो यह पैकेट उस में रख दीजिए—"

रेखा ने दुष्टता से कहा, "इतना बड़ा टूथ ब्रश । जरा मैं देखूं—" और भुवन के रोकते न रोकते उस ने पैकेट खोल कर झांका ही तो ।

दो कमीज़ें, एक फ्लैनल की पैंट, एक पाजामा, एक-आध और छोटी चीज़ें, और, हाँ, एक टूथ-ब्रश भी ।

रेखा ने कहा, "हाँ, है तो सही टूथ-ब्रश । पर यह सब रेडी-मेड क्या ले आये आप—"

"तो आप का क्या ख़याल था, आप का फ़ालतू कम्बल लपेटे घूमूँगा ?" भुवन हँस पड़ा, और अपने पतले कुरते की ओर देखने लगा ।

रेखा ने गम्भीर हो कर माफ़ी माँगी । सहसा उसे ध्यान हुआ, भुवन को यों खींच लाने में भावुकता का कितना बड़ा प्रमाद उसने किया है ।

भुवन ने उस की बात काट कर कहा, "जल्दी कीजिए रेखा जी, सामान उठवाना है ।"

रेखा सामान रख रही थी तो उस ने पूछा, "दस-बारह-पन्द्रह मील चल सकती हैं ? वैसे मोटर भी जाती है, पर आगे भी कुछ चलना पड़ेगा—"

"ज़रूर चल सकती हूँ । पैदल ही चलूँगी । लेकिन कहाँ जायँगे ? सात-ताल ?"

"नहीं ।" भुवन फिर मुस्करा दिया । "क्रूसोलैंड—मैंने कहा न ? बताने से जादू चला जाता है ।"

भुवन कुली साथ ले आया था । सामान उठवाया और बोला, "चलो, हम लोग आते हैं । डाकबँगले पर जा कर बैठना ।"

कुली चल पड़े ।

"कहाँ के डाकबँगले—यह बता दिया है ?"

"वह सब मैं ठीक कर आया हूँ—आप किसी उपाय से पहले नहीं जाननें पायेंगी !"

रास्ता उतार का था । दोनों बड़ी तेज़ी से उतरने लगे ।

भुवन ने कहा, "अगर तेज़ चलने की बात न होती, तो मैं आप से गाने का अनुरोध करता ।"

रेखा ने रुकते-रुकते शब्दों में कहा, "नहीं—इस वक्त—हवा को ही गाने दीजिए ।"

लेकिन दो-तीन मील जा कर जब वे एक खुली जगह सामने का दृश्य देखने के लिए रुके, तब रेखा सहसा खुले गले से किसी भटियाली पद के बीच में से ही गा उठी :

ओ ये केड़े आमाय निये जाय रे,
जाय रे कोन चूलाय रे !
आमार मन भूलाय रे !
ग्राम छाड़ा ओई राङामाटीर पथ--*

बस, यही अढ़ाई पंक्ति, और फिर मुक्त भाव से आगे को दौड़ पड़ी। पीछे-पीछे भुवन भी दौड़ने लगा।

भुवाली से एक-डेढ़ मील आगे रेखा ने सहसा भुवन का हाथ पकड़ कर कहा, "वह देखो सामने--क्या वहीं हम जा रहे हैं !"

दिन ढलने लगा था। आकाश के विस्तार में एक हल्की-सी धुन्ध छाने लगी थी; अभी थोड़ी देर में इसी धुन्ध में साँझ का ताम्र-लोहित रंग बस जायगा....आस-पास की पहाड़ियाँ नैनीताल की तरह तंग नहीं थीं, एक के बाद एक तीन-चार खुले स्तर थे मानो पुरानी सूखी झीलों के थाल हों, और आस-पास पहाड़ियाँ क्रमशः नीचे होती गयी थीं। और धुन्ध के बीच में, जैसे किसी जौहरी ने सँभाल कर रूई के गाले पर कोई मूल्यवान् रत्न रखा हो, एक झील चमक रही थी....

"मुझे क्या मालूम है ? हो सकता है। पर वह शायद भीमताल है। तब सात-ताल दाहिने को होगा।"

"वहाँ क्या सचमुच सात-ताल हैं ?"

"ज़रूर हैं, लेकिन जादू के बगैर नहीं दीखते। यों शायद तीन हैं--बल्कि अढ़ाई--"

रेखा ने फिर पूछना चाहा, "क्या हम वहाँ जा रहे हैं ?" पर रुक गयी।

दिन छिपते-छिपते दोनों भीमताल पहुँच गये। कुली भुवाली में ही पीछे रह गये थे। झील के पास ही डाकबँगला था; भुवन ने वहाँ जा कर चौकीदार से कहा कि कुली आवें तो उन्हें कह दे कि वह आगे चला गया है और कुली जल्दी आवें, फिर कुछ और पूछताछ भी कर ली और रेखा के पास लौट आया।

"क्या यहीं रुक रहे हैं हम ?"

"नहीं, बस तीन मील और जाना है। थक तो नहीं गयीं ?"

"इर्रेलेवेंट बातें मत कीजिए," रेखा ने उत्तर दिया और भुवन ने देखा, उस के चेहरे पर यद्यपि श्रम के लक्षण स्पष्ट हैं, पर उस की एड़ी की गति में सहसा नयी लचक आ गयी है....

रात हो गयी थी। सप्तमी-अष्टमी का चाँद था। पथ बराबर हल्की उतराई का ही,

---

*रांगामाटी का गांव से हटा हुआ पथ मुझे खींच कर ले जाता है न जाने किधर।

था। एक छोटे-से गाँव के पास से वे गुज़रे। भुवन ने कहा, "अब मील-भर और होना चाहिए—"

"अब भी नाम नहीं बताओगे जगह का ?"

"नाम ? नाम में क्या है ? हमारा ही क्या नाम है ? वहाँ एक तिलिस्मी झील है, और उस के नौ अलग-अलग कक्ष हैं, सब कभी एक साथ नहीं दीखते। रोज़ एक देखना होता है—"

"ओः, पूरा नाइन डेज़ वंडर।" रेखा ने चिढ़ाया।

"हाँ, वही सही। लेकिन चार दिन की चाँदनी कहते हैं, तो मेरे वंडर में दो पूरी चाँदनियाँ समा गयीं और फिर भी कुछ बाकी रह गया—समझीं ?"

"तुम और तुम्हारा अरिथमेटिक !"

पहाड़ी के मोड़ पर सहसा घने पेड़ों के झुरमुट की ओट में पानी की चमक। भुवन ने कहा, "थके राही, वह देखो मंजिल। इस झील का नाम है नौकुछिया-ताल।"

"थके तुम—और तुम्हारे दुश्मन। लेकिन सचमुच यही नाम है ?"

"हाँ।"

बड़ा साफ़-सुथरा कमरा। बड़ी टेबल लैम्प। बिजली के लैम्प में और रहस्य में वैर है, लेकिन तेल के लैम्प—आओ, रहस्य के सौन्दर्य, सौन्दर्य के रहस्य, इस छोटे से आलोक-वृत्त को घेर लो !

सामान न जाने कब आयेगा। गर्म पानी से दोनों ने मुँह-हाथ-पैर धोये; एक लम्बी आराम-कुरसी भुवन ने खिड़की के पास खींच ली, जहाँ से झील और चाँद भी दीखता था, पैरों के लिए एक तिपाई रखी; फिर रेखा से कहा, "यहाँ बैठ जाओ।"

रेखा ने एक बार उस के चेहरे की ओर देखा, फिर उस आज्ञापने के स्वर का प्रतिवाद करने की उस की इच्छा दब गयी। वह आराम से लेट गयी। भुवन खिड़की के चौखटे पर आधा बैठ गया।

"और एक कुरसी खींच लो न ?"

"खींच लूंगा पीछे।"

रेखा ने कुछ अलसाये स्वर से कहा, "फ़्राइडे, तुम नहीं गा सकते ? वह एक जादू बाकी है अभी—फिर मैं मान लूंगी कि कामिल जादूगर हो।"

भुवन ने कहा, "अच्छा गाता हूँ।" उठ कर बरामदे में गया, धीरे-धीरे टहलने लगा।

उस की गुनगुनाहट भीतर पहुँची तो रेखा का और भी असलाया स्वर आया: "बाहर क्या प्रैक्टिस करने गये हो ?"

भुवन ने उत्तर नहीं दिया। थोड़ी देर बाद भीतर गया तो देखा, रेखा वहीं कुरसी पर सो गयी है। वह दबे पाँव बाहर लौट आया। बरामदे के खम्भे के साथ पीठ टेक कर नीचे बैठ गया और चाँद देखने लगा। सहसा न जाने क्यों उदास विचार उस के मन में

उमड़ने लगे—क्या थकान के कारण ? वह फिर धीरे-धीरे गुनगुनाने लगा।

...मेरे मायालोक की विभूति बिखर जायगी !
किरण मर जायगी !
लाल हो के झलकेगा भोर का आलोक—
उर का रहस्य ओठ सकेंगे न रोक।
प्यार की नीहार बूंद मूक झर जायगी !
इसी बीच किरण मर जायगी !
ओप देगा व्योम श्लथ कुहासे का जाल,
कड़ी-कड़ी छिन्न होगी तारकों की माल।
मेरे मायालोक की विभूति बिखर जायगी—
इसी बीच किरण मर जायगी !

चारों ओर पैरों की चाप और लालटेन की रोशनी से वह चौंक कर जागा। हाथ की घड़ी देखी—ग्यारह बजे थे। कुली आ गये थे। उस ने कहा, "शोर मत मचाओ !" सामान उतरवा कर पैसे दे कर उन्हें विदा किया। फिर भीतर जा कर देखा, रेखा गहरी नींद में सो रही थी। भुवन ने सामान बाहर ही रहने दिया, बिस्तर खोला, एक कम्बल निकाल कर, अन्दर चादर जोड़ कर, दबे पाँव भीतर गया और धीरे से रेखा को उढ़ा दिया। वह नहीं जागी। तब वह बाहर आया, और जमीन पर बिछे बिस्तर पर ही स्वयं लेट गया, एक कम्बल खींच कर अपने पैरों पर उस ने ढक लिया।

झील इस समय सुन्दर है—आसपास घने पेड़ों के झुरमुट हैं यद्यपि झील नैनीताल की तरह दो पहाड़ों के बीच में भिंची हुई नहीं है, खुली है—दिन में भी क्या वह उतनी ही सुन्दर होगी—जितनी उस ने सुना है, जितनी अब है ? दिन...'मेरे मायालोक की विभूति...!' दिन अपनी चिन्ता स्वयं करेगा। एक बार उसने चाहा, उठ कर फिर रेखा को देख आये, पर शरीर ने कोई प्रोत्साहन न दिया। ठीक है, दिन की बात दिन में—अभी तारे हैं—कितने तारे—क्या सचमुच हर किसी का एक-एक अपना तारा होता है ? केवल कल्पना। पर सुन्दर कल्पना। क्यों ? क्या यह कल्पना और भी सुन्दर नहीं है कि सब तारे सब के होते हैं ? हाँ, सदैव तो वही। पर एक क्षण होता है—एक द्वीप का क्षण—नहीं, क्षण का द्वीप—नहीं, उस क्षण में तारों का एक द्वीप—न...

* * *

सुन्दर रंग—बिना आलोक के रंग—लेकिन बिना आलोक के रंग हो कैसे सकते हैं?—नहीं, बिना रंग का आलोक, तीक्ष्ण आलोक :

भुवन उठ कर बैठ गया। सूर्य निकल आया था। लपक कर वह भीतर गया—कुरसी

पर रेखा नहीं थी। तो वह पहले उठ गयी—उस ने भी भुवन को न उठाया होगा—उसे पहले जागना चाहिए था।

वह बाहर आया। देखा, सूटकेस खुला है। उस की कमीज, पैंट, तौलिया और अन्य आवश्यक सामान बाहर एक ओर को रखा है। और वह सोता ही रहा।

भीतर जा कर मुंह-हाथ धोने की उस की इच्छा न हुई। उस ने तौलिये में सब सामान डाला, और नीचे झील की ओर चला।

सामने जहाँ धूप पड़ रही थी, वहाँ पेड़ों पर जहाँ-तहाँ बड़े-बड़े लाल गुच्छे चमक रहे थे। भुवन ने पहचाना—बुरूस के फूल। मुँह-हाथ धो कर वह तोड़ कर लायेगा...

बिना शीशे के हजामत बनाना ऐसा कठिन नहीं था। आँख बन्द कर लेने से अपना चेहरा देखने में मदद मिलती है। प्रक्षालन कर के उस ने कपड़े बदले, उतरे कपड़े तौलिये में लपेट कर वहीं रख दिये और लम्बे कदम फेंकता हुआ बुरूस के गुच्छे की ओर चला।

दो बड़े-बड़े गुच्छे उस ने तोड़े। फिर दोनों को देख कर एक वापस पेड़ में अटका कर रख दिया, एक ले लिया।

जहाँ तौलिया छोड़ गया था, उधर वह लौट रहा था कि दूर, कुछ ऊपर से उसे रेखा का स्वर सुनाई पड़ा। रेखा गा रही थी। भुवन ठिठक कर सुनने लगा; कभी स्वर उस तक पहुँचते, कभी हवा उन्हें उड़ा ले जाती :

"ऊषा एशे.......कल-कण्ठ-स्वरा !
....मिलन हबे बले आलोय आकाश भरा !
चलछे भेसे मिलन-आशा-तरी अनादि स्रोत बये,
कत कालेर कुसुम उठे भरि छेये....
तोमाय आमाय—"*

हवा उठी, गान खो गया; फिर स्वर आये मगर अस्पष्ट : भुवन जल्दी से उधर को बढ़ने लगा जिधर से गान आ रहा था।

कुछ ऊंचे पर, सूर्य को सामने किये, मुँह कुछ ऊँचा उठाये रेखा एक पत्थर पर बैठी थी। भुवन एक ओर से आ रहा था, उस ने देखा कि रेखा की आँखें बन्द हैं, मानो प्रभात के सूर्य को अपना चेहरा वह सौंप रही हो। पक्के पीले रंग की साड़ी उस ने पहन रखी थी, जिसे सूर्य ने और सुनहला चमका दिया था...वह कुछ हट कर पीछे हो गया और दबे-पांव बढ़ने लगा। रेखा अब भी गा रही थी, लेकिन शब्दों के बिना, केवल स्वर; कभी गुनगुना देती और कभी ज़ोर से। बिल्कुल पास जा कर उस ने धीरे से हाथ बढ़ा कर रेखा

---

*उषा आ कर कलकण्ठ-स्वर से कहती है, तुम्हारा-मेरा मिलन होगा, इसी लिए आकाश आलोक से भरा है। मिलन-आशा की तरी अनादि स्रोत में बही चली जा रही है, न जाने कब के कुसुम खिल कर छा गये हैं। —रवीन्द्रनाथ ठाकुर

की कवरी छुई; वह तनिक-सा चौंकी पर फिर पूर्ववत् हो गयी, घूमी नहीं, गाना वन्द कर दिया। भुवन ने हाथ का बुरूंस का गुच्छा उस की कवरी में खोंस दिया—वह इतना बड़ा था कि आधी कवरी को और कान तक वालों को ढक रहा था : उसे ठीक से अटकाने के लिए भुवन कुछ आगे झुका कि एक-आध काँटा खींच कर कवरी कुछ ढीली करे : सहसा रेखा ने दोनों वाहें उठा कर उस का सिर घेर लिया, कन्धे के ऊपर से उसे निकट खींच कर उस का मुँह चूम लिया—वड़े हलके स्पर्श से लेकिन ओठों पर भर-पूर।

भुवन भी कुछ चौंक गया, वह भी चौंक कर छिटक कर खड़ी हो गयी, दोनों ने स्थिर और जैसे असम्पृक्त दृष्टि से एक दूसरे को देखा, फिर एक साथ ही दोनों ने हाथ वढ़ा कर एक दूसरे को खींच लिया, प्रगाढ़ आलिंगन में ले लिया और चूम लिया—एक सुलगता हुआ, सम्मोहन, अस्तित्व-निरपेक्ष, तदाकार चुम्वन।

* * *

"तुम फिर कुछ लिखती रही हो ?"

"हाँ—"

"क्या ?"

"कुछ नहीं। मेरी डायरी है।"

भुवन ने आगे नहीं पूछा। वोला, "अच्छा, अब तो गाना गाओगी ?"

"न। तुम्हारी वारी है गाने की।"

"मैं। श्रेष्ठ गायक हूँ। मेरा गाना स्वरातीत है। दिन भर तो गाता रहा, तुम ने सुना नहीं ?"

"थोड़ा और श्रेष्ठ हो जाओ, तो मेरा सुनना भी सुन सको।"

तीसरे पहर रेखा ने कपड़े वदल लिये थे। वह फिर सफ़ेद पहनने लगी थी, लेकिन भुवन के आग्रह से उस ने एक नीली साड़ी और नीला ही ब्लाउज़ पहन लिया था। अब कमरे की व्यवस्था ठीक-ठीक हो गयी थी, सामान लगा कर रख दिया गया था, खिड़की के पास रेखा का पलंग बिछा था और वरामदे में भुवन का—भुवन ने आग्रह कर के वहाँ लगाया था।

दिन भर वे प्राय: भटकते ही रहे थे—सुवह लौट कर नाश्ता किया था और फिर निकल गये थे, झील का एक चक्कर लगाया था; फिर लौट कर झील पर गये थे, नौ कक्षों में से जो एक सव से खुला और शैवाल-रहित जान पड़ता था उस में नहाये थे और फिर भोजन के लिए लौट आये थे। झील पर भुवन ने पूछा था, "तैरना जानती हो ?"

"वस डूबने भर को।"

"तव तो वहुत जानती हो। इतना तो मैंने भी नहीं सीखा। कलकत्ते में क्यों नहीं सीखा ?"

तब रेखा हँस कर बोली, "जानती हूँ साहब, तैर लेती हूँ। पर इन कपड़ों में नहीं—"

"ओह।" भुवन झेंप गया। "तो लायी क्यों नहीं ?"

"मुझे क्या मालूम था—"

"कास्ट्यूम तो नैनीताल में भी मिल जाता—"

"मुझे बताया था ? नहीं तो मैं भी टूथ-ब्रुश खरीदने चल देती।"

किनारे पर ही वे नहाये थे। भुवन तैर कर भीतर गया था, रेखा ने भी साड़ी पहने-पहने दो-चार हाथ तैरने का यत्न किया था पर लौट आयी थी।

अपरान्ह में वे वृक्षों की छाया में काही-बिछी ठंडी जगह में बैठे-लेटे रहे थे। फिर लौट कर चाय पी थी; तब रेखा ने कपड़े बदल लिये थे।

"अच्छा, चलो घूमने चलें।"

"चलो। किधर ?"

"फिर पहले प्रश्न ? सामने—सर्वदा सामने।"

"नहीं, मेरा मतलब था, सात-ताल के जादुई ताल खोजने हैं कि—"

"न। जादुई ताल यह है। नौ तहों का जादू है इस पर !"

वह पहाड़ पर ऊँचे चढ़ने लगे, फिर पहाड़ की उपत्यका के साथ-साथ सममार्ग पर।

दिन ढल आया था। थोड़ी देर में सूर्य पहाड़ी की ओट हो कर छिप जायगा। सहसा भुवन ने कहा, "चलो, सूर्यास्त को पकड़ें।"

दोनों हाथ पकड़े-पकड़े दौड़ने लगे। पहाड़ी के सिरे के पीछे सूर्य छिप रहा होगा—बादल नहीं थे, एक तेजोदीप्त नंगा लाल रवि-बिम्ब ही क्षितिज की ओट हो रहा होगा। अगर वे पहाड़ी के सिरे तक पहले पहुँच जायँ तो देख सकेंगे।

दौड़ते-दौड़ते भुवन ने कहा, "दौड़ो, रेखा, हमारी सूरज से होड़ है।"

रेखा और तेज़ दौड़ने लगी। भुवन के हाथ पर उस की पकड़ कुछ कड़ी और खींचती-सी हो गयी; भुवन ने लक्ष्य किया कि वह हाँप रही है और सहसा धीरे हो गया, पर ऐसे नहीं कि रेखा को साफ़ मालूम हो।

पर पहाड़ी के मोड़ तक पहुँचते न पहुँचते सूर्य छिप गया। एक द्रुत हाथ मानों किसी धूसर लेप से सारा आकाश पोत गया; प्रकाश अब भी था, पर मानो किसी स्रोत से उद्-भूत नहीं, दिग्भ्रान्त, आकाश में खोया-सा।

भुवन ने सहसा रुक कर कहा "हम हार गये।" जहाँ सूर्य डूबा था, वहाँ एक छोटी-सी लाल लीक थी, जैसे किसी ने 'इति शम्' लिख कर उस पर जोर देने को पुष्पिका बना दी हो।

उस की ओर देखते हुए रेखा ने कहा, "डूबते सूर्य को कौन पकड़ सकता है ?"

क्षण भर बाद भुवन के हाथ पर उस की पकड़ फिर दृढ़ हो आयी। "मगर यह हार नहीं है। रात का अपना सौन्दर्य है। वह समान सौन्दर्य पहचानो, भुवन।"

भुवन घूमा। रेखा का दूसरा हाथ भी उसने पकड़ लिया और संझा के प्रकाश में थोड़ी देर उस का मुँह निहारता रहा। "पहचानता हूँ। तुम्हीं वह सौन्दर्य हो, नीलाम्बरा रात का सौन्दर्य; और तुम्हारे केशों में असंख्य तारे हैं।"

"और तुम—शुक्र तारा।" रेखा ने बहुत धीमे कहा। कोमल आग्रह से उस के हाथों ने भुवन को निकट खींच लिया।

जरा परे हट कर भुवन ने मान से कहा, "क्यों, चाँद नहीं?"

"वेन मैन! नहीं, चाँद घटता-बढ़ता है। उस का बहुरूपियापन मुझे नहीं चाहिए। शुक्र, केवल शुक्र!" फिर हल्की-सी उसाँस ले कर, "चाहे कितनी जल्दी अस्त हो जाय!"

भुवन ने आँखों से उस की आँखों को पकड़ते हुए धीरे-धीरे सिर हिलाया: हुँक्, उदास नहीं होना है! फिर रेखा के माथे की ओर देखते हुए, कविता की पंक्ति उद्धृत की, "एंड द स्टार्स इन हर हेयर वेयर सेवन।"

वह लौटने के लिए मुड़ा। बोला, "यहाँ जुगनू होते तो मैं थोड़े से पकड़ कर तुम्हारे बालों में फँसा देता।"

* * *

किस चीज़ ने उसकी नींद तोड़ दी—चाँद की रोशनी ने, या कि उस पर बादल की छाया ने—

भुवन ने आँखें खोलीं। नहीं, बादल की छाया नहीं, रेखा की छाया थी।

रेखा उस के सिरहाने बैठी थी, उस पर झुकी हुई उस का चेहरा देख रही थी।

उस ने आँखें खोली हैं, यह देख कर रेखा ने अपने दोनों हाथ उस के माथे पर रख दिये।

हाथ बिलकुल ठंडे थे।

"तुम ठिठुर रही हो, रेखा!" कह कर भुवन उठने को हुआ, पर रेखा ने उस का माथा दबा कर उसे रोक दिया। भुवन ने कुहनी से अपना कम्बल उठा कर सरका कर रेखा के घुटनों पर उढ़ा दिया, फिर उस के दोनों हाथ अपने हाथों में पकड़ कर कम्बल के अन्दर खींच लिये। पूछा "क्या बात है, रेखा?"

रेखा नहीं बोली।

भुवन ने फिर पूछा, "रेखा क्या बात है?"

"तुम—हो, तुम सचमुच हो! यू आर रीयल!" रेखा का स्वर इतना धीमा था कि ठीक सुन भी नहीं पड़ता था।

भुवन ने कहा, "आइ'म वेरी रीयल, रेखा। पर ठहरो, पहले तुम्हें कम्बल उढ़ा लूँ—"

एक हाथ में रेखा के दोनों हाथ पकड़े वह उठा, दूसरे हाथ से उस ने कम्बल खींच कर रेखा की पीठ भी ढक दी। स्वयं पैर समेट कर बैठा हो गया, कुछ रेखा की ओर को उन्मुख।

रेखा सहसा हाथ छुड़ा कर उस से लिपट गयी। आँखें उस ने बन्द कर लीं, भुवन के माथे पर अपना माथा टेक दिया। उस के ओठ न जाने क्या कह रहे थे; आवाज़ उन से नहीं निकल रही थी।

भुवन कहता गया, "क्या बात है, रेखा; रेखा, क्या बात है—" उस का स्वर क्रमशः धीमा और आविष्ट होता जा रहा था।

रेखा के ओठ उस के कान के कुछ और निकट सरक आये। पर स्वर उन में से अब भी नहीं निकला।

पर सहसा भुवन जान गया कि वे शब्दहीन-स्वरहीन ओठ क्या कह रहे हैं।

"मैं तुम्हारी हूँ, भुवन, मुझे लो।"

भुवन वैसा ही स्तब्ध बैठा रहा। न उठा, न हिला; न उस ने रेखा को निकट खींचा, न हटाया। रेखा के ओठ भी निश्चल हो गये, मानो उन्होंने जान लिया कि वे जो कह नहीं सके हैं, वह सुन लिया गया है।

न जाने कितनी देर तक ऐसा रहा। फिर भुवन ने कहा, "रेखा, पैर उठा कर इधर पसार लो—ठिठुर जायेंगे।" लेकिन रेखा के अंग-प्रत्यंग जैसे शिथिल हो गये थे। भुवन ने हाथों में बलात् उस के पैर उठा कर कम्बल के अन्दर कर लिये। रेखा कुछ सीधी हो कर बैठ गयी। भुवन ने दोनों बाँहों से उसे कमर से घेर लिया; सिर उठा कर धीरे से रेखा की जाँघ पर रख दिया

फिर और न जाने कितनी देर तक ऐसा रहा।

सहसा रेखा चौंकी। भुवन का शरीर काँप रहा था। जल्दी से झुक कर रेखा ने उस का मुँह देखना चाहा, पर उस ने और भी जोर से उसे रेखा की जाँघ में गड़ा कर अपनी एक बाँह से ढँक लिया।

रेखा बैठी रही, बिलकुल निश्चल। उस की सब संवेदनाएं जैसे अत्यन्त सजग हो आयीं, पर साथ ही भीतर कहीं कुछ जड़ होने लगा।

भुवन सिसक रहा था; अब उस की सिसकी स्पष्ट सुनी जा सकती थी।

रेखा ने फिर उसे सीधा करना चाहा, पर न कर सकी। फिर वह वैसी ही निश्चेष्ट बैठ गयी।

थोड़ी देर बाद भुवन ही सिर उठा कर ज़रा ऊपर को सरका, सिर उसने फिर रेखा की देह पर टेक लिया लेकिन मुँह के आगे से हटा लिया। पर रेखा ने अब उसका चेहरा देखने की चेष्टा नहीं की।

भुवन कुछ असम्बद्ध-सा बड़बड़ाने लगा। पहले ओठों की बिलकुल ही स्वरहीन गति। फिर एक धीमी फुसफुसाहट, कभी कहीं टूटा हुआ स्वर। रेखा एकाग्र हो कर सुन भी रही

थी और मानो अर्थ तक पहुँचने का यत्न भी नहीं कर रही थी....

लेकिन अर्थ स्वयं धीरे-धीरे अवगत होने लगा।

"यह इनकार नहीं है, रेखा; प्रत्याख्यान नहीं है....यह सब बहुत सुन्दर है, बहुत सुन्दर....वह—वह सौन्दर्य की चरम अनुभूति होती है—होनी चाहिए मैं मानता हूँ.... इसी लिए डर लगता है, अगर वह—अगर वैसा न हुआ—जो सुन्दर है उसे मिटाना नहीं चाहिए....तुमने जो दिया है, उस के सौदर्न्य को मैं मिटाना नहीं चाहता, रेखा, जोखम में नहीं डालना चाहता। वह बहुत सुन्दर है, बहुत सुन्दर...."

और फिर बड़ी-बड़ी सिसकियों ने उस का स्वर तोड़ दिया; अब की बार उस ने मुँह नहीं छिपाया, और रेखा वैसे ही बैठी रही, एक हाथ भुवन के कन्धे पर रखे, दूसरा अपनी जाँघ पर उस के चेहरे के नीचे; भुवन का पहला गर्म आँसू इस हाथ पर गिरा तो वह तनिक-सा सिहर गयी, फिर हाथ को उस ने अंजुली-सा बना लिया और आँसू उस में गिरते गये।

जब भुवन का आवेश कुछ कम हुआ तो रेखा ने अपना आँसुओं से भीगा हुआ हाथ खींचा, और भुवन के आँसू अपने केशों में और फिर अपनी छाती पर पोंछ लिये। फिर आँचल खींच कर धीरे से भुवन की आँखें पोंछ दीं। जो हाथ कन्धे पर पड़ा था, वह अत्यन्त धीरे-धीरे उसे थपकने लगा।

भुवन धीरे-धीरे शान्त हो गया। एक ऐसी गहरी शिथिलता उस के सारे शरीर पर छा गयी मानो हफ्तों का रोगी हो। रेखा ने उसे धीरे-धीरे और ऊपर की ओर खींचा, उस का सिर अपनी छाती पर टेका, अपने आँचल से ढँक दिया।

एक स्निग्ध, करुण, वात्सल्य भरी गरमी से घिरा हुआ भुवन सो गया। न जाने कब एक बार उस की नींद की घनता कुछ कम हुई, तो उस के कन्धे पर उस थपकी की वैसी ही सम, कोमल, अभयदा, त्राणमयी छाप पड़ रही थी। वह फिर खो गया।

* * *

लेकिन सुबह वह अकेला था। जब उस की नींद खुली, तो पलकों पर एक भारीपन था, मन पर कुछ ऐसा भाव कि वह नींद में उठ कर चला है, और कहीं अपरिचित जगह पर जा कर जाग कर भटक गया, है....फिर सहसा रात की घटना का चित्र स्पष्ट हो गया, उस ने जाना कि रेखा जहाँ थी वहाँ नहीं है और वह बहुत गहरी नींद सोया होगा। पर उठ कर भीतर जा कर रेखा को देखने का भी साहस उसे न हुआ। वह वहीं से बाहर जा कर सीधे बुरूस के झुरमुट में चला गया।

अनमने-से भाव से उस ने बुरूस का बड़ा-सा गुच्छा तोड़ा। फिर सहसा सचेत हो कर उसे देखा। नहीं, जीवन में कोई चीज़ दोबारा नहीं होती है। कम-से-कम कोई सुन्दर चीज़ नहीं। जो दोबारा होती है वह सुन्दर नहीं होती। फूल का गुच्छा उस ने फेंक दिया। झुरमुट में और गहरा घुसने लगा।

क्या वह लौट कर जायेगा—रेखा के पास जायेगा? उस के सामने होगा?

पुराणों में बहुत कहानियाँ हैं। स्त्री कभी नहीं माँगती; और जब माँगती है—प्रत्याख्याता स्त्री ने कभी पुरुष को क्षमा नहीं किया, सदैव शाप दिया है; और पुराणों में कहीं यह ध्वनि नहीं है कि वह शाप अनुचित है। कहीं बल्कि यह स्पष्ट कहा है कि स्त्री माँगे तो 'न' कहने का अधिकार पुरुष को नहीं है, शीलविरुद्ध है—माँग के औचित्य-अनौचित्य से परे....सब पुराणों का रोमांटिसिज़्म है? लेकिन पुराण बिलकुल रोमांटिक नहीं थे—उन की स्वच्छन्दता प्रकृति की स्वच्छ, स्वस्थ आत्म-निर्भरता की स्वच्छन्दता थी, जिस में स्त्री भी उतनी ही स्वायत्त है जितना पुरुष; बल्कि अधिक, क्योंकि उस पर प्रकृति का दायित्व है। कहीं भी प्रकृति के शासन में अस्वीकार का अधिकार नर का नहीं है; सर्वत्र मादा निर्णायिका है—क्योंकि वह माँ है....

लेकिन प्रत्याख्यान की बात वह क्यों सोचता है? उस ने तो कहा भी है, प्रत्याख्यान वह नहीं है। केवल सुन्दर, सुन्दर से सुन्दरतर वह चाहता है, और लोभ से सुन्दर को जोखम में नहीं डालना चाहता। इस लिए और भी नहीं, कि रेखा उस जोखम को समझती नहीं—या हेय मानती है। सहसा रेखा के प्रति एक गहरे कृतज्ञ भाव ने उसे द्रवित कर दिया: कैसे यह स्त्री सब-कुछ इस तरह उत्सर्ग कर दे सकती है, बिना कुछ प्रतिदान माँगे, बिना कोई सुरक्षा चाहे—बल्कि सुरक्षाओं की सब सम्भावनाओं को लात मार कर! क्यों? क्योंकि वह भुवन को प्यार करती है, उसे कुछ देना चाहती है? कुछ नहीं, सब कुछ, अपना आप। कैसी विडम्बना है यह स्त्री की शक्ति की, कि उस का श्रेष्ठ दान है स्वतः अपना लय—अपना विनाश! लेकिन लय के बिना और श्रेष्ठ दान कौन-सा हो सकता है? अहं की पुष्टि के लिए समर्पण नहीं, अहं का ही समर्पण समर्पण है....

झुरमुट में बुरूस का स्थान अब बाँज ने ले लिया था, अधिक घने, ठंडे और पुष्प-विहीन। वह और अन्दर पैठता चला जा रहा था।

और वह?

क्यों वह रेखा की ओर से ही सोच रहा है, क्यों नहीं अपनी ओर से सोचता? वह—वह क्या चाहता है, क्या देना चाहता है, क्या वह रेखा को चाहता है? प्यार करता है? नकारात्मक उत्तर उस के भीतर से नहीं उठता, लेकिन क्यों नहीं सहज स्वीकारी उत्तर आता, क्यों यह स्तब्धता है....

सुन्दर से सुन्दरतर....चरम अनुभूति....

लेकिन तुम में अगर सौन्दर्य की चरम अनुभूति है, भुवन, तो डर कैसा? डर केवल सुन्दर में अविश्वास है।

पर उसकी तसल्ली नहीं हुई। स्वयं उसके भीतर, और गहरे किसी एक स्तर पर एक संघर्ष है, इस का जैसे उसे थोड़ा-थोड़ा भान है; पर किस स्तर पर, यह वह नहीं जान पाता, और उसे कुरेद कर ऊपर भी नहीं ला पाता। मानो प्रयत्न छोड़ कर उस का मन

रेखा के कहे हुए वाक्यों पर उछटता-सा घूमने लगा : काल का प्रवाह नहीं, क्षण और क्षण और क्षण....क्षण सनातन है....छोट-छोटे-ओएसिस....सम्पृक्त क्षण....नदी के द्वीप.... जो काल-परम्परा नहीं मानता, वह वास्तव में कार्य-कारण-परम्परा नहीं मानता, तभी वह परिणामों के प्रति इतनी उपेक्षा रख सकता है—एक तरह से अनुत्तरदायी है....पर इस से क्या? उत्तर माँगने वाला कोई दूसरा है ही कौन? मैं ही तो मुझ से उत्तर माँग सकता हूँ? और अगर मैं अपने सामने अनुत्तरदायी हूँ, तो उस का फल मैं भोगूँगा—यानी अपने अनुत्तरदायित्व का उत्तरदायी मैं हूँ....

क्या यह—परसों और कल और आज—वैसा ही एक द्वीप है—सम्पृक्त क्षणों का द्वीप—काल-प्रवाहिनी में अटका हुआ एक अलग परम्परामुक्त खण्ड—जैसे रेखा कहती है? परसों, कल, आज, फिर महाशून्य—नहीं, आज, फिर दूसरा आज, फिर आज, तब महाशून्य !

सामने एक पेड़ पर सोनगाभा के पौधे लग रहे थे। और पेड़ों पर भी पत्ते लटकते भुवन ने देखे थे, पर इस में फूल थे। रंग उनमें अधिक नहीं था—चम्पई, भीतर कत्थई और फूल की वावड़ी के बिलकुल बीचोबीच में गहरा पीला—फिर भी, सोनगाभा....

उसे जमुना के टापू का वालू का घरौंदा याद आ गया, जहाँ आर्किड लगाने की बात उस ने कही थी। वह जैसे-जैसे पेड़ पर चढ़ा, कुछ नीचे से ही पौधे समेत फूल उस ने नोच लिये और उतर आया। झाड़ कर फूल अलग करता हुआ लौट चला।

रेखा बरामदे की सीढ़ियों पर बैठी थी। कुछ लिख रही थी। दूर से भुवन को देख कर कापी उस ने बैग में डाल ली, और एकटक उस की प्रतीक्षा करने लगी।

भुवन गम्भीर चेहरा लिये हुए आया। रेखा से आँखें उस ने नहीं मिलायीं, यह देख लिया कि उस का चहेरा भी गम्भीर नहीं तो एक बन्द चेहरा तो है ही; भीतर की कोई छाप उस पर नहीं दीख रही।

भुवन ने चुपचाप फूल उसकी गोद में रख दिये। एक लच्छा ले कर उस के बालों में अटका दिया।

"ओः, आर्किड ! तब यह विदा है।"

ऐसा कोई सम्बन्ध भुवन ने नहीं देखा था। पर बोला, "रेखा, आज तो मुझे जाना होगा न।"

"सो—मैं जनाती थी।"

भुवन उसके पास सीढ़ी पर बैठ गया।

"रेखा, तुम ने मुझे क्षमा कर दिया?"

रेखा का हाथ टटोलता हुआ बढ़ा; भुवन के हाथ पर आ कर शिथिल रुक गया।

"किस बात के लिए, भुवन?"

"सब कुछ। तुम जानती तो हो।"

"तुम्हारे क्षमा माँगने की तो कोई बात मुझे नहीं दीखती, भुवन ! मैं ही—"

भुवन ने असल बात से कुछ हटते हुए कहा, "और मैं बहुत लज्जित हूँ, रेखा! पुरुष की आँखों में आँसू तो नामर्दी हैं—मैं—तुम क्या सोचती होगी न जाने—"

रेखा के हाथ के दबाव ने उसे चुप करा दिया, पर वह स्वयं कुछ देर तक कुछ नहीं बोली। फिर उस ने कहा, "भुवन, मर्द के आँसू मैंने पहले भी देखे हैं। बड़ी व्यथा के आँसू—इस लिए कि उस पुरुष ने मुझे खो दिया है। बड़ी ग्लानि के आँसू—इस लिए कि वह पुरुष मुझे पा लेना चाहता है और पा नहीं सकता। पर तुम्हारे आँसू—किसी पर छाँह करते हुए उस के लिए रोना नामर्दी नहीं है, भुवन...."

धीरे-धीरे उस ने अपना हाथ खींच लिया। दोनों चुप, स्तब्ध बैठे रहे।

* * *

कुछ खाने की इच्छा नहीं थी, पर भुवन ने खोये-से, रेखा को उसे नाश्ता करा लेने दिया। थोड़ी देर खोये-से ही दोनों बरामदे में आ कर खड़े रहे, झील को देखते रहे। फिर वह क्षण आ ही गया।

रेखा ने अन्दर से एक पुलिन्दा ला कर देते हुए कहा, "यह लो अपना टूथ-ब्रश।"

भुवन ने कहा, "अच्छा रेखा; अब चलता हूँ।" वह कुछ रुका। "कहना चाहता हूँ मैं—तुम्हारा बहुत कृतज्ञ हूँ, पर शब्द ओछे हैं, नहीं कहूँगा। इतना ही कि—गाड ब्लेस यू।"

"रुको—" कह कर रेखा भीतर गयी। थोड़ी देर में एक छोटा-सा पैकेट और ले आयी। "यह भी लो—"

"क्या है ?"

"जाते हुए रास्ते में देख लेना।"

भुवन ने एक लम्बे क्षण तक रेखा को देखा, आँखों ही आँखों में विदा माँगी और दी, और चलने को मुड़ा।

"भुवन, यह भी लेते जाओ।"

रेखा ने बालों में से आर्किड निकाल कर उस की ओर बढ़ा दिया। बाकी फूल उस ने रख लिये थे।

"यह—यह क्यों—"

"मेरी ओर से—इस लिए कि तुम—शायद—फिर न आओ।" रेखा ने जल्दी से मुँह फेर लिया।

भुवन ने सहसा उस की ओर बढ़ कर बायें हाथ के अँगूठे-उँगली के नाखूनों की चुटकी से उस के ब्लाउज़ का गला तनिक-सा उठाया और दाहिना हाथ बढ़ा कर आर्किड के फूलों का लच्छा उस के भीतर डाल दिया। बड़े स्निग्ध स्वर से कहा, "पगली कहीं की !"

रेखा के कहे हुए वाक्यों पर उछटता-सा घूमने लगा : काल का प्रवाह नहीं, क्षण और क्षण और क्षण....क्षण सनातन है....छोटे-छोटे ओएसिस....सम्पृक्त क्षण....नदी के द्वीप.... जो काल-परम्परा नहीं मानता, वह वास्तव में कार्य-कारण-परम्परा नहीं मानता, तभी वह परिणामों के प्रति इतनी उपेक्षा रख सकता है—एक तरह से अनुत्तरदायी है....पर इस से क्या ? उत्तर माँगने वाला कोई दूसरा है ही कौन ? मैं ही तो मुझ से उत्तर माँग सकता हूँ ? और अगर मैं अपने सामने अनुत्तरदायी हूँ, तो उस का फल मैं भोगूँगा—यानी अपने अनुत्तरदायित्व का उत्तरदायी मैं हूँ....

क्या यह—परसों और कल और आज—वैसा ही एक द्वीप है—सम्पृक्त क्षणों का द्वीप—काल-प्रवाहिनी में अटका हुआ एक अलग परम्परामुक्त खण्ड—जैसे रेखा कहती है ? परसों, कल, आज, फिर महाशून्य—नहीं, आज, फिर दूसरा आज, फिर आज, तब महाशून्य !

सामने एक पेड़ पर सोनगाभा के पौधे लग रहे थे। और पेड़ों पर भी पत्ते लटकते भुवन ने देखे थे, पर इस में फूल थे। रंग उनमें अधिक नहीं था—चम्पई, भीतर कत्थई और फूल की बावड़ी के बिलकुल बीचोबीच में गहरा पीला—फिर भी, सोनगाभा....

उसे जमुना के टापू का बालू का घरौंदा याद आ गया, जहाँ आर्किड लगाने की बात उस ने कही थी। वह जैसे-जैसे पेड़ पर चढ़ा, कुछ नीचे से ही पौधे समेत फूल उस ने नोच लिये और उतर आया। झाड़ कर फूल अलग करता हुआ लौट चला।

रेखा बरामदे की सीढ़ियों पर बैठी थी। कुछ लिख रही थी। दूर से भुवन को देख कर कापी उस ने बैग में डाल ली, और एकटक उस की प्रतीक्षा करने लगी।

भुवन गम्भीर चेहरा लिये हुए आया। रेखा से आँखें उस ने नहीं मिलायीं, यह देख लिया कि उस का चहेरा भी गम्भीर नहीं तो एक बन्द चेहरा तो है ही; भीतर की कोई छाप उस पर नहीं दीख रही।

भुवन ने चुपचाप फूल उसकी गोद में रख दिये। एक लच्छा ले कर उस के बालों में अटका दिया।

"ओः, आर्किड ! तब यह बिदा है।"

ऐसा कोई सम्बन्ध भुवन ने नहीं देखा था। पर बोला, "रेखा, आज तो मुझे जाना होगा न।"

"सो—मैं जनाती थी।"

भुवन उसके पास सीढ़ी पर बैठ गया।

"रेखा, तुम ने मुझे क्षमा कर दिया ?"

रेखा का हाथ टटोलता हुआ बढ़ा; भुवन के हाथ पर आ कर शिथिल रुक गया।

"किस बात के लिए, भुवन ?"

"सब कुछ। तुम जानती तो हो।"

"तुम्हारे क्षमा माँगने की तो कोई बात मुझे नहीं दीखती, भुवन ! मैं ही—"

भुवन ने असल बात से कुछ हटते हुए कहा, "और मैं बहुत लज्जित हूँ, रेखा! पुरुष की आँखों में आँसू तो नामर्दी हैं—मैं—तुम क्या सोचती होगी न जाने—"

रेखा के हाथ के दबाव ने उसे चुप करा दिया, पर वह स्वयं कुछ देर तक कुछ नहीं बोली। फिर उस ने कहा, "भुवन, मर्द के आँसू मैंने पहले भी देखे हैं। बड़ी व्यथा के आँसू—इस लिए कि उस पुरुष ने मुझे खो दिया है। बड़ी ग्लानि के आँसू—इस लिए कि वह पुरुष मुझे पा लेना चाहता है और पा नहीं सकता। पर तुम्हारे आँसू—किसी पर छाँह करते हुए उस के लिए रोना नामर्दी नहीं है, भुवन...."

धीरे-धीरे उस ने अपना हाथ खींच लिया। दोनों चुप, स्तब्ध बैठे रहे।

* * *

कुछ खाने की इच्छा नहीं थी, पर भुवन ने खोये-से, रेखा को उसे नाश्ता करा लेने दिया। थोड़ी देर खोये-से ही दोनों बरामदे में आ कर खड़े रहे, झील को देखते रहे। फिर वह क्षण आ ही गया।

रेखा ने अन्दर से एक पुलिन्दा ला कर देते हुए कहा, "यह लो अपना टूथ-ब्रश।"

भुवन ने कहा, "अच्छा रेखा; अब चलता हूँ।" वह कुछ रुका। "कहना चाहता हूँ मैं—तुम्हारा बहुत कृतज्ञ हूँ, पर शब्द ओछे हैं, नहीं कहूँगा। इतना ही कि—गाड ब्लेस यू।"

"रुको—" कह कर रेखा भीतर गयी। थोड़ी देर में एक छोटा-सा पैकेट और ले आयी। "यह भी लो—"

"क्या है ?"

"जाते हुए रास्ते में देख लेना।"

भुवन ने एक लम्बे क्षण तक रेखा को देखा, आँखों ही आँखों में बिदा माँगी और दी, और चलने को मुड़ा।

"भुवन, यह भी लेते जाओ।"

रेखा ने बालों में से आर्किड निकाल कर उस की ओर बढ़ा दिया। बाकी फूल उस ने रख लिये थे।

"यह—यह क्यों—"

"मेरी ओर से—इस लिए कि तुम—शायद—फिर न आओ।" रेखा ने जल्दी से मुँह फेर लिया।

भुवन ने सहसा उस की ओर बढ़ कर बायें हाथ के अँगूठे-उँगली के नाखूनों की चुटकी से उस के ब्लाउज़ का गला तनिक-सा उठाया और दाहिना हाथ बढ़ा कर आर्किड के फूलों का लच्छा उस के भीतर डाल दिया। बड़े स्निग्ध स्वर से कहा, "पगली कहीं की !"

फिर बड़ी त्वरा से उस ने अपनी पोटली उठायी और बिना लौट कर देखे चला गया।

दो मोड़ पार कर के, जैसे कुछ याद कर के वह रुका। छोटा पैकेट उस ने खोला। उस में रेखा की वह छोटी कापी थी, और वह नीली साड़ी जिसे पहन कर उस ने भुवन के साथ सूर्यास्त का पीछा किया था।

भुवन

दृश्यों का द्रुत परिवर्तन स्फूर्तिप्रद होता है शायद, लेकिन जहाँ उस परिवर्तन के साथ रागावस्थाओं का भी उतना ही द्रुत परिवर्तन हो वहाँ स्फूर्ति ही आवश्यक नहीं है, व्यक्ति चकित-विमूढ़ हो कर भी रह जाता है...काम के दबाव में उस का मन नौकुछिया अधिक नहीं भागा था—यों भी उस की प्रवृत्ति पीछे देखने की नहीं थी, हठात् कभी अतीत की किरण मानस को आलोकित कर जाये वह दूसरी बात है—पर श्रीनगर की झील और नौकुछिया का अन्तर स्वयं मन पर चोट करता था। निस्सन्देह श्रीनगर में सब कुछ बड़े पैमाने पर था, बड़ी चौड़ी उपत्यका, बड़े पर्वत-शृंग, बड़ी झील—बड़े लोग!—पर नौकुछिया एक सुन्दर हरे निर्जन में जड़ा हुआ छोटा-सा नगीना था, और यह—जनाकीर्ण मग में आभूषणों से लदी बैठी पुंश्चली स्त्री. . .क्या हुआ अत्यन्त सुन्दरी है तो? 'पब्लिक फ़ेसेज़ इन पब्लिक प्लेसेज़!' उसे खुशी ही थी कि श्रीनगर में अधिक समय नहीं बिताना पड़ेगा, दिल्ली में ही रुके रह जाना बहुत अच्छा हुआ, नहीं तो यहाँ वह घबड़ा जाता—और नौकुछिया के बाद तो—!

डेढ़ ही दिन उसे वहाँ लगा, इतने में उस की तैयारी हो गयी। यहाँ से घोड़ों पर सामान लद कर जायगा, पहलगाँव और वहाँ से तुलियन—चौथे दिन पहुँच जायगा। वह पहलगाँव में प्रतीक्षा करेगा, तम्बू पहलगाँव से ही तुलियन ले जाने होंगे—उसके लिए उस ने नये खानसामा को आगे भेज दिया था।

लेकिन अपना आवश्यक सामान ले कर जब वह पहलगाँव की मोटर पर पहुंचा तब अचकचा कर रह गया। मोटर के बानेट के सहारे रेखा खड़ी थी।

मुस्करा कर बोली, "नमस्कार!"

"नमस्कार। तुम—"

"मैं आप से एक दिन पहले यहाँ पहुँच गयी—आप दिल्ली ही रह गये, मैं सीधी इधर चली आयी।"

"लेकिन—"

"आप भूलते हैं, मैं बँगला बोलने वाली कश्मीरिन हूँ—यहाँ किसी को पहचानती नहीं पर मेरे रिश्तेदार और बुजुर्ग चारों ओर बिखरे पड़े हैं।"

"पर मेरे जाने का कैसे पता लगा?"

"मैं कल पूछने गयी थी। यों तो न भी जाती तो भी लग जाता—आप वैज्ञानिक यन्त्रादि ले जाने का परमिट लेने गये थे—वह अधिकारी मेरे कुछ लगते हैं मामा-वामा।"

भुवन हँसने लगा, क्योंकि इन सज्जन से बड़ी मनोरंजक भेंट हुई थी उस की। वह

मानते ही नहीं थे कि युद्ध-काल में यन्त्रादि ले कर कोई उत्तर के पहाड़ों में जा रहा है तो रूस से सम्बन्ध जोड़ने के सिवा उस का कोई उद्देश्य हो सकता है। फिर जब उस ने कहा कि उस का काम कई विश्वविद्यालयों के काम से सम्बद्ध है जिन में केम्ब्रिज और अमेरिका के कुछ विश्वविद्यालय भी हैं तो उन्होंने मान लिया कि वह ब्रिटेन का चर है। परमिट तो दे दिया, लेकिन बड़ी भेद-भरी दृष्टि से उसे देखते रहे।

फिर उस ने कहा, "मुझे तो किसी ने नहीं कहा—"

"मैंने कहा था कि मैं स्वयं मिल लूंगी—"

"तो तुम जा कहाँ रही हो—पहलगाँव ?"

"जी—मैं काम्प्लिमेंट्स रिटर्न करने आयी हूँ—पहलगाँव तक पहुँचाने आयी हूँ—तुलियन तक जाने को तैयार हो कर अगर आप कहेंगे। यह मेरा प्रदेश है, आप मेहमान हैं।" फिर सहसा गम्भीर हो कर कहा, "आप का हर्ज तो नहीं होगा ? मैं अभी लौट सकती हूँ—रास्ते में ही कहीं उतर सकती हूँ—"

"इसका जवाब तो मैं दे चुका।"

"क्या ?"

"पिछली भेंट का मेरा आखिरी वाक्य—"

विषाद की एक हल्की-सी छाया रेखा के चेहरे पर दौड़ गयी। फिर वह मुस्करा दी। "हाँ, सो तो हूँ।"

अगली सीट भुवन की थी। उस ने कहा कि रेखा वहाँ बैठ जाय, पर रेखा ने आग्रह किया कि वहाँ कोई बैठेगा तो भुवन, नहीं तो दोनों साथ बैठेंगे पहली सीट पर; वहीं वे बैठे।

पामपुर-अवन्तिपुर के खुले प्रदेश के पास से मोटर बढ़ती चली। भुवन ने कहा, "यही सब केशर का प्रदेश है न ?"

"हाँ। इसी से इसे काश्मीर कहते हैं—भारत में तो और कहीं होता नहीं। और पामपुर असल में पद्मपुर है।"

भुवन ने कहा, "बंगालिन, अभी कश्मीर से तुम्हारा नाता छूटा नहीं ?"

रेखा हँस दी। "जो असम्पृक्त हैं, उन का सब देशों से नाता है !"

"तो, तुम्हारे लिए सब जगहें बराबर हैं ?"

"उस दृष्टि से—हाँ। मेरे लिए महत्त्व है व्यक्तियों का—विशेष व्यक्तियों का।" और एक अर्थ-भरी दृष्टि से उस ने भुवन की ओर देख लिया। थोड़ी देर दोनों चुप रहे। फिर रेखा ने पूछा, "पहलगाँव रुकोगे ?"

"सोचा तो था। पर अब नहीं—मुझे तुलियन पहुँचाने चलोगी न ?"

"आप कहें तो ! और पहलगाँव में टूथ-ब्रश न मिलेगा, इस लिए मैं सब साथ लायी हूँ।"

"सामान आने में दो-तीन दिन लगेंगे ही। चल सकते हैं। पर पहल्गाँव से तुलियन सामान के साथ मैं स्वयं जाना चाहता हूँ—"

"बाधा नहीं बनूँगी, भुवन। जिस दिन सामान आवेगा उसी दिन चली जाऊँगी। बल्कि—"

"यह मेरा मतलब नहीं था—"

"जानती हूँ—" कह कर रेखा ने उसे चुप करा दिया।

ज्यों-ज्यों बस आगे जाती थी, त्यों-त्यों भुवन का मन अधिकाधिक तीखे झटकों के साथ पीछे जाता था—एक लघु क्षण के लिए, बस, लेकिन प्रत्येक बार एक टीस के साथ, और प्रत्येक बार न जाने कहाँ से उखड़े-उखड़े वाक्यांश लाता हुआ....'स्वाधीनता का जोखम'....'आन्तरिक आलोक का जोखम'....'एंड द स्टार्स इन हर हेयर वेयर सेवन'.... 'जुगनू तो सीली-सड़ी जगह में होते हैं'....'आत्मा के नक्शे'....'क्षण सीमान्त है'.... 'वहाँ बालू होगी ?' 'मैं शैरन का गुलाब हूँ, और उपत्यका की तितली...' 'डर, सुन्दर का डर, विराट् का डर'....'दुःख जाना है, पर डर नहीं'....दो-एक बार अशान्त भाव से वह अपनी सीट में इधर-उधर मुड़ा। 'मेरी प्रिया बोली, उसने कहा, उठो प्रिय, और मेरे साथ आओ, क्योंकि शीत ऋतु बीत गयी है, वर्षा चुक गयी है, धरती में फूल जागते हैं, पक्षियों के गाने का समय आ गया है, और कुमरी का कूजन सुन पड़ने लगा है। अंजीर के वृक्ष में नया फल आता है, और अंगूरी के कचिया अंगूर मधुर गन्ध दे रहे हैं। उठो, प्रिय, और चले आओ।' सहसा स्पष्ट हो गया कि सालोमन के गीत के ये अंश उसे रेखा की कापी में से याद आ रहे हैं—क्यों ? वह सीधा हो कर बैठ गया। कापी के वाक्य और स्पष्ट हो कर उस के आगे दौड़ने लगे—एक के बाद एक पंक्ति, जैसे सिनेमा की पंक्तियाँ मानो बेलन पर चढ़ी हुई घूमती जाती हैं और एक-एक पंक्ति आलोकित होती जाती है....

'तुम चले जाओगे—मैं जानती हूँ कि तुम चले जाओगे। मैं आदी हूँ कि जीवन में कुछ आये और चला जाय—मैंने हाथ बढ़ा कर उसे पकड़ना चाहना भी छोड़ दिया है—कौन पकड़ कर रख सकता है ? बचपन में माँ एक कहानी सुनाया करती थीं, कोकिल का स्वर सुन कर राजा उसे पकड़वा मँगाते थे पर वह चुप हो जाता था। माँ कहती थीं, कोकिल को पकड़ लिया जा सकता है, पर गान बन्दी नहीं होता। तब मैं सोच लेती थी, बन्दी करना मैं क्यों चाहने लगी ? मैं स्वयं गाऊँगी ! पर अब माँ की बात याद आ जाती है....नहीं, गान को बन्दी करना नहीं चाहूँगी। और हाँ, गाऊँगी भी, चाहे टूटे स्वर से—मेरा गान तुम सुनोगे ?'..

'हम हार गये। तुम ने कहा था, हम हार गये, सूर्यास्त को नहीं पकड़ सके। फिर तुम ने कहा था—कहा नहीं, उद्धृत किया था, "उस के केशों में सात तारे थे।" पर अब अपनी ओर देखती हूँ तो सोचती हूँ, मुझ में ? नहीं, मुझ में केवल अन्धकार की एक

बहुत बड़ी लहर—हट जाओ भुवन, मैं तुम्हें प्यार करती हूँ पर मेरा संस्पर्श विषाक्त है.... !

'तुमने डर की बात कही थी। वह एक चीज़ है जो मैंने पहले कभी नहीं जानी। दुःख—हाँ, वह खूब जाना है, अपमान, ग्लानि, ईर्ष्या—ये भी सहे हैं, पर डर....मगर डर को छूत होती है शायद, और तुम्हारा वह नामहीन डर मुझे भी छूता है, एक सिहरन-सा वह मेरी रीढ़ पर से उठता हुआ मेरे मन पर छा गया है—था—किस का डर? तुम से डर? तुम से!! तुम्हारे लिए डर?—? तुम्हें खो दूँगी, यह? लेकिन तुम्हें पाया है, यही तो कभी नहीं सोचा। जागने का डर? न जाने कब से मेरा मन, मेरी आत्मा, मेरी देह, सब सोयी हैं, जड़ हैं, और जड़ से इतर कोई स्थिति में सोचती ही नहीं। आग सुलगती है, धधकती है, ईंधन चुका कर धीमी पड़ जाती है; वैसी आग फिर भड़क सकती है। लेकिन मुक्त आग को बुझा दो—तब राख, कोयले, अध-जली लकड़ी—वह मैं हूँ। उठी हुई लहर जो वहीं जम गयी है। पीछे नहीं जा सकी, पीछे गर्त है—हर तरंग के पीछे गर्त होता है। आगे नहीं जा सकती—गति जड़ हो गयी है। जम गयी हूँ, पिघलूँगी तो पछाड़ खा कर गिरूँगी—क्या वही डर है जो मुझ में जाग गया है—पिघलने का डर? लेकिन मैं तुम्हें अपने से बचाऊँगी भुवन...'

'मैं स्वप्न देख कर उठी हूँ, तुम सो रहे हो, सोओ, मैं जगाऊँगी नहीं। पहले मन हुआ था, स्वप्न तुम से कह दूँ, पर नहीं। तुम्हें देख कर न जाने क्यों एक पंक्ति मन में आयी—तुमने पूछा था एक बार, "कविता लिखती हो?" हाँ, एक कविता मैंने भी लिखी है, पर मेरी कविता उस के शब्द में नहीं है, उस की भावना में है—तुम पहुँचोगे?

शुभाशंसा चूमती है भाल तेरा—
स्नेह-शिशु, उठ जाग।

'तुम सोओ। अपने स्वप्न के लिए तुम्हें नहीं जगाऊँगी। स्वप्न में मैंने तुम्हारे प्रिय किसी को देखा था। न मालूम कौन होगी वह, लेकिन मैंने उसे देखा था, पहचाना था और वह तुम्हें बहुत प्रिय थी। उसे देख कर मेरे मन में स्नेह उमड़ आया—ईर्ष्या होनी चाहिए थी पर नहीं हुई। भुवन, मैं तुम्हारे जीवन में आऊँगी और चली जाऊँगी—मैं जानती हूँ अपने भाग्य की मर्यादाएँ!—पर तुम्हें जो प्रिय हैं उन्हें प्यार कर सकूँगी—सहज भाव से, बिना आयास के। और सोचती हूँ, तुम्हारी करुणा सदैव मुझे शान्ति देकेगी।'....

'तुम ने मेरे जूड़े में लाल फूल खोंस कर मेरा सिर ढक दिया है; तुम ने मेरी पलकें, मेरा मुँह....एक धधकते हुए प्रभा-मंडल से मेरा शीश घिर गया है....क्या इस की दीप्ति दुर्भाग्य के उस मंडल को छार न कर डालेगी जो मेरे साथ रहा है?'

'मैंने तुम्हें गाना सुनाया था: शारद प्राते आमार रात पोहालो। मेरी बंशी, तुम्हें किस के हाथ सौंप जाऊँगी? अब सोचती हूँ, क्या उस में भवितव्य की सूचना थी—क्या

मैं तब जान गयी थी, देख सकी थी....मूक मेरी वंशी, अभी सहसा तुम्हारी बहकी हुई साँस से मुखर हो उठी है, और अभी मूक हो जायगी। होने दो, चुकने दो रात— ! मैं ने गाया था, महाराज, यह किस साज में आप मेरे हृदय में पधारे हैं ? उस में कौतुक भी है, अचरज का चकित भाव भी है, और अपनापे की द्योतक ठिठोली भी है—कोटि शशि-सूर्य लजा कर पैरों में लोट रहे हैं; महाराज, यह किस ठाठ से आप मेरे हृदय में पधारे हैं—मेरा देह-मन वीणा-सा बज उठा है....'

"शीत में बहुत ठिठुर जायें, तो नाक के ठिठुरने के साथ घ्राण-शक्ति मर जाती है। फिर बाहर, भीतर, फूलों में, मन्दिर के धूमायित वातावरण में—कहीं कोई गन्ध नहीं मिलती....लेकिन फिर बिजली की कौंध की तरह सहसा और तीखी वह लौटती है, नासा-पुट गन्ध से भर जाते हैं, सौरभ की तरंग में मानो डूबने लगता है व्यक्ति, साँस बन्द हो जाता है....वैसी ही स्थिति में मैं थी—बरसों की घ्राण-शक्ति-हत, और अब सहसा तुम्हारे धाम में तुम्हारे सौरभ ने छा लिया है....मैं लड़खड़ा गयी हूँ, मूक हूँ, क्या कहूँ नहीं जानती, कैसे कहूँ नहीं सोच सकती....और तुम अभी चले जाओगे—कभी भी....फिर मिले—अगर मिले !—तो शायद कुछ कह पाऊँ—मेरी स्तब्ध आत्मा कुछ....'

'मैं जागती हूँ कि सोती हूँ ? तुम हो, कि स्वप्न हो ? मुझे लगता है कि मैं जागती हूँ, और आश्वस्त हो कर सो जाती हूँ। लेकिन शायद सोती हूँ, सोते में देख कर जाग उठती हूँ....'

रेखा बीच-बीच में उस की ओर देख लेती थी। जानती थी कि वह कुछ सोच रहा है। पर उसने पूछा नहीं। सहसा भुवन के विषय में एक नये संकोच ने, एक व्रीडा ने उसे जकड़ लिया था। क्षण-भर के लिए उसका मन नौकुछिया की उस घटना की ओर गया जब भुवन उस की गोद में रोया था—कैसे वह कह सकी थी जो भी उसने कहा था ? वह पछताती नहीं है, उस ने जो कहा था उन्मुक्त उत्सृष्ट भाव से कहा था, पर....लाज से सिहर कर वह सिमट गयी, पल्ला खींच कर उस ने मानो अपने को और लपेट लिया।

भुवन ने पूछा, "ठंड लगती है ?"

"नहीं, नहीं।" उस की वाणी के अतिरिक्त आवेश को लक्ष्य कर भुवन ने उस की ओर देखा; दोनों की आँखें मिलीं : भुवन की आँखों में स्नेहपूर्ण कौतुक था, रेखा की आँखों में एक अन्तर्मुख लज्जा; पर सहसा उस का मन हुआ, वहीं बाँह फैला कर भुवन को खींच ले, इस पुरुष को, इस शिशु को, इस—'शुभाशंसा चूमती है भाल तेरा....'

* * * *

मानो पहाड़ की छत पर एक हवा-धुली, धूप-मँजी झील, ओट को अधिक कुछ नहीं था, एक ओर खुला घास का पहाड़, जिस के नीचे एक झुरमुट, कुछ दूर पर झील से निकल कर बहता हुआ मुखर पहाड़ी नाला। तेज सनसनाती ठंडी हवा [illegible] में [illegible]

उड़ते छोटे मेघ-खंड, मानो पवन अप्सराओं के नये धुले कंचुक-उत्तरीय उड़ाये लिये जा रहा हो। तुलियन।

घास में से उभरी हुई एक चट्टान पर धूप में दोनों बैठ गये : सामान और तम्बू आने में थोड़ी देर लगेगी—कुलियों को पहले रवाना किया गया था पर राह में वे उन्हें पीछे छोड़ आये थे।

"रेखा, उन के आने से पहले एक गाना गा दो।"

"कैसा ?"

"गाने को कैसा भी होता है ? जो चाहो—तुलियन के सम्मान में—झील, धूप, हवा, बादल, सब के—"

रेखा खड़ी हो गयी। सामने आ कर उस ने उँगलियों से ठोड़ी पकड़ कर भुवन का मुँह उठाया कि उस पर पूरी धूप पड़े, क्षण-भर उसे निहार कर झुक कर चूम लिया। हँस कर कहा, "यानी भुवन के सम्मान में—सारे भुवन के।"

थोड़ी देर बाद फिर वह बैठ गयी :

यदि दो घड़ियों का जीवन
कोमल वृन्तों में बीते
कुछ हानि तुम्हारी है क्या ?
चुपचाप चू पड़ें जीते।
निश्वास मलय में मिल कर
ग्रह-पथ में टकरायेगा,
अन्तिम किरणें बिखरा कर
हिमकर भी छिप जायेगा।*

आरम्भ उत्साह से हुआ था, पर फिर मानो स्वर अनमने हो गये। फिर भी वह गाती रही, फिर गान रुक गया। रेखा ने कहा, "भुवन, क्षमा करो, वह उदासी मेरी अपनी है, गान की नहीं। पर और एक सुनाऊँगी थोड़ी देर बाद—"

भुवन उठा। "चलो, धूप में टहलें।"

रेखा भी खड़ी हो गयी। "लेकिन सूर्यास्त के पीछे नहीं दौड़ूँगी। वैसे इस ऊँचाई पर दौड़ भी नहीं सकती—"

भुवन ने कहा, "तुम्हें तकलीफ़ तो न होगी रेखा ? इतनी ऊँचाई पर काफ़ी कष्ट भी हो सकता है—"

"नहीं, नहीं-नहीं !" रेखा ने दृढ़ता से प्रतिवाद किया, मानो दृढ़ता से हृद्‌गति का भी नियन्त्रण हो जाता हो।

---

*जयशंकर 'प्रसाद'

दोनों झील से कुछ ऊँचाई पर, सम-तल आगे-पीछे टहलने लगे।

दूर कुलियों का स्वर सुनायी दिया।

रेखा ने कहा, "अच्छा भुवन, फिर सही—रात को—आज तो पूर्णिमा होगी न ?"

"सच ? हाँ, आज-कल में ही होनी चाहिए। अच्छा आओ तम्बू की जगह ठीक करें पहले—"

तम्बू भी लग गये घास वाली पहाड़ी पर, झुरमुट से आगे बड़ा तम्बू रहने के लिए, झुरमुट से इधर जहाँ से नाला फूटता था उस के निकट एक छोलदारी सामान और खानसामा के लिए, दूसरी रसोईघर की। दिन छिपते खानसामा ने चाय भी तैयार कर दी। भुवन ने कहा, "इसी समय कुछ डिब्बे-विब्बे खोल कर खा लिया जाय, रात को और बनाने की ज़रूरत है क्या ?"

रेखा ने सहमति प्रकट की। खानसामा को कह दिया गया। वह प्रबन्ध में लग गया। भोजन समाप्त होते न होते उस ने कहा, "हुज़ूर हुकुम करें तो चाय फिर दे सकता हूँ—"

भुवन ने कहा, "अच्छा शुक्रिया—ठीक नौ बजे चाय दे देना।"

रेखा ने एक शाल कन्धे पर डाल ली और कहा, "मैं उस समय तक तम्बू के भीतर नहीं आऊँगी।"

"तो मैं ही कौन बैठ रहा हूँ।"

दोनों फिर बाहर टहलने लगे।

दिन छिप रहा था, लेकिन छिपा ठीक नहीं, क्योंकि द्वाभा में एक आलोक के क्षीण होते न होते दूसरा उज्ज्वल हो गया : बड़े-से चाँद की चन्द्रिका सारे वातावरण में फैल गयी।

दोनों किनारे-किनारे बढ़ते हुए काफ़ी आगे निकल गये। यहाँ पानी के बिलकुल पास एक चट्टान पर बैठ कर रेखा झुक कर हाथ से पानी उछालने लगी। भुवन भी बैठ गया, पानी में हाथ उस ने भी डाल दिये। पानी बहुत ठंडा था। लेकिन उस की छलछलाहट बड़ी मधुर थी; ठंड, ऊँचाई और चाँदनी से स्फटिक से निखरे हुए वातावरण में उस में छोटे घुँघरुओं की-सी रुनझुनाहट थी।

"अँग्रेज़ी हो तो माइंड करोगे ?"

भुवन ने प्रश्न समझते हुए कहा, "बिलकुल नहीं।"

रेखा गाने लगी :

लव मेड ए जिप्सी आउट आफ़ मी !*

भुवन ने आगे झुक कर पानी में खेलता हुआ उस का ठिठुरा हुआ हाथ बाहर निकाल लिया, फिर छोड़ा नहीं।

लव मेड ए जिप्सी आउट आफ़ मी !

---

*प्यार ने मुझे खानाबदोश बना दिया।

बाहर चाँदनी थी, सुन्दर शीतल; ठंड से जड़ित वातावरण ऐसा लगता था, मानो सारा दृश्य एक विशाल हिम-शिला के अन्दर बँधा हो, और बाहर का प्रकाश उस शिला को जगमगा दे....परन्तु फिर भी तम्बू के भीतर की पीली रोशनी सुन्दर और आकर्षक थी। साढ़े नौ बजे थे, तम्बू के निकट आते हुए दोनों ने देखा, भीतर सब सामान ठीक-ठाक सज गया है; मेज़ पर लैम्प के प्रभा-मंडल के छोर पर दो प्याले रखे हैं, और हरे रंग के तौलिये में लिपटी हुई चायदानी—'चा-पोची' तो थी नहीं, और चाय गर्म रखने के लिए यह व्यवस्था की गयी होगी...

आगे एक ओर सफ़री पलंग पर रेखा का बिस्तर बिछा था, चारखाने नीले पलंगपोश से ढँका हुआ; दूसरी ओर नीचे लकड़ी के बड़े पटरों पर भुवन का। ये पटरे उस ने इस लिए मँगा लिये थे कि वर्षा में कदाचित् यन्त्रादि को फ़र्श से ऊँचा रखना पड़े।

रेखा ने कहा, "यह क्या बात है—किफ़ायत, या कि मेरा अतिरिक्त सम्मान—"

"रेखा, खानसामा को तो एक ही खाट का पता था न? और ये पटरे कम नहीं हैं —फिर मेरा हवाई गद्दा है—" कह कर भुवन ने बिछौने का कोना उठा कर दिखा दिया। "बल्कि, मेरा किसी तरह कम सम्मान नहीं किया गया है, इस का प्रमाण यह है कि चाहो तो मैं बदल लेता हूँ।"

दोनों चाय पीने लगे। कुछ बिस्कुट भी ढँके रखे थे।

थोड़ी देर बाद भुवन बिना कुछ कहे उठ कर बाहर चला गया। जाते हुए तम्बू का पल्ला गिरा गया। रेखा ने इसका अभिप्राय समझ लिया, उस ने कपड़े बदल लिये, भीतर जा कर मुँह-हाथ धोया, फिर शाल लपेट ली और पल्ला उठा कर बाहर चली आयी। भुवन कुछ दूर पर टहल रहा था, वहीं चली गयी।

थोड़ी देर साथ टहलता रह कर भुवन तम्बू की ओर लौट गया।

रेखा कुछ और आगे बढ़ गयी। एक चट्टान पर बैठ गयी। थोड़ी देर बाद उस ने एक-एक काँटा निकाल कर जूड़ा खोला, बाल खोल डाले, फिर सिर को एक बार झटक कर उन्हें कन्धों पर फैला लिया। फिर उस ने चाँद की ओर मुँह उठा कर आँखें बन्द कर लीं; उस का सारा शरीर शिथिल हो आया।

ऐसा ही भुवन ने उसे लगभग घण्टे-भर बाद पाया। वह कपड़े बदल कर फिर लौटा नहीं था, यह सोच कर कि रेखा उसी के कारण बाहर रुकी है तो थोड़ी देर में स्वयं आ जायगी, पर जब वह बहुत देर तक न आयी तब वह देखने निकला। पहले एक बार यों ही चारों ओर नज़र दौड़ायी, पर कहीं गति का कोई लक्षण नहीं देखा, सर्वत्र निश्चलता; तब वह आगे बढ़ा।

जब उस की आँखों ने सहसा रेखा का आकार पहचाना, तो वह वहीं ठिठक गया। रेखा ठीक वैसे बैठी थी जैसे लखनऊ में उसने देखा था, शिथिल, शान्त, दूर।

और वह वैसा ही ठिठका रहता, अगर यह न देखता कि रेखा की शाल उस के कन्धों

से गिर गयी है, और उसे होश नहीं है। कन्धों पर का सफ़ेद रेशम रहा है, जैसे छोटे-छोटे पंख।

उस ने शाल उठाते हुए कहा, "पगली, चाँदनी है, सब पी न जा रही हो ठंड से—ऐसे तो तुम्हीं चाँदनी हो जाओगी।"

* * *

"हाँ, बत्ती बुझा दो, पर पल्ला आधा खोल दो कि चाँदनी दीखती रहे।"

भुवन ने एक ओर का पल्ला ऊँचा कर के ऐसे बाँध दिया कि ऊपर से खुला रहे, उस से चाँदनी का एक वृत्त रेखा के पास फर्श पर पड़ने लगा।

"अभी थोड़ी देर में यह बढ़ कर तुम्हारे ऊपर आ जायेगा, न?" रेखा ने कहा।

"अँ—हाँ।"

भुवन लेट गया और उस खुली जगह में से बाहर आकाश देखने लगा। बहुत देर तक वह मुग्ध भाव से देखता रहा, कुछ बोला नहीं। न रेखा कुछ बोली।

सहसा उसे ध्यान आया कि चाँदनी का वह वृत्त उस के ऊपर आ गया है। तब यह देखने को कि रेखा जग रही है या नहीं, उसने उधर देखा।

रेखा ज्यों-की-त्यों बैठी थी, चाँदनी के प्रतिबिम्बित प्रकाश में उसे देखती हुई।

भुवन ने हड़बड़ा कर कहा, "रेखा, ठिठुर जाओगी—"

रेखा ने जैसे सुना नहीं।

भुवन ने उठ कर उस के कन्धे पकड़े—ठंडे, जैसे बर्फ। बलात् उसे लिटा दिया, कम्बल उढ़ा दिये। धीरे-धीरे उस के चेहरे पर हाथ फेरने लगा; चेहरा भी बिल्कुल ठंडा था। उस ने खाट के पास घुटने टेक कर नीचे बैठते हुए रेखा के माथे पर अपना गर्म गाल रखा, उस का हाथ धीरे-धीरे रेखा के कन्धे सहलाने लगा। भुवन ने कम्बल खींच कर कन्धे ढँक दिये। कम्बल के भीतर उस का हाथ रेखा का वक्ष सहलाने लगा—

सहसा वह चौंका। झीने रेशम के भीतर रेखा के कुचाग्र ऐसे थे, जैसे छोटे-छोटे हिम-पिंड....और अब तक जड़ रेखा के सहसा दाँत बजने लगे थे।

"पगली—पगली!"

भुवन ने एकदम खड़े हो कर एक हाथ रेखा के कन्धे के नीचे डाला, एक घुटनों के; उसे कम्बल समेत खाट से उठाया और अपने बिछौने पर जा लिटाया। अपने कम्बल भी उसे उढ़ाये, और उस के पास लेट कर उसे जकड़ लिया।

सहसा रेखा ने बाँहें बढ़ा कर उसे खींच कर छाती से लगा लिया; उसके दाँतों का बजना बन्द हो गया। क्योंकि दाँत उस ने भींच लिये थे; भुवन को उस ने इतनी जोर से भींच लिया कि उन छोटे-छोटे हिम-पिंडों की शीतलता भुवन की छाती में चुभने लगी....

फिर स्निग्ध गरमाई आयी। भुवन ने धीरे-धीरे उस की बाहु-लता की जकड़ ढीली

कर के उसे ठीक से तकिये पर लिटा दिया; और हाथ से उस की छाती सहलाने लगा। चाँदनी कुछ और ऊपर उठ आयी थी, रेखा की वन्द पलकें नये ताँवे-सी चमक रही थीं।

> **दिस दाइ स्टेचर इज लाइक अंटु ए पाम ट्री, एंड दाइ ब्रेस्ट्स टू क्लस्टर्स आफ ग्रेप्स।**
>
> **आइ सेड, आइ विल गो अप टु द पाम ट्री, आइ विल टेक होल्ड आफ़ द वाउज़ देयराफ़: नाउ आलसो दाइ ब्रेस्ट्स शैल बी एज़ क्लस्टर्स आफ़ द वाइन, एंड द स्मेल आफ़ दाइ नोज़ लाइक एप्ल्स।**[१]

सहसा भुवन ने कम्वल हटाया, मृदु किन्तु निष्कम्प हाथों से रेखा के गले से वटन खोले, और चाँदनी में उभर आये उस के कुचों के वीच की छाया-भरी जगह को चूम लिया। फिर अवश भाव से उस की ग्रीवा को, कन्धों को, कर्णमूल को, पलकों को, ओठों को, कुचों को....और फिर उसे अपने निकट खींच कर ढँक लिया :—

सालोमन का गीत उस घिरे वातातरण में गूँजता रहा।

> **आई स्लीप, वट माइ हार्ट वेकेथ; इट इज़ द वॉयस आफ़ माइ विलवेड दैट नाकेथ, सेइंग: ओपन टु मी, माइ सिस्टर, माइ लव, माइ डव, माइ अनडिफ़ाइल्ड, फ़ार माइ हेड इज़ फिल्ड विथ ड्यू, एंड लाक्स विथ द ड्राप्स आफ़ द नाइट...**[२]

भुवन ने अपना माथा रेखा के उरोजों के वीच में छिपा लिया: उन की गरमाई उस के कानों में चुनचुनाने लगी: फिर उस के ओठ वढ़ कर रेखा के ओठों तक पहुँचे, उन्हें चूम कर प्रतिचुम्वित हुए।

> **माइ विलवेड इज़ माइन, एंड आइ एम हिज़, ही फीडेथ एमंग द लिलीज़...**[३]

क्यों भुवन के ओठ शब्दहीन हो गये हैं, स्वरहीन हो गये हैं, क्या वह गीत के ही बोल स्वरहीन हिलते ओठों से कह रहा है या कुछ और कह रहा है?

"रेखा, आओ...."

> **आइ रोज़ अप टु ओपन टु माइ विलवेड, एंड माइ हैंड्स ड्राप्ड विथ मर्ह, एंड माइ फिंगर्स——**[४]

"चाँदनी वहुत है, सव पी न सकोगी....ऐसे में तुम्हीं चाँदनी हो जाओगी।"

---

[१] यह तुम्हारा कलेवर खजूर के तरु की भांति है, और तुम्हारे उरोज दो अंगूर-गुच्छों से। मैंने कहा, मैं खजूर के तरु के समीप जाऊँगा और उस की शाखाएँ गहूँगा, तेरे उरोज अँगूर-गुच्छों से होंगे और तेरे नासापुटों की गन्ध सेवों-सी।

[२] मैं सोती हूँ, पर मेरा हृदय जागता है; मेरे प्रियतम का स्वर दस्तक देकर कहता है: खोलो, मेरी सगी, मेरी प्रिया, मेरी पंडुकी, मेरी अक्षता; मेरे वाल रात के ओस-बिन्दुओं से भींग गये हैं...

[३] प्रियतम मेरा है, मैं उसकी हूँ, पद्मवन में वह विहार करता है।

[४] मैं प्रिय की ओर उमंग कर खिल गयी, मेरे हाथों से अगुरु झरने लगा...

"और तुम, भुवन, तुम ? तुम भी, लेकिन जम कर नहीं, द्रवित हो कर !"

* * *

कभी रेखा जागी। तब चाँदनी शायद दोनों के सटे हुए चेहरों को लाँघ कर ऊपर उठती हुई फिर खो गयी थी; रात का एक ठंडा स्पर्श उस खुली जगह से अन्दर आता हुआ दोनों के तपे माथे और गालों को सहला रहा था; रेखा ने एक लम्बी साँस खींच कर उसे पी लिया; उस के जिस हाथ पर भुवन सोया था उसकी उँगलियाँ उस के माथे के उलझे बालों से बड़े कोमल स्पर्श से खेलने लगीं, कि वह जागे नहीं; फिर वह दुबारा सो गयी।

कभी भुवन जागा। उस की चेतना पहले केन्द्रित हुई उस हाथ में जो रेखा के वक्ष पर पड़ा उस की साँस के साथ उठता-गिरता—उफ़, कितने कोमल आलोड़न से, जिस से भुवन को लगता था कि उस की समूची देह ही मानो धीरे-धीरे आलोड़ित हो रही है, मानो बहती नाव में वह सोया हो....अवश हाथ, जिन्हें वह हिला भी नहीं सकता, अवश देह, लेकिन एक स्निग्ध गरमाई की गोद में अवश—चाँदनी वह अधिक पी गया है—'चाँदनी, मदमाती, उन्मादिनी'! ....और उस मीठी अवशता को समर्पित वह भी फिर सो गया. . .

* * *

फिर भुवन जागा, इस बार सहसा सजग; कुहनी पर जरा उठ कर उस ने देखा, रेखा सीधी सोयी है। उस ने झुक कर धीरे से उस के ओठ चूम लिये; रेखा जागी नहीं पर उस के ओठ ऐसे हिले मानो स्वप्न में कुछ कह रही है। फिर सालोमन का गीत गूँज गया :

एंड द रूफ़ आफ़ दाइ माउथ लाइक द बेस्ट वाइन फ़ार द बिलवेड, दैट गोएथ डाउन स्वीटली, काज़िंग द लिप्स आफ़ दोज़ दैट आर एस्लीप टु स्पीक...[1]

और उस ने बड़े जोर से रेखा के ओठ चूम लिये, वह जागी और उस की ओर उमड़ आयी :

लेट अस गेट अप अर्ली टु द विनयार्ड्स, लेट अस सी इफ़ द वाइन फ्लरिश, ह्वेदर द टेंडर ग्रेप्स एपीयर, एंड द पोमेग्रेनेट्स बड फ़ोर्थ : देयर विल आइ गिव दी आफ़ माइ लव्ज़।[2]

---

[1] और तेरा मुख प्रियतम के लिए उत्तम मदिरा की भाँति है जिसका स्वाद मधुर है और जिस से सोये हुओं के ओठ भी मुखर हो उठते हैं।

[2] भोर होते ही अंगूरों के कुंज की ओर चलें; देखें कि लता कैसी है, कि नये अंगूर आये या नहीं, अनार की कलियां फूटी या नहीं; और वहीं मैं तुम पर अपना प्रेम निछावर करूँगी।

कर के उसे ठीक से तकिये पर लिटा दिया; और हाथ से उस की छाती सहलाने लगा। चाँदनी कुछ और ऊपर उठ आयी थी, रेखा की बन्द पलकें नये ताँबे-सी चमक रही थीं।

> **दिस दाइ स्टेचर इज लाइक अंटु ए पाम ट्री, एंड दाइ ब्रेस्ट्स टू क्लस्टर्स आफ ग्रेप्स।**
>
> **आइ सेड, आइ विल गो अप टु द पाम ट्री, आइ विल टेक होल्ड आफ़ द बाउज़ देयराफ़: नाउ आल्सो दाइ ब्रेस्ट्स शैल बी एज़ क्लस्टर्स आफ़ द वाइन, एंड द स्मेल आफ़ दाइ नोज़ लाइक एप्ल्स।**[1]

सहसा भुवन ने कम्बल हटाया, मृदु किन्तु निष्कम्प हाथों से रेखा के गले से बटन खोले, और चाँदनी में उभर आये उस के कुचों के बीच की छाया-भरी जगह को चूम लिया। फिर अवश भाव से उस की ग्रीवा को, कन्धों को, कर्णमूल को, पलकों को, ओठों को, कुचों को....और फिर उसे अपने निकट खींच कर ढँक लिया :—

सालोमन का गीत उस घिरे वातातरण में गूँजता रहा।

> **आई स्लीप, बट माइ हार्ट वेकेथ; इट इज़ द वॉयस आफ़ माइ बिलवेड दैट नाकेथ, सेइंग: ओपन टु मी, माइ सिस्टर, माइ लव, माइ डव, माइ अनडिफ़ाइल्ड, फ़ार माइ हेड इज़ फिल्ड विथ ड्यू, एंड लाक्स विथ द ड्राप्स आफ़ द नाइट...**[2]

भुवन ने अपना माथा रेखा के उरोजों के बीच में छिपा लिया: उन की गरमाई उस के कानों में चुनचुनाने लगी: फिर उस के ओठ बढ़ कर रेखा के ओठों तक पहुँचे, उन्हें चूम कर प्रतिचुम्बित हुए।

> **माइ बिलवेड इज़ माइन, एंड आइ एम हिज़, ही फीडेथ एमंग द लिलीज़...**[3]

क्यों भुवन के ओठ शब्दहीन हो गये हैं, स्वरहीन हो गये हैं, क्या वह गीत के ही बोल स्वरहीन हिलते ओठों से कह रहा है या कुछ और कह रहा है?

"रेखा, आओ...."

> **आइ रोज़ अप टु ओपन टु माइ बिलवेड, एंड माइ हैंड्स ड्राप्ड विथ मर्ह; एंड माइ फिंगर्स——...**[4]

"चाँदनी बहुत है, सब पी न सकोगी....ऐसे में तुम्हीं चाँदनी हो जाओगी।"

---

[1] यह तुम्हारा कलेवर खजूर के तरु की भाँति है, और तुम्हारे उरोज दो अंगूर-गुच्छों से। मैंने कहा, मैं खजूर के तरु के समीप जाऊँगा और उस की शाखाएँ गहूँगा, तेरे उरोज अँगूर-गुच्छों से होंगे और तेरे नासापुटों की गन्ध सेवों-सी।

[2] मैं सोती हूँ, पर मेरा हृदय जागता है; मेरे प्रियतम का स्वर दस्तक देकर कहता है: खोलो, मेरी सगी, मेरी प्रिया, मेरी पंडुकी, मेरी अक्षता; मेरे बाल रात के ओस-बिन्दुओं से भीग गये हैं...

[3] प्रियतम मेरा है, मैं उसकी हूँ, पद्मवन में वह विहार करता है।

[4] मैं प्रिय की ओर उमंग कर खिल गयी, मेरे हाथों से अगुरु झरने लगा...

...वन; तुम ? तुम भी, लेकिन जम कर नहीं, द्रवित हो कर !...

* * *

...जागी । तब चाँदनी शायद दोनों के सटे हुए चेहरों को लाँघ कर ऊपर
...र खो गयी थी; रात का एक ठंडा स्पर्श उस खुली जगह से अन्दर आता
...तपे माथे और गालों को सहला रहा था; रेखा ने एक लम्बी साँस खींच कर
...ा; उस के जिस हाथ पर भुवन सोया था उसकी उँगलियाँ उस के माथे के
...ों से बड़े कोमल स्पर्श से खेलने लगीं, कि वह जागे नहीं; फिर वह दुबारा सो...

...ी भुवन जागा । उस की चेतना पहले केन्द्रित हुई उस हाथ में जो रेखा के वक्ष
...ा उस की साँस के साथ उठता-गिरता—उफ़, कितने कोमल आलोड़न से, जिस से
...को लगता था कि उस की समूची देह ही मानो धीरे-धीरे आलोड़ित हो रही है,
...ी बहती नाव में वह सोया हो....अवश हाथ, जिन्हें वह हिला भी नहीं सकता, अवश
..., लेकिन एक स्निग्ध गरमाई की गोद में अवश—चाँदनी वह अधिक पी गया है—
...ाँदनी, मदमाती, उन्मादिनी' ! ....और उस मीठी अवशता को सर्मपित वह भी फिर
सो गया.

* * *

फिर भुवन जागा, इस बार सहसा सजग; कुहनी पर जरा उठ कर उस ने देखा, रेखा
सीधी सोयी है। उस ने झुक कर धीरे से उस के ओठ चूम लिये; रेखा जागी नहीं पर
उस के ओठ ऐसे हिले मानो स्वप्न में कुछ कह रही है। फिर सालोमन का गीत गूँज गया :

**एंड द रूफ़ आफ़ दाइ माउथ लाइक द बेस्ट वाइन फ़ार द बिलवेड, दैट गोएथ
डाउन स्वीटली, काज़िंग द लिप्स आफ़ दोज़ दैट आर एस्लीप टु स्पीक...**[1]

और उस ने बड़े जोर से रेखा के ओठ चूम लिये, वह जागी और उस की ओर
उमड़ आयी :

**लेट अस गेट अप अर्ली टु द विनयार्ड्स, लेट अस सी इफ़ द वाइन फ़्लरिश...
व्हेदर द टेंडर ग्रेप्स एपीयर, एंड द पोमेग्रेनेट्स बड फ़ोर्थ : देयर विल आइ गि...
दी आफ़ माइ लव्ज़ ।**[2]

---

[1] और तेरा मुख प्रियतम के लिए उत्तम मदिरा की भाँति है जिसका स्वाद म...
हैं और जिस से सोये हुओं के ओठ भी मुखर हो उठते हैं।

[2] भोर होते ही अंगूरों के कुंज की ओर चलें; देखें कि लता कैसी है, कि नये...
आये या नहीं, अनार की कलियां फूटी या नहीं; और वहीं मैं तुम पर अपना प्रेम...
वर करूँगी ।

और वह उमड़ना फिर एक आप्लवनकारी लहर हो गया।

आइ एम ए वाल, एंड माई ब्रेस्ट्स लाइक टावर्स; देन वाज़ आइ इन हिज़ आइज़ एज़ वन दैट फाउंड फेवर...*

ऐसा ही भोर के चोर-पैर आलोक ने उन्हें पाया। पर जगाया नहीं, चुपके से एक ओर हो गया। फिर धूप की एक किरण तम्बू के पल्ले से झाँकती हुई आयी—पर आगे नहीं बढ़ी।

रेखा उठी। पल्ले को खोल कर उस ने गिरा दिया, एक क्षण-भर भुवन की ओर निहारा, फिर बाहर चली गयी।

अनन्तर भुवन उठा। अचंचल हाथों से उस ने रेखा के कम्बल उठा कर उस के बिस्तर पर डाले, अपने बिस्तर की सलवटों को ठीक-ठाक किया, पल्ले की ओर बढ़ा पर लौट गया, भीतर जा कर मुँह धोया और पोंछता हुआ बाहर निकला; एक बार चारों ओर नज़र दौड़ायी; रेखा के तकिये में जो गड्ढा था जहाँ उस का सिर रहा होगा सहसा झुक कर उसे चूमा, फिर तम्बू के दोनों पल्ले उलट दिये और बाहर निकल दोनों बाँहें फैला कर सूर्य की धूप को गले से लगाते हुए मानो नये दिन का अभिनन्दन किया।

* * *

धूप चढ़ आयी। नाश्ते के बाद भुवन ने पूछा, "तैरने चलोगी ?"

"हाँ। मैं कास्ट्यूम लायी हूँ !"

"पानी बहुत ठंडा है—जम जाओगी।"

यह वाक्य प्रतिध्वनि-सा लगा। सहसा स्मृति की बाढ़ आयी। "तुम तो—चाँदनी में ही जम गई थीं !" भुवन की आँखें मिलीं, उन में कौतुक था। रेखा ने आँखें नीचे करते और मुँह दूसरी ओर फेरते हुए कहा, "और तुम—तुम पिघल गये थे—?"

फिर सहसा लज्जित हो कर सिमटती-सी दूसरी ओर चल दी।

भुवन ने पास जा कर कहा, "लजाती हो—मुझ से—अब ?"

"हटो—तुम से नहीं तो और किस से लजाऊँगी ? और कौन—" और रेखा तम्बू के अन्दर भाग गयी।

भुवन ने नीचे जा कर खानसामा से कहा कि दोपहर का कुछ हलका भोजन तैयार कर के रख दे, और फिर पहलगाँव जा कर और जो-कुछ ताज़ा सामान लाना हो ले आवे—दो दिन के लायक, क्योंकि परसों फिर नीचे जाना होगा बाकी सामान के लिए। अभी वे लोग तैरने जायेंगे, लौट कर स्वयं कुछ खा लेंगे। खानसामा ने केवल कहा, "हुज़ूर, पानी बहुत ठंडा है," और अपने काम में लग गया।

***मैं एक प्राचीर हूँ, और मेरे उरोज मानो दुर्ग; मुझे तुम ने अपनी अनुकम्पा का पात्र पाया हूँ।**

वन तम्बू में गया। रेखा मेज़ के पास खाट के सिरे पर बैठी कुछ सोच रही थी।

फिर कुछ लिखना चाहती हो? तुम पहले जीती हो और फिर लिखती हो, कि लिखती हो फिर जीती?"

"यही भेद नहीं पहचान पा रही हूँ—यह मेरा सौभाग्य है। और तुम्हारा वरदान।" रुक कर वह बोली, "मैं कहानी लिखने जा रही थी—तुम्हारे पढ़ने के लिए। पर तुम्हें ही देती हूँ।"

भुवन ने घुटने टेक कर कुहनियाँ मेज पर रखीं, ठोड़ी हथेली पर जमायी, बिलकुल च्चों की-सी मुद्रा बनाता हुआ बोला—"सुनाओ।"

"हँसना मत! तुम ने पंडितराज कोक का नाम सुना है?"

"हाँ, पर यह भी सुना है कि सभ्य लड़कियाँ उस का नाम नहीं लेतीं।"

"नहीं लेती होंगी। उन को हक ही नहीं होगा। पर बीच में मत बोलो, नहीं तो नहीं कह पाऊँगी। कोक कश्मीर-राज के मन्त्री थे, पर कैसे हुए इसी की कहानी है। राजा की एक कन्या थी। राज-भर में नंगी फिरा करती थी। टोकने पर कहती थी, 'मुझे काहे की शरम? राज्य में मैं किसी को पुरुष मान कर देखूँ तब तो लजाऊँ? मैं किसी को देखती ही नहीं।'

"एक दिन कोक वहाँ आये, उन्होंने राजकुमारी को देखा। उस से आँखें चार होते ही सहसा वह लजा गयी; उसे लगा वह नंगी है; भाग गयी और जा कर कपड़े पहन लिये।"

वह बहुत देर तक रुकी रही। फिर भुवन ने कहा, "'फिर' पूछने की इजाजत है?"

"बस। इतनी ही कहानी मैं सुनाना चाहता थी। वैसे बाद में कोक से उस का विवाह हुआ, और उसी को अपने सब रहस्य सिखाने के लिए कोक ने अपना ग्रन्थ लिखा [illegible] वह अलग कहानी है।"

"ओः!" कह कर भुवन चुप हो गया।

रेखा ने सहसा फिर कहा, "यह कहानी मुझे जानते हो किस ने सुनायी [illegible] मेरा शाप छूट गया है, मैं नाम ले सकती हूँ—हेमेन्द्र ने। क्यों, कब [illegible] होगा। पर—उसे भी पुरुष कर के मैंने जाना नहीं था।"

भुवन उसे चुपचाप देखता रहा। फिर एक लम्बी साँस उस ने ली [illegible] धीरे-धीरे रेखा के केश सहलाता रहा।

थोड़ी देर बाद बोला, "अच्छा चलो तैरने—"

"चलो, मैं आती हूँ।"

उन्होंने चारों ओर देखा। निर्जन—कहीं कोई नहीं दीख रहा था। एक ओर झील का विशाल मुकुर, और सब ओर आकाश, नीला, मुक्त-अतल....

रेखा ने कहा, "देखो, हम दुनिया की छत पर हैं।"

तैरने के बाद बदन सुखा कर वह धूप में लेटे रहे थे। फिर लौट कर खाना खाया था, और थोड़ी देर के लिए फिर धूप में आये थे, उस से शरीर अलसा गया तो जा कर थोड़ी देर सो गये थे। फिर रेखा ने उठ कर उसे उठाया था, दोनों बिस्तर ठीक कर दिये थे, "घूमने नहीं चलोगे—फिर धूप चली जायगी?" और उसी तरह भटकते हुए नंगे पैर ही दोनों यहाँ तक चढ़ आये थे....

भुवन एक चपटी चट्टान पर पाँव फैला कर बैठ गया।

रेखा ने खड़े-खड़े पूछा, "भुवन, मेरी मोहलत कब तक की है?"

भुवन अचकचा गया। कुछ उत्तर न दे सका।

"बोलो?"

भुवन ने धीरे-धीरे कहा, "परसों पहलगाँव जाना होगा, सामान लिवाने—"

रेखा ने शान्त स्वर से कहा, "अच्छा।" उस में कोई आक्रोश, प्रतिवाद, आवेश, कुछ नहीं था, केवल एक स्थिर स्वीकार। उस ने दोनों हाथ उठा कर एक बड़ा वृत्त बनाते हुए फैलाये और फिर नीचे गिरा लिये—न मालूम अँगड़ाई लेते हुए, या उस विस्तीर्ण आकाश को बाँहों में समेटते हुए।

सहसा भुवन ने भर्राये कंठ से कहा, "आओ!" रेखा ने मुड़ कर देखा, उस का हाथ रेखा की ओर बढ़ा है एक आह्वान में; उस पुकार को उस ने समझा, भुवन के पास घुटने टेकते और झुकते हुए उस ने फुसफुसाते स्वर में उत्तर दिया, "आयी, लो—"

साक्षी हों सूर्य, और आकाश, और पवन, और तले बिछी घास और चट्टानें, साक्षी हो अन्तरिक्ष के अगणित देवता और अकिंचन वनस्पतियाँ—

लेकिन यह एक सत्य है जो कोई साक्षी नहीं माँगता, सिवाय अपने ही भीतर की निविड़ समर्पण की पीड़ा के, अपने ही में निहित, स्पन्दित और क्रियाशील असंख्य सम्भावनाओं के....

* * *

साँझ, रात, दूर टुनटुनाती गोधूली की घंटियाँ, शुक्र तारा, तारे, चाँद, लहरियों पर चाँदनी की विछलन, छोटे-छोटे अभ्र-खंड, ठंडी हवा, सिहरन, ऊँचाई, ऊँचाई के ऊपर आकाश में चुभता-सा पहाड़ का सींग, आकाश....सब का अर्थ है, सब-कुछ का अर्थ है, अभिप्राय है; ठिठुरे हाथ, अवश गरमाई, रोमांच, सिकुड़ते कुचाग्र, कनपटियों का स्पन्दन, उलझी हुई देहों का घाम, कानों में चुनचुनाते रक्त-प्रवाह का संगीत—इन सब का भी अर्थ है, अभिप्राय है, प्रेष्य सन्देश है; नहीं है तो इन सब के योगफल और समन्वय प्रकृति

का ही अर्थ नहीं है, अभिप्राय नहीं है, केवल उद्देश्य.....

* * *

क्यों सब-कुछ का अर्थ है—दूसरा, गहरा अर्थ ? ऐसा ही रहा, तो और एक-आध दिन में हर स्थान का, हर दृश्य का, हर बात का एक गहनतर, गोपनतम अर्थ हो जायगा, एक रागात्मक ऐश्वर्य—तब रेखा किसी ओर मुड़ नहीं सकेगी बिना उस अर्थ से अभिसिंचित हुए.... भुवन पूछता है, "पहाड़ पर चलोगी ?" तो वह सिहर उठती है, "ठंड तो नहीं लगती ?" तो लजा जाती है, "आओ, बैठें" तो मानो उस के घुटने मोम हो जाते हैं.... लेकिन ऐसा रहेगा नहीं, और एक दिन भी नहीं, यह दोपहर ढलेगी तो जो रात होगी, उस के बाद जो सवेरा होगा....

तीसरे पहर फिर घूमने पहाड़ पर जाने की बात थी, शायद उस पार तक, पर दोपहर की संक्षिप्त नींद से उठ कर उन्होंने देखा, बादल का एक बड़ा-सा सफ़ेद साँप झील के एक किनारे से उमड़ कर आ रहा है, और उस की बेडौल गुँजलक धीरे-धीरे सारी झील पर फैली जा रही है, थोड़ी देर में वह सारी झील पर छा कर बैठ जायगा, और फिर शायद उस का फन ऊपर पहाड़ की ओर बढ़ेगा—

भुवन ने कहा, "शायद बारिश हो, नहीं जायेंगे।"

तम्बू के सामने के चँदोवे में, नीचे पटरे डाल कर उन पर कुछ बिछा कर दोनों बैठ रहे, देखते रहे बादल को धीरे-धीरे झील पर छाते हुए। जब वह घाटी से उमड़ कर आया, तब उस का बड़ा स्पष्ट आकार था, पर झील पर आ कर वह बिखरने लगा था, बादल की अपेक्षा एक धुन्ध की तरह ही, झील की सतह को दुलराता हुआ....

"देखते हो, बादल कैसे झील को दुलराता है—"

ओफ़, ये गहनतर अर्थ....रेखा की छाती में गुदगुदी होने लगती है, वह चाहती है कि भुवन का सिर खींच कर वहाँ छिपा ले, भुवन के ओठों को भींच ले कुचों के बीच जहाँ उस ने दो दिन पहले पहली बार चूमा था....लेकिन वह निश्चल बैठी है, बिल्कुल निश्चल, भुवन का ही हाथ उस का हाथ खोजता आता है और उस पर टिक जाता है, बहुत धीरे-धीरे उसे दुलराता हुआ....

उस में भी अर्थ है, गहनतर अर्थ, उस धीरे-धीरे दुलराते हाथ में.....

झील बिल्कुल छिप गयी। केवल एक सफ़ेद धुन्ध की दीवार: कहीं कोई दिशा नहीं, क्षितिज नहीं; दोनों धुन्ध में खो गये, केवल वे दोनों, तम्बू का चँदोवा, और धुन्ध, धुन्ध, व्यापक धुन्ध.....

भुवन ने सहसा उदास हो कर कहा, "कल—"

रेखा ने सहसा उसे रोक दिया। कल कल, आज क्यों ? वह नहीं कहने देगी भुवन को कुछ भी—पर भुवन ने जब फिर कहना चाहा, "कल इस समय—" तो रेखा ने बढ़ कर

अपने ओठ उस के ओठों पर रख दिये और उसे चुप करा दिया।

बस इतना ही, चँदोवा भी नहीं, धुन्ध में केवल चेहरे, केवल मिली हुई आँखें, ओठ—

* * *

लेकिन रात को जब भुवन ने बड़े आदर से उसे अपने पास लिटा कर अच्छी तरह उढ़ा दिया, और एक कुहनी पर टिके-टिके धीरे-धीरे उसे थपकने लगा, तब एक बड़ी गहरी उदासी ने उसे पकड़ लिया। भुवन की किसी बात का कोई उत्तर उस ने न दिया, उस के पास लेटी, एक शिथिल हाथ उस की कमर पर डाले, अपलक, शून्य, न देखती हुई दृष्टि से उस की छाती की ओर देखती रही। भुवन जब बहुत आग्रहपूर्वक पूछता, तो कभी अँग्रेजी में, कभी बँगला में, कभी हिन्दी में कुछ गुनगुना देती—कभी पद्य, कभी गद्य—अपनी ओर से कुछ न कहती। एक बार भुवन ने कुछ शिकायत के-से स्वर में कहा, "तुम सिर्फ कोटेशन बोल रही हो—अपना कुछ नहीं कहोगी ?"

तब उस ने खोये-से स्वर में कहा, "अपना ? अपना क्या ? मैं सिर्फ कोटेशन बोलती हूँ, भुवन, क्योंकि मैं स्मृति में जी रही हूँ।"

भुवन चुप हो गया। धीरे-धीरे रेखा की आविष्ट उदासी उस पर छा गयी, उस ने धीरे-धीरे अपना सिर रेखा के माथे पर टेक दिया और निश्चल हो गया। बीच-बीच में वह अनमने हाथ से उसे दो-एक बार थपक देता, या अनमने ओठों से उस की पलकें छू लेता, बस।

बहुत हल्की-सी बारिश होने लगी। तम्बू पर बूंदों की थाप पहले तीखी पड़ी, पर वह जैसे-जैसे भीगता गया वह थाप भारी होती गयी; थोड़ी देर में एक मन्द्र एकस्वर उन के उदास राग में तानपूरे की संगत करने लगा....

न जाने कब धीरे-धीरे दोनों सो गये। प्रकृति को कोई अर्थ नहीं है, अभिप्राय नहीं है, केवल उद्देश्य; प्राणिमात्र उन के अनुगत हैं।

* * *

वापसी का रास्ता सदैव बहुत छोटा होता है; विशेषकर जब दुनिया की छत पर से नीचे उतरें : वह उतराई वैसी नहीं होती कि पैर पसार कर, पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण से मानो मुक्त, हवा पर तिर जायें और जा कर उतरें न जाने कहाँ दूर, दूर वायुमण्डल के पार एक श्वासरुद्ध, निरे आलोक की दूसरी दुनिया में; यह उतराई होती है नीचे—मिट्टी की, लोगों के पैरों से रौंदी हुई, धरती पर.....

पहलगांव दीखने लगा, तो रेखा ने धीरे-धीरे, बिना आग्रह के, मानो उस की बात न भी मानी जाय तो कोई बात नहीं ऐसे कहा, "अभी तो नहीं पहुँचे होंगे—उधर से ऊपर से चलें—"

भुवन तुरत मुड़ गया।

चलने से पहले भुवन ने कहा था, "रेखा, अभी क्या जल्दी है; और दो दिन रह जाओ—मैं कल जा कर सामान लिवा लाऊँ—"

रेखा ने उसकी आँखों में देखा था। नहीं, औपचारिक बात नहीं थी; भुवन सचमुच उसे ठहरने को कह रहा था।

यही ठीक है, यही ठीक है। यहाँ वह विदा लेने नहीं आयी, विदा देने आयी है। भुवन उसे रहने को कहता रहे, सुनते-सुनते ही वह चली जाय। यही ठीक है....उस ने सहसा कड़े पड़ कर कहा था, "नहीं भुवन, जाऊँगी। मैंने वचन दिया था।"

चलते हुए वे सीधे रास्ते से नीचे नहीं उतरे थे, पहले ऊपर चढ़े थे—पहाड़ की छत पर—रेखा आगे-आगे। ऊपर पहुँच कर रेखा ने एक बार चारों ओर देखा था, रुक-रुक कर, मानो एक-एक स्थल को दृष्टि में बसाते हुए, स्मृति की गाँठ बाँधते हुए; फिर कहा था, "भुवन, जाने से पहले मैं एक बात कहना चाहती हूँ। आइ एम फ़ुलफ़िल्ड। अब अगर मैं मर जाऊँ तो परमात्मा के—प्रकृति के—प्रति यह आक्रोश ले कर नहीं जाऊँगी कि मैंने कोई भी फ़ुलफ़िलमेंट नहीं जाना—कृतज्ञ भाव ही ले कर जाऊँगी—परमात्मा के प्रति और—भुवन, तुम्हारे प्रति।" और हठात् वह भुवन के पैरों की ओर झुक गयी थी और भुवन के चौंकते-चौंकते उस ने भुवन के पैरों की धूल ले ली थी।

चुपचाप वे उतरते गये थे। रुद्ध-कंठ, स्तब्ध-प्राण, आविष्ट।

फिर सहसा पहलगाँव दीख गया था। रेखा रुक गयी थी; पहलगाँव की ओर ताकते-ताकते ही उस ने भुवन का हाथ पकड़ा था और दबा कर छोड़ दिया था।

जिस रास्ते से वे चले, उस में नदी या कि बड़ा पहाड़ी नाला पड़ता था। पुल था, वे पार हो गये। पर पहलगाँव इसी पार था, इस नदी और शेषनाग नदी के संगम पर। फिर भी दोनों उसी पार से धीरे-धीरे नाले के साथ उतरने लगे।

आधा मील आगे जाकर भुवन ने देखा; एक पेड़ का तना नदी के आर-पार पड़ा है। स्पष्ट ही वह पुल का काम देने के लिए डाला गया है, पैदल इस पर आ-जा सकते हैं। भुवन ने पूछा, "इस से पार चलें—सकोगी ?"

"अब सब-कुछ सकूँगी, भुवन !" रेखा बोली। भुवन ठीक समझ नहीं सका कि इस का अभिप्राय क्या है: आगे बढ़ कर तेज पैरों से तने पर चल चली। मँझधार जा कर रुकी, नीचे पानी की ओर देखा, और फिर वहीं बैठ गयी। भुवन भी कुछ दूर आगे बढ़ कर बैठ गया।

रेखा गाने लगी। उस का गला भर्रा रहा था, स्वर मानो अब टूटा, अब टूटा, पर वह चेहरे पर एक मुस्कान लिये गाये जा रही थी, किसी बात का उसे होश नहीं था, यहाँ तक कि भुवन को लगा, उस की उपस्थिति की खबर भी रेखा को नहीं है :

तोमा सुरेर धारा झरे जेथाय तारि पारे

देबे कि गो वासा आमाय देबे कि एकटि धारे :
तोमार सुरेर धारा झरे जेथाय तारि पारे।
आमि शुनबो ध्वनि काने आमि भरबो ध्वनि प्राणे
आमि शुनबो ध्वनि
सेइ ध्वनि ते चित्त वीणाय तार बाँधिबो बारे-बारे।
देबे कि गो वासा आमाय देबे कि....
तोमार सुरेर धारा झरे जेथाय तारि पारे।
देबे कि गो वासा आमाय देबे कि....*

मानो दूर, अलग हटाया हुआ, भुवन सोचने लगा। एक अद्‌भुत भाव उस के मन में उठा। अभी पीछे देखने, सोचने, परखने का सामर्थ्य उस में नहीं था, इतना ही उस के मन में उठा कि यह उस के जीवन का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सन्धि-स्थल है.....क्या वह भी रेखा की तरह कह सकता है कि कि अब वह फुलफिल्ड है, कि अब वह मर सकता है? पर फुलफ़िल होना क्या है? एक तन्मयता उस ने जानी है, एक अभूतपूर्व तन्मयता; लेकिन स्वयं वह जो जान पाया है उस से कुछ अधिक और कुछ अधिक गहरा रेखा उस के निमित्त से जान सकी है—अधिक गहरा क्योंकि वह स्त्री है, और स्त्री होते हुए भी उस ने वह साहस किया है जो शायद भुवन में भी नहीं है; अधिक गहरा इस लिए कि उसे जानने के लिए पहले जाना कितना कुछ भुलाना भी पड़ा है.....तो क्या यही फुलफ़िल्मेंट नहीं है कि कोई किसी को वह चरम अनुभूति दे सके—देने का निमित्त बन सके—जो जीवन की निरर्थकता को सहसा सार्थक बना देती है? सचमुच, ऐसे सन्धि-स्थल पर ही मरना चाहिए, यह कहते हुए कि मैं कुछ दे सका जो मुझ से बड़ा है, मुझ से अच्छा है. . .अगर वह यहीं से नीचे कूद पड़े—रेखा गाना समाप्त कर के मुड़ कर देखे कि वह नहीं है, गुम हो गया है, तो—

लेकिन रेखा ने सहसा गाना बन्द कर दिया। पुकारा "भुवन! भुवन!"

"हाँ।"

"यहाँ आओ।"

भुवन पास सरक आया।

"मेरा हाथ पकड़ो।"

भुवन ने पकड़ लिया।

"भुवन, तुम वैज्ञानिक हो। लेकिन तुम्हारी आकांक्षा क्या थी—वैज्ञानिक होने की ही, या और कुछ?"

---

*तुम्हारे स्वर की धारा झरती है जहाँ, वहीं एक किनारे क्या मुझे स्थान दोगे? मैं कान से ध्वनि सुनूंगी, प्राणों में ध्वनि भर लूंगी; उसी ध्वनि से चित्त-वीणा के तार बार-बार बाँधूंगी।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

"क्यों ?" कह कर भुवन तनिक रुका, फिर जैसे सच बता देने को बाध्य हो, ऐसे बोला, "मेरा स्वप्न था डाक्टर होने का—बहुत बड़ा सर्जन—"

"और मेरा था बीनकार होने का—बहुत बड़ी बीनकार।"

दोनों थोड़ी देर चुप रहे। फिर रेखा ने धीरे-धीरे कहा: "उसे मैं वीणा भी सिखाऊँगी—और वह बड़ा सर्जन भी होगा।"

एक सन्नाटा—नदी के स्वर से स्पन्दित।

थोड़ी देर बाद वह खड़ी हो गयी। भुवन का हाथ पकड़े-पकड़े उसे उठाया, और हाथ पकड़े ही पार हो गयी।

बस्ती के पास भुवन ने पूछा, "पहलगाँव ठहरोगी ? मैं चौथे-पाँचवें आऊँगा डाक-वाक देखने—"

"शायद, अभी कुछ सोचा नहीं—"

लेकिन भुवन के कुली जब आ गये, और वह उन्हें आगे चला कर थोड़ी देर होटल के बरामदे में रेखा के पास खड़ा रहा, और फिर सहसा कुछ भी कहना असम्भव पा कर रेखा के हाथ को जोर से भींच कर, एक कन्धे से उस का आंधा आलिंगन कर के जल्दी से उस से टूट कर, अलग हो कर बिना लौट कर देखे चला गया—रेखा भी बोली नहीं, केवल बेबस हाथ बढ़ाये खड़ी रह गयी—उस के घंटा-भर बाद जब कुली ऊपर से रेखा का सामान ले कर आ पहुँचा, तो वह रुकी नहीं, तत्काल बस में जा बैठी और श्रीनगर के लिए रवाना हो गयी।

* * *

चौथे-पाँचवें दिन भुवन पहलगाँव आया। सीधा होटल गया। मालूम हुआ कि रेखा वहाँ ठहरी नहीं, उसी दिन चली गयी। फिर वह डाकघर डाक पूछने गया। हाँ, तीन-चार चिट्ठियाँ थीं। उस ने ले लीं। हाँ, एक बड़े लिफाफे पर रेखा के अक्षर थे। उस ने लिफाफा खोला। ठीक पत्र नहीं था, अलग-अलग कागज के कई टुकड़े थे। भुवन ने जहाँ-तहाँ पढ़ा—एक-आध जगह कविता की पंक्तियाँ थीं—

आई सेड टु माइ सोल: बी स्टिल, एंड वेट विदाउट होप
फार होप वुड बी होप आफ़ द रांग थिंग, वेट विदाउट लव
फार लव वुड बी लव आफ़ द रांग थिंग; देयर इज़ येट फेथ;
बट द फ़ेथ एंड द लव एंड द होप आर आल इन द वेटिंग। . . .*

---

*मैंने अपनी आत्मा से कहा: स्थिर हो और बिना आशा के प्रतीक्षा कर क्योंकि आशा असत् की आशा होगी; बिना प्रेम के प्रतीक्षा कर, क्योंकि प्रेम असत् का प्रेम होगा। श्रद्धा फिर भी रह जाती है, किन्तु श्रद्धा और प्रेम और आशा सब प्रतीक्षा में ही हैं।

—टी० एस० एलियट

फिर भुवन ने सब कागज़ जेब में डाल लिये कि तुलियन जा कर एकान्त में पढ़ेगा.....

"मैं सोचना चाहती हूँ, पर सोच नहीं सकती। ठीक सोचना ही चाहती हूँ, इस में भी सन्देह हो आता है।

"कुछ महान्, कुछ विराट् घटित हुआ है, ऐसा थोड़ा-सा आभास होता है। लेकिन कहाँ ? मुझ में ? मैं उस विराट् का वाहन हूँ, माध्यम हूँ—मैं अकिंचन, नगण्य, मैं जो अगर कभी थी भी अब नहीं हूँ ! मुझ को ? मेरे साथ ?

"कुछ स्तब्ध, कहीं निश्चलता, कहीं, न जाने, कैसी एक शान्ति"....

"मैं एक खड़ा हुआ पानी थी : एक झील, एक पोखर, एक छोटा ताल, शैवालों से ढँका हुआ। तुम ने आँधी के तरह आ कर मुझ को आलोड़ित कर दिया, मुझ में अनन्त आकाश को प्रतिबिम्बित कर दिया। मुझे कहने दो, भुवन, मेरी यह देह जैसे तुम्हारी ओर उमड़ी थी, वैसे कभी नहीं उमड़ी, शिरा-शिरा ने तुम्हारा स्पर्श माँगा, तुम्हारे हाथों का स्पर्श, तुम्हारी बाँहों की जकड़, तुम्हारी देह की उत्तेजित गरमाई.....लेकिन—तुम में डर था—डर नहीं, एक दूर का कोई अनुशासन, कोई एक मर्यादा, जिस के स्रोत तक मेरी पहुँच नहीं थी। और जिस से छुआ जा कर मेरा तूफ़ान सहसा शान्त हो गया, मैं फिर उसी तल पर पहुँच गयी जिस तल पर ताल सदा से था—ढँका हुआ निश्चल, खड़े पानी का एक उद्देश्यहीन जमाव—

"लेकिन नहीं। यह ढँका नहीं, आकाश का प्रतिबिम्ब उस में रहा; फिर तुम ने फिर मुझे जगा दिया—क्षण-भर के लिए, लेकिन पहचान के क्षण के लिए, अनन्य-सम्पृक्त एक क्षण के लिए—भुवन, मैं तुम्हारी हूँ, तुम्हारी हूँ, तुम्हारी हूँ...."

"न, मैं कुछ माँगूंगी नहीं। तुम्हारे जीवन की बाधा नहीं बनूंगी, भुवन, उलझन भी नहीं बनूंगी। सुन्दर से डरो मत—कभी मत डरना—न डर कर ही सुन्दर से सुन्दरतर की ओर बढ़ते हैं।

"लेकिन भुवन, मुझे अगर तुम ने प्यार किया है, तो प्यार करते रहना—मेरी यह कुंठित, बुझी हुई आत्मा स्नेह की गरमाई चाहती है कि फिर अपना आकार पा सके, सुन्दर मुक्त, ऊर्ध्वाकांक्षी...."

"सोचती हूँ, जीवन के हर मोड़ पर मुझे स्नेह मिला है, करुणा मिली है, साहाय्य मिला है। इतनी करुणा, इतनी अनुकम्पा, इतनी भलाई—कभी मैं अपने ऊपर खीझ उठती हूँ कि मुझ में क्यों नहीं एक प्रतिस्फूर्ति जागती—क्यों मैं ऐसी अचल अचेतन हूँ ? कृतज्ञता —हाँ, कृतज्ञता बहुत है, पर कृतज्ञता जीवन को सच नहीं बनाती, प्यार सच बनाता है; क्योंकि कृतज्ञता में व्यथा नहीं है, और बिना व्यथा के सत्य नहीं है, कितनी सच बात कही थी तुम ने हमारे पहले विवादों में—आज व्यथा में मैं उस सच को जानती हूँ, भुवन ! पर क्यों सब कुछ अयथार्थ है, क्यों कुछ भी मुझे नहीं छूता ? तुम भी, भुवन,—तुम से मैंने पूछा था कि तुम यथार्थ हो ? क्योंकि मैं जागी थी और एक बड़ी विमूढ़ता मुझ पर थी—

एक समर्पण मेरे भीतर रो रहा था पर अयथार्थ को मैं समर्पण करना नहीं चाहती थी.... वह डर....अयथार्थ को समर्पण करने का डर क्या होता है भुवन, तुम जानते हो ? न, तुम कभी न जानो वह डर.....

"लेकिन उस शाप से मैं मुक्ति पा सकी, भुवन, थोड़ी देर के लिए ही, चाहे बीच-बीच में कुछ क्षणों के लिए ही, मैंने पहचाना कि तुम हो, सचमुच हो, कि तुम्हीं को मैंने समर्पण किया है।"

"मेरी यह सोयी अवस्था फिर से लौट आयी है, पर वैसी जड़ नहीं—मैं मानो स्वप्नाविष्ट हूँ। स्वप्न में चलती हूँ, खाती-पीती हूँ, काम करती हूँ, और करूँगी।"

"भविष्य मैं अब भी नहीं मानती। तुम्हारे मन, हृदय, आत्मा की बात मैं नहीं जानती; नहीं जानती कि मेरे तुम्हारे जीवन में आने का क्या अर्थ या महत्त्व है। यह भी नहीं जानती कि तुम्हारे जीवन में आयी हूँ कि नहीं। लेकिन पूछूँगी भी नहीं। साल-भर पहले—अभी कुछ महीने पहले तक भी—हम राह पर इस तरह मिलते—मिलने की सम्भावना भी होती—तो मैं उस मिलने का भविष्य जानना चाहती। जानना चाहना ही स्वाभाविक होता। पर अब मैं अपने को अंकुश देती हूँ कि पूछूँ, पर प्रश्न मेरी जीभ पर नहीं आता—मेरे मन में ही ठीक आकार नहीं लेता, कि स्वयं अपने से भी पूछ सकूँ। फुलफ़िल्ड : शान्त स्तब्ध, निर्वाक, मैं बस हूँ; कोई प्रश्न मेरे भीतर नहीं उठते और भविष्य से मैं कुछ पूछना नहीं चाहती।

"मैंने बार-बार कहा है कि भविष्य नहीं है, केवल वर्त्तमान का प्रस्फुटन है, उसी की अनिवार्य अन्तःसम्भावनाओं का स्फुरण : अब मैं यह अनुभव करती हूँ। पहले मानती थी, अब उस की तीखी अनुभूति टीस-सी मेरे अन्तर में स्पन्दित हो रही है। वह सच है, और मैं उस के आगे झुकती हूँ....

"जब तक जो है, उसे सुन्दर होने दो भुवन; जब वह न हो, तो उस का न होना भी सुन्दर है...."

"एक कविता तुम्हारे लिए रख रही हूँ, नाम है, 'छतरी' :

वर्स दैन दोज़ ड्रीम्स इन ह्विच द अर्थ गिव्ज़ वे
आइ एम अवेक एंड वाक आन सालिड स्टोन,
विदाउट यू डिसेम्बाडीड, एवरी डे
अगेंस्ट द ईस्ट विंड गोइंग होम एलोन।
इन ड्रीम्स आफ़ फ़ालिंग देयर इज़ ओनली ड्रेड;
फ़ाल्स एंड, ड्रीम्स फ़ेल, नाइट फ़ाल्स, नाइटमेयर रिमेन्स;
ए गोस्ट आफ़ फ्लेश एंड ब्लड, आइ मस्ट वी फ़ेड
मस्ट ओपेन एन अम्ब्रेला ह्वेर इट रेन्स।
ह्वेर विल इट आल एंड ? विल इट एंड एट आल ?

फिर भुवन ने सब कागज़ जेब में डाल लिये कि तुलियन जा कर एकान्त में पढ़ेगा.....

"मैं सोचना चाहती हूँ, पर सोच नहीं सकती। ठीक सोचना ही चाहती हूँ, इस में भी सन्देह हो आता है।

"कुछ महान्, कुछ विराट् घटित हुआ है, ऐसा थोड़ा-सा आभास होता है। लेकिन कहाँ ? मुझ में ? मैं उस विराट् का वाहन हूँ, माध्यम हूँ--मैं अकिंचन, नगण्य, मैं जो अगर कभी थी भी अब नहीं हूँ ! मुझ को ? मेरे साथ ?

"कुछ स्तब्ध, कहीं निश्चलता, कहीं, न जाने, कैसी एक शान्ति"....

"मैं एक खड़ा हुआ पानी थी : एक झील, एक पोखर, एक छोटा ताल, शैवालों से ढँका हुआ। तुम ने आँधी के तरह आ कर मुझ को आलोड़ित कर दिया, मुझ में अनन्त आकाश को प्रतिबिम्बित कर दिया। मुझे कहने दो, भुवन, मेरी यह देह जैसे तुम्हारी ओर उमड़ी थी, वैसे कभी नहीं उमड़ी, शिरा-शिरा ने तुम्हारा स्पर्श माँगा, तुम्हारे हाथों का स्पर्श, तुम्हारी बाँहों की जकड़, तुम्हारी देह की उत्तेजित गरमाई.....लेकिन--तुम में डर था--डर नहीं, एक दूर का कोई अनुशासन, कोई एक मर्यादा, जिस के स्रोत तक मेरी पहुँच नहीं थी। और जिस से छुआ जा कर मेरा तूफ़ान सहसा शान्त हो गया, मैं फिर उसी तल पर पहुँच गयी जिस तल पर ताल सदा से था--ढँका हुआ निश्चल, खड़े पानी का एक उद्देश्यहीन जमाव--

"लेकिन नहीं। यह ढँका नहीं, आकाश का प्रतिबिम्ब उस में रहा; फिर तुम ने फिर मुझे जगा दिया--क्षण-भर के लिए, लेकिन पहचान के क्षण के लिए, अनन्य-सम्पृक्त एक क्षण के लिए--भुवन, मैं तुम्हारी हूँ, तुम्हारी हूँ, तुम्हारी हूँ...."

"न, मैं कुछ माँगूंगी नहीं। तुम्हारे जीवन की बाधा नहीं बनूंगी, भुवन, उलझन भी नहीं बनूंगी। सुन्दर से डरो मत--कभी मत डरना--न डर कर ही सुन्दर से सुन्दरतर की ओर बढ़ते हैं।

"लेकिन भुवन, मुझे अगर तुम ने प्यार किया है, तो प्यार करते रहना--मेरी यह कुंठित, बुझी हुई आत्मा स्नेह की गरमाई चाहती है कि फिर अपना आकार पा सके, सुन्दर मुक्त, ऊर्ध्वाकांक्षी...."

"सोचती हूँ, जीवन के हर मोड़ पर मुझे स्नेह मिला है, करुणा मिली है, साहाय्य मिला है। इतनी करुणा, इतनी अनुकम्पा, इतनी भलाई--कभी मैं अपने ऊपर खीझ उठती हूँ कि मुझ में क्यों नहीं एक प्रतिस्फूर्ति जागती--क्यों मैं ऐसी अचल अचेतन हूँ ? कृतज्ञता --हाँ, कृतज्ञता बहुत है, पर कृतज्ञता जीवन को सच नहीं बनाती, प्यार सच बनाता है; क्योंकि कृतज्ञता में व्यथा नहीं है, और बिना व्यथा के सत्य नहीं है, कितनी सच बात कही थी तुम ने हमारे पहले विवादों में--आज व्यथा में मैं उस सच को जानती हूँ, भुवन ! पर क्यों सब कुछ अयथार्थ है, क्यों कुछ भी मुझे नहीं छूता ? तुम भी, भुवन,--तुम से मैंने पूछा था कि तुम यथार्थ हो ? क्योंकि मैं जागी थी और एक बड़ी विमूढ़ता मुझ पर थी--

एक समर्पण मेरे भीतर रो रहा था पर अयथार्थ को मैं समर्पण करना नहीं चाहती थी.... वह डर....अयथार्थ को समर्पण करने का डर क्या होता है भुवन, तुम जानते हो ? न, तुम कभी न जानो वह डर.....

"लेकिन उस शाप से मैं मुक्ति पा सकी, भुवन, थोड़ी देर के लिए ही, चाहे बीच-बीच में कुछ क्षणों के लिए ही, मैंने पहचाना कि तुम हो, सचमुच हो, कि तुम्हीं को मैंने समर्पण किया है।"

"मेरी यह सोयी अवस्था फिर से लौट आयी है, पर वैसी जड़ नहीं—मैं मानो स्वप्नाविष्ट हूँ। स्वप्न में चलती हूँ, खाती-पीती हूँ, काम करती हूँ, और करूँगी।"

"भविष्य मैं अब भी नहीं मानती। तुम्हारे मन, हृदय, आत्मा की बात मैं नहीं जानती; नहीं जानती कि मेरे तुम्हारे जीवन में आने का क्या अर्थ या महत्त्व है। यह भी नहीं जानती कि तुम्हारे जीवन में आयी हूँ कि नहीं। लेकिन पूछूँगी भी नहीं। साल-भर पहले—अभी कुछ महीने पहले तक भी—हम राह पर इस तरह मिलते—मिलने की सम्भावना भी होती—तो मैं उस मिलने का भविष्य जानना चाहती। जानना चाहना ही स्वाभाविक होता। पर अब मैं अपने को अंकुश देती हूँ कि पूछूँ, पर प्रश्न मेरी जीभ पर नहीं आता—मेरे मन में ही ठीक आकार नहीं लेता, कि स्वयं अपने से भी पूछ सकूँ। फ़ुलफ़िल्ड : शान्त स्तब्ध, निर्वाक्, मैं बस हूँ; कोई प्रश्न मेरे भीतर नहीं उठते और भविष्य से मैं कुछ पूछना नहीं चाहती।

"मैंने बार-बार कहा है कि भविष्य नहीं है, केवल वर्त्तमान का प्रस्फुटन है, उसी की अनिवार्य अन्तःसम्भावनाओं का स्फुरण : अब मैं यह अनुभव करती हूँ। पहले मानती थी, अब उस की तीखी अनुभूति टीस-सी मेरे अन्तर में स्पन्दित हो रही है। वह सच है, और मैं उस के आगे झुकती हूँ....

"जब तक जो है, उसे सुन्दर होने दो भुवन; जब वह न हो, तो उस का न होना भी सुन्दर है...."

"एक कविता तुम्हारे लिए रख रही हूँ, नाम है, 'छतरी' :

वर्स दैन दोज़ ड्रीम्स इन ह्विच द अर्थ गिव्ज़ वे
आइ एम अवेक एंड वाक आन सालिड स्टोन,
विदाउट यू डिसेम्बाडीड, एवरी डे
अगेंस्ट द ईस्ट विंड गोइंग होम एलोन।
इन ड्रीम्स आफ़ फ़ालिंग देयर इज़ ओनली डे्ड;
फ़ाल्स एंड, ड्रीम्स फ़ेल, नाइट फ़ाल्स, नाइटमेयर रिमेन्स;
ए गोस्ट आफ़ फ्लेश एंड ब्लड, आइ मस्ट बी फ़ेड
मस्ट ओपेन एन अम्ब्रेला ह्वेर इट रेन्स।
ह्वेर विल इट आल एंड ? विल इट एंड एट आल ?

हाइ द विंड राइजेज़, कोल्ड द रेन विल फ़ाल,

बट इफ़ द सन शोन इट वुड ओनली शाइन

आन अनरीएल सीन्स एंड ग्रीफ़ ऐज़ रीएल ऐज़ माइन :

अगेंस्ट द नाइट विंड गोज़ ए लिविंग गोस्ट,

रीअल, फार इट लव्ज़, एंड लैक्स ह्वट इट लव्ज़ मोस्ट।*

"तुम ने मुझे एक बार भी नहीं बताया कि मेरे लिए तुम्हारे हृदय में क्या भाव है। प्रेम, स्नेह, दया, समवेदना, करुणा, क्या ? या कि केवल मेरे दुःख ने एक प्रतिध्वनि तुम में जगा दी, बस ? क्यों तुम ने मुझे अपने इतने निकट लिया ?

"या कि मैं केवल एक धृष्णु साहसिका हूँ, जो अनधिकार तुम्हारे जीवन में घुस आयी ? या.....

"यही एक ही प्रश्न मैं तुम से पूछना चाहती थी, भुवन, आगे-पीछे कुछ नहीं, केवल यही एक बात: और इस के लिए साहस नहीं बटोर पायी। तुम्हारे सामने न जाने क्यों एक संकोच जकड़ लेता है...."

"मैं उदास हो गयी थी, तुम भी उदास हो गये थे। तुम्हें उदास करना मैं नहीं चाहती थी। तुम्हें उदास देखना कभी नहीं चाहती....स्वभाव में मैं वैसी नहीं हूँ ; तुम ने मुझे उदास, दुःखी, प्रतिमुखी, अवरुद्ध ही जाना है---सहा है, मेरे भुवन, बड़ी करुणा और स्नेह के साथ सहा है---पर मैं वैसी नहीं हूँ। मैं हँसती थी। पथ-तट के एक उपेक्षित फूल को देख मैं विभोर हो सकती थी, लहरों के साथ दौड़ सकती थी, और नदी की हवा के साथ मेरा मन उड़ जाता था हँसते सुनहले पंख फैला कर, अन्तरिक्ष को मेरी हँसी से गुंजाता हुआ...

---

*उन स्वप्नों से भी भयानक जिनमें पैरों के नीचे धरती खिसक जाती है, मैं जागती हूँ, ठोस पत्थर पर चलती हूँ; तुम्हारे बिना विदेह, प्रतिदिन ठंडी पूर्वी हवा के सम्मुख अकेली घर की ओर जाती हुई।

गिरने के स्वप्नों में केवल डर होता है, गिरना समाप्त हो जाता है, स्वप्न चुक जाते हैं, रात आती है और रात का डर उभर आता है। मैं रक्त-मांस युक्त प्रेत हूँ जिसे भोजन भी करना होता है और वर्षा में छाता भी खोलना होता है।

इसका अन्त कहाँ है ? अन्त है भी ? हवा तीखी होती जाती है, वर्षा और ठंडी हो जायेगी, किन्तु सूर्य निकलता भी तो उसकी धूप पड़ती केवल अयथार्थ दृश्यों पर और मेरे यथार्थ दुःख पर।

रात की सनसनाती हवा के सम्मुख जा रहा है एक जीवित प्रेत---यथार्थ, क्योंकि वह प्रेम करता है, और जिसे प्रेम करता है उसे पा नहीं सकता !

"लेकिन भुवन, धीरे-धीरे वह हँसी मरती गयी। मैं कहते लज्जित हूँ; पर वर्षों से वह मरती रही है, धीरे-धीरे।

ड्राप बाइ ड्राप स्लोली, ड्राप बाइ ड्राप आफ़ फ़ायर :

एलास माइ रोज़ आफ़ लाइफ़ गान आल टु प्रिक्ल्स...*

"तुम ने मुझे फिर वह हँसी दी। थोड़ी देर के लिए: लेकिन वही, सच्ची, मुक्त।"

"अब लगता है, क्या हुआ उस का? अकारण, निराधार हँसी, निष्परिणाम हँसी....

"लेकिन सच्ची हँसी तो स्वतःप्रमाण है, स्वयम्भू, निष्परिणाम...."

---

*बूंद-बूंद धीरे-धीरे, बूंद-बूंद आग-सा—मेरे जीवन का गुलाब काँटा-ही-काँटा रह गया। —क्रिस्टिना रोज़ेटी

चन्द्रमाधव

चन्द्रमाधव को पहचानते ही रेखा के चेहरे पर विस्मय की दौड़ती लहर के साथ-साथ घने दुराव की छाया भी स्पष्ट हो गयी है, इसे देख कर यदि चन्द्रमाधव को क्लेश हुआ तो उसने उसे दीखने नहीं दिया। कुछ तो वह प्रत्याशित ही था क्योंकि उसी ने तो रेखा को कहा था कि उससे कोई सम्पर्क न रखे, राह में मिल जाने पर उसे पहचाने नहीं, बुलाये-बोले नहीं—उस के जीवन से निकल जाय। पर उस से भी अधिक कारण यह था कि दो, दिन पहले गौरा से भेंट होने पर गौरा के चेहरे पर भी कुछ वैसा ही भाव उसे दीखा था और उस से वह तिलमिला गया था क्योंकि गौरा से उस ने कभी कुछ नहीं कहा था, बल्कि गौरा का शुभेच्छु बन कर उस ने भुवन से अपनी मैत्री को भी जोखम में डाला था.... कल की यह छोकरी, उस से—चन्द्रमाधव से—मिले और ऐसी चिकनी साफ दीवार बन कर कि कहीं उसे छुआ न जा सके, भेदने की तो बात अलग; और तिस पर ऊपर से इतनी चिकनी, विनीत, मानो अपनी संकल्प-शक्ति क्या होती है यह उस ने कभी जाना ही नहीं! और उस की तिलमिलाहट उस के चेहरे पर झलक गयी थी, गौरा ने उसे देख लिया था—यह जलालत भी उसे सहनी पड़ी थी। बातों के सिलसिले में गौरा ने कहा था "आप भुवन दा के मित्र हैं, अब तक यही जानती थी, अब जानूंगी कि आप उन के शुभचिन्तक हैं। और मेरे शुभचिन्तक तो आप हैं ही, यह तो सदा से जानती हूँ।" वह ताकता रह गया था, गौरा कह क्या रही है—क्या यह सीधी-सीधी बात है, या कि मखमल में लिपटी हुई जूती, या....फिर वह सँभल गया था, मगर एक बार तो गौरा ने देख ही ली थी उस की झेंप और तिलमिलाहट....

रेखा को वह नहीं देखने देगा। इतना ही नहीं, रेखा से वैसी बात ही वह नहीं होने देगा। रेखा बच्ची नहीं है। औरत है, अनुभवी औरत है। और अब—कश्मीर से भुवन के पास से लौट कर अब—क्या अब भी उस की वही हेकड़ी रहेगी जो पहले थी? वह तो नामुमकिन बात है? और शायद उस की मदद से गौरा की भी अक्ल ठिकाने लायी जा सके।

रेखा ने कहा, "यह अप्रत्याशित कृपा है, चन्द्रमाधव जी—"

चन्द्र ने भी बड़े विनीत स्वर में कहा, "कृपा आप की है रेखा जी, मैं तो सर्वदा उस का प्रत्याशी हूँ," फिर कुछ रुक कर, "पिछली बातें, आशा है, आप ने भुला दी हैं—"

रेखा ने सम स्वर से कहा, "भुलाने की बात तो तब हो जब याद करने को कुछ रहा हो: हाँ, आप का न बोलने का जो आदेश था उसी की बात अगर कह रहे हैं तो वह तो आप ही का—"

यह औरत जात! लेकिन यह भी पी जाना होगा—झगड़े का न अवसर है, न यह

स्थान है, न झगड़ा कर के फ़ायदा है। रेखा को झुकना पड़े, वह समय आयेगा अप
आयेगा, ज़रूर आयेगा।

"नहीं रेखा जी, मैं केवल अपने दोषों की बात कह रहा था—उन्हें भूल क
आप मुझे फ्रेंड का गौरव दे सकें तो—"

"फ्रेंडशिप बाहर की स्थिति नहीं है, चन्द्र जी, वह अपनी प्रवृत्ति का नाम है।
फ्रेंड के सिवा कुछ हो ही नहीं सकती अब—"

चन्द्र ने आँखें सकोच कर उस को ओर देखा। मन-ही-मन कहा, "तो ऐसी बात
फ्रेंड के सिवा कुछ हो नहीं सकतीं आप हम सब के लिए—सारी दुनिया के लिए—
एक ही व्यक्ति हैं जो—" और वह उस के चेहरे में खोजने लगा उस एकमात्र ०
प्रभाव की कोई छाप—क्या यह जो दीवार की-सी दूरी है, वह आवरण, यह केवल
अनुभूति का परदा नहीं है जो भोक्ता को बाकी जगत् से अलग कर देता है? जो भी
ऐसी अनुभूति से गुजरता है, उस की छाप को एक कवच की तरह पहन लेता है, अ
उसे औरों से अलग कर देती है, वैसे लोगों की एक अलग बिरादरी हो जाती है—
कहेगी 'जीवन की नदी में अनुभूति के द्वीप'.... अगर वह थोड़ा-सा कोंच कर, कु
नीचे उस सतह तक पहुँच सके जहाँ जीव को दर्द होता है, वह तिलमिलाता है....

प्रत्यक्ष उस ने कहा, "थैंक यू, रेखा जी; मैं भी शायद अब फ़्रेंड के सिवा कुछ
सकता।" वाक्य का दोहरा अर्थ है, यह उसने लक्ष्य किया पर उस में दोष क्या है;
कार तो हमेशा दोहरे अर्थों से खेलता ही रहता है। "पर क्या हम लोग बाहर कहं
चल सकते—वाई० डब्ल्यू० लाउंज तो बात करने के लिए नहीं है।"

"चलिए।"

ज़ीने से नीचे उतर कर चन्द्र ने कहा, "कश्मीरी गेट में हज़ ाली बात
है—यहाँ टहला नहीं जा सकता। टहलना चाहें तो आगे कुदसि —

रेखा ने निश्चयात्मक स्वर से कहा, "नहीं।" फिर कहा, "
तरफ़ चलें—"

चन्द्र ने ताँगा ठहराया, दोनों सवार हो गये। काफ़ी देर तक
चन्द्र ने पूछा, "भुवन जी की कोई खबर है? मुझे तो बहुत दि

"पत्र तो मुझे भी नहीं आया। पर कश्मीर में ही हैं, रिस

चन्द्र ने प्रतीक्षा की कि रेखा कुछ और कहे। फिर
होगी?"

"हाँ।" इस बार और भी संक्षिप्त उत्तर था।

चन्द्र थोड़ी देर सोचता रहा, दाँव तोलता रहा। फि
को आप जानती हैं न? भुवन की शिष्या और अन्तरं

भुवन जी के साथ गयी हैं; मुझ से आप के बारे में पूछ रही थीं।" तनिक रुक कर, "अपने मास्टर साहब के लिए बहुत चिन्तित थीं।"

चन्द्र के प्रश्न पर रेखा का मन कुछ भटक गया था। पर अन्तिम बात से फिर एकाग्र हो आया। "क्यों ?"

चन्द्रमाधव एक उड़ती-सी हँसी हँसा। मानो कहता हो, 'उस का चिन्तित होना स्वाभाविक ही है; और ऐसी मामूली बात में मेरी कोई दिलचस्पी भी नहीं है।' फिर साभिप्राय बोला, "गौरा भुवन की सब से प्रिय शिष्या है—और अब शिष्या नहीं, मित्र है।"

"मैं जानती हूँ।" भुवन के प्रति भक्ति की अभिव्यक्ति आवश्यक है, कुछ ऐसी भावना से रेखा ने कहा, "भुवन जी ने स्वयं मुझे बताया था।"

"अच्छा !" चन्द्र ने किंचित् आश्चर्य दिखाते हुए कहा, "तब तो आप को उन से ज़रूर मिलना भी चाहिए।"

"पर वह तो मद्रास में हैं न ?"

"थीं। आजकल यहीं हैं। उन की शादी की बात चली थी दो बरस पहले, तब भुवन की सलाह से मद्रास चली गयी थीं संगीत सीखने। वहाँ से लौट आयी हैं।"

"ओः।"

फिर थोड़ी देर मौन रहा। नयी दिल्ली में डेविको के नीचे ताँगा रुका; चन्द्र ने कहा, "यहाँ चाय पियेंगे, काफी तो दिल्ली की अच्छी नहीं होती—"

"जो आप चाहें।"

बैठ कर चन्द्र को सहसा याद आया, गौरा की बात से असली बातचीत बीच ही में रह गयी थी। यों गौरा की बात रेखा को बताना भी कम ज़रूरी नहीं था, पर सब से ज़रूरी था यह जानना कि रेखा और भुवन के बीच स्थिति क्या है—दोनों कितने गहरे में हैं....

"मैंने तो सुना था आप नैनीताल गयी हैं और भुवन कश्मीर, पर गौरा कह रही थी कि आप भी कश्मीर गयी थीं—मुझे तो अचम्भा हुआ—"

"हाँ, मैं कश्मीर भी गयी थी। नैनीताल पहले गयी थी, लौट कर फिर कश्मीर।" रेखा ने स्थिर भाव से कहा। फिर सहसा एक ऊब की लहर-सी उस के भीतर उमड़ी: जानना चाहता है तो जान ले न, यह भी अधूरी बात है, एक बार कह ही दी जाय पूरी बात तो यह पैंतरेबाजी खत्म हो। उस ने अनमने से ढंग से जोड़ दिया, "डाक्टर भुवन भी नैनीताल गये थे; वह पहले लौट कर कश्मीर गये; मैं सीधी चली गयी थी।"

उस के अनमनेपन की ओर लक्ष्य कर के चन्द्र सोचने लगा, यह बात क्या है ? क्या सारी बात ऐसी है कि इस अनमने ढंग से कह डाली जाय—या कि बात इतनी बड़ी है कि अब छिपाव को भी छोड़ दिया गया है ? ऐसा है तो—अगर भुवन न होता, वह होता, तो वह भी छिपौवल छोड़ देता—बल्कि इतना भी नहीं, वह ऐलानिया कहता; वह काम

स्थान है, न झगड़ा कर के फ़ायदा है। रेखा को झुकना पड़े, वह समय आयेगा अपने-आप आयेगा, ज़रूर आयेगा।

"नहीं रेखा जी, मैं केवल अपने दोषों की बात कह रहा था—उन्हें भूल कर फिर आप मुझे फ़्रेंड का गौरव दे सकें तो—"

"फ़्रेंडशिप बाहर की स्थिति नहीं है, चन्द्र जी, वह अपनी प्रवृत्ति का नाम है। मैं तो फ़्रेंड के सिवा कुछ हो ही नहीं सकती अब—"

चन्द्र ने आँखें सकोच कर उस की ओर देखा। मन-ही-मन कहा, "तो ऐसी बात है—फ़्रेंड के सिवा कुछ हो नहीं सकतीं आप हम सब के लिए—सारी दुनिया के लिए—केवल एक ही व्यक्ति है जो—" और वह उस के चेहरे में खोजने लगा उस एकमात्र व्यक्ति के प्रभाव की कोई छाप—क्या यह जो दीवार की-सी दूरी है, वह आवरण, यह केवल गहरी अनुभूति का परदा नहीं है जो भोक्ता को बाकी जगत् से अलग कर देता है? जो भी किसी ऐसी अनुभूति से गुजरता है, उस की छाप को एक कवच की तरह पहन लेता है, और वह उसे औरों से अलग कर देती है, वैसे लोगों की एक अलग बिरादरी हो जाती है—रेखा कहेगी 'जीवन की नदी में अनुभूति के द्वीप'.... अगर वह थोड़ा-सा कोंच कर, कुरेद कर, नीचे उस सतह तक पहुँच सके जहाँ जीव को दर्द होता है, वह तिलमिलाता है....

प्रत्यक्ष उस ने कहा, "थैंक यू, रेखा जी; मैं भी शायद अब फ़्रेंड के सिवा कुछ नहीं हो सकता।" वाक्य का दोहरा अर्थ है, यह उसने लक्ष्य किया पर उस में दोष क्या है; कलाकार तो हमेशा दोहरे अर्थों से खेलता ही रहता है। "पर क्या हम लोग बाहर कहीं नहीं चल सकते—वाई० डब्ल्यू० लाउंज तो बात करने के लिए नहीं है।"

"चलिए।"

ज़ीने से नीचे उतर कर चन्द्र ने कहा, "कश्मीरी गेट में हज़रतगंज वाली बात नहीं है—यहाँ टहला नहीं जा सकता। टहलना चाहें तो आगे कुदसिया बाग की तरफ़—"

रेखा ने निश्चयात्मक स्वर से कहा, "नहीं।" फिर कहा, "चलिए नयी दिल्ली की तरफ़ चलें—"

चन्द्र ने ताँगा ठहराया, दोनों सवार हो गये। काफ़ी देर तक चुपचाप चलते रहे। फिर चन्द्र ने पूछा, "भुवन जी की कोई खबर है? मुझे तो बहुत दिनों से पत्र नहीं आया—"

"पत्र तो मुझे भी नहीं आया। पर कश्मीर में ही हैं, रिसर्च कर रहे हैं।"

चन्द्र ने प्रतीक्षा की कि रेखा कुछ और कहे। फिर बोला, "आप से तो भेंट हुई होगी?"

"हाँ।" इस बार और भी संक्षिप्त उत्तर था।

चन्द्र थोड़ी देर सोचता रहा, दाँव तोलता रहा। फिर उस ने कहा "गौरा जी—गौरा को आप जानती हैं न? भुवन की शिष्या और अन्तरंग मित्र—कह रही थीं कि आप भी

भुवन जी के साथ गयी हैं; मुझ से आप के बारे में पूछ रही थीं।" तनिक रुक कर, "अपने मास्टर साहब के लिए बहुत चिन्तित थीं।"

चन्द्र के प्रश्न पर रेखा का मन कुछ भटक गया था। पर अन्तिम बात से फिर एकाग्र हो आया। "क्यों ?"

चन्द्रमाधव एक उड़ती-सी हँसी हँसा। मानो कहता हो, 'उस का चिन्तित होना स्वाभाविक ही है; और ऐसी मामूली बात में मेरी कोई दिलचस्पी भी नहीं है।' फिर साभिप्राय बोला, "गौरा भुवन की सब से प्रिय शिष्या है—और अब शिष्या नहीं, मित्र है।"

"मैं जानती हूँ।" भुवन के प्रति भक्ति की अभिव्यक्ति आवश्यक है, कुछ ऐसी भावना से रेखा ने कहा, "भुवन जी ने स्वयं मुझे बताया था।"

"अच्छा !" चन्द्र ने किंचित् आश्चर्य दिखाते हुए कहा, "तब तो आप को उन से ज़रूर मिलना भी चाहिए।"

"पर वह तो मद्रास में हैं न ?"

"थीं। आजकल यहीं हैं। उन की शादी की बात चली थी दो बरस पहले, तब भुवन की सलाह से मद्रास चली गयी थीं संगीत सीखने। वहाँ से लौट आयी हैं।"

"ओः।"

फिर थोड़ी देर मौन रहा। नयी दिल्ली में डेविको के नीचे ताँगा रुका; चन्द्र ने कहा, "यहाँ चाय पियेंगे, काफी तो दिल्ली की अच्छी नहीं होती—"

"जो आप चाहें।"

बैठ कर चन्द्र को सहसा याद आया, गौरा की बात से असली बातचीत बीच ही में रह गयी थी। यों गौरा की बात रेखा को बताना भी कम ज़रूरी नहीं था, पर सब से ज़रूरी था यह जानना कि रेखा और भुवन के बीच स्थिति क्या है—दोनों कितने गहरे में हैं....

"मैंने तो सुना था आप नैनीताल गयी हैं और भुवन कश्मीर, पर गौरा कह रही थी कि आप भी कश्मीर गयी थीं—मुझे तो अचम्भा हुआ—"

"हाँ, मैं कश्मीर भी गयी थी। नैनीताल पहले गयी थी, लौट कर फिर कश्मीर।" रेखा ने स्थिर भाव से कहा। फिर सहसा एक ऊब की लहर-सी उस के भीतर उमड़ी: जानना चाहता है तो जान ले न, यह भी अधूरी बात है, एक बार कह ही दी जाय पूरी बात तो यह पैंतरेबाजी खत्म हो। उस ने अनमने से ढंग से जोड़ दिया, "डाक्टर भुवन भी नैनीताल गये थे; वह पहले लौट कर कश्मीर गये; मैं सीधी चली गयी थी।"

उस के अनमनेपन की ओर लक्ष्य कर के चन्द्र सोचने लगा, यह बात क्या है ? क्या सारी बात ऐसी है कि इस अनमने ढंग से कह डाली जाय—या कि बात इतनी बड़ी है कि अब छिपाव को भी छोड़ दिया गया है ? ऐसा है तो—अगर भुवन न होता, वह होता, तो वह भी छिपौवल छोड़ देता—बल्कि इतना भी नहीं, वह ऐलानिया कहता; वह काम

छोड़ कर रेखा को ले कर कहीं चला जाता वर्मा-वर्मा; वह प्रेम क्या जिस के लिए सब-कुछ वारा-न्यारा न कर दिया जाय ? आशिक वह जो सर पै कफन बाँधे फिरे, यह क्या कि आशिकी भी हो रही है, रिसर्च भी, और नौकरी भी चल रही है....

"कैसा है पहाड़ों का मौसम ? सुना है बड़ी भीड़ है इस साल, ठहरने को भी कहीं जगह नहीं मिलती—"

हाँ, तो यह भी आप पूछना चाहते हैं... थके भाव से रेखा ने कहा, "नैनीताल में तो जगह थी होटलों में, पर हम लोग नीचे चले गये थे; होटल में नहीं ठहरें। और कश्मीर तो मेरा घर ही है।"

"हाँ, ऑफ़ कोर्स।" कह कर चन्द्र ने कुछ ऐसे भाव से रेखा की ओर देखा, मानो कह रहा हो, देखिए, इस से आगे मैं कुछ नहीं पूछ रहा हूं, टैक्ट का तकाजा है; यों जानना चाहना स्वाभाविक होगा आप मानेंगी....

रेखा की विरक्ति सहसा एक शारीरिक थकान बन कर उस की देह पर छा गयी। एक धूमिल उछटती नज़र से उसने डेविको के चायघर के फैलाव को, विशाल गलीचे और भारी परदों को देखा; उफ़ कैसी है यह घुटन—कहाँ है इसमें कोई रन्ध्र जिस में से धुन्ध का अजगर आ कर सारी झील को छा ले और क्षितिजों को मिला दे ! उसने क्षण भर आँखें बन्द कर लीं, उस का हाथ कनपटी तक उठा और उस काल्पनिक लट को सँवारता हुआ कान के पीछे से ग्रीवा के मोड़ के साथ लौट आया। सहसा उस ने पूछा, "चन्द्र जी, आप का परिवार कहाँ है ?"

चन्द्र के ओठ पतले हो आये, लेकिन निमिष-भर के लिए ही; फिर उस ने तपाक से कहा, "ओ, हाँ, रेखा जी, आप को ख़बर देना तो भूल ही गया। वे लोग लखनऊ आ रहे हैं। मेरे पास ही रहेंगे।"

"सच ?" रेखा ने सहसा गम्भीर हो कर कहा, "यह बहुत अच्छी बात है चन्द्र जी। आइ होप यू आर हैपी।"

"ह्वट इज़ हैपिनेस, रेखा जी; कुछ और बात करिए, हैपिनेस तो एक कल्पना है—या उस अवस्था का नाम है जिस में हम अपनी ज़रूरत को अभी जानते नहीं हैं। इनसान के लिए हैपिनेस नहीं है—क्योंकि वह लाइलाज जिज्ञासु है। वह जान के रहेगा—और जानेगा तो भोगेगा !"

खंडन में रेखा की रुचि नहीं थी। फिर भी इतना कहे बिना वह न रह सकी : "जिज्ञासु ही हैपिनेस जान सकता है; नहीं तो जिस ने उसे जाना नहीं वह भोगेगा क्या ? कोई चीज़ स्थायी नहीं है, इसी से वह कल्पना-मात्र तो नहीं हो जाती ?"

"पर स्थायी नहीं है तो हैपिनेस कैसे है ? जिस के साथ छिन जाने का डर बराबर लगा है, वह प्राप्ति कैसी है ?"

रेखा के भीतर कुछ पुकार उठा, 'वही प्राप्ति है, वही प्राप्ति है।' उस ने धीरे-से

कहा, "जो छिन जा सकता है पर जब है तब सर्वोपरि है, वही आनन्द है।" फिर विषय बदलने के लिए, बिना उत्तर का मौका दिये कहा, "लेकिन गृहस्थ-जीवन में दूसरे स्तर की बात सोचनी चाहिए न—उस का आधार है स्थायित्व, उड़ान नहीं; गृहस्थी की आधार-भूमि पर पैर टेक कर आप घूम भी सकते हैं—"

"रेखा जी, इस बात को गुस्ताखी न समझा जाय तो कहूँ कि गृहस्थी के मामले में आप को ऑथारिटी मानने में संकोच भी हो सकता है।"

"सो तो है।" रेखा ने कहा; फिर मानो उसे तभी ध्यान आया हो कि बात हँसी की है, वह हँस दी।

चन्द्र ने चाय के प्याले की तलछट राखदान में उड़ेल कर चायदानी की ओर हाथ बढ़ाते हुए कहा, "आप गौरा जी से मिलने चलेंगी?"

रेखा ने चायदानी सँभालते हुए कहा, "लाइये, मैं बना दूँ।" फिर प्रश्न का उत्तर देते हुए, "हाँ, अगर उन्हें बुरा न लगे—"

"वाह,उन्हें क्यों बुरा लगने लगा? भुवन जिस पर—जिस की इतनी प्रशंसा करते रहे हैं उसे उन की प्रिय शिष्या न देखना चाहे, यह हो ही नहीं सकता। वैसे बड़ी अच्छी लड़की है—और बड़ी सुन्दर। संगीत में भी रुचि रखती है यह तो आप को मालूम ही है। इंटेलिजेंट भी है, पर ज़रा मुँहज़ोर—"

रेखा ने अनमने-से कहा, "हाँ?"

गौरा कहा, "आइये, बैठिए, पिता जी अभी आते हैं—"

यह स्वागत इतना असाधारण था कि चन्द्र सहसा यह भी पूछना भूल गया कि वह मसूरी से कब लौटे। वह बैठा ही था कि गौरा ने भीतर के किवाड़ तक जा कर पुकारा, "पिता जी, चन्द्रमाधव जी आये हैं।"

फिर वह आ कर कर्तव्यनिष्ठ लड़की की तरह बैठ गयी और अतिथि का मनोरंजन करने लगी।

"आप पहाड़ नहीं गये? दिल्ली में तो ऐसी गर्मी पड़ रही है कि बस—"

चन्द्र ने सहसा कहा, "गौरा, मैं तुम से मौसम की बात करने नहीं आया।"

गौरा ने अज्ञान बन कर कहा, "जी?"

चन्द्र एक बार साहस कर के 'तुम' कह गया था, पर इस 'जी?' के आगे उस का साहस जवाब दे गया। फिर भी, जैसे कोई ठंडे पानी में गोता लगा ही तो डाले, उस ने कहा, "रेखा जी यहाँ हैं, आप से मिलने को इच्छुक हैं।"

गौरा को थोड़ी देर अचकचाते देख कर उसे बड़ा सन्तोष हुआ।

गौरा ने खड़ी होते हुए कहा, "आप के लिए चाय लाऊँ—चाय तो पियेंगे न?" फिर

तनिक रुक कर, "वह जब चाहें आवें—मैं तो यहीं रहती हूँ—"

अब जा कर चन्द्र ने पूछा, "पिता जी कब आये ? बड़ी जल्दी लौट आये—"

"नहीं, फिर जायेंगे, मेरी वजह से आ गये ।"

"आप भी जायेंगी ?"

"शायद—"

"कब ?"

"इसी हफ्ते जाने की सोच रहे हैं—" भीतर से उत्तर आया, और साथ-साथ गौरा के पिता ने दरवाज़े पर प्रकट होते हुए कहा, "कहो भई, कब आना हुआ ?"

गौरा ने फ़ुर्ती से कहा, "मैं चाय लाती हूँ," और भीतर चली गयी ।

* * *

तीन दिन बाद जब रेखा को ले कर चन्द्रमाधव फिर वहाँ गया तब भी गौरा का बर्ताव कुछ ऐसा ही था—चिकना, विनीत, शिकायत से परे, मगर दूर....परस्पर नमस्कार और परिचय के बाद जब तीनों बैठ गये तो एक क्षण का मौन उन पर छा गया । चन्द्र चाहता था कि इन दोनों को मिला देने की अपनी सफलता पर प्रसन्न हो,पर एक अजब संकोच का भाव उस के भीतर भर रहा था—एक अनिश्चय, एक आशंका-सी....वह चुप-चाप चोर आँखों से कभी रेखा को, कभी गौरा को देख रहा था; ये दोनों बात करने लगें तो कुछ ठीक हो....

पर वे दोनों भी चुप थीं । रेखा को गौरा ने चन्द्र के पास ही सोफ़े पर बिठाया था, स्वयं दूसरी ओर तख़्त के कोने पर सीधी बैठी थी—एक हाथ हल्का-सा तख़्त पर टिका हुआ, आँखें नीचे झुकी हुई । उस ने बिल्कुल सफ़ेद धोती पहन रखी थी—बहुत छोटी छोटी सफ़ेद बूटी वाली चिकन की—गहने वह यों भी नहीं पहनती थी और आज चन्द्र ने लक्ष्य किया कि उस के हाथों पर साधारण एक-एक चूड़ी और एक अँगूठी भी नहीं,स्फटिक से घिरी हुई निष्कम्प लौ की तरह वह अपने में सिमटी बैठी थी । रेखा ने भी सफ़ेद रेशमी साड़ी पहन रखी थी, जिस अनुपात में रेशम की सफ़ेदी चिकन की अपेक्षा कोमल थी, उसी अनुपात में उस का साँवला वर्ण भी मानो गौरा का धूमिल प्रतिबिम्ब था । गौरा सिमटी हुई और दूर थी, रेखा की आँखों में वह अस्पृश्य खुली दूरी नहीं थी पर मानो एक मेघ-घिरे आकाश का-सा भाव था....

रेखा ने कहा, "गौरा जी, चन्द्र जी बता रहे थे कि आप दक्षिण से संगीत की विशेष शिक्षा पूरी कर के आयी हैं ?"

गौरा ने सायास कहा, "जी, दक्षिण से तो अभी आयी हूँ । गयी थी संगीत सीखने ही, पर दो वर्ष में क्या आता है !"

रेखा ने पूछा, "दक्षिण का संगीत तो बिल्कुल अलग है न—मैं कुछ जानती तो नहीं पर सुना है—"

"हाँ—पर मैंने तो सुना है आप बहुत अच्छा गाती हैं—"

"नहीं गौरा जी, वह तो—"

चन्द्र ने बात काटते हुए कहा, "हाँ गौरा जी, हम ने बहुत दिन से सुन रखा था, पर उस दिन भुवन के आग्रह से सुनने को न मिल गया होता तो रेखा जी कबूलतीं थोड़े ही कि—"

रेखा सहसा उठ कर गौरा के पास चली आयी। "यहाँ बैठ जाऊँ—यह बीच में शून्य का एक चौखट रख के आर-पार बात करने का अँग्रेज़ी तरीका मुझे पसन्द नहीं है।"

"बैठिए।"

चन्द्र बोला, "इस समय भुवन को भी यहाँ होना चाहिए था—कितना अच्छा होता।" फिर दोनों की ओर देख कर, "गौरा जी, भुवन का कोई पत्र-वत्र आया है इधर ? मुझे तो बहुत दिनों से कोई खबर नहीं है।"

"नहीं तो।" गौरा ने बिना किसी की ओर देखे उत्तर दिया। फिर सहसा बोली, "वह लगन वाले आदमी हैं—खोज में लगे हैं तो और किसी बात की ख़बर उन्हें थोड़े होगी ! उन्हें खाने-पीने का भी होश नहीं रहता जब काम कर रहे हों—"

रेखा ने कहा, "आप तो उन्हें बचपन से जानती हैं न ?"

"जी, उन्होंने मुझे पढ़ाया है—"

चन्द्र ने हँसते हुए कहा, "गुरु वैज्ञानिक, शिष्य संगीतज्ञ—यह अच्छा विरोधाभास है न, रेखा जी ?"

रेख़ा ने सीधा उत्तर दे कर कहा, "अच्छा गुरु उदार होता है, चन्द्र जी, और उदार ब़नाता है।"

गौरा खड़ी हुई। "आप लोगों के लिए चाय लाऊँ—"

रेखा ने कहा, "नहीं गौरा जी, आप बैठिए—"

"सब तैयार है—"

"तो चलिए, मैं मदद करूँ," कह कर रेखा भी उठ खड़ी हुई, "मैं आप की रसोई में आऊँ तो कोई—"

"आप कैसी बात करती हैं, रेखा देवी ?" कह कर गौरा आगे चल पड़ी, रेखा पीछे-पीछे।

गौरा ने चलते-चलते कहा, "काम वास्तव में कुछ नहीं है रेखा देवी; सिर्फ़ पानी डाल कर ले आना है, मेज़ लगी है।"

दोनों उस समय चाय का कमरा पार कर रही थीं। रेखा ने कहा, "सो तो देख रही हूँ।"

"या—आप पसन्द करें तो बैठक में ही ले चलूं—"

"नहीं, यहीं ठीक है, गौरा जी—"

"आप चाय पसन्द करेंगी या काफ़ी ?"

रेखा ने हँस कर कहा, "आप ने ज़रूर यह भी सुना होगा कि मैं काफ़ी की पियक्कड़ हूँ; पर चाय पियूंगी।"

गौरा ने तनिक-सा खिंच कर कहा, "भुवन दा ने ही लिखा था कि वह लखनऊ में बराबर काफ़ी हाउस जाते रहे"—मानो कहना चाहती हो, मैंने आप के बारे में कुछ पूछ-ताछ की हो ऐसा न समझें।

रेखा ने वह खिंचाव भाँप लिया। सहसा गौरा के कन्धे पर हाथ रख कर बोली, "बुरा नहीं मानिएगा, गौरा जी; चन्द्र जी तो जर्नलिस्ट हैं न, हर बात का प्रचार करना उन का काम है—मेरे काफ़ी पीने का भी—"

गौरा ने कोई उत्तर नहीं दिया।

चाय रख कर गौरा ने कहा, "आप बैठिए, मैं चन्द्रमाधव जी को बुला लाऊँ—"

रेखा ने कहा, "ऐसी क्या जल्दी है, दो मिनट अकेले बैठे रहेंगे तो कोई हर्ज नहीं होगा —बल्कि अकेले रहना तनिक भी सीख सकें तो फ़ायदा ही हो।"

गौरा ने कुछ विस्मय से उस की ओर देखा, फिर बैठ गयी। रेखा कुछ कहना चाहती है शायद, और चन्द्रमाधव की उपस्थिति में बात कर सकना किसी को कठिन मालूम हो, यह ज़रा भी अस्वाभाविक नहीं है।

पर रेखा चुप रही। बल्कि उस ने आँखें बन्द कर के क्षण-भर हथेलियों से चेहरा ढंक लिया। गौरा स्थिर दृष्टि से उसे देखती रही, और इस समय सुविधा पा कर सिर से पैर तक देख गयी। फिर उसकी आँखें रेखा के हाथों पर टिक गयीं।

रेखा के हाथ सुन्दर नहीं कहे जा सकते, पर उसकी उँगलियों में एक संवेदन-क्षमता थी; और उँगलियों के जोड़ स्पष्ट ही एक चिन्तनशील स्वभाव के सूचक थे। छिगुनियों की सिरे वाली पोर थोड़ी-सी भीतर की ओर मुड़ी हुई थी। एक हाथ की अनामिका पर अँगूठी थी—सफ़ेद धातु, चाँदी या प्लेटिनम ?—जिस में एक बड़ा-सा कटहला जड़ा हुआ था, रेखा के साँवले रंग पर वह फबता था। अँगूठी उँगली में ढीली थी, नगीना एक ओर को खिसक गया था। चिन्तनशील उँगलियों की यही मुश्किल होती हैं—जोड़ बड़े होते हैं, अँगूठी चढ़ाने में दिक्कत होती है और इसलिए ढीली अँगूठी पहननी पड़ती है....

सहसा रेखा ने हाथ हटा लिये, आँखें खोलीं, और पूछा, "गौरा जी, हमारे जर्नलिस्ट साहब हम दोनों को मिलाने को बहुत उत्सुक थे। और अब निस्सन्देह आप सोच रही होंगी कि हम लोग जो मिलीं, सो आख़िर क्यों ?"

गौरा ने अपने को सँभालते हुए कहा, "नहीं, मिलना तो मैं भी चाहती थी—"

"और मैं भी चाहती थी। और मिलना हुआ, यह बड़ी ख़ुशी की बात है। पर स्त्रियाँ

जो चाहती हूं उस के होने के लिए प्रतीक्षा करती हूं । और—" रेखा रुक गयी, मानो अपने शब्द तोल रही हो, और तय कर रही हो कि बात कही जाय या नहीं, "और यह भी है कि आप मुझ से—आप का मेरे बारे में कौतूहल भुवन जी की मारफ़त ही रहा होगा—हम दोनों के बीच भी कड़ी वही हैं, चन्द्र तो नहीं।"

गौरा चुप रह गयी।

रेखा ने फिर कहा, "डा० भुवन, ही'ज़ ए वेरी फाइन मैन।"

गौरा ने कहा, "चाय ठंडी हो जायगी; चन्द्र जी को बुला लूं—"

रेखा ने मुस्करा कर कहा, "आइ'ल टेक द हिंट। लेकिन एक बात कह ही डालूं—क्योंकि फिर शायद न कह सकूं—या मौका न मिले। चन्द्र ने आप से क्या मेरे बारे में कुछ कहा है, यह नहीं पूछूंगी—कहा ही होगा। क्या, वह भी नहीं पूछूंगी। अपनी ही ओर से कहूँ—मेरे कारण डा० भुवन का अहित, जहाँ तक हो सकेगा, मैं नहीं होने दूंगी। चाहती हूँ कि विश्वास के साथ कह सकूं कि बिल्कुल नहीं होने दूंगी, पर भीतर वह निश्चय नहीं पाती, और झूठा आश्वासन नहीं देना चाहती—खास कर आप को—"

गौरा ने तनिक उदासीनता चेहरे पर लाते हुए कहा, "यह सब आप मुझे क्यों कहती हैं, रेखा जी ?"

"क्यों, यह तो नहीं जानती। पर कह देना चाहती हूँ—भविष्य में शायद—कभी आप को यह याद करने की ज़रूरत पड़े। किसी के निजी जीवन में—भावना-जगत् में हस्तक्षेप करना मैं कभी नहीं चाहती, गौरा; मैंने जो-कुछ कहा है, कुछ जानने के लिए नहीं, केवल अपनी बात कहने के लिए,। फिर भी अगर कोई ऐसा स्थल छू गयी हूँ जिस से मुझे दूर रहना चाहिए था, तो—क्षमा चाहती हूँ।"

सहसा खड़ी हो कर रेखा गौरा के पास चली आयी; दोनों हाथ उस के कन्धे पर रख कर उस ने धीरे से पुकारा, "गौरा!" गौरा ने आँख उठायी; दोनों की आँखें मिलीं और देर तक मिली रहीं। फिर रेखा ने धीमे स्वर में कहा, "कभी हम किसी से मिलते हैं और तय कर लेते हैं कि हम अजनबी नहीं हैं; पर उस से जरूरी नहीं है कि बात करना सहल ही हो जाय—" वह कुछ रुकी, कुछ अनिश्चित स्वर में उस ने कहा, "है न ?" फिर उस के हाथ धीरे-धीरे खिसकते हुए हट चले; गौरा ने दाहिना हाथ उठा कर उस का हाथ पकड़ लिया और उसे थामे उठ खड़ी हुई। आमने-सामने खड़े दोनों की आँखें एक बार फिर मिलीं। फिर रेखा सहसा मुड़ कर बाहर के कमरे की ओर चली गयी। क्षण-भर बाद एक नज़र मेज़ पर लगी हुई चीज़ों पर दौड़ाते हुए और उस के द्वारा मानो साधारण के स्तर पर उतरते हुए गौरा ने दो-तीन कदम आगे बढ़ कर आवाज़ दी, "आइये, चाय तैयार है।"

चाय पीते-पीते चन्द्र को लगा कि वातावरण में कहीं कुछ परिवर्तन है। लेकिन क्या, यह वह नहीं जान सका। उसे केवल यह अनुभव हुआ कि कहीं किसी तरह वह असफल—

हुआ है, लेकिन इस असफलता की कुढ़न ऐसी थी कि वह यह भी नहीं सोच पा रहा था कि किस बात में वह असफल हुआ है....

गौरा ने कहा, "रेखा जी, चाय के बाद एक गाना सुनायेंगी ?"

चन्द्र ने कहा, "गौरा जी, पहली ही भेंट में फर्माइश ! मुझे तो हिम्मत न होती; और फिर रेखा जी—रेखा जी इज़ ए डिफ़िकल्ट वुमन टु नो ! लेकिन—" और वह रुक कर स्थिर दृष्टि से रेखा की ओर देखता रहा, "लेकिन डिफिकल्ट हैं इसी लिए शायद पहली बार ही कह देना चाहिए, क्योंकि दूसरी बार ही कौन अधिक परिचित हो जायेंगी !"

गौरा ने कहा, "रेखा जी, मेरे कहने का बुरा तो नहीं मानेंगी ?"

"गौरा, तुम चन्द्र को अभी नहीं जानतीं—वह जब नाराज़ होता है तभी कुछ क्लेवर बात कह कर दुनिया से बदला ले लेता है !"

"यानी ? यानी आप यह कहना चाहती हैं कि असल में मुझे जानना ही डिफ़िकल्ट है ? गौरा जी से मेरा—गौरा जी, आप इन की बात न मानिएगा—मैं तो जो कुछ हूँ एकदम सतह पर हूँ—"

रेखा ने साभिप्राय कहा, "ओ हो, आज तो आप बहुत बड़ा कनफ़ेशन किये दे रहे हैं, चन्द्र जी—"

चन्द्र ज़रा-सा अप्रतिभ हुआ, पर तुरन्त पैंतरा बदल कर बोला, "हाँ, जो सतह पर है वही सच है; सतह के नीचे कुछ नहीं है, सिर्फ़ धोखा। जो कहते हैं कि यथार्थ कुछ नहीं है, जो गोचर है सब माया है, वे ही तो साबित करते हैं कि माया ही यथार्थ है, सतह ही वास्तविकता है—क्योंकि वह कम-से-कम गोचर तो है, उस के पीछे तो कुछ है ही नहीं !"

"ओफ़, चन्द्र जी, जिन के तर्क को आप इस रूप में पेश कर रहे हैं वे सुन लें तो—"

"तो आत्म-हत्या कर लें, यही न ? लेकिन उस में क्या बुराई है ? आखिर एक भ्रम ही तो नष्ट होगा—माया का एक पुंज ? और आत्मा तो अनश्वर है—तब आत्म-हत्या के माने क्या ? लेकिन रेखा जी, आप गाना सुनायें ही, तो वही सुनायें जो लखनऊ में—"

"कौन-सा ?"

"वही शरद की रात के बारे में कुछ; उस समय पूरा सुन नहीं पाये थे—"

रेखा ने गौरा की ओर उन्मुख हो कर पूछा, "तुम बँगला समझ लेती हो ?"

गौरा ने कहा, "थोड़ी बहुत। पढ़ कर तो समझ लेती हूँ, सुन कर थोड़ी अड़चन होती है।"

"तुम नहीं गातीं ?"

"मैं ! मेरी आवाज़ तो—"

"बहुत मीठी है। अच्छा, संगत करोगी तो गा दूंगी—"

"वाह वा !" चन्द्र ने समर्थन किया, "बहुत अच्छा आइडिया है। आप का संगीत भी

कभी नहीं सुना गौरा जी !" कह चुकने के बाद सहसा उसे ध्यान आया, गौरा को रेखा तुम कह कर सम्बोधन कर रही है, और गौरा इस पर चौंकी नहीं, मानो यह स्वाभाविक है; उस ने सहसा चौकन्ने हो कर दोनों की ओर देखा—यह कब, कैसे हो गया ? क्या दोनों ने सहज मान लिया कि रेखा बड़ी और गौरा छोटी है और इस लिए—या कि दोनों ने वैसा परिचय बना लिया—लेकिन कब ? कब ? मिस्टरी, दाई नेम इज़ वुमन....मध्य युग के सन्त ठीक मानते थे—हर औरत चुड़ैल होती है, झाड़ू पर सवार जादूगरनी, जो आदमी के किये-कराये पर झाड़ू फेर देती है....उस ने फिर कहा, "हाँ, आप दोनों गाइये-बजाइये, मैं अकेला सुनूँगा, एक दोहरे मिरेकल का एकमात्र साक्षी—"

गौरा ने कहा, "नहीं रेखा जी, संगत नहीं करूँगी, आप का गान एकाग्र हो कर सुनना चाहूँगी; संगत करने बैठूँगी तो ध्यान बँट जायगा। आप का आग्रह हो तो पीछे सुना दूँगी। पर मुझे कुछ आता नहीं।"

रेखा ने कहा, "ऐसे ही सही।" फिर चन्द्र से, "लेकिन तुम साक्षी क्यों होगे—तुम्हें भी तो मिरेकल में भाग लेना चाहिए ?"

"मैं ? लेकिन मुझे न गाना आता है, न बजाना—"

"तो तुम नाचना—"

"क्यों, वह आना ज़रूरी नहीं है शायद ?" कुछ रुक फिर चन्द्र स्वयं ही बोला, "ठीक है, पुरुष हमेशा से नाचता आया है, स्त्रियाँ नचाती आयी हैं।"

"और बिना सीखे नाचता आया है, है न ?" रेखा ने और चिढ़ाया।

गौरा ने भी उसी स्पिरिट में कहा, "हमेशा से नाचता आया है, तब यह हाल है, रेखा जी; बन्दर भी शायद तीन महीने में सीख जाता है—"

चन्द्र ने तीखी दृष्टि से गौरा की ओर देखा, मानो कह रहा हो 'अच्छा, तुम्हें भी पंख लगे ?' फिर बोला, "जी हाँ, पर फ़र्क जानवर-जानवर का नहीं, मदारी-मदारी का है। बन्दर का मदारी और उस का बन्दर जो खेल खेलते हैं, उस के नियम सीधे होते हैं; दोनों पक्षों का एक ही नियम होता है और दोनों उसे जानते हैं। पर हम....भला सोचिए, हम ब्रिज के डमी बन कर अपने सब पत्ते बिछा दें और आप तिपत्ती खेलने लगें तो—"

अब की रेखा ने टोका, "लेकिन है आप की कल्पना में पुरुष भी जुआरी, स्त्री भी; क्यों, नहीं ?

"और नहीं तो क्या। जीवन जुआ तो है ही, बड़ा भारी जुआ, एंडलेस गैम्बलिंग मैच ?"

गौरा के मुँह पर कोई तीखा जवाब मचल रहा है यह दीख रहा था। रेखा ने कहा, "तुम्हारी बात में कुछ तत्त्व हो सकता है, चन्द्र; लेकिन क्या, इस से शायद तुम्हीं को अचम्भा हो।"

"क्या ?"

"यह कि दाँव दोनों खेलते हैं; लेकिन हम अपना जीवन लगाती हैं और आप—हमारा।"

गौरा कुछ शान्त दीखी, वह जो कहना चाहती थी वह भी मानो इस उत्तर में कह दिया गया।

*　　　*　　　*

चाय से उठ कर तीनों फिर बैठक में आ गये। कमरे में कुछ-कुछ अँधेरा था, क्योंकि बाहर बदली घिरने लगी थी; बड़ी हुई उमस से आशा हो रही थी कि शायद वर्षा हो—उस मौसम की पहली वर्षा....कभी-कभी बादल गरज जाते थे।

चन्द्र ने कहा, "अच्छा रेखा जी, अब गाना हो जाय।"

गौरा ने उठ कर छोटी मेज़ पर एक चाँदी का डिब्बा रेखा की ओर बढ़ाते हुए कहा, "लीजिए—"

गौरा के बढ़े हुए हाथों में एक में डिब्बा, दूसरे में उसका ढक्कन था; लौंग-इलायची उठाते हुए रेखा की दृष्टि उन हाथों पर टिकी थी। सहसा उस ने कहा, "बहुत सुन्दर हैं तुम्हारे हाथ—तुम चूड़ी-ऊड़ी नहीं पहनतीं?"

गौरा ने कुछ झिझकते हुए हाथ थोड़े-से पीछे खींच लिये, कुछ बोली नहीं।

"अच्छा मैं चूड़ियाँ लाऊँगी—गौरा, मे आइ?"

गौरा और भी संकुचित हो गयी, थोड़ा रुक कर बोली, "थैंक यू; मगर काँच की हों, और नहीं—"

रेखा ने तनिक मुस्करा कर कहा, "तुम वर्किंग वुमन की सीमाओं की बात सोच रही हो! खैर, तुम्हारी शर्त मान लेती हूँ, पर इन हाथों पर—सचमुच बहुत सुन्दर हाथ हैं, गौरा, ये दूसरे आभूषण माँगते हैं।"

गौरा ने सकुचाते हुए डिब्बा चन्द्रमाधव के आगे रख दिया, हाथ पीछे खींच लिये मानो छिपा लेगी।

बादल की गड़गड़ाहट ज़ोर से हुई। चन्द्रमाधव ने कहा, "सुनाइये, बादल का ही कोई गीत सुनाइये। आप की बँगला में तो सुना है वर्षा के गीत लाखों हैं।"

पहले रेखा ने यही सोचा था। पर गौरा के हाथों की बात से उस का मन मानो किसी दूसरी तरफ़ चला गया था। वह अनमनी-सी उन्हीं की ओर देखती जा रही थी।

गौरा ने कहा, "रेखा जी, जो आप की इच्छा हो गाइये—"

रेखा ने जैसे कुछ चौंक कर कहा, "ऊ-हाँ," और गुनगुनाने लगी। गुनगुनाना अनिश्चित-सा था, पर सहसा मानो निश्चय कर के उस ने स्पष्ट स्वर में गाया:

तोमाय
साजाबो यतने कुसुमे रतने

केयूरे कंकणे कुंकुमे चन्दने
साजावो
किशके रंगणे।
तोमाय. . .

गान दोनों श्रोताओं के लिए कुछ अप्रत्याशित था; चन्द्र ने भवें हल्की-सी उठायीं, गौरा सीधी हो कर बैठ गयी। रेखा गाती रही :

कुन्तले बेष्टिबो स्वर्ण-जालिका
कण्ठे दुलाइबो मुक्ता-मालिका
सीमान्ते सिन्दूर अरुण बिन्दुर
चरण रंजिबो अलक्त-अंकणे
किंशुके रंगणे तोमाये।
साजावो *

गान समाप्त होने पर थोड़ी देर मौन रहा। फिर गौरा ने पूछा, "बहुत अच्छा गाती हैं आप। यह रवीन्द्र-संगीत है न ?"

"हाँ।"

फिर एक विकल्प के बाद चन्द्र ने कहा, "गौरा जी, आप--?"

गौरा ने रेखा की ओर उन्मुख हो कर पूछा, "मैं सिर्फ़ तबला सुनाऊँ आप को--अच्छा लगेगा ?" फिर चन्द्र की ओर मुड़ कर, "और कोशिश करूँगी बादल से सुर मिलाने की--"

"हाँ, हाँ, ज़रूर।" चन्द्र ने उत्साह से कहा।

गौरा भीतर जा कर जोड़ी उठा लायी, फ़र्श पर बैठ गयी। तबलों को ठोकने-खींचने लगी तो चन्द्र ने रेखा से पूछा, "आप ने वर्षा का गीत क्यों न सुनाया ?"

रेखा ने उत्तर न दिया। कमरे में प्रकाश और भी धुँधला हो गया था; चन्द्र उस के चेहरे के भाव को ठीक-ठीक देख भी न सकता था।

गौरा ने कहा, "मैं धम्मार में एक परण सुनाती हूँ।"

ताल वाद्य सब से प्राचीन वाद्य है; नृतत्त्वविद् इस का कारण यह बतायेंगे कि मानव बुद्धि ने पहले धमाके की ही संगीतात्मक सम्भावनाओं को पहचाना--या कि ताली से आगे बढ़ने पर किसी न किसी चीज़ को पीटना ही ताल देने का सरल माध्यम है। ऐतिहासिक

---

*तुम्हें यत्नपूर्व सजाऊंगा कुसुमों-रत्नों से, केयूर-कंकण से, कुंकुम-चन्दन से, किंशुक और रंगन के फूलों से। कुन्तलों में स्वर्ण-जालिका पहनाऊंगा, कण्ठ में मुक्ता-मालिका झुलाऊंगा; सीमन्त में अरुण सिन्दुर-बिन्दु, चरणों में अलक्तक--तुम्हें सजाऊँगा. . .
--रवीन्द्रनाथ ठाकुर

दृष्टि से वह ठीक ही होगा। पर संगीतात्मक दृष्टि से ऐसे वाद्यों का महत्त्व यह है कि मौलिक प्राकृतिक शक्तियों की, प्रकृति के क्रीड़ा-कल्लोल की, सम-स्वरता वे ही सब से अच्छी तरह कर सकते हैं—हवा, बादल, आँधी, पानी, बिजली, लहर, दावानल, जल-प्रपात....ढोल-मादल-मृदंग-तबले की थाप मानव को जिस सहज भाव से इन के निकट ले जा सकती है, इन के साथ एकतानता स्थापित कर सकती है, दूसरे वाद्य नहीं कर सकते....

बादल की गड़गड़ाहट में वर्षा का सरसराता स्वर भी मिल गया था। पर किसी को उस का ध्यान नहीं था। तबले का स्वर कभी धीमा और तरल, कभी चौड़ा और परुष, कभी हलका और दौड़ता हुआ, धुँधलके में भर गया था। रेखा एकटक गौरा के हाथों को देख रही थी; पर हाथों की आकृति अब स्पष्ट नहीं दीखती थी, तबले के पड्डे और स्याही के वृत्तों पर उन की छाया-सी ही पहचानी जाती थी। रेखा दबे-पाँव उठी, मैंटल पर से लैम्प उठा कर उस ने गौरा के पास ज़मीन पर रखा, फिर उस का छादन तिरछा कर के बटन दबा कर उसे जला दिया—ऐसे कि प्रकाश तबलों पर और कलाई तक गौरा के हाथों पर पड़े। आलोक के लम्बोतरे घेरे में गलीचे का नीला-भूरा पैटर्न दीखने लगा।

रेखा फिर मुग्ध-सी गौरा की थिरकती उँगलियों को देखती रही; चन्द्र छत के पंखे की ओर टकटकी लगाये सुन रहा था।

सहसा एक थाप के साथ सन्नाटा हो गया जिस में तबले का स्वर ही थोड़ी देर गूँजता रहा, फिर वह बारिश के स्वर में लय हो गया। गौरा ने एक लम्बी साँस ली।

रेखा बढ़ कर नीचे गौरा के पास बैठ गयी, अपने दोनों हाथ उस ने तबलों पर टिके हुए गौरा के हाथों पर रख दिये। कुछ बोली नहीं। फिर सहसा उस ने हाथ उठा कर अपनी अनामिका से अँगूठी उतारी और नरम हाथ से गौरा का हाथ अपनी ओर खींचते हुए उस की उँगली में पहना दी।

गौरा ने अचकचा कर कहा, "रेखा जी—यह क्या—नहीं रेखा जी, यह नहीं—" और घबड़ाये-से हाथों से अँगूठी उतारने लगी।

"रहने दो, गौरा; कटहला शायद तुम्हारे हाथ के लायक नहीं है, पर यह मेरी माँ की अँगूठी है—"

"तब तो और भी नहीं रेखा जी; मैं आप की दी हुई चीज़ वापस नहीं कर रही—अवज्ञा न समझें—पर आप की माँ की अँगूठी मैं कैसे ले सकती हूँ?" अँगूठी उतार कर वह रेखा का हाथ खोजने लगी।

रेखा ने कहा, "गौरा, मैं—"

"नहीं, नहीं, नहीं!" गौरा अँगूठी फिर रेखा को पहनाने का यत्न करती हुई बोली, "आप मुझे चूड़ियाँ दे दीजिएगा, मैं पहनूँगी; पर यह—"

"चूड़ियों की बात तो अलग है। वह तो मेरी बंगालिन आँखों का खटका था कि तुम्हारी कलाइयाँ सूनी हैं, पर यह तो मेरा ट्रिब्यूट—"

"मुझे शर्मिन्दा मत कीजिए रेखा जी ! अच्छा, आप मेरी ओर से ही रख छोड़िए—फिर कभी दे दीजिएगा—या मैं माँग लूँगी—"

"फिर कब ? यह टालने की बात है—"

"नहीं सच; कभी जब—आप की माँ ने आप को यह कब दी थी ?"

रेखा का हाथ सहसा शिथिल पड़ गया। अँगूठी उस की माँ ने उसे सगाई पर दी थी। वह कुछ बोल न सकी; गौरा ने अँगूठी उसे पहना दी, और क्षण भर उस का हाथ अपने हाथ में लिये रही। फिर सहसा उस की शिथिलता और उस के चेहरे का अनुपस्थित भाव देख कर बोली, "आप नाराज़ तो नहीं हो गयीं रेखा जी ? यू आर वेरी काइंड—लेकिन यह तो—"

रेखा ने सँभल कर कहा, "ठीक कहती हो, गौरा।" धीरे-धीरे हाथ खींच कर वह फिर अपनी जगह जा बैठी। गौरा भी उठी, पहले दीवार की ओर बढ़ी कि स्विच दबा कर कमरे की बत्तियाँ जला दे, पर अध-बीच में रुक कर उस ने हाथ खींच लिया; झुक कर तबले उठाये और अन्दर चली गयी।

रेखा ने उस की प्रत्येक भंगिमा को लक्ष्य किया था। उसी का लिहाज कर के गौरा बत्तियाँ नहीं जला गयी। उस ने ज़ोर से अपने को हिलाया; चन्द्र की ओर देखा, सायास मुस्करायी और बोली, "अब मेघ-संगीत सुनाऊँ ?"

चन्द्र उस की ओर तकता रहा। सारी घटना उस की कुछ समझ में नहीं आयी थी, वह बैठा-बैठा सोच रहा था कि औरत नाम का जन्तु भी न जाने किस ढब का है; सहसा उत्तर भी न दे सका। रेखा ने आगे बढ़ कर स्वयं बत्तियाँ जला दीं, फ़र्श पर रखा लैम्प बुझा दिया, और गा उठी :

मन मोर मेघेर संगीते,
उड़े चल दिग्दिगन्तेर पाने श्रावण वर्षण संगीते
उड़े चल, उड़े चल, उड़े चल !*

गौरा लौट कर आयी, तो रेखा को कमरे के मध्य में खड़ी गाती देख कर किवाड़ के सहारे ही ठिठकी खड़ी रही।

* * *

रेखा को उस के ठिकाने पर पहुँचा कर चन्द्रमाधव जब वापस मुड़ा, तब उस के चहरे पर जो परिवर्तन हुआ वह इतना द्रुत था कि उस की रेखाओं को मानो चलते देखा जा

---

* मेरे मन, मेघ के संगीत के साथ उड़ चल दिग्दिगन्त की खोज में, श्रावण की वर्षा के संगीत के साथ उड़ चल, उड़ चल !

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

सकता था---सलवटों का चल कर नयी जगह बैठना, नयी झुर्रियों का उभड़ना, आँखों पर एक झिल्ली-सी का छा जाना....रेखा ने कहा कि पहुंचाने की ज़रूरत नहीं है, वह चली जायेगी, पर उस ने कहा था कि उसे भी कश्मीरी गेट ही जाना है---और बिलकुल झूठ भी नहीं कहा था, क्योंकि जिस काम से उसे जाना था वह कश्मीरी गेट में भी हो सकता था.... सीढ़ियों के नीचे ही रेखा ने कहा, "चन्द्र, तुम्हारा बहुत-बहुत धन्यवाद---गौरा से मिल कर मुझे बड़ी खुशी हुई---" फिर वह तनिक रुकी, मानो और कुछ भी कहने वाली हो, पर फिर सहसा, "अच्छा नमस्कार !" कह कर मुड़ी और सीढ़ियाँ चढ़ गयी। चन्द्र बाहर की ओर को मुड़ गया। हल्की-सी बारिश अब भी हो रही थी, पर चन्द्र ने उस की परवाह न की।

सड़क के पार, कालेज की बगल में एक होटल का बोर्ड था 'होटल एंड बार'। क्या वहीं ? चन्द्र थकी चाल से उधर बढ़ा, पर अध-बीच में तिकोने पार्क के सिरे पर रुक गया, फिर दाहिने मुड़ कर कुछ आगे बढ़ा और फिर निकलसन रोड की ओर मुड़ गया। कोई दो फ़र्लांग जा कर एक और जगह थी। यहाँ वह बहुत दिनों से नहीं आया था, पर पहले अक्सर आया करता था....

पहले....अन्दर कुरसी पर बैठते हुए उसे याद आया, पीते लोग उन दिनों भी थे ही, पर उस का पीने आना मानो उस के लिए बड़ी असाधारण घटना थी, उस के लिए ही नहीं, यों भी....और जब एक बार वह हेमेन्द्र के साथ आया था---हेमेन्द्र और उस के मित्र के साथ, और मित्र अनभ्यस्त मात्रा में पी जाने के कारण घुत्त हो गया था और दोनों उसे उठा कर ले गये थे....हेमेन्द्र था सो था, पर था ज़िन्दादिल आदमी; वैसे हमप्याला कहाँ मिलते हैं....उस ने पुकारा, "बेयरा ?"

बेयरा ने आ कर सलाम किया। फिर ज़रा ध्यान से देख कर सहसा दुबारा सलाम किया, किंचित् मुस्कराहट के साथ। तो यह उसे पहचानता है.....चन्द्र को अच्छा लगा। उस ने पूछा, "बियर है ? कौन-सी ?" पर बेयरा उत्तर दे इस से पहले ही फिर कहा, "अच्छा नहीं, ह्विस्की ले आओ।"

"कौन-सी, सा'ब---"

"अच्छा, सोलन ले आओ। बड़ा पेग---डबल।"

बेयरा चला गया। चन्द्रमाधव ने सिगरेट जलायी और कुरसी में आराम से पीठ टेक कर धुआँ उड़ाने लगा।

हेमेन्द्र....कहाँ होगा हेमेन्द्र अब ? चन्द्र ने कोशिश की, रेखा और हेमेन्द्र की साथ कल्पना करे, पर उस में किसी तरह सफलता नहीं मिली, हेमेन्द्र की शबीह वह किसी तरह सामने लाता तो रेखा की बजाय गौरा आ जाती; फिर वह संकल्प-पूर्वक उसे हटा कर रेखा को सामने लाता तो हेमेन्द्र की बजाय भुवन सामने आ जाता....हार कर उस ने सिगरेट मुँह से निकाल कर उठ कर एक ओर को थूका; फिर बैठ गया। बेयरा

ह्विस्की ले आया; ट्रे में सोडा भी था पर चन्द्र ने ग्लास उठा कर इशारे से सोडा-पानी सब मना किया और उठा कर दो-तीन घूंट ह्विस्की के ही पी डाले। फिर उसने जोर लगाना छोड़ दिया : न सही हेमेन्द्र, वह जो आवेगा उसी को देखेगा—गौरा सही, रेखा सही; उस की अपनी पत्नी सही...

और यह मानव मन की प्रतिकूलता ही है कि उस के मानस-पटल पर रह-रह कर दो आकृतियाँ खिचने लगीं—कभी उस की पत्नी की, कभी हेमेन्द्र की...

उस ने एकदम से उठा कर गिलास खाली कर दिया। आकृतियाँ कुछ फीकी हो गयीं, मिट गयीं। हाँ, यह ठीक है। आकृतियों की कोई ज़रूरत नहीं है। वह सोच रहा है, उतना ही काफ़ी है। देखना तो वह नहीं चाहता किसी को... पर क्या सोच रहा है ? हाँ, वह कुछ ज़रूरी बात सोच रहा था, कुछ काम उसे करना है...

उस ने फिर पुकारा, "बेयरा।"

दूसरे डवल के साथ उस ने सोडा भी लिया। फिर बेयरा से लिखने का कागज सामने रख कर वह उस की चिकनी सफ़ेद सतह को देखता हुआ घूंट-घूंट ह्विस्की पीता रहा, थोड़ी देर बाद उस ने जेब से कलम निकाल कर पत्र लिखना शुरू किया—हेमेन्द्र को।

लेकिन सम्बोधन लिख कर ही वह रुक गया। क्या लिखे, कैसे लिखे ? इतने वर्षों में कभी तो उस ने हेमेन्द्र को कुछ लिखा नहीं...उस ने सिगरेट सुलगा कर लम्बा कश लिया, धुएँ के छल्ले बनाने के लिए ठोड़ी ऊँची उठा कर मुँह गोल करना चाहा पर ओठ जैसे अवश हो रहे थे, मुँह के आसपास की पेशियाँ उस का आदेश नहीं मान रही थीं और ऊपर के ओठ के सिरे पर एक अजीब फड़कन होने लगी थी जिसे वह किसी तरह नहीं रोक पा रहा था।

हेमेन्द्र को क्या उस की याद होगी ? उस मलय स्त्री के आलिंगनों में वह सब भूल गया होगा...पर स्त्रियाँ तो हेमेन्द्र को अच्छी नहीं लगती थीं—वह स्त्री क्या उसे छोड़ न गयी होगी ? वह तो एंग्लो-मलय थी न—उस के और भी प्रेमी ज़रूर रहे होंगे...

न, हेमेन्द्र को उस की याद बिलकुल न होगी। क्या चन्द्रमाधव और क्या—कोई भी...

पर चन्द्रमाधव ही क्यों ? नाम से लिखना क्या ज़रूरी है ? बल्कि बगैर नाम के पत्र लिखने से शायद उसका महत्त्व बढ़ जाय—क्योंकि किसी नाम के साथ हेमेन्द्र के जो पूर्व-ग्रह होंगे उन से बचाव हो जायगा...

वह जल्दी-जल्दी लिखने लगा। समाप्त कर के उस ने मानो अपने को ही सम्बोधन कर के कहा, "वाह, मेरे दोस्त, जर्नलिस्ट चन्द्र, यू' र ए ग्रेट मैन।..."

सहसा उस ने जाना, बारिश बड़े जोर से होने लगी है। उस ने पैड में से चिट्ठी के पन्ने अलग कर के सफ़ाई से तह किये और भीतर की जेब में रख लिये; फिर बेयरे को बुला कर खाने का आर्डर दे दिया।

डैम ऑल विमेन. . .नहीं, सब को नहीं, केवल उन्हें जिन्हें तबीयत माँगती है; तबीयत यानी वांछा की एक गरम लपलपाती जीभ. . .रॉटन मिडल क्लास विमेन—दबी वासनाओं की पुतली, मक्कार, बीमार, मर्दखोर औरतें—मर्द के खिलाफ़ सब एक, जैसे फन्दे फैलाये ठगों का गिरोह. . .ठीक कहते हैं कम्युनिस्ट, इस भद्रवर्ग को मटियामेट किये बिना स्वस्थ सामाजिक सम्बन्ध हो ही नहीं सकते. . .

* * *

अपने जीवन में पहली बार गौरा ने एक पत्र लिख कर फाड़ा; लगभग वही दुबारा लिखा और दुबारा फाड़ दिया। तीसरी बार उस ने केवल तीन पंक्तियों का पत्र लिखा; उसे सामने रख कर बहुत देर तक देखती रही। फिर उस ने धीरे-धीरे उसे भी चार टुकड़े कर के नीचे गिरा दिया। मेज़ पर से लिखाई का सामान इधर-उधर ठेल कर उस पर बाँहे रख उन पर सिर टेक कर बैठ गयी।

काफ़ी देर बाद उस ने सिर उठा कर नीचे पड़े कागज़ के टुकड़ों की ओर देखा; पंखे की हवा में दो-एक टुकड़े फड़फड़ा रहे थे, एक पर लिखे हुए दो शब्द कभी दीख जाते, कभी छिप जाते: "मेरे भुवन दा". . .गौरा शिथिल भाव से उठी, टुकड़ों को समेट कर छोटी-छोटी चिन्दियाँ कर उस ने टोकरी में डाल दीं, फिर कमरे में टहलने लगी।

कुछ देर बाद किसी ने दरवाजे पर हलके हाथ से दस्तक दी। गौरा ने किवाड़ खोले; एक चपरासी ने एक पैकेट उसे दिया और कहा, "मेम सा'ब ने भेजा है वाई० डब्लू०से—"

गौरा ने ले लिया, कहा, "अच्छा। हमारा सलाम कह देना।" दरवाज़ा फिर बन्द कर के उसने पैकेट खोला: हलके रंगों की काँच की दो दर्जन चूड़ियाँ थीं।

गौरा स्थिर दृष्टि से उन्हें देखती रही। सुन्दर चूड़ियाँ थीं। थोड़ी देर बाद गौरा ने उन्हें मेज़ पर रख दिया और फिर टहलने लगी। टहलते-टहलते वह रुकी, दो चूड़ियाँ उठा कर उस ने बायें हाथ में पहन लीं, बाकी फिर पैकेट में लपेट दीं।

थोड़ी देर में पिता बाहर से आये तो गौरा ने कहा, "पापा, मसूरी वापस कब चलेंगे ?"

"अब तो एक बारिश हो गयी—अब—"

"नहीं, चलिए—आज ही चलिए—"

"अच्छा, तुम्हारी माँ तो खुश ही होंगी—सामान ठीक कर लो—मेरा तो ठीक ही है, तुम्हारे ही सामान की बात है।"

* * *

रेखा ने भी भुवन को एक पत्र लिखा पर उसे फाड़ फेंकने की बजाय अधूरा छोड़ दिया, और निश्चय किया कि वह उसे भेजेगी नहीं। उसे सहसा लगा कि पत्र में लिखने को

कुछ नहीं है क्यों कि बहुत अधिक कुछ है; अगर वह सब वह कहने बैठ ही जायगी, तो फिर रुक नहीं सकेगी, और उधर भुवन का काम असम्भव हो जायगा. . .पत्र में जान-बूझ कर उस ने अपनी बातें न कह कर इधर-उधर की कहना आरम्भ किया था, गौरा से भेंट की बात लिखने लगी थी पर उसी के अध-बीच में रुक गयी थी। नहीं, गौरा की बात वह भुवन को नहीं लिखेगी। भुवन का मन वह नहीं जानती, लेकिन गौरा का. . भुवन गौरा का मन जानता है कि नहीं, यह भी वह नहीं जानती पर जहाँ भी गहरा कुछ, मूल्यवान् कुछ, आलोकमय कुछ हो, वहाँ दबे-पाँव ही जाना चाहिए, वह कहीं हस्तक्षेप नहीं करना चाहती, कुछ बिगाड़ना नहीं चाहती. . .नदी में द्वीप तिरते हैं टिमटिमाते हुए, उन्हें बहने दो अपनी नियति की ओर, अपनी निष्पत्ति की ओर, नदी के पानी को वह आलोड़ित नहीं करेगी। वह केवल अपना मन जानती है, अपना समर्पित विह्वल, एकोन्मुख, आहत मन: उसे वह भुवन तक प्रेषित भी कर सकती है, पर नहीं—भुवन से उस ने कहा था, वह अपने स्वस्थ और स्वाधीन पहलू से ही उसे प्यार करेगी, और गौरा से उस ने कहा है. . . पर यह कैसे सम्भव है कि एक साथ ही समूचे व्यक्तित्व से भी प्यार किया जाय और उस के केवल एक अंग से भी? वह सब की सब समर्पित है, स्वस्थ भी और आहत भी—बल्कि समर्पण में ही तो वह स्वस्थ है, अविकल, है, बन्धन-मुक्त है. . .भुवन, भुवन, मेरे भुवन, मेरे मालिक. . .

वह घूमन जायेगी। जमना की रेती में—जहाँ बैठ कर भुवन न उस का बालू का घर बनाया था, बारिश से रेत जम गयी होगी, वहाँ बैठ कर वह साँझ घिरती देखेगी: दिल्ली की साँझ तुलियन की नहीं है, पर तारे वही होंगे; उन्हें देखते वह अपने को मिटा दे सकेगी, उन की टिमटिमाहट में वह सिहरन पा सकेगी जो भुवन का आत्म-विस्मृत स्पर्श. . .रेखा सहसा सिहर गयी, कुरसी पर उसने सिर पीछे टेक दिया, आँखें बन्द कर लीं, शरीर को छोड़ दिया। ऐसे ही भुवन ने उसे पहले देखा था लखनऊ में; क्यों नहीं वह आगे बढ़ कर उस की पलकों और उठे हुए ओठों को छू सकता—क्यों वह दिल्ली में है, छिप कर 'मेन ओनली' पढ़ने वाली स्त्रियों के इस बोर्डिंग में, भीड़-भड़क्के की इस दिल्ली में, चन्द्रमाधव की दिल्ली में और—और हेमेन्द्र की दिल्ली में. . .

रेखा उठ गयी—उठ कर लाउंज में जा बैठी, दैनिक अखबार उठाये और 'वांटेड' के कालम देखने लगी।

* * *

चन्द्रमाधव अगर देख सकता कि मलय में उस समय क्या स्थिति है, और हेमेन्द्र क्या सोच रहा है या कर रहा है, तो कदाचित् पत्र लिखने की बात उस के मन में न उठती। या क्या जाने फिर भी उठती बल्कि उस में लिखने के लिए और भी बातें उसे सूझतीं, क्योंकि रेखा के प्रति एक सर्वथा निर्बुद्धि आक्रोश उस के भीतर उमड़ता आ रहा था।

यों इसे वह स्वयं देख रहा हो या स्वीकार कर रहा हो, ऐसा नहीं था, उस के सामने वह स्त्री जाति के प्रति एक घृणा या प्रतिहिंसा के रूप में ही आया था, पर भीतर-ही भीतर था वह केन्द्रित और एकोन्मुख : या अधिक-से-अधिक यह कहा जा सकता है कि उसके बिखरे हुए झाग भुवन पर भी आ पड़ते थे—पर भुवन पर उस के द्वेष का उसे बोध था, इस लिए उसे इसी का प्रक्षेपण नहीं माना जा सकता. . .

मलय में तनाव क्रमशः बढ़ रहा था; और हेमेन्द्र की अंग्रेज कम्पनी ने उधर अपना काम समेटना आरम्भ कर दिया था, हेमेन्द्र बदली पर उत्तर-पश्चिमी अफ्रीका में कहीं जा रहा था, जहाँ कम्पनी का कारबार फैला था; मलय की बात और थी, पर वहाँ के सर्वथा गोरे समाज में रह सकने के लिए स्थिति में परिवर्तन आवश्यक था—जिस समय चन्द्र ने हेमेन्द्र को पत्र लिखा उस समय हेमेन्द्र दिल्ली में किसी वकील को लिखे हुए अपने पत्र के उत्तर की प्रतीक्षा कर रहा था, जिस में तलाक की व्यवस्था के सम्बन्ध में पूछा गया था, ताकि वह अफ्रीका जाय तो अपनी विवाहिता पत्नी को साथ ले जा सके। हेमेन्द्र ने यह भी लिखा था कि आवश्यक होने पर वह भारत भी आ सकता है—यदि उस से जल्दी निपटारे की कोई सूरत न निकल आये ।

जिस दिन उस ने रेखा और गौरा की भेंट करायी थी, उस के दूसरे दिन सवेरे चंद्र फीका मुँह और झल्लायी हुई तबीयत ले कर उठा; बड़ी अनिच्छापूर्वक मुँह-हाथ धो कर चाय पीने बैठा तो उबकाई आने लगी; थोड़ा लिवर साल्ट खा कर वह फिर सो गया। तीसरे पहर उठ कर उस ने हजामत बनायी, नहाया; उस से तबीयत कुछ सुधरी पर 'मूड' वैसा ही चिड़चिड़ा और हिंस्र बना रहा। शाम को सिनेमा देखने से भी कोई फ़र्क नहीं हुआ; दूसरे दिन वही हालत रही। तीसरे दिन शाम को उस ने तय किया कि गौरा से मिलने जायेगा, शायद उसे घूमने ले जायेगा या उस से संगीत सुनेगा—तबला नहीं, सितार या बेला या कुछ और। पर वहाँ पहुँच कर देखा ताला बन्द है; नौकर ने बताया कि गौरा पिता के साथ मसूरी चली गयी है। चन्द्र का वह जिघांसु मूड फिर लौट आया; कुछ बियर पीने का संकल्प कर के वह कनाट प्लेस की ओर चल पड़ा. . .साँझ को वह आधे मन से रेखा को देखने पहुँचा; वहाँ भी जब मालूम हुआ कि रेखा नहीं है तब उसे तसल्ली ही हुई। रात को फिर वह कनाट प्लेस पहुँच गया; भटकते हुए उसे दो-तीन पत्रकार बन्धु मिल गये और उन के साथ वह फिर पीने बैठ गया। तीन दिन बाद रेखा से मिले बिना ही वह लखनऊ लौट गया। स्टेशन पर उसे छोड़ने पत्रकार बिरादरी के चार-छः आदमी गये थे, एक ने फ़ोटो भी ले लिया, उसे यह सब अच्छा लगा; गाड़ी में बैठा तो दिल्ली के अनुभवों का कसैला स्वाद उस के मुँह में नहीं था, और यह भी वह भूल गया था कि लखनऊ में, जहाँ वह जा रहा है, वहाँ उस की पत्नी और बच्चे या तो आ गये होंगे या आने वाले होंगे ।

अवध की शामें मशहूर हैं, लेकिन हज़रतगंज में शाम मानो होती नहीं, दिन ढलता है तो रात होती है। या शाम अगर होती है तो अवध की नहीं होती—कहीं की भी नहीं होती, क्योंकि उस में देश का, प्रकृति का, कोई स्थान नहीं होता, वह इनसान की बनायी हुई होती है : रंगीन बत्तियाँ, चमकीले झीने कपड़े, प्लास्टिक के थैली-बटुए, किरमिची ओंठ, कमान-सी मूछों पर तिरछे टिके हुए और ऊपर से रिकाबी की तरह चपटे फेल्ट हैट.... और राह चलते आदमी जिन के सामने बौने लगने लगें, ऐसे बड़े-बड़े सिनेमाई पोस्टरों वाले चेहरे—कितना छोटा यथार्थ मानव, कितने बड़े-बड़े सिनेमाई हीरो—अगर लोग सिनेमा के छाया-रूपों के सुख-दुख के सामने अपना सुख-दुःख भूल जाते हैं तो क्या अचम्भा, उन छाया-रूपों के स्रष्टा एक्टर-एक्ट्रेसों के सच्चे या कल्पित रूमानी प्रेम-वृत्तान्तों में अपनी यथार्थ परिधि के स्नेह-वात्सल्य की अनदेखी कर जाते हैं तो क्या दोष.....यथार्थ है ही छोटा और फीका, और छाया कितनी बड़ी है, कितनी रंगीन, कितनी रसीली....

काफ़ी हाउस की काफ़ी न मालूम गोमती के कीचड़ से बनने लगी है—उस में कोई जायका नहीं है। है तो कुछ मिट्टी का, पर नहीं, जली हुई मिट्टी का है। अधिक तपे हुए आँवे में जो ईंटें जल कर काली हो जाती हैं, उन्हें पीस कर कहवा बनायें तो शायद....चन्द्र का जी होता, काफ़ी फ़र्श पर थूक दे, पर जैसे-तैसे वह उसे गील लेता; फिर उस घूंट का उत्तर-स्वाद धोने के लिए दूसरा घूंट भरता और उसे भी गील लेता . . .

अब वह काफ़ी हाउस दो बार नहीं आता था, एक ही बार शाम को आता था, पर अब बैठता था बहुत देर तक; खाने के वक्त ही घर पहुँचता था—कभी और भी देर से—और सीधा सोने चला जाता था। स्त्री साहस कर के खाने को पूछती थी तो वह अनमना-सा इनकार कर देता था; उस के स्वर में जो प्राणहीन विनय होता था उसे लक्ष्य कर के पत्नी मानो बुझ जाती थी और आग्रह नहीं करती थी। हाँ, जब वह खाट पर लेट जाता, तब कभी-कभी वह जा कर उस के जूते-मोजे खोल देती, कभी हिमम्त कर के गले से टाई भी उतार लेती, पाजामा उस के पास लाकर रख देती और धीरे से कहती, "कपड़े तो बदल लेते—"

पहले दो-एक बार उस ने बेटी को भेजा था कि बाबू जी के जूते खोल दे। पर फिर उस की समझ में आ गया था कि बच्चों को देख कर उसे और भी झल्लाहट होती है; तब से वह शाम को जहाँ तक हो सके बच्चों को उस की नज़र से दूर रखती थी, स्वयं आती थी। चन्द्र उस की उन सेवाओं को बिलकुल उदासीन भाव से स्वीकार कर लेता था। कभी जब वह टाई खोल कर उसे कालर से निकालने के लिए उस के ऊपर झुकती तो उस की कमीज़ के गले के भीतर से उस के उरोजों का जो थोड़ा-सा हिस्सा उसे दीख जाता उसे वह स्थिर दृष्टि से देखता रहता, कभी-कभी उस दृष्टि को लक्ष्य कर के वह लजा जाती; कौतूहल से चन्द्र सोचता कि अगर वह नौकरानी होती, या कोई और स्त्री होती, तो चन्द्र उस से छेड़-छाड़ करना चाहता और शायद कमीज़ का गला पकड़ कर अपनी ओर खींच

लेता, पर वह तो उस की स्त्री थी जो उस के खींचने पर झुक जायगी, हाथ बढ़ाने पर सह लेगी, चौंकेगी नहीं, विरोध नहीं करेगी, निषिद्ध के रोमांचकारी रस से उमड़े-सिमटेगी नहीं . . . वह वैसा ही स्थिर देखता रह जाता, पर उस की आँखों का केन्द्रित भाव बिखर जाता, फिर वह एक करवट हो जाता, पत्नी चली जाती तो उठ कर कपड़े बदल लेता ....

बरसात जम कर शुरू हो गयी थी। पार्कों की स्वैरिणी हरियाली बढ़ कर सड़क की पटरियों पर भी अधिकार जमाने लगी थी ; संकर स्थापत्य की नवाबी इमारतों की छोटी-छोटी अलंकृतियाँ उस में ऐसे खो गयी थीं जैसे किसी बगिया में छोटी-छोटी फुलवाड़ियाँ। चन्द्र काफ़ी हाउस में बैठ कर बारिश का शब्द सुना करता; पक्की सड़क पर बड़ी-बड़ी बूंदों की कोड़े जैसी मार का स्वर न जाने क्यों उस की पहले से तनी हुई शिराओं में एक नयी उत्तेजना भर देता : वह लगातार एक के बाद एक कई सिगरेट फूंक डालता, फिर कभी-कभी अपनी मेज़ से उठ कर दूसरी मेज़ पर चला जाता जहाँ दो-चार लेखक-पत्रकार मिश्र जाति के लोग प्राय: सिगार पीते और बहस करते बैठे रहते थे : एक अंग्रेजी के लेक्चरर जिन्होंने कभी कुछ लिखा नहीं था पर अपनी सर्वसंहारी मौखिक आलोचनाओं के कारण प्रगतिशील लेखक समुदाय के अगुआ माने जाते थे; एक उर्दू के शायर, जो प्राय: नौ-साढ़े नौ बजे तक वहीं जमे रहते थे क्यों कि उस समय कुछ गोरी लड़कियाँ डिनर के या सिनमा के बाद काफी पीने वहाँ आया करती थीं, उन के जाते ही शायर साहब भी माँगा हुआ सिगार चुक जाने के कारण जेब से बीड़ी निकाल कर सुलगाते और उठ कर चल देते; स्थानीय हिन्दी दैनिक के एक सहायक सम्पादक, जो बराबर इस मत का प्रचार करते थे कि युद्ध में इंगलैंड हार जायेगा और उस के बाद लड़ाई में कमजोर हुए जर्मनी को भी हरा कर रूस भारत को आजाद करेगा; दो-एक और ऐसे व्यक्ति, जिन के बारे में चन्द्र यही जानता था कि वे 'प्रमुख लिटरेरी आदमी' हैं, पर किस लिटरेरी क्षेत्र में प्रमुख हैं यह नहीं, न किसी की किसी प्रकाशित रचना का जिक्र कभी हुआ था .... यों शीघ्र ही एक विराट् विश्व-लेखक-सम्मेलन करने की बात प्राय: हुआ करती थी जिसमें भारत के लेखक तो खैर होंगे ही, रूस से भी डेलीगेशन बुलाया जायगा ... इस दल में बैठ कर चन्द्र कई एक नये शब्द और पद सीख गया था, और कई परिचित शब्दों का अर्थ-विपर्यय भी उस ने अपनी बोलचाल में लक्ष्य किया था। और यह भी वह देख रहा था कि वह अब व्यक्तियों की बात सोचता है तो विशिष्ट इकाइयों के रूप में कदाचित् ही; सदैव कोई जातिवाचक विशेषण उस के साथ आता ही है—यहाँ तक कि उसे लगता, स्वयं अपने को वह 'मैं, चन्द्र' न कह कर कहीं 'वह बुर्जुआ पत्रकार चन्द्रमाधव' न कहने लग जाय ! कभी वह उसे अच्छा भी लगता—इस प्रकार वह वैयक्तिकता से परे जा सकता है जो सिद्धि है; निर्वैयक्तिक हो सकना, निर्वैयक्तिक रूप से घृणा कर सकना, बिना दर्द के सब कुछ का तिरस्कार कर सकना—कितना अच्छा होगा वह ! तटस्थता—संन्यास—केवल अलग, उदासीन हो जाना—उहुँक, वह गलत है, संन्यास और निवृत्ति-मार्ग

केवल सामन्तवादी परम्परा की एक विकृति हैं, कर्मच्युति का एक बहाना, एक प्रकार का नशा; इनसान एक्टिविस्ट हो, पर निर्वैयक्तिक; घृणा करे, तिरस्कार करे, एक निर्वैयक्तिक रेवोल्यूशनरी घृणा के साथ—वर्ग-मुक्त हो, पीड़ा-मुक्त हो, इस डिकेडेंट, रुग्ण, ह्रासशील समाज से और स्वयं अपने-आप से बाहर हो कर इस के सब मानों-प्रमाणों को तोड़ गिराये, इस की मान्यताओं को अमान्य कर दे ... हो, किन्तु व्यक्ति न हो, मनुष्य न हो, एक शक्ति हो, एक नीति मुक्त, स्वैर-तन्त्र, सहस्र-शीश, कोटि-बाहु, अजस्र-वीर्य जैविक प्रक्रिया का एक स्फुरण. . .

कभी वह उठ कर बाहर निकल आता, क्षण-भर बारिश को देखता जिस की बूँदें आलोक के वृत्तों में आ कर थोड़ी देर के लिए चमक जातीं और फिर अँधेरे में खो जातीं, मानो वह बारिश उसी वृत्त के एक सिरे पर न-कुछ से पैदा होती हो और दूसरे सिरे पर न-कुछ में विलीन हो जाती हो—न ऊपर बादल से उस का कोई सम्बन्ध हो, न नीचे पृथ्वी से . . . फिर वह फेल्ट उतार कर कोट में छिपा लेता; मुँह को बूँदों की सूक्ष्म बरछियों के प्रति समर्पित कर देता, और बारिश में ही घर की ओर चल पड़ता।

रात के दस बजे थे। दिन-भर वह घर नहीं गया था। भीगता हुआ वह घर पहुँचा, बच्चे तो सो चुके थे, सोने के कमरे में प्रकाश था और वहाँ उस की पत्नी सिलाई लिये बैठी थी। उसे आता देख कर वह उठी; धीरे से बोली, "हाय, सारे कपड़े भीग गये", और लपक कर तौलिया, एक धोती, कमीज़, पाजामा ले आयी। दबे स्वर में, यथासम्भव उलाहने का भाव उस में न आने देने का यत्न करते हुए, उस ने कहा, "रोज भीग आते हैं। कहीं सर्दी-वर्दी लग गयी तो ?"

चन्द्र कपड़ों-वपड़ों से परे हट कर तिपाई पर हाथ और कमर टेकता हुआ बोला, "तो क्या, घर रहूँगा तो तुम्हें सेवा का मौका मिलेगा।"

पत्नी ने अनिश्चय से उस के चेहरे की ओर देखा; क्या यह व्यंग्य है या हँसी ? पर चन्द्र का चेहरा सूना था, दोनों में से कोई भाव उस पर नहीं था। वह साहस कर के थोड़ा मुस्करायी और बोली, "न, सेवा ऐसे भी जितनी चाहिए कराइये।" फिर रुक कर बोली, "अच्छा कपड़े तो बदल लीजिए, फिर मैं खाना लाऊँ।"

"नहीं कौशल्या, भूख नहीं है। और मैं थक भी गया हूँ।" कहते-कहते उस ने हलकी-सी जँभाई ली।

कौशल्या बढ़ कर उस के जूते खोलने लगी। मोजे गीले थे, आसानी से न उतरे, उस ने कहा, "ठीक से बैठ जाइये तो उतार लूँ।" चन्द्र ने बैठ कर पैर उठाये तो उस ने उकड़ूँ बैठ कर पैर गोदी में लिया और मोज़ा उतार कर पंजे हाथों से मल दिये। जूते-मोज़े एक ओर रख कर वह तौलिया ले कर आयी; चन्द्र को निश्चल देख कर उस ने तौलिया अपने

कन्धे पर डाला और चन्द्र की टाई खोल डाली। क्षण-भर अनिश्चित खड़ी रह कर मानो साहस बटोर कर उस ने पैंट की पेटी का बकसुआ खोल दिया, फिर कमीज़ खींच कर बाहर निकाल दी। फिर बोली, "अच्छा लीजिए, अब जल्दी बदल डालिए।" और जाने को मुड़ी।

चन्द्र उसे स्थिर दृष्टि से देख रहा था। कौशल्या थोड़ी-सी सिमट गयी। चन्द्र ने कहा, "तुम जा कहाँ रही हो?" वह कहने को हुई, "आप कपड़े—" पर बीच में ही रुक गयी, बोली, "आप की डाक ले आऊँ।"

चन्द्र तनिक-सा मुस्कराया, फिर कपड़े बदलने लगा। धोती की तहमद लपेट ली, बदन रगड़ कर सूखी कमीज़ पहन ली; फिर खाट पर बैठ गया। कौशल्या ने आ कर कहा, "यह लीजिए।"

दो चिट्ठियाँ थीं। एक पर टाइप किया पता था—उसे सवेरे भी देखा जा सकता है। दूसरी—पर यह क्या? उस पर चन्द्र की ही लिखावट थी। सात-आठ दिन पहले उस ने दिल्ली रेखा को पत्र लिखा था वही लौट कर आया था। 'एड्रेसी लेफ्ट'. . .तो रेखा वहाँ नहीं है, और डाक आगे भेजने के लिए पता भी नहीं छोड़ गयी है, न उसे सूचना दे गयी है. . .क्षण-भर वह सूना-सा ताकता रहा।

कौशल्या ने पूछा, "किस की चिट्ठी है?"

चन्द्र अनजाने ही कहने को था, "मेरी" पर रुक गया; स्वर में लापरवाही लाता हुआ बोला, "ऊँह, यों ही।" दोनों पत्रों को उस ने तकिये के नीचे ठेल दिया; आँखें कौशल्या पर जमायीं और पूछा, "तुम नहीं खाओगी?"

कौशल्या क्षण-भर अनिश्चित रही; उत्तर देने को थी कि चन्द्र ने हाथ बढ़ा, उस की कमीज़ का गला पकड़ कर अपनी ओर खींच लिया। खींचने से दो-तीन टीप-बटन खुल गये, पर चन्द्र की पकड़ नहीं छूटी; कौशल्या खिच आयी; चन्द्र ने सहसा खड़े होते-होते दूसरी बाँह उस के सिर के पीछे ले जाते हुए उसे और निकट खींच लिया; पास आते चेहरे पर उस ने देखा, कुछ विस्मय, कुछ अचकचाहट, कुछ प्रतीक्षा; ओठों के अधखुलेपन में इन सब के मिश्रण से ऊपर भी एक अकथ्य भाव; इस से आगे वह नहीं देख सका क्यों कि ओठों के छूते-न-छूते कौशल्या ने हाथ बढ़ा कर बत्ती बुझा दी थी, चन्द्र ने उस की काँपती-सी देह को खींच कर चारपाई पर गिरा लिया और एक क्रूर चुम्बन से उस के ओठ कुचल दिये— अँधेरे में कौशल्या की देह का कम्पन सहसा स्थिर हो आया—उन ओठों में वासना थी, सूखे गर्म ओठ, पुरुष के ओठ पर प्रेमी के नहीं; प्यार नहीं, बीते हुए स्मरणाश्रित चुम्बनों की गरम-गरम राख. . .

उस की शिथिल देह पर भार दिये-दिये ही चन्द्र जब सो गया, तब भी वह निश्चल पड़ी रही, थोड़ी देर बाद जब वह करवट ले कर उस से अलग हो गया तब वह धीरे-से उठी, अपने कपड़े उस ने ठीक किये, फिर दबे पाँव निकल कर दूसरे कमरे में चली गयी। साधारणतया

वह उसी कमरे में दूसरी चारपाई पर सोती थी; पर सुबह जब चन्द्र उठेगा तब उस के द्वारा देखा जाना वह नहीं चाहती; वह जानती है कि उस समय उसे वहाँ पा कर चन्द्र सहसा अजनबी आँखों से उसे देखेगा और फिर उन में घृणा घनी हो आयगी. . .यह—यह अपने-आप में कुछ भी है या नहीं वह नहीं जानती; प्यार होता तो अवश्य होता, पर जब नहीं है तो यही बहुत है; उस घृणा के साथ तो यह भी ज़हर हो जायगा. . .ऐसे ही सही, सवेरे चन्द्र उठे तो उसे न देखे, न घृणा करे। राख ही सही, पर घृणा की साँस उसे भी उड़ा न दे. . .

रेखा

पत्र को वन्द कर देने से पहले वहुत देर तक रेखा देखती रही, यद्यपि था वह मुश्किल से आधे पृष्ठ का। लेकिन उस की आँखें पत्र के शब्दों पर नहीं टिकी थीं, वरन् उस के आशय पर; और पत्र का आशय उस के शब्दों के आशय से भिन्न कुछ, गहरा कुछ था, जिस के कारण उस की दृष्टि दूर कहीं खो गयी थी। जहाँ वह वैठी थी, वहाँ उस के आगे कुछ वादाम के पेड़ थे, उस से आगे मौसमी विलायती फूलों की क्यारी, उस के वाद फिर पेड़, दूर पर पहाड़ों की कतार जो घनी बदली के कारण डरावनी हो आयी थी। पत्र पर टिकी हुई आँखें मानो इस सारे दृश्य को भी अपने में समा ले रही थीं और कुछ नहीं देख रही थीं। यह कश्मीर था——उस के पूर्वजों का कश्मीर, इस लिए उस का कश्मीर, जिस का सव-कुछ उस का ग़ैर था। जलवायु, वनस्पति, आकाश, लोग, यहाँ तक कि सर्वत्र बिखरे हुए उस के नाते-रिश्तेदार भी, जिन के नाम भी वह नहीं जानती थी, चेहरे तो दूर, और जिन में से अधिकांश को उस के अस्तित्व का भी पता नहीं था....कितना अजनवी, अकेला और ग़ैर हो सकता है व्यक्ति, जव यह अपने घर में अजनवी होता है.... लेकिन यही अच्छा है : क्योंकि इस अजनवीपन में कोई भी वास्तव में ग़ैर नहीं है; वह एक द्वीप है जिस के चारों ओर नदी का प्रवाह है, उस में और द्वीप हैं; कहीं कोई साझा सीमान्त नहीं है, किसी से कोई सीधा सम्पर्क नहीं, केवल नदी के माध्यम से, नदी जो माँ है, धारयित्री है, तारयित्री है, जो अन्त में एक दिन आप्लवन में सब को समा लेगी....

नीचे कहीं वह रास्ता है, जिस से दो-ढाई महीने पहले वह पहलगाँव गयी थी, तुलियन गयी थी। क्या सचमुच गयी थी ? लेकिन नहीं, यह सन्देह फिर कभी उस के मन में नहीं उठा है। अयथार्थ को आत्म-समर्पण करने का जो डर कभी उस ने जाना था, जो कभी उस ने जीत लिया था, वह फिर कभी नहीं जागा है; वह समर्पित है और जिस के प्रति समर्पित है वह उस की धमनियों में स्पन्दित...."मैं फुलफ़िल्ड हूँ", इस अनुभूति की दीप्ति अब भी उस के अन्तःकरण को आलोकित किये है, और कभी वात करते-करते या बैठे-बैठे इस की कान्ति सहसा उस के चेहरे पर फैल जाती है तो बूढ़ी मिसेज़ ग्रीव्ज़ चकित हो कर देखने लगती है, और ख़ुश होती है कि उस की संगिनी, सहायिका और प्रवन्धकर्त्री में ऐसी आध्यात्मिक कान्ति है....।

एंजेला ग्रीव्ज़ एक पादरी की विधवा है; पर पादरी कहने से जैसे स्वल्प-साधन, वहुधन्धी, सेवा-रत व्यक्ति का चित्र सामने आता है, वैसे मिस्टर ग्रीव्ज़ भी नहीं थे, और उन की विधवा तो नहीं ही है। ग्रीव्ज़ ने सेवा वहुत की, पर साधन भी काफ़ी जुटाये और जायदाद तो वहुत जुटा ली। फल उपजाने वाले कुल से आ कर यहाँ वागवानी के लिए उत्तम ज़मीन देख कर जितना ध्यान उस ने 'आत्माओं की खेती' में लगाया उतना ही फलों

की खेती में भी, और अब श्रीनगर में बँगले के अलावा आस-पास कई बगीचों और बंगलों की देख-भाल निस्सन्तान विधवा एंजेला के जिम्मे है। उसी के विज्ञापन के जवाब में रेखा यहाँ आयी है और यद्यपि उस का पद है 'कम्पैनियन' अर्थात् संगिनी का, तथापि काम उस के नाना प्रकार के हैं और संग उस का कम ही होता है, क्योंकि एंजेला जब बाहर के बगीचों में जा रहती है तब उसे श्रीनगर छोड़ जाती है, और जब श्रीनगर जाती है तब उसे यहाँ पहुँचा कर एक-आध दिन काम समझा कर फिर छोड़ जाती है। एंजेला की उम्र साठ से ऊपर है पर उस का शरीर सीधा और फुर्तीला है, और बुद्धि बड़ी सजग; काम उस के लिए बहुत हैं पर वह हारती नहीं और कभी मानती नहीं कि वह थक गयी है—यद्यपि संगिनी की खोज मूलतः थकान का ही एक पर्याय है....।

सेब कच्चे ही तोड़ कर पेटियों में भर लिये गये हैं। पेड़ों पर बहुत थोड़ा फल है। कुछ जो पकने पर तोड़ा जायेगा और श्रीनगर में ही बिकेगा क्योंकि बाहर भेजने लायक वह नहीं होता, कुछ जो अनन्तर उतारा जायेगा और जाड़ों तक बिकता रहेगा। रेखा को काम विशेष नहीं है, एंजेला श्रीनगर में काम देखती है और वह यहाँ सवेरे बगीचे का एक चक्कर लगा लेती है, पैकिंग वगैरह के काम पर नज़र दौड़ा लेती है....और बाकी घर की ही देख-भाल करती है। काम विशेष नहीं है, उपस्थिति ही प्रयोजनीय है....।

वर्षा लगभग हो ली; पर बादल कभी-कभी घिर आते हैं और ठंड हो जाती है और यहाँ की वर्षा का कोई भरोसा भी नहीं, अगस्त के उत्तरार्द्ध में प्रायः बड़े जोरों का एक दौर आता है और कभी सितम्बर तक चला जाता है....काले बादलों के नीचे सारा दृश्य घुट कर बन्द हो जाता है, पेड़ छोटे हो आते हैं, बँगला खिलौना-सा बन जाता है। मानो पूरा दृश्य अजायबघर के काँच के शो-केस में रखा हुआ एक माडेल हो....केवल पहाड़ उभर कर बड़े भारी और तीखे हो आते हैं, जैसे आकाश के तेवर चढ़ गये हों, घनी काली भौंहें उभर-सिकुड़ कर और भी काली हो गयी हों....फिर धूप कभी निकल आती है और सारा दृश्य खिल आता है, मधु-मक्खियाँ गुंजार करने लगती हैं, धूप के उजलेपन में अन्तर्हित एक ललाई उस तेज को मीठा कर देती है; उस की चुनचुनाहट त्वचा को सुहानी लगती है और नाड़ियों में अलस तन्द्रा भर जाती है...यह अलसाना भाव ही पहाड़ के शरदारम्भ का पहला और सब से प्रीतिकर चिह्न होता है—सब से प्रीतिकर भी, लेकिन साथ ही एक विशेष प्रकार की व्याकुलता लिये हुए....उस व्याकुलता को रेखा नाम देना नहीं चाहती; नाम देना आवश्यक भी नहीं है, क्योंकि धमनियों में उस की अकुलाहट के साथ ही मन में जो विचार या वांछा-चित्र उठते हैं वे अपने-आप में सम्पूर्ण होते हैं। इस अर्थ में सम्पूर्ण कि समूचे अस्तित्व की माँगें उन में अभिव्यक्ति पा लेती हैं....पहाड़ की पहली शरद का यह मदालस भाव अकेले अनुभव करने का नहीं है, क्योंकि वह मूलतः एक प्रतिकर्षित भाव नहीं है जैसी जाड़ों की ठिठुरन-सिकुड़न, न वैसा मुक्त विस्फूर्जित भाव है जैसा बरसात का उल्लास; वह मूलतः एक उन्मुख भाव है, अन्यापेक्षी भाव, जो

दूसरे की उपस्थिति से ही रसावस्था तक पहुँचता है....

रेखा ने एक लम्बी साँस ली। दूसरे की उपस्थिति....तुलियन की चाँदनी झील के वक्ष को दुलराती हुई धुन्ध की बाँह, उस की छाती को बहुत हलके गुदगुदाते सोनगाभा के फूल और वह स्निग्ध गरमाई जिसे वह नाम नहीं देगी, जिस का चित्र वह अपने आगे मूर्त्त नहीं करेगी....एक सिहरन-सी उस की देह में दौड़ गयी, वह उठ कर खड़ी हो गयी और पत्र को पढ़ती हुई चलने लगी; पर उठते ही उसे चक्कर-सा आने लगा, मतली होने लगी, आँखों के आगे अँधेरा-सा छा गया, चिट्ठी का सफ़ेद कागज़ नीला हो गया और स्याह अक्षर हरे-सुनहले हो कर मानो एक दूसरे से उलझते-लड़खड़ाते कभी पास कभी दूर होने लगे....वह उलटे पाँव चल कर हाथ से कुरसी टटोल कर फिर बैठ गयी; कड़े संकल्प से अपने को सँभाल कर उस ने एक बार पत्र पूरा पढ़ डाला और फिर सफ़ाई से तीन तह कर के लिफ़ाफे में डाल कर बन्द कर दिया जिस पर पता पहले से लिखा था। फिर उस ने पीठ और सिर पीछे टेक कर आँखें बन्द कर लीं, लिफ़ाफ़ा उस के हाथ से गोदी में झूल गया।

मेरे भुवन,

तुम्हें जब-तब पत्र लिखती रही हूँ—जान-बूझ कर देर-देर से; पर एक महत्त्व की बात फिर भी नहीं लिखी, क्यों कि ठीक जानती नहीं थी....अब लिखती हूँ—अब जानती हूँ, पर लिखने से पहले बहुत सोचा है कि लिखूँ या नहीं।

वह वीनकार-सर्जन वाली बात सच है, भुवन। मैं भगवान् का आशीर्वाद तुम्हारे लिए माँगती हूँ, और तुम्हारे चरण गोद में ले कर माथे से लगाती हूँ—उन्हीं के स्पर्श से वह आशीर्वाद मुझे भी घेर ले।

मुझे कुछ चाहिए नहीं भुवन, तुम्हें बताया इस लिए कि—वह भविष्य में मेरी आस्था है भुवन, और उसे तुम ने मुझे दिया है! अगर अब हम न मिलें, तो भी वह भूलना मत।

रे०

थोड़ी देर बाद वह फिर उठी; धीरे-धीरे खड़ी हुई, दो-चार कदम चली, और फिर बगीचे के पार चल पड़ी। चिट्ठी किसी और को भी दी जा सकती थी, पर वह स्वयं ही जायगी, स्वयं ही उसे बक्स में छोड़ेगी और इस निमित्त से थोड़ा टहलना भी हो जायगा—बगीचे से निकल कर टेढ़ी-मेढ़ी सड़क से नीचे बड़ी सड़क तक, कुछ आगे गाँव के सिरे तक जहाँ लेटर-बक्स लगा है, फिर दूसरी ओर सड़क के मोड़ तक जहां से उपत्यका की चितकबरी ओढ़नी पर लगा हुआ नदी का बल खाता हुआ गोटा चमक जाता है—यद्यपि इस बदली में वह चमकेगा नहीं, सीसे-सा झलकेगा—जैसे बहुत-बहुत पुरानी सफ़ेद जरी हो....पुरानी तो है ही—न मालूम कितना पुराना गोटा है, और न मालूम उस से भी कितनी पुरानी यह धूसर ओढ़नी....रेखा को एक पंजाबी टप्पा याद आ गया, जो उस ने घूमते हुए एक दिन किसी राह चलते बूढ़े सिख को गाते सुना था :

मेरा चोला लीराँ दा

इक वारी पा फेरा तक्क हाल फकीराँ दा !*

चलते-चलते वह स्वयं भी धीरे-धीरे गुनगुनाने लगी; कुछ तो उस के सुर की, और कुछ अर्थ की करुणा ने सहसा उसे छा लिया कि वह मानो उस की अपनी करुणा हो गयी, मानो अभी लम्बी तान के साथ उस के आँसू उमड़ आयेंगे....लेकिन उमड़े नहीं, रेखा बीच-बीच में रुक-रुक कर गुनगुनाती रही "तक्क हाल फकीराँ दा....तक्क हाल फकीराँ दा...." और बढ़ती रही गन्तव्य की ओर।

* * *

वकील से भेंट में ज्यादा समय नहीं लगा था; पर हेमेन्द्र के चेहरे पर जो कुटिल सन्तोष का भाव था, उस में से एक झल्लाहट भी प्रकट हो रही थी। उसे क्या कहना था, वह अच्छी तरह जानता था, आने से पहले मलय में भी उस ने कानूनी सलाह ले ली थी और दिल्ली के इस वकील से भी पत्र-व्यवहार कर लिया था; दूसरी ओर वकील भी तलाक़ के कानून का पारंगत था और उसे जो कहना था वह न केवल अच्छी तरह जानता था बल्कि साफ़, सुलझे, सान पर चढ़े हुए चाकू की तरह बेलाग फ़िकरों में कह भी सकता था। ऐसी भेंट का अपना एक रस होना चाहिए था, पर हेमेन्द्र की झल्लाहट की वजह दूसरी थी। वकील ने कहा था कि जहाँ तक तलाक़ की दरख़ास्त के कारणों की बात है, उचित कारण सब दूसरी तरफ़ हैं : न्यायतः रेखा ही दरख़ास्त दे सकती है क्यों कि उत्पीड़ित पक्ष वही है, और अगर वह नहीं देती तो उस की मर्ज़ी है। पर हेमेन्द्र किसी तरह छुटकारा चाहता है, तो यही तरकीब हो सकती है कि वह धर्म-परिवर्तन कर ले और फिर रेखा से भी कहे, उस के इनकार करने पर तलाक़ की दरखास्त दे....यह बता कर उस ने कहा था, "मैं मान कर चल रहा हूँ कि आप दोनों छुटकारा चाहते हैं, नहीं तो अगर वह न चाहती हों और धर्म-परिवर्तन करने को तैयार हों तो आप कुछ नहीं कर सकते---यानी ऐसे स्मूथली नहीं हो सकता---फिर तो आप को ऐसे आरोप उन पर लगाने पड़ेंगे जो सच होने पर भी कोई स्त्री आसानी से न मानेगी---और झूठ हों तब तो....और यह तो सवाल ही दूसरा है कि वह कितनी क्रूरता होगी---"

हाँ, वकील ने कोई मुरव्वत नहीं की थी---एकदम बेलाग बात की थी....वह ठीक ही था, पर यह पराधीनता उसे अखर रही थी। वह मनमानी का आदी है; इतनी छोटी-सी बात के लिए उसे रेखा का मुँह जोहना पड़ेगा---वह चाहेगी तो तलाक़ होगा, न चाहेगी तो नहीं---यह स्थिति उस से सही नहीं जा रही थी....रेखा बाधा नहीं देगी, वह जानता

---

*मेरा चोला चिथड़ों का है : एक बार इधर फेरा लगा कर इन फ़कीरों का हाल देख जाओ !

है; फिर उस सूरत में जब मुक्ति देने में उसे स्वयं भी तो मुक्ति मिलेगी—यद्यपि यह भी वह जानता है, रेखा को कानूनी मुक्ति की परवाह नहीं है, वह किसी भीतरी बन्धन से बद्ध या मुक्ति से मुक्त होगी; और वह अब भी अपने को इतना मुक्त समझती होगी कि कानून की बन्दिशों का बोझ उस पर न हो। यह सब ठीक है, पर क्यों वह रेखा पर निर्भर करने को लाचार है? इस से तो अच्छा होता कि वह यही कह कर तलाक़ माँगता कि रेखा दुराचारिणी है—वह उस हालत में भी सफ़ाई देने न आती अहंकारिणी, पर उस में उस की मुँहजोही तो न होती!

वह तो सचमुच वही करता। कुछ जब तोड़ना ही है, तो सीधे स्मैश करना चाहिए। यह क्या कि तोड़ना भी चाहो, और ढेला मारते भी डरो, गिराओ भी तो धीरे-धीरे कि चोट न आये? तोड़ना है, दो हथोड़ा—स्मैश! वकील ने कहा है कि रेखा को पत्र वही लिखेगा, और हेमेन्द्र से वायदा लिया है कि वह स्वयं कोई पत्र-व्यवहार नहीं करेगा, पर क्यों न वह रेखा को एक पत्र लिखे, साफ़-साफ़ पता लगाते क्या देर लगेगी—लिख दे कि वकील ने ऐसा कहा है पर वह सोचता है कि सीधी साफ़ बात—पूछ ले कि क्या तुम सफ़ाई देने आओगी? वकील ने कहा था, क्रूरता होगी। सभी पुरुष-स्त्री क्रूर होते हैं—और सब से क्रूर वे जो एक-दूसरे से शादी कर लेते हैं।

क्या जाने, रेखा भी शादी करना चाहे; पर यह विचार आते ही हेमेन्द्र ठिठक-सा गया—रेखा और शादी! एक विकृत मुस्कान उस के चेहरे पर फैल गयी। एक शादी का ही अनुभव उस के लिए काफ़ी होगा ... प्यार? लेकिन रेखा के लिए पुरुष-मात्र ऐसा जहरीला जीव हो गया होगा—औरतों की बनावट ही ऐसी होती है, कि पुरुष से चोट खा कर वे सारी पुरुष जाति को बुरा समझ लेती हैं—उदार दृष्टि से तो सोच ही नहीं सकतीं, कि मर्द-मर्द में भेद भी हो सकता है, कि—

यहाँ आ कर उस की विचार-परम्परा टूट गयी। क्यों नहीं वह रेखा पर तरस खा सकता, करुणा कर सकता, क्यों नहीं उसे अपनी दया दे सकता? रेखा—उस के प्रेम-शरीर का एक मरा हुआ अवयव जिसे उस ने काट दिया है—काट देने के बाद अवयव पर आक्रोश कैसा?

ख़ैर, वह रेखा को एक चिट्ठी तो लिखेगा ही, देखा जायगा—करुणा करने के लिए सारा भविष्य पड़ा है!

* * *

तुलियन से लौट कर भुवन फिर प्रयोगशाला में डूब गया था। यद्यपि यह डूबना पहले से कुछ भिन्न था; क्यों कि तुलियन के प्रयोगों को ले कर वह जब भी गणना करने बैठता, तो उन प्रयोगों से मिलने वाली बौद्धिक प्रेरणा ही नहीं, उन की ओट में तुलियन का वह भावोन्माद भी झलक आता जिसे ओट से खींच कर सामने लाने का प्रयत्न उस ने नहीं

किया था; वह अनुभूतियों का एक संघट्ट, संवेदनाओं का एक घना सम्पुंजन था जिसे विश्लिष्ट कर के देखना चाहना ही मानो वर्बरता थी--जिस तरह किसी हलकी गैस से भरे हुए गुब्बारे से लटक जाने पर गुरुत्वाकर्षण को काट कर मानव मानो भार-मुक्त हो जाता है--पृथ्वी पर पैर रख कर चलता भी है तो भार दे कर नहीं चलता, वैसी ही उस की अवस्था थी; वह अपनी सब चर्या पूरी करता था, पर मानो धरती पर पैरों की छाप डाले विना : जैसे मानवी काया-पिंजर में वँधा कोई आकाशचारी देव-गन्धर्व....रेखा के दो-एक पत्र उसे आये थे, छोटे-छोटे, सूचनात्मक, जिन में कभी एक-आध वाक्य अन्तरंग सम्बोधन का आ जाता तो आ जाता : उन से वह भावोन्माद फिर भीतर ही भीतर पुष्ट हो जाता था, उभर कर सतह पर नहीं आता था। भुवन ने अधिक पत्र नहीं माँगे, बल्कि अपनी ओर से भी विशेष कुछ नहीं लिखा, वैसे ही सूचनात्मक पत्र....हाँ, रेखा की तरह उस ने भी जब-तब कागज़ पर अपने विचार लिख कर रख छोड़ना आरम्भ कर दिया था --वह भी वैसा इरादा कर के नहीं, रेखा के उदाहरण का ध्यान कर के भी नहीं, लगभग अनजाने ही; उस की वैज्ञानिक दीक्षा के कारण अन्तर इतना था कि अलग-अलग परचों की वजाय उस ने एक कापी रख ली थी। यह जिज्ञासा भी उस के मन में कभी नहीं हुई कि क्या रेखा भी अभी वैसे कुछ लिख कर रखती होगी, या कि क्या वे विचार और भावनाएँ कभी वह देख-पढ़ सकेगा....लेकिन ऐसा वह क्यों, कैसे हो गया वह स्वयं नहीं समझ पाता था--जीवन के प्रति ऐसा स्वीकार भाव उस में कहाँ से आया? चन्द्रमाधव की भाँति वह जीवन को नोचने-झँझोड़ने का आदी तो नहीं था; बछड़े की देखा-देखी नृशंस ग्वाले जैसे गाय के थनों में हुचका मार कर दूध की अन्तिम बूँद निकाल लेना चाहते हैं, जीवन की कामधेनु को वैसे दुह लेने की प्रवृत्ति उस की नहीं थी; पर ऐसा प्रश्न-विहीन भाव भी तो उस का नहीं रहा था : यह क्या रेखा की छाप थी कि वह भी मानो धीर-प्रवाहिनी जीवन की नदी का एक द्वीप-सा हो गया है? रेखा....उस की आकृति का, विशेष घटनाओं या स्थितियों का चित्र भुवन के सामने कदाचित् ही आता; स्मृत संस्पर्शों या दुलारों का राग कदाचित् ही उसे द्रवित करता; पर रेखा के अस्तित्व का एक बोध मानो हर समय उस की चेतना के किसी गहरे स्तर को आलोकित किये रहता और उस के प्रतिबिम्बित प्रकाश से अन्तःकरण को रंजित कर जाता--जैसे किसी पहाड़ी झील पर पड़ा हुआ प्रकाश प्रतिबिम्बित हो कर आस-पास की घाटियों को उभार देता है....केवल कभी-कभी वह साँझ को बाइबल उठा कर उस में सालोमन का गीत पढ़ने बैठ जाता, पढ़ते-पढ़ते ऐसा विभोर हो जाता कि जोर-जोर से पढ़ने लगता; फिर अपना स्वर उसे चौंका देता--मानो जाग कर वह जानता कि वह रेखा के कारण उसे पढ़ रहा है--प्रकारान्तर से रेखा के साथ है....

केवल एक बार पिछले कुछ महीने की घटनाएँ--और विशेष कर दो-तीन मास पहले के नौकुछिया-ताल और तुलियन के थोड़े से दिन--एक तीखे मर्मान्तिक दर्द की तरह

उसे साल गयी थीं। थोड़ी देर वह तिलमिला गया था, फिर लज्जा से भर गया था—इस लिए और भी अधिक कि वह तिलमिलाना भी और सिमटना भी एक और व्यक्ति ने भी देख लिया था। फिर उस ने प्रकृतस्थ हो कर बात सँभाल ली थी—या सँभालनी चाही थी, क्योंकि कहाँ तक वह सँभल सकी है वह नहीं जानता था....

गौरा कुछ घंटों के लिए आयी थी। दिल्ली से बनारस जा रही थी जहाँ उस ने कालेज में संगीत-शिक्षिका की नौकरी स्वीकार कर ली थी; सीधी न जा कर उस ने भुवन से मिलते हुए जाने का निश्चय किया था। अपनी ओर से तो वह चाहती ही, पर भुवन ने भी बुलाया था: उस ने केवल यह सूचना दी थी कि वह बनारस जायेगी और उत्तर में भुवन ने पूछा था कि क्या वह उधर से हो कर न जा सकेगी—उस ने निस्सन्देह बहुत प्रमाद किया है और गौरा का रोष स्वाभाविक ही होगा, पर रोष न कर के उसे देखते जाना भी कम स्वाभाविक न होगा और वह कृतज्ञ भी होगा—गौरा का वह सदैव कृतज्ञ है....

वह स्टेशन लिवाने गया था। स्टेशन से वे दोनों पहले उस की प्रयोगशाला में गये थे, वहाँ से होते हुए घर आने की बात तय हुई थी। प्रयोगशाला से लगे हुए भुवन के कमरे में वैज्ञानिक यन्त्रों से घिरे हुए बैठ कर गौरा ने बताया था कि वह बनारस नौकरी करने जा रही है; फिर भुवन से यन्त्रों के बारे में पूछने लगी थी। यन्त्रों से कॉस्मिक रश्मियों, और उन से तुलियन की बात उठना स्वाभाविक था; गौरा ने सहसा पूछा था, "तुलियन झील सुन्दर है?" और साथ ही जोड़ दिया था, "वहाँ भी आप यन्त्रों से ऐसे ही घिरे बैठे रहते होंगे—प्रकृति के लिए आप को फुरसत ही कहाँ होगी?"

तब, पहली बार वह दर्द उसे साल गया था। "प्रकृति के लिए फुरसत"—एक प्रकृति बाहर की जड़ प्रकृति है, एक उस की धमनियों में गरम-गरम प्रवाहित होने वाली उस की प्रकृति—और क्या सचमुच उसे फुरसत नहीं हुई थी? झूठ वह नहीं बोलेगा, गौरा से बिलकुल नहीं, पर कहे क्या वह? जो-कुछ भी वह कहेगा, क्या वह झूठ नहीं होगा?

उस ने कहा था, "कितने भी यन्त्र हों, पहाड़ को और प्रकृति को नहीं छिपाते", फिर कुछ रुक कर अपने को बाध्य करते हुए, "तीन-चार दिन के लिए रेखा देवी भी वहाँ आयी थीं—बल्कि यन्त्रों के आने से पहले—"

एक भारी-सा मौन उस के बीच में पड़ गया था। वह दर्द भुवन को फिर सालने लगा था, पर इस मौन को ठेल कर हटा देने की प्रेरणा उस में नहीं थी। गौरा भी कुछ कहने को हुई थी—फिर सहसा चुप लगा गयी थी; भुवन देख सका था कि वह कुछ कहती रुक गयी है, पर क्या, वह नहीं सोच सका था। अन्त में गौरा ने ही कहा था, "अब कहाँ हैं रेखा देवी?"

"कश्मीर में—वहाँ उन्हों ने नौकरी कर ली है। पीछे दिल्ली में थीं—दिल्ली से वहाँ चली गयीं।"

गौरा ने फिर कुछ रुक कर, सकुचाते हुए कहा था, "हाँ।" फिर वह कुछ कहने को हुई थी, और फिर रुक गयी थी।

मौन और भी भारी हो गया था। अब की वार उसे कोई नहीं तोड़ सका था। अन्त में जब भुवन ने कहा था, "चलो, घर चलेंगे—यहाँ कुछ और नहीं करना है", तब भी उसे यह नहीं लगा कि उस भारी मौन को वह तोड़ सका है; वात उस ने की है ज़रूर, पर यह दूसरे स्तर पर है, जिस स्तर पर मौन है उस पर यह पहुँची ही नहीं....

और न गौरा ही उसे तोड़ पायी थी जब उस ने घर पहुँच कर कहा था, "लाइये, मैं आयी हूँ तो थोड़ी सँभाल मैं कर जाऊँ—पर पहले चाय बना लाऊँ।" स्वयं यह अनुभव करती हुई वह बिना भुवन के रास्ता दिखाने की प्रतीक्षा किये भीतर चली गयी थी—वह इस घर का भूगोल नहीं जानती, पर एक अकेले बैचलर सायंटिस्ट के घर का भौगोलिक रहस्य हो ही कितना सकता है....

भुवन तिलमिलाया हुआ टहलता रहा था। दर्द उसे सालता हुआ सारी देह में छा गया था, एक भीतरी दबाव-सा उस की आँखों के पपोटों में स्पन्दित होने लगा था; भवों के ऊपर उस का माथा सीसे-सा भारी हो आया था....

गौरा चाय बना कर ले आयी थी। एक बार भुवन के चेहरे को देख कर चुपचाप ढालने लगी थी। बढ़ा हुआ प्याला ले कर भुवन बैठ गया था।

उसी प्रकार, मौन की दीवार को तोड़ने में, भुवन ने पूछा था, "गौरा, तुम ने नौकरी जो कर ली—तो क्या जीवन का मार्ग अन्तिम रूप से चुन लिया? माता-पिता की क्या राय है?"

"हाँ, भुवन दा। नौकरी मैंने नहीं चुनी, संगीत ही चुना है; पर आगे सीखने के लिए यह सहारा ज़रूरी है—माता-पिता पर बोझ बने रहना कहाँ तक ठीक होता?"

भुवन उसे देखता रहा था। माथे का नाड़ी-स्पन्दन वैसा ही था, उसे मानो वह सुन सकता था। फिर उस ने पूछा था, "गौरा, विवाह क्या कभी नहीं करोगी?"

तब यह मौन थरथरा कर टूट गया था। गौरा खड़ी हो गयी थी। उस का मुँह तमतमा आया था। मुद्रा तनिक भी नहीं बदली थी, इस से यह स्पष्ट नहीं था कि वह तमतमाहट कैसी है; उत्तर देने से पहले भी वह क्षण-भर रुकी रही थी और जब बोली थी तो बिलकुल सम स्वर से: "भुवन दा, मुझ से तो आप पूछते हैं, पर नौकरी तो आप भी करते हैं, आप ने क्या सोचा है यह सब—सोच चुके हैं?"

भुवन ने कहना चाहा था, "मेरी बात दूसरी है—पुरुष के लिए विवाह और नौकरी विरोधी कैरीयर नहीं हैं और स्त्री के लिए साधारणतया तो होते ही हैं—साथ नहीं चलते—" पर कह नहीं पाया था; गौरा के मुँह की ओर देखते-देखते अचानक कह गया था, "गौरा, आज देखता हूँ तुम मुझ से छोटी अब नहीं हो—और अब से बराबर-बराबर बात करूँगा; यों पहले भी बिलकुल छोटी तो तो नहीं मानता था—"

गौरा एकदम बैठ गयी। उस का चेहरा शान्त हो आया। बोली, "माफ़ी चाहती हूँ, भुवन दा—आप सदैव बड़े हैं।"

भुवन ने निश्चयात्मक स्वर से कहा, "नहीं।" फिर मानो असली विषय पर लौटते हुए, "पर मेरे लिए एक चुन लेना आवश्यक नहीं है। इस मामले में पुरुष दिग्भ्रान्त भी रहे तो चल सकता है—स्त्री को बिलकुल सुलझे ढंग से सोचना पड़ता है—निर्मम हो कर।"

गौरा ने ज़िद की, "अच्छा ज़रूरी न सही, आप ने सोचा तो होगा ?" फिर सहसा अपनी ज़िद पर थोड़ा-सा शरमा कर वह मुस्करा दी।

उस मुस्कराहट से भुवन सँभल गया। स्वयं भी मुस्करा कर बोला, "ठीक सोचा तो नहीं—सोचना तो एक वैज्ञानिक क्रमागत क्रिया है—पर हाँ, यों ही कुछ धारणाएँ तो हैं—"

"क्या ?"

"यही कि उस के विरुद्ध मैंने कोई प्रतिज्ञा तो नहीं की। राह चलते यदि कोई उपयुक्त साथी मिला, तो—"

"लेकिन इस देश में राह चलते कुछ नहीं होता, भुवन दा, बड़ी खोज करनी पड़ती है।" गौरा स्पष्ट ही उसे चिढ़ा रही थी।

भुवन ने उसी ढंग से कहना चाहा, "न, मिरेकल इस देश में भी होते हैं—" पर यह मानो उसे अनुगूंज लगी दूर कहीं की घंटियों की—ज़बान पर आयी बात रुक गयी और वह फिर चुप हो गया। थोड़ी देर बाद उस ने फिर हँसने का यत्न करते हुए कहा, "खोज तो दूसरे करते हैं—विज्ञान के विद्यार्थी का तो सारा जीवन ही खोज है।"

"ओ हो ! तब जब कुछ मिल जायगा तो भौंचक-से देखते रह जायेंगे। सब-कुछ कॉस्मिक रश्मियों की तरह थोड़े ही यन्त्र से नाप लिया जाता है।"

"खास कर स्त्री—यही न ? पर यह क्यों मान लेती हो कि मैं ही खोजूंगा—वह भी तो खोजेगी—बल्कि वही खोज लेगी—स्त्रियों की बुद्धि तो अचूक होती है न ऐसे मामलों में ? मैं—यन्त्र—केवल इतना जान लूंगा कि खोज पूरी हो गयी।"

भुवन को थोड़ा-थोड़ा लग रहा था कि वह उस के लिए अस्वाभाविक ढंग से बात कर रहा है, कुछ-कुछ बेवकूफ़ी की भी बात कर रहा है। पर इस तरह की ग़ैर-ज़िम्मेदार बातें मानो एक छद्म थी जिस की ओट में उसकी भीतरी आकुलता और असमंजस छिप जाता था। वह कहता गया, "राह चलते जिस दिन बैठे-बैठे जानूंगा, मेरे पीछे कोई है और मुड़ कर नहीं देखूंगा और वह झुक कर अपने खुले बाल मेरी आँखों के आगे डाल देगी—उस दिन में जान लूंगा कि मेरी खोज—कि मेरे लिए खोज समाप्त हो गयी, और पड़ाव आ गया।"

गौरा अनिश्चित-सी हँसी, "क्या बच्चों की-सी बात करते हैं आप। या रोमांटिकों जैसी।"

"क्यों ?"

"और नहीं तो क्या। कौन वह सुन्दरी होगी जो ऐसे अपने केशों में आप को बाँध लेगी--ऐसी तो रोमांटिकों की वह सनातन चुड़ैल थी--लिलिथ--जो अपने सुनहले बालों से लोगों के दिल बाँध लिया करती थी और वे सूख जाते थे। क्यों नहीं आप उन नाइटों की बात सोचते जिन के माथे पर तारा चमका करता था ?"

"तारों की खोज क्या कम पागलपन है, गौरा ? इतने बड़े आकाश में कोई एक तारा चुन लीजिए, अच्छा चुन ही लीजिए, अँग्रेजी में कहते तो हैं कि 'अपना छकड़ा तारे के पीछे जोत लो' पर तारे तक पहुँचे तब तो--"

"या तारा ही आप तक पहुँचे--"

नहीं, यह भी प्रतिध्वनि है--कहाँ किस की प्रतिध्वनि ? 'कोई बात नहीं, मैन फ़्राइडे, तारा ख़ुद तुम्हें ढूँढ़ लेगा।'--'मैं अँधेरे में डूबना नहीं चाहती, नहीं चाहती !'-- 'अच्छा मैन फ्राइडे, तुम्हारा तारा कौन-सा है ?'--'और तुम--शुक्रतारा।' 'क्यों, चाँद नहीं ?' 'वेन मैन ! नहीं, शुक्र, केवल शुक्र !'--'मेरा तारा।'

भुवन खड़ा हो गया। प्याला उस ने रख दिया, टहलने लगा।

"क्या बात है भुवन दा ?"

भुवन ने पैंतरा करते हुए कहा, "हमारे प्रोफ़ेसर कहते थे, विज्ञान से जिस की शादी हो जाती है, उसे फिर और कुछ नहीं सोचना चाहिए। वह बड़ी कठोर स्वामिनी है।"

गौरा ने कहा, "हूँ। यों तो संगीत--कोई भी कला--और भी कठोर स्वामिनी है; और विज्ञान का मनचलापन तो सन्दिग्ध भी हो सकता है, कला के बारे में तो सन्देह की गुंजाइश नहीं।" फिर वह रुक कर क्षण-भर स्थिर दृष्टि से भुवन को देखती रही। "मगर भुवन दा, हम लोग क्या बे-बात की बात कर रहे हैं; आप--आप हैं कहाँ ?"

"गौरा--" भुवन ने पास आ कर एक हाथ गौरा के कन्धे पर रखा और चुप हो गया। धीरे-धीरे उस का हाथ हटने लगा पर गौरा ने उस पर अपना हाथ रख कर उसे रोक लिया और बड़े अनुरोध से कहा, "बताइये न, भुवन दा--"

भुवन ने धीरे-धीरे हाथ खींच लिया। "कुछ नहीं गौरा; अपने भविष्य के बारे में नहीं सोचा करता, तुम्हारे ही भविष्य की बात सोचा करता हूँ।" कुछ रुक कर, पर गौरा को बोलने का मौका दिये बिना, "यों तो भविष्य की बात ही नहीं सोचनी चाहिए--वर्त्तमान ही सब-कुछ है, भविष्य केवल उस का एक प्रस्फुटन--"

यह क्या हो गया है उस को ? यह भी प्रतिध्वनि है...

गौरा ने उलहने के स्वर में कहा, "यह आप कहते हैं, भुवन दा, आप ?"

ठीक है गौरा का उलहना, भुवन के भीतर कुछ उमड़ कर बोला था, तुम कैसे ऐसी बात कह सकते हो, और गौरा को...

ठीक इस समय, बड़े मौके से, भुवन का नौकर आ गया था। साधारणतया उसी को

आ कर चाय देनी चाहिए थी, पर रसोई में आ कर उस में उथल-पुथल के लक्षण देखे तो भीतर देखने चला आया, भीतर गौरा को चाय लिये बैठे देख कर वह मुड़ गया एक हलकी-सी मुस्कराहट को छिपाने के लिए—तो डाक्टर साहब के लिए अभी कहीं कुछ उम्मीद है...

भुवन अपनी ही बात को ले कर हँस दिया। "और नहीं तो क्या ? सोचने को तो हम बहुत कुछ सोचते हैं, पर जब जाँच कर के देखते हैं तो यही मानना पड़ता है कि हाँ, वर्त्तमान ही सब-कुछ है ।"

गौरा थोड़ी देर वैसे उलहने से देखती रही। फिर उस ने कहा, "हो सकता है। यों मेरे लिए भी यही बात है—अभी जहाँ तक मुझे दीखता है, उसी के अनुसार मैंने भी सोच लिया है; आगे जब—नया वर्त्तमान खुलेगा तब उस के अनुसार और सोच लूंगी। नहीं तो आप ही बताइये—"

भुवन ने कुछ सोचते हुए कहा, "हाँ, यों तो ठीक है।"

अगली गाड़ी से गौरा चली गयी थी। जाने के समय वातावरण कुछ स्वच्छ हो गया था; भुवन ने यह भी कहा था कि अगले दशहरे की छुट्टियों में वह शायद बनारस आयेगा—दो-एक दिन, फिर गौरा के साथ दिल्ली लौटेगा अगर उस के पिता वहाँ होंगे, या अगर मसूरी होंगे तो वहीं जायगा। गौरा ने कहा था, "ज़रूर चलिएगा—आप पिता जी को बहुत नेग्लेक्ट करते रहे हैं—रहे हैं न ?" फिर चारों ओर नज़र डाल कर कहा था, "घर को भी आप ने नेग्लेक्ट कर रखा है। मैं एक-दो दिन रह जाती तो सब सँभाल देती—पर आप रहने ही कहाँ देते हैं?" भुवन ने हँस कर उत्तर दिया था, "घर की सँभाल एक-दो दिन का काम थोड़े ही है, गौरा ? एक बार सँभालोगी, फिर वैसा ही हो जायेगा—पर वैसे नुक्स क्या है, मुझे जबानी ही बता दो, मैं सँभालूंगा—"

"ऐसे काम जबानी ही हो सकते तो..."

"तो क्या ?"

लेकिन गौरा ने अपना वाक्य पूरा नहीं किया था।

* * *

गौरा के जाने के बाद वापस लौट कर बहुत देर तक भुवन कमरे में और छत पर चक्कर काटता रहा। गौरा के आने ने उस के भीतर जो उद्वेलन उत्पन्न कर दिया था, उस का कारण वह नहीं जानता था, न कोई स्पष्ट विचार ही उस के मन में उठ रहे थे, केवल एक आकारहीन, केन्द्रविहीन आकुलता...फिर वह अपनी कापी ले कर बैठा, लेकिन उस में भी कुछ न लिख सका : कापी सामने रख कर बैठा रहा, सांझ घिर आयी, बादल छा गये और गरजने लगे...उस ने कापी रख दी और टहलने निकल गया।

दूसरे दिन फिर वह पूर्ववत् अपने काम में जुट गया; उद्वेलन भीतर-ही-भीतर कहीं

दब गया और पहले की स्थिति फिर हो गयी—काम, काम, काम केवल चेतना के भीतरी किसी स्तर पर एक आलोकमय छाप, और उस के साथ गुँथा हुआ रेखा का ध्यान जो सतह पर नहीं आता...

इस अवस्था से रेखा के पत्र ने उसे झकझोर कर जगा दिया—और ऐसा जगाया कि फिर वह कभी उस अवस्था को नहीं लौटा; फिर जब आयी तो एक प्रकार की जड़ता आयी, और उस के भीतर एक आलोक नहीं, एक गुथीला अन्धकार...

पत्र पा कर उस ने पढ़ा, तो पहले शान्त भाव से ही पढ़ गया; कोई आश्चर्य की बात उस में नहीं थी। रेखा से जब वह विदा हुआ था, तब जो बात हुई थी उस से यह परिणाम निकलता ही था—रेखा ने सूचित कर दिया था और यह भी कह दिया था कि वैसा ही वह चाहती है...पर क्या तब सच-मुच वह समझ सका था ? उस ने मन-ही-मन स्थिति को मूर्त किया—नदी के आर-पार पड़े शहतीर पर वे दोनों, दोनों स्तब्ध, नीचे दौड़ता उफनता पहाड़ी नदी का जल; और दोनों की अपूर्ण आकांक्षाओं का आरोप उस भविष्यत् जीव पर जिसे—शायद !—उन्होंने अनजाने और एक आविष्ट मोहावस्था में रचा है...क्या तब वह उस बात का पूरा अभिप्राय समझा था जो रेखा ने कही थी—क्या वह अब भी समझ रहा है ? धीरे-धीरे एक-एक स्मृति उस के मन में उभरने लगी, और मानो तेजाब से एक-एक गहरी रेखा उस के चेतन-पट पर कोरने लगी..."आर यू रीएल—तुम हो, सचमुच हो, भुवन ?...में तुम्हारी हूँ, भुवन, मुझे लो...रेखा, आओ...**लेट अस गेट अप अर्ली टु द विनयार्ड्स : देयर विल आइ गिव दी आफ़ माई लव्ज...महाराज ए कि साजे एले मम हृदयपुर माझे**...भुवन, मेरी मोहलत कब तक की है ? शुभाशंसा चूमती है भाल तेरा...पगली, पगली, तुम तो चाँदनी में ही जम गयी थीं। और तुम ? तुम पिघल गये थे ?...**लव मेड ए जिप्सी आउट आफ मी**...लजाती हो—मुझ से—अब ? तुम से नहीं तो और किस से लजाऊँगी ?...**वेट विदाउट होप, फ़ार होप वुड वी होप आफ़ द रांग थिंग...देबे कि गो बासा आमाय देबे कि एकटि धारे ?...**" एक अद्भुत भाव उस के मन में भर गया, जिस में वात्सल्य भी था, करुणा भी, एक आतुर उत्कंठा भी और एक बहुत हलकी-सी जुगुप्सा भी। "न, मैं कुछ मागूंगी नहीं, तुम्हारे जीवन की बाधा नहीं बनूंगी, उलझन भी नहीं बनूंगी। सुन्दर से डरो मत.. लेकिन भुवन, मुझे अगर तुम ने प्यार किया है, तो प्यार करते रहना—मेरी यह कुंठित बुझी हुई आत्मा स्नेह की गरमाई चाहती है कि फिर अपना आकार पा सके, सुन्दर, मुक्त, ऊर्ध्वाकांक्षी..." क्यों नहीं माँगेगी रेखा कुछ भी ? यों सब कुछ दे देगी, और फिर चुपचाप चली जायेगी—अपनी सब से अधिक आवश्यकता के समय मूक ? नहीं, इतना बड़ा दान वह नहीं ले सकेगा। उदार हो कर देना कठिन है, होगा, पर उदार हो कर ले लेना और भी कठिन है... "तुम ने मुझे एक बार भी नहीं बताया कि मेरे लिए तुम्हारे हृदय में क्या भाव हैं...." ठीक कहा था रेखा ने, उस ने सचमुच कभी कुछ नहीं बताया, शायद स्वयं ही नहीं

सोचा—और बिना एक प्रश्न तक भी पूछे रेखा ने—नहीं, यह एक-पक्षीय व्यापार वह नहीं सह सकेगा—घुट जायेगा इस के बोझ से. . .ऐसा दान वह नहीं लेगा जो पाने वाले का दम घोट दे, और देने वाले को—देने वाले को भी संकट में डाल दे. . .

लेकिन दान वह नहीं लेगा, यह कहने के अब क्या मानी हैं जब वह दान ले चुका है? अब वह क्या करेगा, अब, यही उसे सोचना है, और स्पष्ट सोचना है, परिणाम तक ले जा कर सोचना है. . .

पत्र उसे कालेज में मिला था। कालेज से लौटने से पहले उस ने रेखा को तार दे दिया कि वह आ रहा है, और छुट्टी का आवेदन भी दे दिया, बल्कि थोड़ी देर बाद स्वयं प्रिंसिपल के पास जा कर स्वीकृति भी ले ली। शाम को रवाना हो गया।

*　　　　*　　　　*

मोटर के अड्डे पर रेखा हो भी नहीं सकती थी, पर भुवन ने उतर कर चारों ओर नज़र दौड़ा कर देख लिया मानो उसे खोज रहा हो, फिर जब वह कहीं न दीखी तो उसे सन्तोष हुआ। बाहर निकल कर ताँगा लिया, पर पते के लिए दो-एक जगह पूछना पड़ा। अन्त में जब ठीक पता पा कर ताँगा मिसेज़ ग्रीव्ज़ के बगीचे की ओर बढ़ चला, फाटक पर पहुँच कर रुका और भुवन ने उतर कर उस पर लगा हुआ ग्रीव्ज़ नाम का बोर्ड भी देख लिया, तब ताँगे को जल्दी बढ़ने के लिए न कह कर उस ने वहीं रोक दिया। "हम अभी पूछ कर आते हैं ठीक होने से भीतर बुला लेंगे—" कह कर वह गेट खोल कर भीतर बढ़ा, ताँगे वाले की पुकार उस ने अनसुनी कर दी कि "साब, ताँगा भीतर ले चलूँ, साब!"

एक डर-सा उस के मन पर छा गया. पर उस ने उसे साफ़ सामने ला कर नहीं देखा। प्रार्थना-सी यही बात बार-बार उस के ओठों पर आने लगी कि जब वे मिलें तो रेखा अकेली हो—चाहे कितनी थोड़ी देर के लिए, औरों के बीच में न उसे रेखा से साक्षात् करना पड़े. . .मन में यह भी प्रश्न उठता कि क्या रेखा ठीक वैसी ही होगी, या उस का रूप कुछ बदल गया होगा—पर इस प्रश्न को भी वह दबा देता : कुछ नहीं सोचेगा वह रेखा को देखने तक—और देखे तो वह अकेले में ही देखे. . .

दूर से ही उस ने उसे देख लिया। बरामदे में आराम-कुरसी पर वह बैठी थी; सारा शरीर ढलती धूप में, केवल चेहरा छाँह में था और स्पष्ट दीखता नहीं था। रेखा ने वही परिचित मक्खनी सफ़ेद रेशमी साड़ी पहन रखी थी, पहनने का ढंग कुछ अनोखा था और मानो उसे और भी दूर अलग ले जाता था। उस ने भुवन को अभी नहीं देखा था, भुवन कुछ और भी ओट हो कर दबे-पाँव चलने लगा; बिलकुल बरामदे के पास आ कर जब उस ने बरामदे की काठ की सीढ़ी पर पैर रखा, तभी आहट से वह चौंकी, मुड़ कर उस ने देख कर पहचाना और कहा, "भुवन! अरे, भुवन, तुम—" और उठ बैठी पर उठी नहीं, वहीं से उस ने बाँहें बढ़ायीं कि भुवन लपक कर पहुँच गया, एक बाँह से उस ने रेखा

को घेर लिया और कुरसी की बाँह पर अध-बैठा होते-होते उसे खींच कर अपने से लगा लिया, उस के माथे पर गाल टेक कर स्तब्ध रह गया, रेखा के दिल की धड़कन उस की जाँघ पर बहुत हलका ताल देने लगी. . .थोड़ी देर बाद उस ने बहुत धीमे भर्राये स्वर में कहा, "रेखा, तुम—रेखा. . ." रेखा ने चेहरा थोड़ा ऊँचा उठाया, उस की नाक भुवन के गाल में धँस गयी, अध-खुले ओठों से साँस का हलका स्पर्श भुवन के नासा-मूल को गुदगुदाने लगा, तब सहसा भुवन के ओठों ने उस के ओठ ढूँढ़ लिये. . .फिर उस ने खड़े होते हुए कहा, "रेखा, मैं अभी आया—बाहर ताँगा है—"

रेखा ने कहा, "तुम नहीं जाओ, यहीं से पुकारो 'सलामा'—वह बुला लायेगा।"

भुवन क्षण-भर उसे ताकता रहा। "कितना अच्छा हुआ कि तुम अकेली थीं जब मैं पहुँचा, रेखा—"

रेखा ने समझ कर धीरे से हाथ उस की ओर उठा दिया, कुछ कहा नहीं, उसकी आँखों की गहरी मुस्कराहट ही उसे दुलरा गयी।

भुवन ने बरामदे की ओर बढ़ कर पुकारा, "सलामा!" फिर मुड़ कर रेखा से पूछा, "मिसेज ग्रीव्ज़ कहाँ रहती हैं—तुम अकेली हो?"

"हाँ, वह श्रीनगर में हैं—मैं निगरानी के लिए यहाँ बैठी हूँ। जब वह आयेंगी तो मैं उधर चली जाऊँगी। पर अभी दो महीने शायद यही व्यवस्था रहे। फिर जब बर्फ पड़ने लगेगी तो यहाँ खाली हो जायगा—मैं भी श्रीनगर उन के साथ रहूँगी।"

"कैसा लगता है, रेखा?"

रेखा ने गहरी दृष्टि से स्थिर भाव से उसे देखा, कुछ बोली नहीं।

सलामा ताँगे वाले को बुला लाया। भुवन ने कुछ झिझकते हुए पूछा, "एम आइ—स्टइंग विथ यू?—वैसे मैं—"

रेखा ने आँखों से ही उसे घुड़क दिया। सलामा ने कहा, "साहब का सामान मेहमान-कमरे में लगा दो—"

भुवन ताँगे वाले को विदा करने लगा, सलामा ने सेवा-पटु कश्मीरी लहजे में पूछा, "चाय लाऊँ मेम साब?"

भुवन को रेखा का बोलने का ढंग अतिरिक्त मधुर लगा। यों वह सदा विनय से बात करती थी, पर भुवन ने सोचा, उस के स्वर में न बंगालियों की आदर्श-प्रियता है, न कश्मीरियों की बनावट; एक सहज शालीनता उस में है जिसे न अकड़ना पड़ता है, न झुकना पड़ता है, जिस से प्रकृतस्थ रह कर ही वह बड़े-छोटे सब के बराबर हो जाती है. . .व्यक्ति का आभिजात्य क्या है, उस की सर्वोपरि सत्ता, उस का अखंड चक्रवर्तित्व, यह रेखा के निकट रह कर और उस का लोक-व्यवहार देख कर समझ में आ जाता है. . .

चाय के बाद दोनों बरामदे से उतर कर टहलने लगे। रेखा ने कहा, "बगीचा देखोगे ? घूम आयें—"

भुवन ने उस की ओर देखते हुए कहा, "तुम्हें —कष्ट तो नहीं होगा ?"

"न। मुझे तो अच्छा लगता है—"

"तो चलो।" फिर कुछ रुक कर, "लेकिन—तुम्हारी शाल ले आऊँ—पर तुम्हारा कमरा भी तो नहीं जानता ?"

"तो पहले वही देखोगे?" रेखा मधुर मुस्करायी, "नहीं वह फिर दिखाऊँगी। पर शाल तो अन्दर जाते दाहिने को टँगी है—मैंने दिन में रखी थी—"

भवन उठा लाया।

रेखा ने कहा, "फल तो लगभग सब उतार लिये गये हैं, जिधर हैं उधर ही चलें—उधर तो कुछ धूप भी होगी—"

भुवन को याद आया। डूबते सूर्य का उन्होंने पीछा किया था, और हार गये थे। नहीं, आज वह डूबते सूर्य का पीछा नहीं करेगा; सूर्य को डूब जाने दो, पकते सेव पर उस की धूप की चमक ही इष्ट है—उसी को वह देखेगा, उस की लालिम कान्ति में सूर्य की धूप पकेगी, सुफला होगी. . .शारदीया साँझ की धूप में फलों-लदा सेव का पेड़—जीवन के आशीर्वाद का, जीवन-रूप आशीर्वाद का इस से बढ़ कर और कौन-सा प्रतीक है ? शरदारम्भ अभी नहीं हुआ, अभी बरसात का अन्त ही है, फलों पर भी अभी वह सूर्यास्त की लाल-सुनहली कान्ति नहीं आयी, पर उस फले हुए जीवन-तरु को वह देख सकता है—

. . .देयर इज़ येट फ़ेथ

एंड द फ़ेथ एंड द लव एंड द होप आर आल इन द वेटिंग. . .*

उस ने बढ़ कर रेखा का हाथ थाम लिया, और मानो राह दिखाता हुआ साथ ले चला। सामने पेड़ के ऊर्ध्व भाग पर धूप पड़ रही थी, उस में जगमग एक फलों-लदी डाली को दिखा कर भुवन ने कहा, "इस जाति का नाम बता सकती हो ?"

रेखा कहने को थी, "क्विस—" पर भुवन ने इशारे से टोकते हुए कहा, "ये हैं 'सनसेट ग्लोरी'।"

"सो तो जानती हूँ।" रेखा ने मुग्ध भाव से उस के कोट की आस्तीन से सिर छुआते हुए कहा, "मेरा सारा बगीचा 'सनसेट ग्लोरी' है।"

"देखो हम हारे नहीं रेखा; ढलते सूर्य को हम ने पकड़ा ही नहीं, उस के बीच में खड़े हैं।"

---

*. . .फिर भी विश्वास है—

—किन्तु विश्वास और प्रेम और आशा सब प्रतीक्षा में ही हैं. . .*

—टी० एस० एलियट

रेखा ने फिर वह गहरा अपांग उसे दिया : "क्या जाने, भुवन; पर तुम कहते हो तो—ऐसा ही हो, ओ मेरे मालिक, ऐसा ही हो..."

दोनों खड़े देखते रहे। सूर्य की कान्ति फीकी पड़ी, फिर डाली के फल स्याह हो गये, आलोक का धान्य मानो वादल के एक वहुत वड़े तामलोट में वन्द हो गया, तामलोट भी काला पड़ गया, हवा चलने लगी, रेखा सिहर गयी। भुवन ने अपनी वाँह पर पड़ी शाल रेखा को ठीक से ओढ़ा दी। रेखा ने कहा, "चलो अव चलें—"

"हाँ, चलो—वैठ कर वात करेंगे—मुझे वहुत-कुछ कहना है—"

"कहना है, भुवन—क्या कहना है?" रेखा उस की ओर घूम गयी। दोनों की आँखें मिलीं। देर तक मिली रहीं। फिर दोनों चुप-चाप चलने लगे। भुवन ने धीरे से कहा, "नहीं, ठीक कहना नहीं है—कहना कुछ नहीं है। लेकिन—" वह सहसा चुप हो गया। पर मन-ही-मन वह कहता रहा, "रेखा, रेखा, रेखा..."

* * *

पहले दृग्मिलन के क्षण से कभी भी दोनों में किसी को यह नहीं लगा था कि उन का सम्पर्क कहीं टूट गया है और उसे फिर से स्थापित करना होगा; वरावर ही वे सम्पृक्त थे। पर फिर भी, यद्यपि उन की वातों में घनिष्ट सौहार्द था, प्रणय था—मानो वात करने में दोनों यह भी अनुभव करते जा रहे थे कि वे वात नहीं कर रहे हैं, केवल पैंतरे कर रहे हैं...

रात को भोजन के वाद—जिस में रेखा ने लगभग कुछ नहीं खाया—रेखा उठ कर अपने कमरे में चली गयी तो भुवन भी अपने कमरे में गया, कपड़े वदल कर उस ने दो-एक चीज़ों को इधर-उधर कर के अपनी सुविधा के अनुकूल रख लिया; फिर टेवल लैम्प को वहुत नीची मेज़ पर रख कर कि प्रकाश कमरे में वहुत मन्दा हो जाय, एक कुरसी उस ने खींच कर लैम्प के पास कर दी। पलंग के सिरहाने की ओर खिड़की पर जा कर खड़ा हो गया और एकटक वाहर देखने लगा। वादल घिर आये थे, दूर की विजली की प्रति-विम्वित चमक से वादल की चादर रह-रह कर सफ़ेद हो आती थी।

रेखा का स्वर आया—"मैं आ सकती हूँ? तुम्हारे कमरे में वैठ सकती हूँ?"

भुवन ने घूम कर कहा, "यह मैं पूछने वाला था। आओ—पर तुम तो मुझे अपना कमरा दिखाने वाली थीं—"

"चलो, अव चलो।"

साफ़-सुथरा और करीने से सजा तो था ही रेखा का कमरा, पर भुवन को लगा कि उस में कुछ और भी विशेषता है। क्या, यह सहसा वह नहीं जान सका, पर थोड़ी देर में वह स्पष्ट हो गयी—कमरे में कोई चीज़ फ़ालतू नहीं थी : सव-कुछ मित, मानो आवश्यक होने के कारण अनिच्छा रहते भी रखा गया था। अपने कमरे से उस ने तुलना की—

वहाँ सब-कुछ अधिक था—अधिकतम आराम के लिए वह सजाया गया था; और यहाँ—अल्पतम आवश्यक सुविधा की ही कसौटी रखी गयी थी. . .उस ने कहा, "रेखा, तुम तपश्चारिणी होने जा रही हो ?"

"क्यों ? ओ—यह ! नहीं भुवन, अधिक कुछ भी हो तो मुझे चुभता है—मैं अपने साथ ही जीना चाहती हूँ—बाहर का अनावश्यक लटा-पटा मुझ से सहा नहीं जाता।"

"और मैं मुगल बादशाह हूँ—क्यों ?"

"वह तो मेहमान कमरा है, डाक्टर साहब—आप हमारे मेहमान हैं।"

भुवन ने हाथ बढ़ा कर बिस्तर टटोला—तख्तों का पलंग, उस पर गद्दा नहीं था—दरी, नमदा, चादर; अचानक उस ने तकिया एक ओर को खींचा, उसके नीचे एक कापी थी। उस ने चुप-चाप तकिया वैसे ही रख दिया, मानो कापी न देखी हो।

"यहाँ बैठोगे, भुवन, या उधर चलें ?"

"कहना तो यह चाहता हूँ कि मैं इधर रहूँगा, तुम उधर जाओ; पर—चलो, उधर बैठेंगे; क्योंकि मैं मेहमान हूँ !"

"हाँ !"

* * *

रेखा को उस ने टेबल पर लैम्प के पास वाली कुरसी पर बिठाया, स्वयं पलँग पर बैठ गया। दोनों थोड़ी देर एक-दूसरे को देखते रहे।

"तुम——फिर आ गये, भुवन; मैंने नहीं सोचा था—"

"यह सोच लिया था कि अब नहीं आऊँगा ?"

"नहीं भुवन, यह नहीं; पर आओगे, यह कभी नहीं सोचती थी।"

दोनों फिर थोड़ी देर चुप रहे।

सहसा भुवन ने कहा, "अच्छा, रेखा, अब क्या ?"

"अब क्या, भुवन ?" रेखा ने सहज भाव से कहा, "जीवन अपनी गति से चलता है। उस से बहुत अधिक तो मैं पहले भी नहीं माँगती थी—"

अगर रेखा बात को ऐसे टाल दे तो वह कैसे पूछे ? उस ने फिर यत्न किया, "रेखा, तुम अब भी—अब भी क्या—"

"हाँ, भुवन, मैं अब भी वैसी फुलफ़िल्ड हूँ—और तुम्हारी कृतज्ञ—"

"वह नहीं रेखा—तुम—तुम क्या नौकरी ही—तुम यहाँ से मेरे साथ चलो—"

बिजली चमकी—पहले दूर से प्रतिबिम्बित, फिर कड़कती हुई; कड़क के धीमी पड़ते-न-पड़ते वर्षा होने लगी। उस की पटपटाहट के ऊपर स्वर उठाते हुए भुवन ने कहा, "रेखा, यह क्या सम्भव होगा कि—तुम मुझ से विवाह कर लो ?"

रेखा सिहर गयी, उठने को हुई और बैठी रही। बोली नहीं।

वर्षा की पटपटाहट बढ़ती गयी, हवा के साथ जोर की बौछार आयी और खिड़कियाँ खटखटाने लगीं, भुवन ने उठ कर खिड़की बन्द कर दी, बाहर का शब्द सहसा कम हो गया, मानो सन्नाटा छा गया हो।

उस भ्रमात्मक सन्नाटे को तोड़ते हुए रेखा ने स्पष्ट स्वर में कहा, "नहीं भुवन; नहीं।"

फिर एक लम्बा मौन रहा। फिर भुवन बोला, "मुझे यही डर था, रेखा। बात भी बहुत जटिल हो गयी है। पर---इतना तुम्हें विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि---यह करुणा नहीं है, रेखा; न निरी एक नोबल जेसचर---मैं सचमुच कहता हूँ।" उस के स्वर में व्यथा थी।

रेखा ने उठते हुए पास आ कर कहा, "हाँ भुवन। तुम्हें क्लेश पहुँचाना नहीं चाहती थी---अविश्वास मैंने नहीं किया। पर---वह असम्भव है। मैंने---तुम से प्यार माँगा था; तुम्हारा भविष्य नहीं माँगा था, न मैं वह लूँगी।"

भुवन् भी खड़ा हो गया। "तुम ने नहीं माँगा, नहीं माँगोगी। तुम्हारे माँगने न माँगने का सवाल भी नहीं है। मैं माँग रहा हूँ रेखा।"

"न भुवन। बात वही है। तुम कुछ कहो, मैं नहीं भूल सकती कि---जो हुआ है वह न हुआ होता तो---तुम न माँगते---न कहते; इस लिए तुम्हारा कहना--परिणाम है। और यह कहना परिणाम नहीं, कारण होना चाहिए, तभी मान्य---तभी उस पर विचार हो सकता है।"

"रेखा!" भुवन ने अपने दोनों हाथ उस के कन्धों पर रख दिये। धीरे-धीरे उसे फिर कुरसी पर बिठा दिया, फिर दो कदम पीछे हट कर मैंटल के सहारे खड़ा हो गया।

"रेखा, और भी बातें सोचने की हैं---"

रेखा ने एक फीकी मुस्कान के साथ कहा, "हैं न? इसी लिए यह बात सोचने की नहीं रही---यह तभी सोची जा सकती है जब एक और अद्वितीय हो, दूसरी किसी बात से असम्बद्ध हो।"

भुवन ने चाहा कि झल्ला उठे। क्यों रेखा उस की बात ठीक नहीं समझती---क्यों उलटे अर्थ लेती है? पर वह जो कहती है, उस में भी तो तथ्य है... तथ्य है, यही तो झल्लाहट का कारण है---यह ऐसी गुत्थी है कि बँधी उन के चाहने से, पर खुलेगी नहीं, जितना वे चाहेंगे और उलझती जायेगी...

"रेखा, उस---उस बीनकार की बात भी तो सोचो---"

रेखा ने दर्द से आँखें बन्द कर लीं, जैसे कोड़ा पड़ा हो। फिर उस ने पीठ पीछे टेक दी, बड़ी थकी हुई आँखें भुवन की ओर उठायीं, और कहा, "उस की बात सोचने के लिए तुम्हें मुझे नहीं कहना होगा भुवन! नहीं, बुरा मत मानो, मैं ताना नहीं दे रही।" वह थोड़ी देर रुक गयी। "पर भुवन, तुम समाज की दृष्टि से देखते हो : वह दृष्टि गलत नहीं है,

अप्रासंगिक भी नहीं है; निर्णायक भी वह नहीं है। व्यक्ति को दवा कर इस मामले का जो भी निर्णय होगा---गलत होगा---घृण्य होगा, असह्य होगा !"

फिर थोड़ी देर वह चुप रही। फिर आँखें गिराते हुए कहा, "हो सकता है कि मेरा सोचना शुरू से ही गलत रहा हो---पर शुरू से वह यही रहा है। मेरे कर्म का---सामाजिक व्यवहार का नियमन समाज करे, ठीक है; मेरे अन्तरंग जीवन का---नहीं। वह मेरा है। मेरा यानी हर व्यक्ति का निजी।"

"हाँ, मगर दोनों में क्योंकि विरोध है, और अपरिहार्य विरोध है---"

"तो यह भी जीवन की एक न सुलझने वाली गुत्थी रह जायेगा। यह तो नहीं है कि ऐसी गुत्थी कभी हुई न हो---वीसियों पड़ी रहती हैं चारों ओर---एक और सही---"

"लेकिन ---लेकिन ऐसा मान लेने से तो कोई रास्ता नहीं निकलता---" कह कर वह झल्लाया-सा मुस्करा दिया क्यों कि वास्तव में यही तो रेखा कह रही थी। फिर वह चुपचाप टहलने लगा। रेखा बैठी रही। वर्षा की टपाटप ही एकमात्र शब्द रह गया।

"तुम थके हो, भुवन ?---सोओगे ?"

"ऊँ, नहीं।" भुवन ने रुक कर रेखा की ओर देखा। "पर तुम---तुम्हें शायद आराम करना चाहिए---"

"मैं ठीक हूँ। अपने-आप चली जाऊँगी।"

थोड़ी देर फिर वर्षा की टपाटप। भुवन ने कहा, "यह वर्षा असमय नहीं है ?"

"पता नहीं। हर साल ही असमय हो तो असमय कैसे कहा जाय ? प्रायः ही शुरू सितम्बर में जोर का दौर आता है---और वाढ़ भी जब आती है इन्हीं दिनों---"

फिर केवल वर्षा का स्वर रह गया।

"काफ़ी पियोगे ?"

भुवन ने अचकचा कर कहा, "अब ?"

"हाँ, मेरे कमरे में स्टोव है---मैं कभी-कभी रात को बनाती हूँ---"

"अब नहीं, रेखा। पर---तुम पियो तो मैं बना लाऊँ---"

रेखा ने सिर हिला दिया।

थोड़ी देर बाद बोली, "कैसे हम लोग मानो सात बरस से व्याहे पति-पत्नी की तरह हो गये हैं---बातचीत के लिए कोई विषय नहीं मिलता, तकल्लुफ की बातें कर रहे हैं---"

भुवन ने हँस कर कहा, "तकल्लुफ बाकी है, यही क्या कम है ? सात बरस बाद तो रुखाई का वक्त आ जाता है---या बिलकुल मौन उपेक्षा का !"

रेखा ने कहा, "इसी लिए क्या तुम मुझे कह रहे हो---"

भुवन ने एकाएक पास आ कर उस के दोनों कान पकड़ लिये, धीरे-धीरे उस का मुंह ऊपर को उठाते हुए कहा, "पगली, एक तो बात नहीं सुनती, फिर चिढ़ाती है ?" और ओठों के कोमल स्पर्श से उस का सीमान्त छू लिया।

रेखा ने अस्पष्ट स्वर में कहा, "गाड ब्लेस यू..."

भुवन फिर मेंटल के पास चला गया। थोड़ी देर बाद बोला, "रेखा, तुम्हें गाना सुनाने को आज नहीं कहूँगा—मैं कुछ पढ़ कर सुनाऊँ?"

"सुनाओ—पर बत्ती वहाँ रख दूँ?"

"नहीं, मैं वहीं आता हूँ", कह कर भुवन ने दूसरी दीवार से लगी मेज़ पर से दो-एक पुस्तकों में से एक उठायी, अभ्यस्त हाथों से पन्ने उलट कर मनचाहा स्थल निकाला और रेखा के पैरों के पास फर्श पर बैठ गया, जहाँ रोशनी पुस्तक पर पड़ रही थी। रेखा ने झुक कर देखा—ब्राउनिंग।

"साथ लाये हो?"

उत्तर दिये बिना ही भुवन पढ़ने लगा :

हाउ वेल आई नो ह्वाट आई मीन टु डू
ह्वेन द लांग डार्क ऑटम ईवनिंग्स कम,
एंड ह्वेयर, माइ सोल, इज दाइ प्लैंजेंट ह्यू ?
विद द म्यूज़िक आफ ऑल दाइ वायसेज़, डम्ब
इन लाइफ़्स नवैम्बर, टू !
आइ शैल बी फ़ाउंड बाइ द फ़ायर, सपोज़,
ओवर ए ग्रेट वाइज बुक एज बेसीमेथ एज,
ह्वाइल द शट्र्स फ़्लैप ऐज़ द क्रासविंड ब्लोज़,
एंड आइ टर्न द पेज़, एंड आइ टर्न द पेज़,
नॉट वर्स नाउ, ओनली प्रोज़!...*

* * *

रेखा ने कहा, "सारी बात फिर से दुहराओगे, भुवन? मैं कहती हूँ, यह व्यर्थ की बहस है, निष्परिणाम!" थोड़ी देर चुप हो कर उस ने एक लम्बी साँस ली, फिर बोली—"मैं कहना नहीं चाहती थी, तुम कहला कर छोड़ोगे : तुम्हारे साथ—जीवन का जो-कुछ सुन्दर मैंने जाना है, तुम्हारे साथ; जो-कुछ असुन्दर जाना है विवाह में; और तुम कहते हो—"

---

*कितनी अच्छी तरह मैं जानता हूँ कि शरद की लम्बी अँधेरी सन्ध्याओं में मैं क्या करना चाहूँगा—जीवन के नवम्बर में, मेरी आत्मा की दीप्ति फीकी पड़ रही होगी और उसके अनेक स्वरों का संगीत मूक हो रहा होगा! मैं अपनी वय के अनुकूल कोई बड़ी ज्ञान-पोथी लिये आग के निकट बैठा करूँगा, और जाड़ों की हवा कपड़ों को फफड़ाया करेगी; और मैं पन्ने पर पन्ना उलटता जाऊँगा—अब काव्य नहीं, केवल गद्य...
—ब्राउनिंग

उस के स्वर में जो थरथराती तीव्रता थी, उस के धक्के से भुवन क्षण-भर स्तब्ध रह गया; फिर समझाता हुआ बोला, "लेकिन रेखा, विवाह में जो हुआ वह विवाह के कारण ही हुआ, ऐसा तो नहीं है—एक व्यक्ति का दोष—"

"वह सब मैं जानती हूँ, भुवन—सारी दलीलें मैं अपने को दे चुकी हूँ। अब जो कहती हूँ, वह उस सब के बाद है।" भुवन के चेहरे का विमूढ़ भाव देख कर वह कहती गयी, "समझ लो कि यह निचोड़ है मेरी संचित की हुई तर्कातीत हठ-धर्मी का।"

भुवन फिर चुपचाप टहलने लगा। दिन में रेखा से बहुत कम बात हुई थी—जो हुई थी वह वैसी ही, जैसी आतिथेय-अतिथि में परिजनों के सामने होती है; फिर दिन में वह शहर चला गया था। रेखा ने पूछा था कि क्या कुछ काम है जो बारिश में जायगा? तो कहा था कि नहीं सैर करेगा; तब रेखा ने भी कहा था कि अच्छा मैं भी लेटी रहूँगी। लेकिन भुवन छाता-बरसाती ले कर निकला था और शहर की बहुत-सी बातें जान आया था; बाज़ार, तार, डाकघर, अस्पताल, अच्छे डाक्टरों-सर्जनों के जगह-ठिकाने . . . निरुद्देश्य भाव से ही उस ने यह पड़ताल शुरू की थी, पर निरुद्देश्यता में भी व्यवस्थितता थी और जब वह लौटा तो श्रीनगर के बारे में खासा जानकार हो कर—यद्यपि सैलानियों के जानने की एक भी बात उस ने नहीं जानी थी। उधर रेखा भी निगरानी का आवश्यक काम कर के, सब को आवश्यक आदेश दे कर भुवन के कमरे में गयी थी, चीज़ों की झाड़-पोंछ स्वयं कर के उस ने फूलदानों में नये फूल सजाये थे, उस की इनी-गिनी किताबें देख उन के साथ अपने कमरे से तीन-चार और किताबें ला रखी थीं; बिस्तर ठीक से लगाया था। फिर अपने कमरे में जा कर थोड़ी देर सुस्ता कर वह अपनी कापी ले कर भुवन के कमरे में लौट आयी थी और बैठ कर रुक-रुक कर थोड़ा-थोड़ा लिखती रही थी। लगभग दो घंटे बाद वह अचकचा कर उठी थी, अपने कमरे में जा कर घड़ी देख आयी थी और फिर वहीं आ बैठी थी। थोड़ी देर बाद उस ने भीतर से लकड़ियाँ ला कर अंगीठी में ऐसे सँवार कर चुन दी थीं कि झट से आग जलायी जा सके—बारिश अभी हो ही रही थी और काफ़ी सर्दी हो गयी थी। फिर अबेर होती जान वह उठी थी, थोड़ी देर अनिश्चित पलँग के पास खड़ी रही थी; तब उस ने अपनी कापी भुवन के सिरहाने तकिये के नीचे दबा कर रख दी थी, ऊपर से सलवटें ठीक कर के दरवाजा उढ़का कर बाहर चली गयी थी। बाहर आराम-कुरसी पर दो-तीन गद्दियाँ डाल कर, पैरों के लिए चौकी और कम्बल रख कर, वह आराम से बैठ गयी थी; आँखें उस ने बन्द कर ली थीं। ऐसा ही भुवन ने थोड़ी देर बाद उसे पाया था। आते ही बरामदे में बरसाती-छाता टाँगते हुए उस ने पूछा था—"आराम किया?" और रेखा ने कहा था, "देख लो।" और फिर, "एक कुरसी और ले लो—बैठो—या कि पहले कपड़े बदलोगे—भीग आये हो।" भुवन कपड़े बदलने चला गया था।

चाय पी गयी थी। शाम फिर वैसी ही मेहमान-मेजबान के ढंग से बीती थी, खाना भी वैसे ही खाया गया था। भुवन ने बताया था कि वह सारा शहर घूम गया; बन्ध. लाल-

मंडी, अमीरा कदल, वजीर बाग—दो-चार नाम भी उस ने अपनी जानकारी बताने के लिए ले दिये थे। रेखा ने बताया था कि वह थोड़ा पढ़ती-लिखती रही, बाकी उस ने खूब आराम किया . . . उस के बाद पूर्ववत् भुवन के कमरे में बात हो रही थी।

"एक बात और है भुवन—और यह बुनियादी बात है : विवाह हो ही कैसे सकता है—मैं तो बँधी हूँ—" सहसा कटु मुस्कान के साथ, "केवल दुराचार—"

"चुप !" भुवन ने डपट कर कहा : रेखा ने वाक्य अधूरा छोड़ दिया। "रेखा, और जो है, अपने को यों सताने की कोई ज़रूरत नहीं है।"

"आई'म सॉरी, भुवन !" रेखा ने सच्चाई से कहा—"पर—बँधी तो हूँ—"

"तो मैं प्रतीक्षा करूँगा—"

रेखा हँस पड़ी। "क्या बच्चों की तरह प्यारा मुँह बना कर कहते हो, प्रतीक्षा करूँगा।" रेखा ने पास जा कर अँगुलियों से उस के ओठ पकड़ कर भींच दिये, जैसे बच्चों के ओंठ भींच देते हैं। "कब तक आख़िर—और किस लिए ?" वह थोड़ा रुक गयी। "जिस के लिए—जिस के लिए सोचते हो वह तो. . ." सकपका कर वह फिर बैठ गयी।

भुवन फिर निरुत्तर हो कर टहलने लगा। रेखा चुपचाप उस का मुँह निहारने लगी। उस की चाल में निश्चय और विमूढ़ता का अजस्र मिश्रण था; हाथ पीछे गुँथे हुए, सिर कुछ झुका लेकिन ठोड़ी सामने बढ़ी हुई, और भँवों के बीच में दो रेखाएँ, जिन से बीच का हिस्सा कुछ लाल-लाल जान पड़ता था. . ।

रेखा ने पूछा, "आज तो काफ़ी पियोगे : ठंड है। मैं लाती हूँ।" भुवन कुछ कहे, इस से पहले ही उस ने साथ जोड़ दिया, "मैं भी पियूँगी।"

"तब अच्छा। पर मैं बना कर लाता हूँ। मेरी ज़िद।"

"अच्छा, यही सही। स्टोव ड्रेसिंग रूम में लगा है; और सब समान उस के पास के ताक में रखा है। हमेशा तैयार लगा ही रहता है।"

भुवन चला गया। तब रेखा भी उठी। अँगीठी में आग सुलगायी—अनुभवी हाथों की लगायी हुई लकड़ियों ने तुरन्त आग पकड़ ली; आठ-दस मिनट बाद जब भुवन ट्रे में लगी हुई काफ़ी ले कर आया, तब चटचटाती लाल शिखाओं का असम प्रकाश कमरे में नाचने लगा था। उस ने कहा, "अरे—जादूगरनी !"

रेखा ने कहा, "हाँ, तुम्हारा जादू मेरे हाथ में भी चला आया है।"

आग के पास तिपाई उस ने पहले ही रख दी थी। भुवन ने दो कुरसियाँ खींच कर ठीक जगह रखीं, रेखा को आदर से हाथ पकड़कर उठाया और तिपाई के पास वाली कुरसी पर बिठा दिया; फिर एक प्रश्नसूचक दृष्टि से उस की ओर देख कर टेबल लैम्प बुझा दिया। आग के प्रकाश में उन की और काफ़ी के बर्तनों की छायाएँ दीवार पर नाचने लगीं।

काफ़ी पी कर भुवन ने तिपाई हटा दी, अपनी कुरसी खींच कर रेखा की कुरसी के निकट कर ली। फिर मेज़ तक जा कर किताब उठाने लगा तो बोला, "मेरी किताबें बढ़ कैसे गयीं ?"

चार-पाँच किताबें लिये वह लौट आया; किताबें ज़मीन पर रख कर कुछ आगे झुक कर उन के नाम देखने लगा। चार्ल्स मार्गन का 'द फाउंटेन', आन्द्रे जीद का 'स्ट्रेट इज़ द गेट', ठाकुर की 'गीतांजलि', लुई एमो का 'मारिया शादलेन', सानुवाद 'कुमार-सम्भव', दो-एक कविता-संकलन, एक-आध और पुस्तक।

"ओह, यह मेरे मेज़बान की कृपा है।"

एक किताब निकाल कर उस ने खोली, नीचे झुका कर ऐसे रखी कि रेखा भी देख सके, और स्वर-हीन ढंग से पढ़ने लगा। रेखा भी साथ-साथ पढ़ती रही। कभी बीच में एक-आध पंक्ति वह गुनगुना देती, भुवन जानता था कि दोनों लगभग साथ-ही-साथ पढ़ रहे हैं। पन्ना पलटने से पूर्व क्षण-भर रुकता और फिर धीरे-धीरे उलट देता।

सो लेट मी बी दाइ क्वायर, एंड मेक ए मोन
अपान द मिडनाइट आवर्स;
दाइ वाएस, दाइ ल्यूट, दाइ पाइप, दाइ इन्सेन्स स्वीट
फ्राम स्विंगेड सेंसर टीमिंग,
दाइ श्राइन, दाइ ग्रोव, दाइ आरैकल, दाइ हीट
आफ़ पेल-माउथ्ड प्राफेट ड्रीमिंग।*

* * *

जलती हुई एक लकड़ी एक ओर गिरी; प्रकाश कुछ मन्दा पड़ गया। आग ठीक करने के लिए रेखा खड़ी हुई तो भुवन ने कहा, "रेखा, तुम्हारे कमरे में तो आग नहीं है।"

"बनी हुई रखी है। जाऊँगी तो जला लूँगी।"

"पर कमरा गरम होते तो देर लगेगी, मैं अभी जला आऊँ।"

उस की कलाई पर हाथ रख कर उसे रोकते हुए रेखा ने आग्रहपूर्वक कहा, "नहीं, तुम बैठो।"

दोनों फिर बैठ गये। किताबें हटा दी गयीं, दोनों चुप-से हो गये।

थोड़ी देर बाद भुवन ने कहा, "रेखा, तुम्हें क्या ज़रूर अभी कमरे में चले जाना है?"

रेखा कुछ बोली नहीं, उस की ओर देख कर रह गयी।

भुवन ने धीरे-धीरे हाथ पकड़ कर उसे उठाया, और पलँग पर जा लिटाया। स्वयं एक बाहीं पर बैठ गया, धीरे-धीरे रेखा का कन्धा थपकने लगा।

आग मन्दी पड़ गयी, अंगारे ही लाल-लाल चमकते रह गये। छायाओं का नाच

---

*मुझे होने दो तुम्हारा गायक, जो मध्य रात्रि की घड़ियों को अपनी व्यथा से भरे; तुम्हारा स्वर, तुम्हारी वीणा, तुम्हारी वंशी, तुम्हारा झूलते हुए धूपदान से उठता हुआ गन्ध-धूम; तुम्हारा मन्दिर, तुम्हारा कुंज, तुम्हारी देववाणी, तुम्हारे विवर्ण स्वप्नदर्शी सन्देशवाहक की उत्तेजना! —जॉन कीट्स

मंडी, अमीरा कदल, वजीर बाग--दो-चार नाम भी उस ने अपनी जानकारी बताने के लिए ले दिये थे। रेखा ने बताया था कि वह थोड़ा पढ़ती-लिखती रही, बाकी उस ने खूब आराम किया . . . उस के बाद पूर्ववत् भुवन के कमरे में बात हो रही थी।

"एक बात और है भुवन--और यह बुनियादी बात है : विवाह हो ही कैसे सकता है--मैं तो बँधी हूँ--" सहसा कटु मुस्कान के साथ, "केवल दुराचार--"

"चुप !" भुवन ने डपट कर कहा : रेखा ने वाक्य अधूरा छोड़ दिया। "रेखा, और जो है, अपने को यों सताने की कोई ज़रूरत नहीं है।"

"आई'म सॉरी, भुवन !" रेखा ने सच्चाई से कहा--"पर--बँधी तो हूँ--"

"तो मैं प्रतीक्षा करूँगा--"

रेखा हँस पड़ी। "क्या बच्चों की तरह प्यारा मुँह बना कर कहते हो, प्रतीक्षा करूँगा।" रेखा ने पास जा कर अँगुलियों से उस के ओठ पकड़ कर भींच दिये, जैसे बच्चों के ओंठ भींच देते हैं। "कब तक आखिर--और किस लिए ?" वह थोड़ा रुक गयी। "जिस के लिए--जिस के लिए सोचते हो वह तो. . ." सकपका कर वह फिर बैठ गयी।

भुवन फिर निरुत्तर हो कर टहलने लगा। रेखा चुपचाप उस का मुँह निहारने लगी। उस की चाल में निश्चय और विमूढ़ता का अजब्र मिश्रण था; हाथ पीछे गुँथे हुए, सिर कुछ झुका लेकिन ठोड़ी सामने बढ़ी हुई, और भँवों के बीच में दो रेखाएँ, जिन से बीच का हिस्सा कुछ लाल-लाल जान पड़ता था. . ।

रेखा ने पूछा, "आज तो काफ़ी पियोगे : ठंड है। मैं लाती हूँ।" भुवन कुछ कहे, इस से पहले ही उस ने साथ जोड़ दिया, "मैं भी पियूँगी।"

"तब अच्छा। पर मैं बना कर लाता हूँ। मेरी ज़िद।"

"अच्छा, यही सही। स्टोव ड्रेसिंग रूम में लगा है; और सब समान उस के पास के ताक में रखा है। हमेशा तैयार लगा ही रहता है।"

भुवन चला गया। तब रेखा भी उठी। अँगीठी में आग सुलगायी--अनुभवी हाथों की लगायी हुई लकड़ियों ने तुरन्त आग पकड़ ली; आठ-दस मिनट बाद जब भुवन ट्रे में लगी हुई काफ़ी ले कर आया, तब चटचटाती लाल शिखाओं का असम प्रकाश कमरे में नाचने लगा था। उस ने कहा, "अरे--जादूगरनी !"

रेखा ने कहा, "हाँ, तुम्हारा जादू मेरे हाथ में भी चला आया है।"

आग के पास तिपाई उस ने पहले ही रख दी थी। भुवन ने दो कुरसियाँ खींच कर ठीक जगह रखीं,रेखा को आदर से हाथ पकड़कर उठाया और तिपाई के पास वाली कुरसी पर बिठा दिया; फिर एक प्रश्नसूचक दृष्टि से उस की ओर देख कर टेबल लैम्प बुझा दिया। आग के प्रकाश में उन की और काफ़ी के बर्तनों की छायाएँ दीवार पर नाचने लगीं।

काफ़ी पी कर भुवन ने तिपाई हटा दी, अपनी कुरसी खींच कर रेखा की कुरसी के निकट कर ली। फिर मेज़ तक जा कर किताब उठाने लगा तो बोला, "मेरी किताबें बढ़ कैसे गयीं ?"

चार-पाँच किताबें लिये वह लौट आया; किताबें ज़मीन पर रख कर कुछ आगे झुक कर उन के नाम देखने लगा। चार्ल्स मार्गन का 'द फाउंटेन',' आन्द्रे जीद का 'स्ट्रेट इज़ द गेट', ठाकुर की 'गीतांजलि', लुई एमो का 'मारिया शादलेन', सानुवाद 'कुमार-सम्भव', दो-एक कविता-संकलन, एक-आध और पुस्तक।

"ओह, यह मेरे मेज़बान की कृपा है।"

एक किताब निकाल कर उस ने खोली, नीचे झुका कर ऐसे रखी कि रेखा भी देख सके, और स्वर-हीन ढंग से पढ़ने लगा। रेखा भी साथ-साथ पढ़ती रही। कभी बीच में एक-आध पंक्ति वह गुनागुना देती, भुवन जानता था कि दोनों लगभग साथ-ही-साथ पढ़ रहे हैं। पन्ना पलटने से पूर्व क्षण-भर रुकता और फिर धीरे-धीरे उलट देता।

> **सो लेट मी बी दाइ क्वायर, एंड मेक ए मोन**
> **अपान द मिडनाइट आवर्स;**
> **दाइ वाएस, दाइ ल्यूट, दाइ पाइप, दाइ इन्सेन्स स्वीट**
> **फ्राम स्विंगेड सेंसर टीमिंग,**
> **दाइ श्राइन, दाइ ग्रोव, दाइ आरैकल, दाइ हीट**
> **आफ़ पेल-माउथ्ड प्राफेट ड्रीमिंग।**

* * *

जलती हुई एक लकड़ी एक ओर गिरी; प्रकाश कुछ मन्दा पड़ गया। आग ठीक करने के लिए रेखा खड़ी हुई तो भुवन ने कहा, "रेखा, तुम्हारे कमरे में तो आग नहीं है।"

"बनी हुई रखी है। जाऊँगी तो जला लूँगी।"

"पर कमरा गरम होते तो देर लगेगी, मैं अभी जला आऊँ।"

उस की कलाई पर हाथ रख कर उसे रोकते हुए रेखा ने आग्रहपूर्वक कहा, "नहीं, तुम बैठो।"

दोनों फिर बैठ गये। किताबें हटा दी गयीं, दोनों चुप-से हो गये।

थोड़ी देर बाद भुवन ने कहा, "रेखा, तुम्हें क्या ज़रूर अभी कमरे में चले जाना है?"

रेखा कुछ बोली नहीं, उस की ओर देख कर रह गयी।

भुवन ने धीरे-धीरे हाथ पकड़ कर उसे उठाया, और पलँग पर जा लिटाया। स्वयं एक बाहीं पर बैठ गया, धीरे-धीरे रेखा का कन्धा थपकने लगा।

आग मन्दी पड़ गयी, अंगारे ही लाल-लाल चमकते रह गये। छायाओं का नाच

---

*मुझे होने दो तुम्हारा गायक, जो मध्य रात्रि की घड़ियों को अपनी व्यथा से भरे; तुम्हारा स्वर, तुम्हारी वीणा, तुम्हारी वंशी, तुम्हारा झूलते हुए धूपदान से उठता हुआ गन्ध-धूम; तुम्हारा मन्दिर, तुम्हारा कुंज, तुम्हारी देववाणी, तुम्हारे विवर्ण स्वप्नदर्शी [illegible]

समाप्त हो गया, एक धुँधली लाल झलक छत पर रह गयी। रेखा का चेहरा मजे ताँबे-सा दीखने लगा।

वह बोली, "तुम्हें—नौकुछिया याद है?"

भुवन ने सिर हिलाया।

"मैंने—माँगा था—और तुम रोये थे।"

भुवन ने हाथ झुका कर उस के ओठ ढँक दिये। रेखा ने उस का हाथ हटा कर कहा, "तब तुम ने क्या कहा था—याद है?"

भुवन ने फिर सिर हिला दिया।

"तुम ने कहा था, 'यह इनकार नहीं है'. . .तुम ने कहा था, 'जो सुन्दर है उसे मिटाना नहीं चाहिए—जोखम में नहीं डालना चाहिए'. . .कहा था न?"

भुवन ने फिर सिर हिला दिया।

रेखा थोड़ी देर चुप रही। फिर उस ने कहा, "तो वह सब मैं तुम से कहती हूँ। यह भी प्रत्याख्यान नहीं है भुवन—मैं सचमुच तुम्हारे पैर चूम सकती हूँ—"

वह जैसे उठने को हुई; भुवन ने उसे रोक दिया। वैसे ही थपकता रहा।

थोड़ी देर बाद रेखा ने फिर कहा, "भुवन, इस विषय को समाप्त मान लिया जाये—क्या इसे फिर उठाना होगा?"

भुवन ने कहना चाहा, "पर मैंने तो फिर जोखम उठाया था—और उस से सुन्दर पुष्ट ही हुआ, नष्ट तो नहीं हुआ—" पर कह नहीं सका, स्वयं उसे ही लगा कि दोनों बातों में कुछ अन्तर है। फिर उस ने कहना चाहा, "जोखम तो हर सुन्दर चीज़ में है—बल्कि आनुपातिक होता है," पर यह बात भी उस से कहते नहीं बनी। वह केवल रेखा का कन्धा थपकता रहा।

थोड़ी देर बाद बोला, "अच्छा रेखा, तुम्हारी यही इच्छा है तो—यही सही। पर उस से पहले कुछ और कह लेने दो—और उसे याद रखना—भूलना मत कभी।"

रेखा ने उस का थपकता हाथ पकड़ कर निश्चल कर दिया, और प्रतीक्षा में चुप पड़ी रही।

"रेखा, जो कुछ हुआ है, मुझे उस का दुःख नहीं है, परिताप नहीं है। और जो हुआ है उस से मेरा मतलब केवल अतीत नहीं है, भविष्य भी है—कारण भी, परिणाम भी। और यह नकारात्मक बात लगती है—मैं कहूँ कि मैं प्रसन्न हूँ: एक आनन्द है मेरे भीतर—एक शान्ति—भविष्य के प्रति एक स्वागत-भाव. . .यही मैं तुम से कहना चाहता हूँ—वह जो आयेगा—आयेगा या आयेगी, वह तो मुहावरा है—वह मेरा है, मेरा वांछित है—उस से मैं लजाऊँगा नहीं, वह तुम मुझे दोगी। भूलना मत—तुम्हें और तुम्हारी देन को मैं वरदान कर के लेता हूँ।. . ." भुवन का स्वर भर आया, वह चुप हो गया।

रेखा ने बड़ी गहरी साँस ली। भुवन का हाथ खींच कर अपनी पलकों पर कर लिया,

वहीं पकड़े रही। उँगलियों की अतिरिक्त स्पर्श-संवेदना ने जाना, पलकों के भीतर आँखें हिल रही हैं। थोड़ी देर बाद अपनी मध्यमा भुवन को कुछ ठंडी लगी—आँख की कोर पर होने से वह भीग गयी थी। उस ने दूसरा हाथ बढ़ा कर कर्णमूल छुआ, गीला था। हथेली से उस ने उसे पोंछ दिया, कुछ समीप सरक कर बैठ गया।

छत की वह लाल झलक भी बुझ गयी। वर्षा फिर होने लगी थी। भुवन ने रेखा को और अच्छी तरह ओढ़ा दिया, कुछ झुक कर कोहनी टेक कर बहुत हलकी थपकी से रेखा को थपकने लगा।

रेखा सो गयी। थोड़ी देर बाद जागी और कम्बल का आधा हिस्सा खींच कर भुवन पर कर दिया, उस का हाथ पकड़ लिया और फिर सो गयी . . .

भोर के फीकेपन के साथ बारिश का जोर का एक झोंका आया, तो भुवन जाग गया; उस ने देखा, वह पलँग के एक सिरे पर तीन-चौथाई ओढ़े सोया है, रेखा न मालूम कब उठ कर चली गयी है। उस ने बदन ठीक से ढँक लिया, पर एक अजब सूनापन उस में भरने लगा . . . उस ने औंधे हो कर तकिया खींच कर आधा छाती के नीचे कर लिया कि उस के सिरे में मुँह छिपा लेगा—कि सहसा हड़बड़ा कर कोहनी के सहारे उठ बैठा। तकिये के नीचे कुछ था। टटोल कर देखा—किताब-सी, आँखों के पास ला कर देखा, पहचान गया—रेखा की कापी।

आशंका की एक लहर उस के मन में दौड़ गयी। रेखा क्यों यह वहाँ छोड़ गयी है—कब ? कहीं. . .

वह हड़बड़ा कर उठा, दबे पाँव कमरे से बाहर निकला, बरामदे से गैलरी में होता हुआ रेखा के कमरे के दरवाज़े पर पहुँच गया। झाँक कर देखा, परदे के पार कुछ दिखता नहीं था पर भीतर के असम प्रकाश की झलक मिलती थी—तो लकड़ियाँ जल रही हैं यानी अभी जलायी गयी हैं; रेखा थोड़ी देर पहले ही आयी होगी। पहले उस ने चाहा, किवाड़ खोल कर भीतर जाय या कम-से-कम झाँक कर तसल्ली कर ले, फिर न जाने क्यों उसे विश्वास हो गया कि रेखा कमरे में है और सोयी है या कम-से-कम बिस्तर में तो है, और वह वैसे ही दबे-पाँव लौट गया। पलँग पर लेट कर कापी को एक हाथ में पकड़े हुए वह प्रकाश की प्रतीक्षा करने लगा—बत्ती जलायी जा सकती थी पर उसने नहीं जलायी, उतावली उस में नहीं थी, कोई उत्कंठा नहीं, केवल एक स्थिर विश्वास-भरी प्रतीक्षा—हर बात का समय है, समय आने दो, वह होगी; कापी में जो-कुछ है वह भी वह जानेगा समय पर—ठीक समय पर . . .

* * *

जो जानने का कारण है, उसे लोग कितना कम, और जो जानने का कोई कारण नहीं है उसे कितना अधिक जानते हैं, इस की पड़ताल की जाय तो कदाचित् यही मान लेना

समाप्त हो गया, एक धुँधली लाल झलक छत पर रह गयी। रेखा का चेहरा मजे ताँबे-सा दीखने लगा।

वह बोली, "तुम्हें—नौकुछिया याद है?"

भुवन ने सिर हिलाया।

"मैंने—माँगा था—और तुम रोये थे।"

भुवन ने हाथ झुका कर उस के ओठ ढँक दिये। रेखा ने उस का हाथ हटा कर कहा, "तब तुम ने क्या कहा था—याद है?"

भुवन ने फिर सिर हिला दिया।

"तुम ने कहा था, 'यह इनकार नहीं है'...तुम ने कहा था, 'जो सुन्दर है उसे मिटाना नहीं चाहिए—जोखम में नहीं डालना चाहिए'...कहा था न?"

भुवन ने फिर सिर हिला दिया।

रेखा थोड़ी देर चुप रही। फिर उस ने कहा, "तो वह सब मैं तुम से कहती हूँ। यह भी प्रत्याख्यान नहीं है भुवन—मैं सचमुच तुम्हारे पैर चूम सकती हूँ—"

वह जैसे उठने को हुई; भुवन ने उसे रोक दिया। वैसे ही थपकता रहा।

थोड़ी देर बाद रेखा ने फिर कहा, "भुवन, इस विषय को समाप्त मान लिया जाये—क्या इसे फिर उठाना होगा?"

भुवन ने कहना चाहा, "पर मैंने तो फिर जोखम उठाया था—और उस से सुन्दर पुष्ट ही हुआ, नष्ट तो नहीं हुआ—" पर कह नहीं सका, स्वयं उसे ही लगा कि दोनों बातों में कुछ अन्तर है। फिर उस ने कहना चाहा, "जोखम तो हर सुन्दर चीज़ में है—बल्कि आनुपातिक होता है," पर यह बात भी उस से कहते नहीं बनी। वह केवल रेखा का कन्धा थपकता रहा।

थोड़ी देर बाद बोला, "अच्छा रेखा, तुम्हारी यही इच्छा है तो—यही सही। पर उस से पहले कुछ और कह लेने दो—और उसे याद रखना—भूलना मत कभी।"

रेखा ने उस का थपकता हाथ पकड़ कर निश्चल कर दिया, और प्रतीक्षा में चुप पड़ी रही।

"रेखा, जो कुछ हुआ है, मुझे उस का दुःख नहीं है, परिताप नहीं है। और जो हुआ है उस से मेरा मतलब केवल अतीत नहीं है, भविष्य भी है—कारण भी, परिणाम भी। और यह नकारात्मक बात लगती है—मैं कहूँ कि मैं प्रसन्न हूँ: एक आनन्द है मेरे भीतर—एक शान्ति—भविष्य के प्रति एक स्वागत-भाव...यही मैं तुम से कहना चाहता हूँ—वह जो आयेगा—आयेगा या आयेगी, वह तो मुहावरा है—वह मेरा है, मेरा वांछित है—उस से मैं लजाऊँगा नहीं, वह तुम मुझे दोगी। भूलना मत—तुम्हें और तुम्हारी देन को मैं वरदान कर के लेता हूँ।..." भुवन का स्वर भर आया, वह चुप हो गया।

रेखा ने बड़ी गहरी साँस ली। भुवन का हाथ खींच कर अपनी पलकों पर कर लिया,

पड़ेगा कि जानने का कारण न होना ही जानने के लिए पर्याप्त और वास्तविक कारण है ! वकील से विदा ले कर हेमेन्द्र ने रेखा के बारे में इधर-उधर जो पूछ-ताछ करनी शुरू की, तो उसे बहुत-सी आश्चर्यजनक बातें मालूम हुईं। 'रेखा ?' मुस्कराहट। रहस्य। 'जाने दीजिए--किसी स्त्री की बुराई नहीं करनी चाहिए।' चेहरे पर दर्द का भाव। 'लेकिन आज-कल की औरतें भी---कुछ पूछिए मत---हिन्दुस्तान को यूरोप बना दिया है---बल्कि यूरोप में भी ऐसा न होता होगा।' 'कहें कैसे, कहने की बात भी हो ? पर आप उस के हितैषी मालूम होते हैं'. . .'वह तो---अपने यारों को ले कर पहाड़ों की सैरें करती-फिरती है---कभी इस को, कभी उस को---नौकरी का तो सिर्फ़ बहाना है, कभी किसी के साथ रहती है कभी किसी के'. . .इस के बाद एक कटु कर्तव्य को साहसपूर्वक कर चुकने का क्लान्त पर आत्म-तुष्ट भाव।

हेमेन्द्र ने सहसा नहीं माना। उसे इस बात का गर्व था कि वह लोगों को पहचानता है। और रेखा ? रेखा तो बरसों तक उस की व्याहता रही है---साथ सोया नहीं तो क्या, उसे पहचानता तो है. . .पर कई जगह से एक-सी बात सुन कर उस का निश्चय कच्चा पड़ गया, और जब यह मालूम हुआ कि रेखा अपने शिकार प्रायः लखनऊ से चुनती रही है और उन में से एक का नाम भी लिया गया---चन्द्रमाधव---तब उस ने लखनऊ जा कर पता लगाने की ठानी। यों रेखा क्या करती है, उसे क्या---उसे रेखा से कुछ लेना-देना नहीं है, केवल तलाक़ !---पर जिस के साथ बरसों का सम्बन्ध रहा है (क्या ख़ूब शब्द है सम्बन्ध---साथ बँधना !) उस के बारे में कौतूहल स्वाभाविक ही है न. . .

चन्द्रमाधव उसे देख कर आश्चर्य-चकित रह गया। "मिस्टर हेमेन्द्र---आप यहाँ---ह्वट ए सर्प्राइज़ ! मैंने तो आप को पत्र लिखा था---मिला ?"

हेमेन्द्र ने भी आश्चर्य से कहा, "मुझे---पत्र ? मुझे तो नहीं मिला---कब लिखा था ?"

"अभी कुछ दिन पहले---डेढ़-दो महीने---"

"तब हो सकता है पीछे आये---मैं भटकता रहा, सिंगापुर था, फिर बर्मा होता आया हूँ। कोई ख़ास बात थी ?"

"नहीं, यों ही। पर चलिए---शैल वी गो एँड हैव ए ड्रिंक ?"

साथ बैठ कर शराब पीने की एक कला है। हेमेन्द्र बहुत अच्छा साथी था। अवश नहीं होता, लेकिन बातों में ग़ैर-ज़िम्मेदारी की वह ठीक मात्रा होती है जिस से रस आता है : ग़ैर-ज़िम्मेदारी की भी, और---अश्लीलता की भी, यद्यपि जो रस देती है, जीवन को उभारती है उसे अश्लीलता नहीं कहना चाहिए. . .

हेमेन्द्र को चन्द्रमाधव ने पत्र तो लिखा था, पर रेखा के बारे में बातचीत शायद इस रासायनिक सहायता के बिना न कर पाता। पर प्यालों में वह सहज भाव से बात कर सका; हेमेन्द्र की सुनी बातें उस से खंडित भी हुईं, पुष्ट भी; निस्सन्देह अगर हेमेन्द्र उसे मुक्त कर दे तो वह शादी करना चाहेगी; क्योंकि अब शादी के सिवा और चारा क्या हो

खिला कर वह चला गया। शाम को अपना सब प्रबन्ध कर के लौटा; दूसरे दिन तड़के ही ताँगा उसे लेने आयेगा ताकि वह सबेरे की पहली बस पकड़ सके जो शाम को उसे जम्मू पहुँचा दे; मिसेज ग्रीव्ज़ से भी वह मिल आया, चाय भी उसी के साथ पी।

जब वह वापस आया तब रेखा सो रही थी। भुवन चुपचाप उस के कमरे में जा कर बैठ गया; उस में एक सुखद गरमाई थी, और दयार की लकड़ी की प्रीतिकर गन्ध कमरे की हवा को एक ताज़गी दे रही थी। लकड़ी का कभी-कभी चटकना, गाँठों के गन्ध-रसों का फुरफुरा कर जलना, रन्ध्रों से रुद्ध गैस का सीत्कार के साथ मुक्त होना और शिखाओं की हलकी सुरसुराहट—ये सब एक बड़े मधुर और धीमे संलाप की तरह थे, जो रेखा के साथ उस के मौन संलाप की मानो पीठिका था. . .एक तन्द्रा-सी उस पर भी छा गयी।

रेखा ने जाग कर कहा, "तुम आ गये, भुवन ?" और उस के कुछ पूछने से पहले ही कहा, "मैं बहुत अच्छी हूँ। सो चुकी, अब चाय पी जाय—पियोगे ?"

भुवन ने उठ कर सलामा को आवाज़ दे दी।

रात में फिर हलकी बारिश होने लगी। भुवन के कमरे में भी आग जलायी गयी, पर वह रेखा के पास ही आराम-कुरसी लिये बैठा रहा, रेखा लेटी रही। एक मौन-सा उन पर छा गया; रेखा ने कहा, "जाओ सोओ, भवन, तुम्हें सबेरे जाना है।"

भुवन बोला, "बहुत सबेरे जाना हो तो रात को जागने में ही सुविधा होती है। यह तो आजमाया नुस्खा है।"

रेखा मुस्करा दी। "मैं तो तैयार हूँ—रात को तो ठीक रहती हूँ। काफ़ी भी पिलाऊँगी।" फिर सहसा गम्भीर हो कर, "नहीं, भुवन, सोओ तुम। अच्छा, ठीक बारह बजे तुम चले जाओगे—हाँ ?"

भुवन ने आकर उस के माथे पर अपने ओठ रख दिये, बहुत देर तक उस के बाल सूँघता रहा। फिर पहले-सा बैठ गया; केवल दोनों के हाथ बराबर उलझते-सुलझते, एक दूसरे को सहलाते खेलते रहे, मानो उन की बातचीत से अलग, अपने ही किसी रहःसंलाप में व्यस्त, तल्लीन. . .

ठीक बारह बजे भुवन ने उठ कर रेखा का माथा चूमा—फिर क्षण-भर उस की आँखों में देख कर उस की पलकें, गाल, कर्णमूल; फिर नासापुट, ओठ; फिर उस के कंठ-मूल को चूम कर धीरे से कहा, "गॉड ब्लेस यू" और धीरे-धीरे उस के कन्धे से अँगुलियों तक उस की बाँह सहलाता हुआ चला गया।

सबेरे फिर मिलने की बात नहीं थी; पर जब वह तैयार हुआ तो एक ड्रेसिंग गाउन पहने और सिर पर शाल लपेटे, मधुर उनींदी आँखों वाली रेखा दरवाज़े पर आ कर खड़ी हो गयी। भुवन ने उसे अन्दर खींच कर किवाड़ उढ़का दिये। और कहा, "तुम क्यों उठीं रेखा ? तुम्हारे उठने की तो बात नहीं थी—"

"तुम चुपके से चोर की तरह चले जाते ?"

कमरे से रेखा बहुत देर तक नहीं निकली, नाश्ता भुवन ने अकेले ही किया। उस के बाद ही रेखा ने उसे बुला भेजा।

वह पलंग पर तकियों के सहारे लेटी हुई थी, कन्धों पर शाल ओढ़े और पैरों पर कम्बल; बीच में उस ने बारीक काली धारियों वाली उन्नाबी रंग की साड़ी पहन रखी थी जिस से उस के चेहरे का पीलापन कुछ कम खटकने वाला हो गया था।

"मेरी तबीयत ठीक नहीं है भुवन—यहीं बैठो—"

"क्या बात है, रेखा ?"

"कुछ नहीं, चक्कर आते हैं—और मतली होती है—वही सब—" कहती हुई वह थोड़ा लजा कर मुस्करा दी।

भुवन ने कहा, "डाक्टर को नहीं बुलाना चाहिए, रेखा ?"

"बुलाऊँगी, बुलाऊँगी : अभी मुझे सोच तो लेने दो—"

"इस में सोचना क्या है, रेखा ? कामन सेंस की बात है—"

"सो तो है। पर—सोचना भी तो है। आजकल में ही बुला लूँगी डाक्टर को भी एक बार—"

"मुझे आज श्रीनगर जाना है—मैं बुला लाऊँ ?"

"आज फिर ?"

भुवन ने बताया कि उसे लौटना है; शीघ्र ही वह फिर छुट्टी ले कर आ जायेगा। थोड़े दिन बाद ही दशहरे की छुट्टियाँ भी पड़ती हैं, उन से लगी हुई छुट्टियाँ लेगा ताकि लगातार काफ़ी दिन तक रह सके। आठ-दस दिन में ही वापस पहुँच जायेगा—हो सका तो और भी जल्दी।

रेखा चुप-चाप उसे देखती रही।

"क्या सोच रही हो, रेखा ?"

"कुछ नहीं। ठीक कहते हो तुम..."

भुवन को डाक्टर की बात फिर याद आ गयी। उस के बहुत आग्रह करने पर रेखा ने वचन दिया कि दो-तीन दिन के अन्दर ही वह स्वयं डाक्टर के पास जायगी और उस के आदेशों का पालन भी कड़ाई के साथ करेगी। फिर उस ने कहा, "श्रीनगर जाओगे तो वक्त हो तो मिसेज़ ग्रीव्ज़ से भी मिल आना—तुम्हें अच्छी लगेगी बुढ़िया। और उसे यह भी कह आना कि तुम फिर आओगे।"

भुवन ने स्वीकार कर लिया।

दोपहर तक वह रेखा के पास ही बैठा रहा, कभी बातें करता और कभी किसी पुस्तक से कुछ पढ़ कर सुनाता; बारिश थमी थी पर बादल वैसे ही थे और निश्चय था कि फिर बरसेंगे; भुवन ने फिर आग जलवा दी थी और ढेर-सी लकड़ियाँ भी चुनवा कर रख दी थीं कि आग बराबर जलती रखी जा सके। दोपहर के भोजन के बाद, रेखा को भी स्वल्प कुछ

खिला कर वह चला गया। शाम को अपना सब प्रबन्ध कर के लौटा; दूसरे दिन तड़के ही ताँगा उसे लेने आयेगा ताकि वह सवेरे की पहली बस पकड़ सके जो शाम को उसे जम्मू पहुँचा दे; मिसेज ग्रीव्ज़ से भी वह मिल आया, चाय भी उसी के साथ पी।

जब वह वापस आया तब रेखा सो रही थी। भुवन चुपचाप उस के कमरे में जा कर बैठ गया; उस में एक सुखद गरमाई थी, और दयार की लकड़ी की प्रीतिकर गन्ध कमरे की हवा को एक ताज़गी दे रही थी। लकड़ी का कभी-कभी चटकना, गाँठों के गन्ध-रसों का फुरफुरा कर जलना, रन्ध्रों से रुद्ध गैस का सीत्कार के साथ मुक्त होना और शिखाओं की हलकी सुरसुराहट—ये सब एक बड़े मधुर और धीमे संलाप की तरह थे, जो रेखा के साथ उस के मौन संलाप की मानो पीठिका था. . .एक तन्द्रा-सी उस पर भी छा गयी।

रेखा ने जाग कर कहा, "तुम आ गये, भुवन ?" और उस के कुछ पूछने से पहले ही कहा, "मैं बहुत अच्छी हूँ। सो चुकी, अब चाय पी जाय—पियोगे ?"

भुवन ने उठ कर सलामा को आवाज़ दे दी।

रात में फिर हलकी बारिश होने लगी। भुवन के कमरे में भी आग जलायी गयी, पर वह रेखा के पास ही आराम-कुरसी लिये बैठा रहा, रेखा लेटी रही। एक मौन-सा उन पर छा गया; रेखा ने कहा, "जाओ सोओ, भवन, तुम्हें सबेरे जाना है।"

भुवन बोला, "बहुत सबेरे जाना हो तो रात को जागने में ही सुविधा होती है। यह तो आजमाया नुस्खा है।"

रेखा मुस्करा दी। "मैं तो तैयार हूँ—रात को तो ठीक रहती हूँ। काफ़ी भी पिलाऊँगी।" फिर सहसा गम्भीर हो कर, "नहीं, भुवन, सोओ तुम। अच्छा, ठीक बारह बजे तुम चले जाओगे—हाँ ?"

भुवन ने आकर उस के माथे पर अपने ओठ रख दिये, बहुत देर तक उस के बाल सूँघता रहा। फिर पहले-सा बैठ गया; केवल दोनों के हाथ बराबर उलझते-सुलझते, एक दूसरे को सहलाते खेलते रहे, मानो उन की बातचीत से अलग, अपने ही किसी रहःसंलाप में व्यस्त, तल्लीन. . .

ठीक बारह बजे भुवन ने उठ कर रेखा का माथा चूमा—फिर क्षण-भर उस की आँखों में देख कर उस की पलकें, गाल, कर्णमूल; फिर नासापुट, ओठ; फिर उस के कंठ-मूल को चूम कर धीरे से कहा, "गॉड ब्लेस यू" और धीरे-धीरे उस के कन्धे से अँगुलियों तक उस की बाँह सहलाता हुआ चला गया।

सबेरे फिर मिलने की बात नहीं थी; पर जब वह तैयार हुआ तो एक ड्रेसिंग गाउन पहने और सिर पर शाल लपेटे, मधुर उनींदी आँखों वाली रेखा दरवाज़े पर आ कर खड़ी हो गयी। भुवन ने उसे अन्दर खींच कर किवाड़ उढ़का दिये। और कहा, "तुम क्यों उठीं रेखा ? तुम्हारे उठने की तो बात नहीं थी—"

"तुम चुपके से चोर की तरह चले जाते ?"

"नहीं, वह तो नहीं सोचा था—मैं आता और मिल जाता। अब तुम खड़ी रहोगी और मैं जाऊँगा तो—अधिक चुभेगा...।"

"नहीं भुवन, ठीक है; टेक ए गुड लुक एट मी ह्वेन यू गो*—मैं भी देखूँगी—"

भुवन ने कुछ सहम कर कहा, "मैं हफ़्ते-भर में वापस आ रहा हूँ, रेखा।"

"जानती हूँ। विदा को थियेटर नहीं बना रही, भुवन! लेकिन सब विदाएँ अन्तिम होती हैं—चरम कोटि का जोखम...।"

"मैं छोटा था, तब एक डरावना स्वप्न देखा करता था। दोनों हाथों को अलग करता हूँ, फिर ताली बजाने लगता हूँ तो न जाने क्यों, हाथ टकराते ही नहीं, एक-दूसरे से छूते नहीं, न मालूम कैसे एक-दूसरे के पार निकल जाते हैं। और स्वप्न देख कर न जाने क्यों डर लगा करता था, हालाँकि है हँसी की बात, डरने की नहीं।"

"हाँ। जब भी सम्पर्क टूटता, है तो फिर कभी होगा कि नहीं, नहीं कहा जा सकता। आशा ही होती है।"

"पर सम्पर्क तो नहीं टूटता, अलग होना और बात है, सम्पर्क—"

"वह तो दूसरे स्तर की बात है भुवन; उस पर मैंने तुम्हें विदा कब किया है? उस पर 'तू ही है, मैं नहीं हूँ'—हमारा प्रत्येक क्षण हमारे सारे अनुभव का पुंज है उस स्तर पर..."

ताँगा आ गया था। भुवन ने रेखा के दोनों हाथ अपने हाथों में लिये, फिर सहसा मुड़ कर बाहर चला गया। रेखा बरामदे में आ कर खड़ी रही; ताँगा चला तो दोनों एक दूसरे की ओर देख कर मुस्कराते रहे जब तक कि चेहरे ओझल न हो गये...

* * *

सातवें दिन ही भुवन लौट आया। उस ने सोचा था कि शाम तक वह पहुँचेगा, पर पहुँचा देर रात को। बारिश हो रही थी और नदी बहुत चढ़ आयी थी। दोपहर को उस ने तार दे दिया था: 'शाम को पहुँच रहा हूँ' पर रात को बँगले पर पहुँच कर उसे बाहर से ही न जाने क्यों लगा मानो अब उस के पहुँचने की बात न थी—क्या तार नहीं पहुँचा?

वह ताँगे से उतरा तो सलामा आ गया। सलाम कर के बोला, "मेम सा'ब की तबीयत ठीक नहीं है—"

"कहाँ हैं—कमरे में जा सकते हैं?" कह कर भुवन उत्तर की प्रतीक्षा न कर के रेखा के कमरे की ओर बढ़ गया, धीरे-से दस्तक दे कर क्षण-भर बाद किवाड़ खोल कर भीतर चला गया।

---

*जाते हुए एक बार मुझे अच्छी तरह देख लो।

नीचे टेवल लैम्प का प्रकाश कम था, क्षण-भर वह ठिठक रहा। फिर सहसा उस के मुँह से निकला, "रेखा।"

रेखा पलँग पर सीधी लेटी थी, चेहरा बिल्कुल पीला, निश्चल, माथे पर वल लेकिन वे भी निश्चल, मानो देर से दर्द सहते-सहते जड़ हो गये हों...भुवन ने छादन उठा कर प्रकाश कुछ बढ़ा दिया, रेखा ने ज़रा भी हिले बिना क्षीण स्वर में पूछा, "कौन है ?" और भुवन का स्वर सुन कर वैसे ही निश्चेष्ट भाव से कहा, "तुम आ गये भुवन...क्यों आ गये तुम !"

भुवन सन्न रह गया। जल्दी से रेखा के पास घुटने टेक कर उस के माथे पर हाथ रख कर बोला, "क्या हुआ है रेखा ?"

रेखा कुछ नहीं बोली। उस का शरीर काँपने लगा, पहले थोड़ा-थोड़ा, फिर जोर से; ओठों की रेखा खिच कर पतली हो आयी; बन्द आँखों की कोरों से आँसू झरने लगे, टप-टप, टप-टप...

भुवन भी जड़ वैठा रहा, न हिल-डुल सका, न बोल सका।

कई मिनट बाद उसे ध्यान आया कि वह भीगा हुआ है, वह उठ कर अपने कमरे में कपड़े बदलने चला गया। जल्दी से सामान ठीक-ठाक कर, कपड़े वदल वह फिर रेखा के पास कुरसी खींच कर वैठ गया। उस की दर्द से सिकुड़ी भौहों को देखता; फिर मानो साहस जुटा कर धीरे-धीरे उन सलवटों को सहलाने लगा।

उस से भौंहें कुछ सीधी हो गयीं, जैसे दर्द की खींच कुछ कम हुई। भुवन ने फिर पूछा, "रेखा, क्या हुआ है, क्या तकलीफ़ है ?"

रेखा के आँसू फिर टप-टप ढरने लगे—अब की वार शरीर को कँपाते हुए नहीं, यों ही, मानो अवश शरीर से स्वयं झर रहे हों। भुवन-बार-बार उन्हें पोंछने लगा।

थोड़ी देर बाद रेखा के ओठ हिले। वह कुछ कह रही थी। भुवन आगे झुक गया। रेखा ने आँखें खोल कर उसे देखा, फिर आँखें बन्द करते हुए कहा, "भुवन, मेरे भुवन, मुझे माफ़ कर दो—"

भुवन ने और भी व्याकुल हो कर पूछा, "बात क्या है, रेखा ?"

सहसा उस की ओर करवट फेर कर रेखा बिलख-विलख कर रो उठी।

भुवन सुन्न वैठ रहा।

दरवाजे पर दस्तक हुई।

भुवन उठ कर गया, सलामा था। बोला, "खाना तैयार है हजूर।" भुवन कहने को था कि नहीं खाऊँगा, पर रुक गया और बोला, "अच्छा, हम अभी आते हैं।"

द्वार बन्द कर के फिर वह रेखा के पास लौट आया। धीरे-धीरे रेखा शान्त होने लगी। थोड़ी देर बाद वह कोहनी के सहारे उठ वैठी, फिर पलँग से पैर नीचे लटका कर उस ने स्लीपर टटोले और खड़ी हो गयी; ड्रेसिंग रूम की ओर जाने लगी। उस की अटपटी चाल

देख कर भुवन सहारा देने लगा, पर उस ने सिर हिला दिया।

दो-तीन मिनट बाद वह मुँह-हाथ धो कर लौटी। चेहरा बिलकुल पीला, लेकिन स्निग्ध; सलवटें हट गयी थीं। चाल वैसी ही निर्बल, मगर संकल्प-शक्ति के सहारे सीधी। पलँग पर बैठ कर उस ने पैर ऊपर समेट लिये, क्षण-भर आँखें बन्द कीं मानो इस आने-जाने के श्रम से टूट गयी हो, फिर सहसा उस के चेहरे पर ऐसी दिव्य मुस्कान खिल आयी कि भुवन विमूढ़ देखता ही रह गया—इतना दुर्बल पीला चेहरा, इतनी दुर्बल, वेदना-जर्जर देह, अभी पहले की वह अवश रुलाई, और—यह मुस्कान!

उस की विमूढ़ता देख कर रेखा ने कहा, "पगले, ऐसे स्टेयर नहीं करते। इस मुस्कान का सम्मान मुस्कान से होता है—समझे?"

भुवन जैसे-तैसे मुस्करा दिया।

"मैं ठीक हूँ अब। तुम जाओ, खाना खा कर जल्दी से आ जाना मेरे पास—"

"पर रेखा, तुम्हें—"

"जाओ न, खाना खा आओ, अच्छे भुवन, राजा भुवन—त्रिभुवन के महाराज—'महाराज ए कि साजे एले मम हृदयपुर माँझे'—जाओ खाना खा आओ!"

भुवन वैसा ही विमुग्ध खड़ा हो गया। "अच्छा, अभी आया।"

उस ने बाहर निकल कर किवाड़ बन्द किये कि रेखा एक हलकी-सी कराह के साथ मानो टूट कर पीछे गिरी, क्षण-भर के लिए अँधेरा हो गया; फिर उस ने ओंठ काट लिये और निश्चल पड़ी रही, दर्द के स्पन्दनों के साथ क्षण गिनती हुई...

* * *

बाधा की सब सम्भावनाओं को काट कर भुवन फिर दबे-पाँव कमरे में आया—कपड़े बदल कर, गर्म चादर ओढ़ कर, पैरों में मोज़े पहन कर।

रेखा सो रही थी।

परली दीवार से सटी तिपाई पर दवा की दो-एक शीशियाँ रखी थीं। भुवन दबे-पाँव जा कर देखने लगा। दवाएँ पेटेंट थीं, डाक्टर की दी हुई भी हो सकती थीं और स्वयं लायी हुई भी, ऐसी कोई दवा न थी जिस से कुछ पता लगे कि रेखा को तकलीफ़ क्या है। फिर उस ने देखा, एक खाली डिब्बा पड़ा है जिस के अन्दर शीशी नहीं है। यह दर्द को दबाने और नींद लाने की दवा थी। शीशी क्या हुई? भुवन ने लौट कर रेखा के पलँग के पास की छोटी मेज़ देखी; ऊपर तो नहीं, पर एक तरफ़ के खाने में शीशी खुली रखी थी, गोलियों को ढँकने वाली रुई का गाला भी बाहर रखा था, उस के पास छोटे गिलास में ज़रा-सा पानी। तो रेखा ने दवा खायी होगी...भुवन फिर उसे देखता रहा; उसकी साँस नियमित चल रही थी—बल्कि कुछ भारी, थोड़ी खरखराहट के साथ जैसी दवा की नींद से उन लोगों में भी होती है जिन की नींद का निश्वास-प्रश्वास साधारणतया बिलकुल अश्रव्य होता है

. . .भुवन ने लैम्प का छादन झुकाया और धीरे-धीरे कमरे से बाहर हो गया।

अपने कमरे में जाकर वह टहलने लगा। रेखा सो रही है, इस ज्ञान से उसे कुछ तसल्ली थी; पर उसे हुआ क्या है? कमरे के चक्कर काटते-काटते उसे सहसा लगा, वह बन्दी है—इस कमरे का, इस बेपनाह बारिश का, और अपनी अज्ञता का. . .ऐसे ही जेल के कैदी अपनी बेबसी में चक्कर काटते होंगे कदम नाप-नाप कर—उस की बेबसी बदतर है क्यों कि उस पर कोई बन्धन नहीं है, कोई उसे रोकता नहीं है. . .

थोड़ी देर बाद वह लेट गया और बारिश की टपाटप सुनने लगा। सोचना—अनुक्रमिक चिन्तन—उस ने छोड़ दिया; जो विचार उठता, उठता, फिर स्वयं लीन हो जाता; फिर कोई सर्वथा असंगत दूसरा उठता और विलीन हो जाता—मानो बुलबुले, प्रत्येक गोलायित, सम्पूर्ण, अनन्य-सम्बद्ध, नश्वर. . .

न मालूम कितना समय ऐसे बीत गया। फिर बारिश की टपाटप की सम्मोहनी ने उसे भी तन्द्रालस कर दिया। वह भी न मालूम कितनी देर।

सहसा वह हड़बड़ा कर उठ बैठा। क्या हुआ? क्या उस ने कोई पुकार सुनी थी—कोई कराह? वह कान लगा कर सुनने लगा कि बारिश के शब्द के ऊपर कुछ सुन सके। पर नहीं. . .

उठ कर उसने किवाड़ खोला और बरामदे से होकर रेखा के कमरे की खिड़की के पास गया। हाँ, थोड़ी देर बाद भीतर से स्पष्ट शब्द आया—निस्सन्देह कराह का स्वर। वह लपक कर भीतर गया।

रेखा कराह रही थी। पर वह कुछ अस्पष्ट कह भी रही थी: भुवन ने सुना: "जीवन. . .जान. . .प्राण. . ."

भुवन ने उसे सँभाला। उसने आँखों से ड्रेसिंग रूम की ओर इशारा किया; भुवन उस की बाँह कन्धे पर डाल कर सहारा देने से अधिक उसे उठाये हुए बाथ-रूम के दरवाज़े तक ले गया, एक हाथ से दरवाज़ा उस ने खोला और पूछा, "जा सकोगी?"

रेखा ने सिर हिला दिया, बाँह छुड़ा कर किवाड़ के सहारे खड़ी हुई और भीतर जाने लगी। जाते-जाते ड्रेसिंग की अलमारी की ओर उस ने इशारा किया: "रुई—"

भुवन ने वहाँ से डाक्टरी रुई का बंडल निकाल कर दे दिया। रेखा ने किवाड़ बन्द कर दिया, भुवन खड़ा रहा।

रेखा लौटी तो किवाड़ के सहारे भी नहीं खड़ी हो पा रही थी। भुवन ने सँभाल लिया और ले जाकर पलँग पर लिटा दिया।

थोड़ी देर रेखा मूर्च्छित-सी रही, फिर उसने आँखें खोलीं और कहा, "मेरे जीवन..." और फिर ओठ काट लिये, दर्द से उठ बैठी। फिर उस ने पहले की भाँति इशारा किया; भुवन अब की बार उसे सीधे उठा कर ही ले गया; एक हाथ से कुरसी खींच कर बाथ-रूम के दरवाज़े के आगे रख दी, और रेखा को बिठा दिया। रेखा अन्दर गयी.

लड़खड़ाती लौट कर कुरसी पर बैठी, वहाँ से भुवन फिर उठा कर पलंग पर ले गया। लेट कर फिर वह अस्पष्ट पुकारने लगी—"जान, प्राण—" लेकिन भुवन उसके ऊपर झुका है इस का उसे होश नहीं था, और उस के शब्द भी मानो शब्द नहीं थे, केवल कराह को छिपाने का एक तरीका।

भुवन एकाएक उठ कर ड्रेसिंग-रूम में गया, कुरसी उठा कर बाथ-रूम में रखने चला, पर एक कदम अन्दर रख कर ठिठक गया।

कटार की कौंध-से तीखे क्षण में वह सब समझ गया। और एक उन्मत्त फुर्ती से वह काम करने लगा।

रेखा के पलँग के पास एक कुरसी उस ने रखी, उस पर एक चिलमिची, तिपाई पर से सामान उठा कर उस पर पानी का भरा जग, रुई और साबुन-तौलिया, दूसरे जग में पानी भर कर आग के पास गर्म होने के लिए रख दिया, स्टोव पर केतली में भी; फिर बाथ-रूम में जा कर उस ने चिलमिची खाली की, उसे धो कर पलंग के पास फर्श पर रख दिया। रेखा इतनी देर अर्द्ध-मूर्च्छित थी, अब फिर सचेत हुई और उठने का यत्न करने लगी; भुवन ने कहा, "रेखा, मैंने सामान यहीं रख दिया है—मैं बाहर जाता हूँ—"

रेखा ने किसी तरह अपने सारे बल को समेट कर कहा, "मुझे माफ़ कर दो, प्राण मेरे—" और एक दुर्बल हाथ उस की ओर को बढ़ाया। भुवन ने उसे पकड़ते हुए कहा, "रेखा, यह हुआ क्या—तुम डाक्टर के पास नहीं गयी थीं—"

"गयी थी—गयी थी मैं—"रेखा का उत्तर मानो एक चीख थी, "तभी तो—भुवन मुझे माफ़—"

"क्या?" आश्चर्य के थप्पड़ से भुवन का स्वर खुरदरा हो आया था; उसे फिर संयत कर के किसी तरह उस ने कहा, "क्या, रेखा—तुम ने—"

रेखा ने सिर हिलाया। साथ ही कहा, "तुम—ज़रा बाहर जाओ भुवन—"

वह जल्दी से जाने लगा तो रेखा ने कहा, "मेज पर दो चिट्ठियाँ हैं, ले जाओ—" बाहर निकल कर उस ने देखा, एक चिट्ठी अपरिचित अक्षरों में, दूसरी परिचित—चन्द्रमाधव की; अपरिचित हाथ की चिट्ठी उलट कर उस ने हस्ताक्षर देखे—हेमेन्द्र। चिट्ठियाँ उस ने पूरी नहीं पढ़ीं, यद्यपि छोटी थीं, जल्दी से नजर उन पर दौड़ा गया; फिर भी जो-जो पद या पदांश उस ने पढ़ा वह नोक-सा धँसता चला गया। वह जल्दी से कमरे की ओर लौटा, रेखा फिर कराह रही थी—चिट्ठियाँ जैसे-तैसे जेब में ठूँस कर वह अन्दर चला गया। चिलमिची ले जा कर धो कर उस ने फिर स्थान पर रख दी।

रेखा ने कहा, "तुम्हें कितना सता रही हूँ—मैं बहुत लज्जित हूँ भुवन—"

"किस डाक्टर के पास गयी थीं तुम?"

भुवन के स्वर में अविश्वास था ; रेखा ने कहा, "झूठ नहीं बोलती, भुवन, अच्छे डाक्टर के पास गयी थी—सर्जन के—"

"अच्छा डाक्टर! यह अच्छे डाक्टर का काम है?" भुवन की वाणी में अवश रोष उभर आया।

रेखा ने कहा, "भुवन, तुम अभी मुझे छोड़ कर चले जाओगे तो मुझे शिकायत नहीं होगी। जाओ, मैं कहती हूँ—गाड ब्लेस यू, प्राण।"

भुवन चुपका हो गया। रेखा थक कर लेट गयी, थोड़ी देर बाद फिर उठी और भुवन कमरे से बाहर चला गया।

फिर लौटा तो रेखा का चेहरा सफ़ेद हो रहा था। थोड़ी देर बाद रेखा ने आँखें खोलीं तो भुवन बोला, "मैं डाक्टर बुला कर लाता हूँ—ऐसे नहीं—"

रेखा ने सहसा चीख कर कहा, "नहीं भुवन, तुम मेरे पास से नहीं जाओगे।" फिर कुछ संयत हो कर "या—जाते हो तो—अच्छा।"

वह फिर मूर्च्छित-सी हो गयी।

थोड़ी देर बाद फिर जागी, उस की मुद्रा देख कर भुवन बाहर जाने लगा, पर किवाड़ पर न जाने क्यों रुक गया। मुड़ कर देखा तो रेखा फिर पीछे गिर गयी थी। वह लौट आया। "नहीं सकती, भुवन—और नहीं सकती—"

भुवन थोड़ी देर सकुचाया खड़ा रहा। फिर उस ने लैम्प और परे की ओर मोड़ दी, रुई का बड़ा-सा टुकड़ा ले कर तह जमायी, और रेखा की ओर झुक गया। रेखा ने हाथ रुई की ओर बढ़ाया। पर वह निर्जीव-सा रह गया, रुई को ठीक से पकड़ भी नहीं सका—

हाथ धोकर भुवन फिर लौटा तो उसे लगा, रेखा अभी फिर उठना चाहेगी। उस ने घड़ी देखी; रात के साढ़े ग्यारह बजे थे। ऐसे तो रात नहीं कट सकती। वह...वह सहसा निश्चित कदमों से बाहर निकल गया। क्वार्टर तक जा कर उसने सलामा को बुलाया, अपने कमरे में ला कर उसे एक चिट्ठी लिख कर दी, और उसे कहा, "मेम साहब की हालत नाज़ुक है—दौड़े हुए मिशन अस्पताल जाओ और उन को बोलना कि एम्बुलेंस गाड़ी ले कर आयें—डाक्टर भी साथ में, फ़ौरन—जाओ, शाबाश—"

सलामा गया। भुवन फिर रेखा के कमरे में लौटा।

रेखा ने वह इशारा करना भी छोड़ दिया। वह अर्द्ध-चेतन अवस्था ही स्थायी हो गयी। भुवन ही थोड़ी देर बाद उठता, एक पट्टी उठा कर दूसरी लगा देता, हाथ धो कर फिर आ जाता...

रेखा का कराहना भी बन्द हो गया था। कभी वह हलका-सा 'हूँ-हूँ' करती, नहीं तो मौन : एक अजब डरावना सन्नाटा छा गया था। भुवन वर्षा का स्वर सुन रहा था। बीच-बीच में कभी अचानक कुछ गिरने का 'धप्' का स्वर सुनाई देता था—पहले वह समझ न सका कि यह क्या है, फिर सहसा जान गया : पके फल...रात के सन्नाटे में फल का यह चू पड़ना हैबतनाक था—मानो एक द्रुत कारणहीन मृत्यु आ कर किसी को ग्रस ले...

अगर सलामा असफल रहा, अगर रात को डाक्टरों ने उस की न सुनी—वह स्वयं जाता तो और बात थी—अगर अस्पताल में एम्बुलेंस न हुई—उस ने लिख तो दिया था, डाक्टर तो आयेगा पर अगर पैदल आना हुआ तो—ओह रेखा, यह तुम ने क्या किया—

वह फिर उठा। बाथ-रूम की ओर जाते हुए उस ने अपने हाथों की ओर देखा—सहसा ऐसा सिकुड़ गया मानों आसन्न वार के आगे कोई सिकुड़ जाय : सर्जन—हुँह, हत्यारा ! सर्जन-सर्जन—बीनकार सर्जन. . .हत्यारा कौन ? हत्यारा वह है, वह स्वयं—पर रेखा, रेखा, यह तुम ने किया क्या—क्यों. . .

हाथ धो कर वह फिर लौट आया।

रेखा ने आँखें खोल दीं। स्थिर भाव से, मानो दर्द उसे नहीं है। भुवन अचम्भे में देखन लगा, तो वह बोली, "अब दर्द नहीं है, भुवन। मैं सुन्न हो गयी हूँ। तुम चले नहीं गये, भुवन, थैंक यू।"

उस का स्वर बहुत धीमा और दुर्बल था, पर टूटा नहीं, स्पष्ट। भुवन के मन के निचले किसी स्तर में प्रश्न उठा—क्या यह अन्त तो नहीं है। दिये की आखिरी दीप्ति ? पर इस से वह मानो और केन्द्रित हो आया रेखा की बातों पर, अस्पष्ट कही बात भी मानो किसी अपर इन्द्रिय से स्पष्ट सुनने लगा।

"तुम मेरे लिए यह भी करोगे नहीं सोचा था। मैं तुम्हें केवल एक्स्टेसी देना चाहती थी। यह नहीं. . .यह गलीज़ काम—मेरे भुवन. . .।"

भुवन ने घने उलाहने स्वर में कहा, "मुझ से पूछ ही लिया होता, रेखा ? मैं तुम्हें कह गया था कि—"

"भूली नहीं, भुवन ! पर—तुम्हें —उसे—लज्जा नहीं देना चाहती थी; तुम्हारा सिर झुके, यह नहीं चाहती थी–किसी के आगे नहीं, और उस—उस राक्षस के आगे. . ."

हेमेन्द्र की चिट्ठी के फ़िकरे उस की स्मृति के आगे दौड़ गये। क्या इसी से—? हेमेन्द्र तो स्वयं मुक्ति चाहता है—हाँ, ऐसे भी मिल सकती शायद—और बदला भी—काहे का बदला, वह नहीं जानता. . .

भुवन ने तौलिया उठा कर पट्टी फिर बदली।

"भुवन—एक बात पूछूँ—न चाहो तो उत्तर न देना, क्या तुम—मुझे—घृणा—मुझे अब भी प्यार कर सकते हो ?"

"अब—ज़्यादा, रेखा; जितना कभी नहीं किया उतना—"

रेखा ने आँखें बन्द कर लीं। मुस्कराना चाहा। ओठ खुले और ज़रा-सा खिंच कर रह गये। भुवन ने देखा, ओठ भी सफ़ेद हैं—बल्कि धूमिल; ज़रा-सा गीलापन लिये; और रेखा ने फिर आँखें खोलीं तो उस ने लक्ष्य किया, कोये भी पीले हैं—पीले और मैले, और पुतलियाँ कान्तिहीन यद्यपि बढ़ी हुई. . .वह प्रार्थना करता हुआ झुका, "ईश्वर, रेखा इस स्पर्श को अनुभव कर सके—शरीर से भी, मन से भी—ईश्वर, यह एक सन्देश उस की

चेतना तक पहुँच जावे--" और रेखा का नम माथा उस ने चूमा, फिर ओठों से ही उस की पलकें बन्द करते हुए पलकें।

रेखा निश्चल हो गयी। भुवन ने घड़ी फिर देखी। एक। अब तक तो एम्बुलेंस आ जानी चाहिए थी अगर अस्पताल में होती--क्या होगा ?

भुवन ने रेखा पर झुक कर कहा, "अब तुम मुझे माफ़ कर दो, रेखा; अब जो मेरी बुद्धि में समाता है करूँगा।"

उस ने बहुत-सी रुई ले कर पट्टी लगायी, नया तौलिया ले कर कमर पर लपेट दिया, फिर कम्बल अच्छी तरह उढ़ा कर रेखा को करवट घुमा कर नीचे भी दबा दिया। बाहर से एक बरसाती ला कर रेखा के बगल में बिछायी, उसे उठा कर बरसाती पर लिटाया और बरसाती को लपेट दिया। कमरे और बरामदे के किवाड़ खोल दिये; अपने कमरे में जा कर उन्हीं कपड़ों पर ओवरकोट पहना। दूसरी बरसाती सिर पर ओढ़ी और भीतर आ कर रेखा के नीचे दोनों बाँहें ऐसे डालीं कि उस की ओढ़ी हुई बरसाती रेखा के सिर और पैरों पर आ जाय। फिर उस ने रेखा को उठा लिा और बाहर चल पड़ा। ऐसे उठाये कितनी दूर जा सकेगा, उस ने नहीं सोचा। कन्धे पर उठा कर जरूर अस्पताल तक के तीन मील जा सकता, पर उस से शायद रक्त-स्राव अधिक हो इस लिए गोदी में ही उठाना ठीक था।

अगर एम्बुलेंस आयी ? तो हर्ज नहीं, रास्ते में मिलेगी ही। और अगर नहीं आयी ? तो ऐसे भी वह तीन बजे तक अस्पताल पहुँच हीं जायेगा...

वह तो पहुँच जायेगा, पर रेखा भी पहुँचेगी कि नहीं...

पौने दो...वह बड़ी सड़क पर आ गया था, कुछ आगे भी चल सका था। एक बार एक पेड़ के नीचे उस ने तीन-चार मिनट रेखा को लिटा कर बाँहें सीधी की थीं। बाकी चलता रहा था। हाँ, तीन नहीं तो सवा तीन तक वह अवश्य अस्पताल पहुँच सकेगा...

तभी दूर पर रोशनी दीखी--मोटर की ही है--फिर मोटर की घर्र-घर्र सुनायी पड़ी--क्या एम्बुलेंस है ? न भी हो तो क्या ? भुवन ने रुक कर, सड़क के किनारे की ढाल पर एक पैर टेक कर रेखा का भार एक घुटने और बाँह पर लिया, दूसरी बाँह मुक्त कर ली कि हिला कर गाड़ी रोकेगा।

* * *

एम्बुलेंस ही थी। उस के पास आ कर रुक गयी, सेवक कूद कर उतरा; भुवन ने चाहा कि रेखा को उठा कर स्ट्रेचर पर लिटा दे, पर बाँहें उठी नहीं। सेवक ने खींच कर स्ट्रेचर निकाला और हाथ दे कर रेखा को लिटा दिया, ऊपर से डाक्टर ने स्ट्रेचर को अन्दर खींचा, सेवक सवार हो कर भुवन को भी खींचने लगा तो डाक्टर ने कहा, "आप आगे--मरीज़ को देखना होगा।" आगे से सलामा उतर रहा था, भुवन ने उसे सवेरे ही

अस्पताल पहुँचने को कहा और सवार हो गया। गाड़ी मुड़ने लगी तो डाक्टर ने भीतर से आवाज़ दी, "ठहरो अभी—इंजेक्शन लगा लें!" एंजिन बन्द हो गया।

फिर वही टपाटप—अब और भी जोर से क्यों कि बूँदें एम्बुलेंस की लकड़ी और कैनवस की छत पर पड़ रही थीं। भुवन के कान गाड़ी के भीतर से आने वाले शब्दों पर लगे थे, पर शब्द बहुत कम थे, और जो थे उन से कुछ नहीं जाना जा सकता था कि क्या हो रहा है।

एकाएक भुवन को लगा कि रेखा कराही है। भीतर से डाक्टर का स्वर आया, "विल यू कम ओवर, प्लीज़?"

भुवन उतर कर पीछे गया। पहले कपड़े हटा कर रेखा को अस्पताल के चार कम्बल ओढ़ा दिये गये थे, वह सचेत थी और धीरे-धीरे कुछ कह रही थी। "भुवन. . .जान. . . भुवन. . ." भुवन ने पास झुक कर कहा, "मैं हूँ, रेखा, अब कोई चिन्ता नहीं—"

रेखा ने कहा, "कहाँ—"

"एम्बुलेंस में—अभी अस्पताल पहुँच जायेंगे—"

उस ने आँखें बन्द कर लीं, पर कुछ गुनगुनाती रही। भुवन ने और पास झुक कर सुना: "क्लान्ति—आमार—क्लान्ति—"

वह समझ गया। रेखा ने उस के जाने से पहले जो कापी उसे दी थी, उस में कहीं यह गीत लिखा था:

क्लान्ति आमार क्षमा करो हे प्रभु
पथे यदि पिछिये-पिछिये पड़ि कभु।*

भुवन ने एक बार डाक्टर की ओर देखा, फिर उतर गया। डाक्टर ने कहा, "मैं भी सामने आता हूँ।" पीछे नर्स और सेवक रह गये। एंजिन स्टार्ट हुआ, गाड़ी घूमी और चल पड़ी। डाक्टर ने कहा, "रक्त रोकने के लिए इंजेक्शन दिया है—"

भुवन ने पूछा, "ख़तरा है?"

"हाँ। बहुत टाइम लूज़ हुआ। लेकिन—आई थिंक शी विल पुल थ्रू। अभी आपरेट करना होगा। शायद ब्लड ट्रांसफ्यूज़न भी—"

भुवन ने कहना चाहा, "मेरा रक्त अगर ठीक हो तो दे सकता हूँ," पर न जाने कैसी झिझक ने उसे रोक दिया—ऐसी बातें उपन्यासों में होती हैं—पर डाक्टर ने कहा, "ब्लड प्लाज्मा है अस्पताल में—फॉर्चुनेटली।"

फिर अस्पताल में रुकने तक कोई नहीं बोला। उतरते ही डाक्टर ने कहा, "नर्स टॉमस, आपरेशन-रूम तैयार कराओ। डाक्टर रेवर्न को खबर करो। इम्मीजिएट आपरेशन।"

स्ट्रेचर उतार कर अन्दर ले जाया गया। भुवन को खोया-सा खड़ा देख कर डाक्टर ने कहा, "आप घर जायेंगे या—" फिर सहसा याद कर के कि वह कैसे आ रहा था, "आप आ

*रवीन्द्रनाथ ठाकुर

कर वेटिंग-रूम में बैठिए—आइ विल ट्राइ एंड सेंड यू सम टी। आइ एम सारी देयर्स नथिंग एल्स आइ कैन।"

भुवन ने कहा, "नो थैंक यू, डाक्टर, बट आइ'म मोस्ट ग्रेटफूल—फ़र्स्ट थिंग्स फ़र्स्ट।"

डाक्टर ने स्वीकृति-सूचक सिर हिलाया और फ़ुर्ती से भीतर चला गया।

भुवन ने घड़ी देखी। ढाई। उस ने कुरसी पर बैठते हुए तक लम्बी साँस ली। अगर उस का बचाया हुआ यह आधा-पौन घंटा . . .विचार उस ने वहीं छोड़ दिया। सहसा कहा, "अब भी, रेखा, अब और ज़्यादा—जितना कभी नहीं किया।"

मानो जवाब में रेखा के अन्तिम शब्द उस के मन में गूँज गये, और उसे जान कर अचम्भा हुआ कि कापी का गीत उसे याद है; वह गुनगुनाने लगा :

क्लान्ति आमार क्षमा करो, क्षमा करो प्रभु. . .

* * *

वह थक गया था। लेकिन थकान उस की पेशियों में नहीं थी, एक जड़ता उस के मन पर छा गयी थी। कारण बँगले से रेखा को उठा कर आने का श्रम नहीं था, कारण यह था कि बहुत-कुछ समझ चुकने पर भी इस विलायती गोरख-धन्धे के अलग-अलग टुकड़े जुड़ नहीं रहे थे, पूरा चित्राकार नहीं बन रहा था।

वेटिंग-रूम ठंडा था। निश्चल बैठे रहने से ठंड उस के पैर के पंजों से चढ़ती हुई सारे शरीर में छा गयी थी, वह धीरे-धीरे ठिठुर रहा था।

रेखा की कापी से उड़ते हुए वाक्य सामने आते और विलीन हो जाते, फिर दूसरे आते और वे भी विलीन हो जाते, वेदना और अभिप्राय का एक अवदान उसे दे कर : लेकिन ये ही वाक्य कभी दुबारा आ जाते तो नयी वेदना ले कर, और शायद कुछ नया अर्थ भी ले कर. . .

एक तन्द्रा उस पर छा गयी। अगर उस के पैर गीले, ठिठुरे हुए न होते तो वह ऊँघ जाता; यों वह एक तन्द्रिल अवस्था में बैठा था।

हठात् एक निश्चलता के बोध ने उसे जगाया। बारिश थम गयी थी। उस ने खड़े हो कर अँगड़ाई ली। स्निग्ध अलसाये शरीर की अँगड़ाई सुखद और स्फूर्तिदायक होती है पर ठिठुरे शरीर की अँगड़ाई मानो और भी जड़ बना देती है। वह बाहर के मंडप में गया : बादलों की चादर अब भी समान रूप से आकाश में फैली थी, पर अब उन में एक फीकापन था—भोर होने वाला है. . .भुवन ने फिर घड़ी देखी—छः बजने को थे। वह फिर वेटिंग-रूम की ओर मुड़ा।

प्रवेश कर के वह बैठने ही लगा था कि भीतर की ओर से एक नर्स निकली। उस ने कुछ अचम्भे से पूछा, "आप कैसे?" फिर सहसा समझ कर कहा, "वह एमर्जेन्सी केस—"

भुवन ने कहा, "हाँ, हाउ इज़ शी?"

"आपरेशन तो ठीक हो गया। सो गयी हैं। मैं और पूछ आऊँ ?"

भुवन ने निहोरे से कहा, "प्लीज़——"

नर्स चली गयी। थोड़ी देर वाद डाक्टर भी साथ आ गया। डाक्टर वोला, "शी इज़ आल राइट नाउ। थैंक गाड। लेकिन——मिनटों की वात थी——शी इज ए वेरी ब्रेव वुमन . . ." सहसा रुक कर उस ने पूछा, "लेकिन——हाउ डिड इट हैपन——कोई चोट-ओट——"

भुवन क्या कहे ? संक्षिप्त हाँ कह देने से तो नहीं चलेगा; और चोट के वारे में इतनी जल्दी कहानी भी वह नहीं गढ़ सकेगा ! वोला, "आई डोंट नो——इट हैपंड सडनली——"

डाक्टर ने सिर हिलाया। ऐसा भी होता है. . .फिर पूछा, "आप उन के——"

भुवन ने कहा, "नहीं——ओनली ए——रिलेशन।" फिर परिचय देना उचित समझ कर वोला, "भुवन इज़ माई नेम——डाक्टर भुवन।"

डाक्टर ने हाथ वढ़ाते हुए कहा, "माइन'ज़ पिनकॉट।" हाथ मिलाते हुए पूछा, "मेडिकल ?"

भुवन ने कहा, "नो फ़िज़िक्स। कास्मिक रेज़ एंड थिंग्स।"

डाक्टर ने कहा, "मिल कर ख़ुशी हुई——पर अव मुझे जाना चाहिए। मस्ट गेट सम स्लीप——"

"थैंक यू, डाक्टर——"

सहसा कुछ याद कर के डाक्टर ने कहा, "आपरेशन के वाद होश आते ही——शी आस्क्ड फ़ार यू। लेकिन——" कन्धे सिकोड़ कर उस ने यह आशय व्यक्त किया कि भेंट तो, आप समझ सकते हैं, असम्भव थी। फिर कहा, "आप शाम को आइये——आई थिंक शी विल वी एवल टु सी यू।"

डाक्टर चला गया। भुवन चलने लगा, तो नर्स उस की ओर देख कर मुस्करा दी। मुस्कराहट औपचारिक थी, पर उस ने मुस्करा कर उसे स्वीकार किया, कहा, "गुड मार्निंग——" और वाहर निकल आया। सड़क पर जगह-जगह पानी पड़ा था, लेकिन वह तेज़ चलने लगा। नदी की ओर——नदी वहुत चढ़ आयी थी और यद्यपि लोग उठे नहीं थे, वह मानो वहीं से उन के सहमे हुए भाव देख सकता था. . .उदास, मलिन, गन्दा, वदबूदार श्रीनगर, गँदली मैला ढोने वाली नदी, उदास मैला आकाश, जैसे म्रियमाण आवादी पर पहले से छाया हुआ कफ़न——भुवन ने ऊपर वायें को देखा, शंकराचार्य की पहाड़ी भी उतनी ही उदास, केवल उस धुँधले, तोते के पिंजरे जैसे मन्दिर के ऊपर की वत्ती टिमटिमा रही थी भोर के तारे की तरह धैर्यपूर्वक. . .

उस की चाल और तेज़ हो गयी। डाक्टर का कहा हुआ वाक्य उस की स्मृति में गूंज गया——"शी इज़ ए वेरी ब्रेव वुमन।" एक स्निग्धता उस के भीतर फैल गयी, उस ने निःशव्द भाव से भीतर ही भीतर कहा, "रेखा. . ."

ताँगा ले कर वह वापस पहुँचा तो सलामा दौड़ा हुआ आया। "मेम साहेब—"
भुवन ने कहा, "ठीक है, सलामा : अब कोई फ़िक्र नहीं है।
"बहुत तकलीफ़ हो गया—"
"हाँ, सलामा। ख़ुदा ने रहमत की—"
भीतर जा कर वह कपड़े बदलने लगा। सलामा ने आ कर आग जलाने का उपक्रम किया। सहसा जेब में कागज़ की खड़खड़ाहट से भुवन को याद आया—वे चिट्ठियाँ। उन्हें निकाल कर वह रेखा के कमरे में रखने चला। जहाँ से उठायी थीं, वहीं रखने लगा तो देखा, वहाँ रेखा के हाथ के लिखे और भी दो-एक कागज़ हैं। थोड़ी देर वह झिझका, फिर उस ने मान लिया कि वे भी उसी के लिए हैं, और खड़ा-खड़ा पढ़ने लगा।

"नहीं जानती कि क्या कहूँ—मेरी सब इन्द्रियाँ जड़ हो गयी हैं। कहना चाहती हूँ बहुत, लिखना नहीं; पर कह सकूँगी नहीं, वह मुझी में रह जायेगा—जैसे कितना कुछ अनभिव्यक्त रह जायेगा!"

"तुम जब आओगे, तब क्या मेरी आँखों में नहीं पढ़ सकोगे कि मेरा यह आहत, चिथड़े-चिथड़े हो गया जीवन क्या कहना चाहता है?"

"मैं मानती हूँ कि अगर प्यार यह भी परीक्षा नहीं सह सकता तो वह प्यार नाम का पात्र नहीं है। मैं—मैं ने तुम्हारे साथ आकाश छुआ है, उस का व्यास नापा है : उस सेटिंग में यह छोटी-सी बात लगती है—फिर लगता है कि हमें जोड़ने वाले सूक्ष्म सजीव तन्तु ही काट दिये जा रहे हैं. . .क्या हम टूट कर अलग हो जायेंगे? टूट कर नहीं, बह कर सही, अनजाने बहते रह कर इतनी दूर भी तो हट जा सकते हैं कि एक-दूसरे को छोड़ दें—मुक्त कर दें. . .मैं नहीं जानती क्या होगा—जो हो, अब हो. . .वही है तो वही हो—जिस सौन्दर्य को लिये हम पास आये थे, उसी को लिये दूर हट जायें—अगर हम और निकट आयें तो विधि को धन्यवाद दें, और अपनी आत्मा के सामर्थ्य भर ऊँचे उठें—सुन्दर के आकाश में। इतना छोटा-सा है मानव-जीवन. . ."

"काश कि मैं कह सकती—एक ही बात जो कहना चाहती हूँ वही कह सकती, पर सिर्फ़ आँसू ही कह सकते हैं। मैं टूट गयी हूँ, भुवन, मेरे जीवन, जैसी पहले कभी नहीं टूटी थी। लेकिन इतना कह दूँ—मुझे किसी बात का पछतावा नहीं है, और इस से भी दस-गुनी बुरी तरह टूट जाऊँ तब भी तुम्हारे साथ के एक क्षण को, हमारी साझी अनुभूति के एक स्पन्दन को भी छोड़ देने को मैं राज़ी नहीं हूँ. . .मेरे महाराज, यह याद रखना, और मुझे क्षमा कर देना. . ."

"लेकिन प्यार क्या है? तुम सचमुच प्यार करते हो, करते थे? यह दर्द क्यों है—किस लिए है? जो कुछ हुआ है, हो रहा है, क्यों—किस उद्देश्य की पूर्ति के लिए?"

"जो अब तक है, सुन्दर हो और हमारे व्यक्तित्वों का प्रस्फुटन हो : एक तुम्हारे और एक मेरे व्यक्तित्व का नहीं, तुम्हारे अनेक व्यक्तित्वों का, मेरे भी अनेक व्यक्तित्वों

का सम्मिलन और विकसन—केवल मेरे उस एक पहलू का नहीं, जिसे मैं तुम्हें नहीं छूने दूंगी—जिस से मैं तुम्हें असम्पृक्त रखूंगी भुवन, तुम्हीं को नहीं, उस अपने को भी जिसे तुम ने प्यार किया है—अगर तुम ने किया है; जिस ने तुम्हें प्यार किया है जैसा और किसी को नहीं—प्राणी, वस्तु, विचार, भावना, किसी को नहीं. . ."

"शिथिल मत होना, महाराज; आत्मा का शैथिल्य ही प्यार की पराजय है, हम दोनों को बराबर सतर्क, सजग रहना है—क्यों कि हम दोनों ऐसे आत्म-निर्भर स्वतः-सम्पूर्ण हैं कि सहज ही बह कर, सिमट कर अलग हो जा सकते हैं—अपनी-अपनी सीपियों में बन्द, अन्तरंग अनुभूति के छोटे-छोटे द्वीप—और इस प्रकार बरसों जीते रह सकते हैं, मौन, शान्त, लेकिन एकाकी. . ."

"मैं सोचती हूँ और अवाक् रह जाती हूँ : मेरे साथ यह कैसे घटित हुआ—मेरे, जिस में सब वासना, सब आकांक्षा मर गयी थी—जो स्त्री होना भी नहीं चाहती थी, माँ होना तो दूर. . .

ह्वेन आइ एम डेड, माई डीयरेस्ट
सिंग नो सैड सांग्स फार मी—*

यह तुम ने पढ़ी है ? मुझे पूरी याद नहीं है, पर तुम्हें होगी—"

"मैं नहीं जानती कि यह भूल है या ठीक, भुवन, कर्म को जज करना मैंने छोड़ दिया है, क्योंकि जब जज करने बैठती हूँ, तो मानना पड़ता है कि न्याय करने वाला विधाता ही गलतियाँ करता है ! अब—इतना ही मानती हूँ कि भीतर से जो प्रेरणा है—अगर उस के साथ ही पाप का, अपराध का बोध नहीं जुड़ा हुआ है तो—वही ठीक है, वही नैतिक है। यह नैतिकता अधूरी हो सकती है—पर इस लिए कि उसे देने वाला व्यक्तित्व अधूरा है। उस व्यक्तित्व की तो वह सर्वोच्च रचना है—उसी की कल्याण-कामी, कल्याण-प्रद सम्भावनाओं की सर्व-श्रेष्ठ अभिव्यक्ति. . ."

"भुवन, बड़ा कष्ट है भुवन. . .यहाँ सब-कुछ बदल गया है—कमरे में अँधेरा है—कैसा गाढ़ा द्रव अँधेरा जिस में मैं हाथ-पैर मारती हूँ. . .फिर कभी हवा इतनी हलकी हो जाती है कि मैं हाँपने लगती हूँ, साँस लेती हूँ, पर हवा नहीं मिलती—ऊपर लगता है मृत्यु मँडराती है, उस के पंखों की फड़फड़ाहट सुन पड़ती है—मुझे माफ़ कर दो, भुवन, मुझे. . ."

"जो सुन्दर है, निरन्तर विकास करता है, रुक नहीं सकता : दूसरों को आनन्द देता है। तो क्या—मैं भूल करती आयी हूँ, क्या मैं बहते पानी को बाँधना चाहती आयी हूँ, क्या मैं ने दूसरों के लिए दुःख ही की सृष्टि की है ? अगर ऐसा है तो उस का भरपूर दंड मुझे मिले—विधि से, और तुम से भी, भुवन ! लेकिन मुझ में कुछ कहता है कि नहीं, अपने लिए मैं ने जो किया हो—और, हाँ, तुम्हारे लिए भी, मेरे दुःख के साथी और सहभोक्ता,

---

*** प्रियतम, मेरे मरने पर मेरे लिए कोई शोकगीत मत गाना—क्रिस्टिना रोज़ेटी**

सहस्रष्टा—दूसरों के लिए मैंने दुःख नहीं बोया, भुवन—कह दो कि नहीं बोया और ये सब झूठ बोलते हैं—ये खुद असुन्दर को ले कर मुझे भी उस की सड़ाँध में पचा देना चाहते हैं ! पर नहीं, मैं नहीं छूने दूँगी उन्हें कुछ जो मूल्यवान् है—इसी में मैं मर जाऊँ तो वह मेरा 'ऐक्ट आफ़ फ़ेथ'* हो—अभी जो हो भुवन, मैं धारे बैठी हूँ कि यह दर्द भी आगे आनन्द देगा क्यों कि वह विश्वास के साथ अपनाया गया है, मैं अपने को समर्पित कर के उसे ले रही हूँ. . ."

"तुम अब जब मुझे देखोगे, पहचानोगे ? अपनाओगे ?"

"नहीं तुम चले जाना भुवन, मुझे अकेली छोड़ कर चले जाना। जीवन के सारे महत्त्वपूर्ण निर्णय व्यक्ति अकेले में करता हैं, सारे दर्द अकेले में भोगता है—और तो और, प्यार के चरम आत्म-समर्पण का सब से बड़ा दर्द भी. . .मिलने में जो विरह का परम रस होता है—तुम जानते हो उसे ? समर्पण के धधकते क्षण में जब ज्ञान चीत्कार कर उठता है कि हम अलग ही हैं, देना सम्पूर्ण नहीं हुआ, कि मिटने में भी मैं-मैं हूँ, तू-तू है, मैं तू नहीं हूँ और हमारी माँग बाकी है. . .इतना अभिन्न मिलन क्या हो सकता है कि माँग बाकी न रहे ? सारी सृष्टि में रमा हुआ ईश्वर भी तो अकेला है, अपनी सर्व-व्याप्ति में अकेला, अपनी अद्वितीयता में अयुत, विरही. . .

"इस लिए तुम, भुवन, चले जाना। मैं शिकायत नहीं करूँगी, मन में भी नहीं। मान लूँगी कि मेरा व्रत पूरा हुआ—कि मैंने तुम्हें वही दिया जो देय था, स्वच्छ था और उस से बचा लिया जिस से तुम्हें रखना चाहती थी. . ."

"ठीकरे ने स्वप्न देखा, वह सोने का अमृत-पात्र है। स्वप्न था, अन्ततः चुक गया। जाग कर उस ने जाना कि वह केवल ठीकरा है। कहने लगा, 'मैं देवता के अमृत-पात्र का ठीकरा हूँ।' पर इस लिए क्या वह कम ठीकरा है ? या कि अधिक—क्यों कि वह बृहत्तर सम्भावनाओं का ठीकरा है ?"

"अनाथ, लावारिस धूल. . ."

"तुम्हीं में मेरी आशा है, तुम्हीं में मेरे सकल द्वन्द्वों का शमन।". . .

"वेदों की विवाह की ऋचाएँ हैं—सुन्दर जानो तो सुन्दर, अश्लील मानो तो अश्लील। मुझे याद आता है—'अस्थि से अस्थियाँ, मज्जा से मज्जा, त्वचा से त्वचा को युक्त करता हूँ. . .' ठीक कहती हैं वे, हम ने आँखों से आँखों को वरा था, ओठ से ओठ को, वक्ष से वक्ष को, प्राण से प्राण को; प्यार से प्यार को, और हाँ, वासना से वासना को. . .

"और यह एक मैला नाखून, एक पार से दूसरे पार तक उस संयुति को फाड़ता हुआ चला जा रहा है. . .

"और मैं नहीं जानती कि उत्तरदायी मैं नहीं हूँ. . .

"मुझे कभी भी माफ़ करोगे, भुवन ?"

---

* धर्म-परीक्षा

"नहीं सहा जाता, भुवन ! इस लिए नहीं कि कष्ट बहुत है, इस लिए कि मैं ऐसी लड़ाई लड़ते थक गयी हूँ जो व्यर्थ है, और जो अनिवार्यतः व्यर्थता ही में समाप्त हो सकती है. . .मान ही लो कि हम रह सकते—घर होता, संयुक्त जीवन होता, वह सर्जन-बीनकार भी आता—फिर क्या ? मान लो कि मैं दस वर्ष बाद मरती हूँ—क्या उस से अच्छा नहीं है कि अभी मर जाऊँ ? या कि दस वर्ष बाद हम उदासीन, अलग हो जायें—उस से हज़ार गुना अच्छा है आज मर जाना !

"मैं विमूढ़ हो गयी हूँ ! भुवन, मेरी कुछ समझ में नहीं आता कि क्या हुआ है और हो रहा है। ऐसी ही विमूढ़ सुन्न अवस्था में मेरे बरसों बीते हैं, इतना ही जानती हूँ कि तुम—इसी लिए और भी मर जाना चाहती हूँ, क्योंकि समझती हूँ, मेरी आकस्मिक अ-चिन्तित हरकतों से तुम्हें अपार क्लेश होगा। मुझ में डंक नहीं है, फिर भी चोट पहुँचाती हूँ—और तुम चुप-चाप सह लेते हो—क्यों इतने चुपचाप सहते हो, भुवन; तुम्हारी चुप्पी तो मुझे और सालती है, मैं चाहती हूँ कि इसी क्षण धरती में समा जाऊँ. . .

"हजारों हैं, जिन में प्यार मर जाता है लेकिन जो फिर भी जीते हैं, हँसते हैं. . .लेकिन यह मैं क्या लिख रही हूँ—क्या कह रही हूँ ? यही कि मैं जीती हूँ भुवन, और तुम्हें प्यार करती हूँ : और सब भाव्य और सम्भाव्य अभी पड़े रहें जब तक मेरी शक्ति फिर लौट आये—"

* * *

उस शाम को तो नहीं, अगली शाम को भुवन की रेखा से भेंट हुई। दोनों ही कुछ बोल नहीं सके, रेखा ने एक दुर्बल मुस्कान से उस का स्वागत कर दिया और पड़ी रही : भुवन पास बैठ गया और स्थिर दृष्टि से उसे देखता रहा। दोनों को लग रहा था कि जिस अनु-भूति में से वे गुज़रे हैं, उस के बाद शब्दों में कुछ कहा नहीं जा सकता—शब्द मानों एक खतरनाक औज़ार हो गये हैं जिस की चोट से जो कुछ बचा है वह सब का सब हरहरा कर गिर पड़ेगा—पहले ही उच्चारित शब्द पर सारा भविष्य टँगा हुआ है. . .

फिर रेखा ने एक साथ ही भँवें सिकोड़ते और मुस्कराते हुए पूछा, "भुवन—अब भी ?"

और भुवन ने कहा, "हाँ, रेखा, ज़्यादा—"

मानो हवा में तनाव कम हो गया। रेखा ने तकिया गले की ओर खींच कर जरा-सा ऊँचा कर लिया, भुवन खिड़की से बाहर का दृश्य देखता रहा।

"कैसी हो, रेखा ?"

"ठीक हूँ। और तुम ? क्या करते हो वहाँ ?"

भुवन ने उत्तर नहीं दिया। "तुम्हारे लिए कुछ लाऊँ—किसी चीज़ की ज़रूरत—"

"नहीं। अच्छा, दो-एक किताबें ले आना, और—एक छोटी कापी और पेंसिल—"

भुवन मुस्करा दिया। "क्या कहना चाहती हो, रेखा ?"

"जो कह नहीं पाती—"

"अब भी ?"

रेखा ने भी मुस्करा कर कहा, "अब और भी ज़्यादा, भुवन !"

थोड़ी देर फिर दोनों चुप रहे। फिर रेखा ने कहा, "वहाँ मेरी कोई—चिट्ठियाँ आवें तो—तुम पढ़ लेना। जो ठीक समझो कर देना—चाहे उत्तर दे देना। ओर—चाहो तो—चिट्ठियाँ फाड़ कर फेंक देना।"

"तुम्हारी चिट्ठियाँ !"

"हाँ भुवन—मैं स्वयं तो कह रही हूँ ! और ज़्यादा दिन तो यह बोझ तुम पर नहीं डालूँगी—यही पाँच-सात दिन। यहाँ कोई डाक मत लाना—अगर तुम ही जरूरी न समझो।"

भुवन ने विरोध करना चाहा कि यह बड़ा दायित्व है : फिर चुप रह गया—शायद ऐसी कोई चिट्ठी आये ही नहीं कि उसे सोचना पड़े...

दूसरे दिन वह रेखा की माँगी हुई चीज़ें और कुछ फूल ले कर पहुँचा। फूल सजाने लगा तो रेखा मुस्कराती देखती रही। फूलदान सजा कर वह उसे घुमा-फिरा कर रेखा की दृष्टि से ठीक कोण पर रखने लगा तो वह हँस पड़ी। "हाँ, तुम भी इसी एंगल पर खड़े रहो—तुम्हें भी देखती रहूँगी !"

लेकिन भुवन के आशावाद ने काम नहीं दिया : दो-तीन दिन बाद ही एक बड़े लिफ़ाफ़े में वकील की चिट्ठी आयी। हेमेन्द्र धर्म-परिवर्तन की दलील दे कर तलाक़ की माँग कर रहा था, वकील ने राय दी थी कि रेखा भी दोस्ताना तौर पर मामला तय हो जाने दे, और अच्छा हो कि अपनी ओर से मामला किसी वकील को सौंप दे, दोनों वकील आपस में बात सुलझा कर ऐसा यत्न करेंगे कि सब काम स्मूथली हो जायँ। "मेरे मवक्किल का कहना है कि आप भी तलाक़ चाहती हैं, और किसी तरह के साहाय्य से आप को कोई दिलचस्पी नहीं है—ऐसी सूरत में यही सब से अच्छा होगा; यों आप को विशेष कुछ कहना हो तो मैं भरसक आप की सुविधा प्राप्त करने की कोशिश करूँगा...अपने मवक्किल के प्रति अपनी ज़िम्मेदारी तो निबाहूँगा ही, पर तलाक़ के मामले बहुत डेलिकेट होते हैं और उस में सिर्फ़ पक्ष ले लेना उचित नहीं होता। कानून है, लेकिन जीते-जागते मानव प्राणी से बड़ा नहीं है. . .एक वकील के मुँह से ऐसी बात सुन कर आप को अचरज होगा; पर मेरे इस गैर-रस्मी एप्रोच को आप गुस्ताख़ी न समझेंगी..."

शाम को भुवन ने और फूल, कुछ फल, बिस्कुट और रेखा के माँगे हुए दो-चार कपड़े आदि सब यथा-स्थान रखते हुए कहा, "रेखा, एक चिट्ठी है—"

रेखा बोली, "मैंने तो कहा था—किस की है, हेमेन्द्र की ?"

"नहीं। पर—"

"अच्छा, लाओ दे दो !"

भुवन से ले कर रेखा ने चिट्ठी आद्यन्त पढ़ ली। थोड़ी देर चुप रही, आँखें बन्द कर लीं। एक आँसू कोर से ढरक गया। व्यथित स्वर से उस ने कहा, "यह चिट्ठी—तो ... वह चिट्ठी. . ." और वाक्य अधूरा छोड़ कर चुप हो गयी। थोड़ी देर बाद सँभल कर उस ने कहा, "मेरी ओर से पहुँच और धन्यवाद लिख दोगे—यह भी कि मैं वकील—" और सहसा रुक गयी। एक काली छाया चेहरे पर आ गयी। "नहीं भुवन—मुझ से गलती हुई—यह जिम्मेदारी तुम पर नहीं डालनी चाहिए थी। लाओ मुझे कागज़ दो—अच्छा रहने दो—मैं कल लिख रखूँगी, तुम शाम को पोस्ट कर देना।"

अगले दिन उस ने भुवन को तीन चिट्ठियाँ दीं। एक वकील के नाम, एक दूसरे वकील के नाम, एक कलकत्ते के किसी पते पर। देते हुए बोली : "यह कलकत्ते में मेरी एक मौसी हैं—यहाँ से उन के पास जाऊँगी।"

भुवन ने चौंक कर कहा "हूँ ? क्यों ? कब—"

"हाँ, भुवन। लगता है, अब जीवन फिर सिफ़र से शुरू करना होगा। माता-पिता तो लौट नहीं सकते—पर घर की भावना ही सही—"

थोड़ी देर मौन रहा।

"और तुम भी तो लौटोगे अब—"

"अभी तो मेरी छुट्टियाँ हैं. . ."

"तो पाँच-सात दिन तो अभी मैं भी यहाँ हूँ—"

"तब तक तो मौसम बहुत अच्छा हो जायगा—और कलकत्ता तो इन दिनों—"

"बेगर्स कांट बी चूज़र्स, * भुवन ! और कलकत्ते नहीं, शहर से तो बाहर नदी पर रहूँगी—"

"फिर भी—"

सहसा रेखा ने पूछा, "यहाँ बाढ़ का क्या हाल है ?"

"उतर रही है। कीचड़ सूख रहा है—"

"यहाँ ऐसी धूप है कि सोच भी नहीं सकते बाढ़ की बात; जिस दिन आयी थी—जिस दिन तुम लाये थे उठा कर—" सहसा उस का गला भारी हो आया। "भुवन ?" और उस ने भुवन की ओर दोनों हाथ बढ़ा दिये। भुवन, फुर्ती से आगे बढ़ा, दोनों हाथों की उँगलियाँ उस ने अपने हाथों में लीं और बारी-बारी से उठा कर ओठों से लगा लीं। फिर वह उँगलियों को देखने लगा—ठंडी, पीली, नाखून लगभग सफ़ेद और नीचे किंचित् नीलाभ—फिर उस ने धीरे-धीरे हाथ रेखा की बगल में रख कर ढँक दिये।

रेखा के कहने से भुवन फिर मिसेज़ ग्रीव्ज़ से मिल आया था, और वह आ कर रेखा

---

*भिखारी की पसन्द का सवाल नहीं होता।

को देख गयी थी। तब से रोज़ ही आती, प्राय: ही खाने का कुछ सामान लाती—केक, मधु, जैम, चाकलेट. . .रेखा अस्पताल छोड़ कर घर जायेगी, इस सूचना से वह बहुत खिन्न थी—"मैंने तो सोचा था, और मुझे कभी ढूँढ़ना नहीं पड़ेगा।" वह प्राय: जल्दी ही आती, भुवन देर से आता; कभी उन की भेंट हो जाती, कभी उस के जाने पर ही भुवन पहुँचता।

भुवन ने कुछ डरते-डरते पूछा, "रेखा, अब—यह तो बता दो कि तुम ने किया क्या था—यह कैसे हुआ ?"

रेखा थोड़ी देर चुप पड़ी रही। फिर उस ने कहा, "मैं डाक्टर के पास गयी थी। फिर वापस आयी तो—वह चिट्ठी—" उस ने फिर आँखें बन्द कर लीं, थोड़ी देर बाद फिर कहने लगी, "उस से सब बदल गया। फिर एक दूसरे डाक्टर के पास गयी जो सर्जन भी था—उसे जो कहा सो तो अब छोड़ो, पर बहुत अनुनय पर वह मान गया। आपरेशन के लिए उसी के क्लिनिक में गयी थी।"

"तो—यह—कैसे—"

उस का प्रश्न समझ कर रेखा ने कहा, "उस ने कहा था कि दो-एक दिन बाद हेमरेज होगा। पर ऐसा, यह अनुमान तो नहीं था—"

"वह है कौन सर्जन, रेखा ?"

"वह अब जाने दो, भुवन ! मैंने उसे बहुत पर्सुएड किया था—बल्कि धर्म-संकट में डाला था। और लापरवाही उस ने नहीं की। यह मत कहना कि वह प्रोफ़ेशन का कलंक है—मैं नहीं मानूँगी।"

भुवन चुप रह गया, केवल एक लम्बी साँस उस ने ली। थोड़ी देर बाद उस ने कहा, "लेकिन रेखा, वह चिट्ठी तो—"

रेखा ने एक हाथ उठा कर उसे चुप कर दिया। पीड़ित स्वर में बोली, "अब वह जो हो, भुवन; इट इज़् टू लेट—"

जिस दिन रेखा अस्पताल से छूटने को थी, उस दिन भुवन दोपहर को टैक्सी ले कर आ गया। डाक्टर-मेट्रन-नर्स को धन्यवाद दे कर वह रेखा को लेने पहुँचा तो वह धूप में आराम-कुर्सी पर बैठी थी। भुवन ने हाथ बढ़ाते हुए पूछा, "चल सकोगी ?"

"हाँ सकूँगी—पर फिर भी सहारा लूँगी—मे आइ ?" भुवन की बाँह में उस ने बाँह डाल ली और उस पर झुकती हुई चलने लगी।

भुवन ने उसे कार में बिठाया, फिर लौट कर सामान वगैरह ले कर रखा। बख़शीशें दीं, और आ गया। गाड़ी चल पड़ी। रेखा ने कहा, "कितनी सुन्दर है धूप—और रोशनी—मैं मानो फिर से दुनिया को विज़िट करने आ रही हूँ—"

अपनी ही बात पर वह उदास हो गयी। "वापस लेकिन कोई कहीं नहीं आता।"

"न सही वापस—वापस आना कोई चाहे क्यों ? दुनिया अनवरत अपने को नया करती जाती है—वह नयापन—"

टैक्सी नीची सड़क पर नदी के पास गुज़र रही थी। बेत के वृक्षों के नीचे कीचड़ की पपड़ियाँ जमी थीं और सूखने से चटक गयी थीं, दरारों के कई पैटर्न उन में बने हुए थे।

"यही है वह नयापन—देखो न, दुनिया को नया होते हुए ! ठीक है. . .पर उस का तो सोचो, जो नदी की इस धुलाई में बह गया—नदी के वे द्वीप जो मिट्टी के ही सही, कितने सुन्दर थे, पर अब हो गये ये सूखती पपड़ियाँ !"

भुवन रेखा की ओर देखने लगा।

"हाँ, मैं जानती हूँ, तुम सोच रहे हो, व्यक्ति की भावनाओं—अनुभूतियों का आरोप प्रकृति पर करना बचपन है। मैं भी जानती हूँ। फिर भी भुवन—आखिर मैं फिर से मिट्टी से ही तो शुरू कर रही हूँ। बाढ़ के बाद की सूखती पपड़ी से !"

भुवन धीरे-धीरे उस का हाथ थपथपाने लगा। बोला नहीं। गाड़ी बड़ी सड़क छोड़ कर बँगले की ओर चढ़ने लगी।

"लेकिन यह सेल्फ-पिटी नहीं है भुवन; मैं दीन नहीं हो रही। जो हमें मिला है, वह बहुमूल्य है—अब भी, बल्कि अब और ज़्यादा—" और एक मधुर चितवन से उस ने भुवन को देखा और मुस्करा दी।

गाड़ी फाटक के अन्दर मुड़ी। दूर से सेबों से लदी हुई शाखें दीखने लगीं।

रेखा ने कहा, "अब तो सेब पक गये होंगे।"

भुवन ने कहा, "हाँ।" फलों पर और पेड़ों के नीचे की हरियाली पर खेलती धूप अत्यन्त सुन्दर थी; उसे किसी कविता की एक पंक्ति याद आयी—'द एपल ट्री, द सिंगिंग, एंड द गोल्ड'. . .सुन्दर, व्यंजना-भरी पंक्ति है—गाल्सवर्दी ने इसी पंक्ति को ले कर एक कहानी लिखी है जो उसे कभी बहुत अच्छी लगी थी. . .'शरद्, धुन्ध और स्निग्ध सुफलता की ऋतु'—लेकिन सहसा उसे याद आयी रात में चुप-चाप टपक पड़ने वाले पके फल की वह लोमहर्षक आवाज़, और एक अनिर्वचनीय गहरी उदासी उस पर छा गयी। पका फल—चुपचाप टपक पड़ना—उस के बाद फिर ? हाँ, है शरद् की धूप का सोना, पकती दूब का सोना, है वह गिरा हुआ फल भी, पर—क्या वह अन्त है ?

* * *

भुवन दिल्ली तक रेखा के साथ गया।

कलकत्ते की गाड़ी में बैठ कर रेखा प्लेटफ़ार्म पर खड़े भुवन को देखने लगी। क्षण-भर के लिए जैसे सिनेमा में होता है, एक चित्र घुल कर दूसरे में पलट गया : भुवन हाथ से कुछ मसल कर उस की गोली ठोकर से उछाल रहा है—उस का प्लेटफ़ार्म टिकट; फिर

पहला दृश्य लौट आया। न, अब वह भुवन से नहीं कहेगी, किसी अनुभव को दुबारा चाहना भूल है. . .और अभी वह वैसी यात्रा पर जा भी नहीं रही : वह चुपचाप पड़ी रहना चाहती है, और—भुवन को भी अकेला छोड़ देना चाहती है। उस अकेले चिन्तन में जो निकलें, निकले। वह बुद्धिमती होती, तो भुवन को पास रखना चाहती, उस के पास रहना चाहती, उस से बराबर सम्पर्क रखती कि जानती रहे, उस के मन से क्या गुज़र रहा है, पर वह बुद्धिमती नहीं है, न होना चाहती है। उसे कुछ चाहिए नहीं, उसे कुछ सँभालना नहीं है—'हाउ टु होल्ड ए मैन'. . .

भुवन ने थोड़े फल लेकर उस के पास रख दिये। फिर भीतर आ कर एक नज़र इधर-उधर डाली, फिर बिस्तर खोल कर कुछ बिछा दिया, कुछ लपेट कर ऊपर रख दिया। रेखा ने कहा, "यहीं बैठो न ?"

भुवन कुछ झिझका। जनाना डब्बा था, और भी दो-एक स्त्रियाँ बैठी थीं। उस ने कहा, "नहीं, मैं खिड़की पर खड़ा होता हूँ—"

"टहलें—"

"नहीं रेखा, तुम बैठो। थक जाओगी—और अभी कितना सफ़र बाकी है।"

रेखा ने हाथ खिड़की पर रखा था : भुवन ने बाहर से उस पर अपना हाथ रख दिया। धीरे से पूछा, "ठीक हो न, रेखा ?"

"हाँ, बिलकुल : तुम ?"

"हाँ—"

थोड़ी देर बाद भुवन ने पूछा, "रास्ते भर क्या करोगी—कुछ पढ़ने को ले दूं ?"

"क्या ? ये स्टेशन वाली किताबें-मैगज़ीन ! न—इस से तो सोऊँगी।"

"तो मैं कुछ दूं ? कविता है—ब्राउनिंग—" फिर सहसा रुक कर, "नहीं और एक चीज़ देता हूँ—मेरी एक कापी—"

रेखा ने खिल कर कहा, "तुम्हारी कापी, भुवन ?"

भुवन जल्दी से बोला, "नहीं, वैसी नहीं; यह दूसरे ढंग की कापी है—एकदम भानमती का पिटारा। जो पढ़ता हूँ उस में जो अच्छा लगता है लिख लेता हूँ—बरसों की पढ़ाई का मुरब्बा है।"

भुवन का सामान प्लेटफ़ार्म पर रखा था : खोल कर उस ने कापी निकाली और रेखा को दे दी। रेखा ने सब पन्ने चुटकी में ले कर फड़फड़ा कर देखे, फिर सहसा कापी उलटती हुई बोली, "दोनों तरफ़ से लिखी हुई है ?"

भुवन कुछ सकपकाता-सा बोला, "उधर कुछ नहीं है।"

स्त्री-स्वभाव से रेखा ने पहले 'कुछ नहीं' वाला पक्ष देखना शुरू किया।

"वह रहने दो, रेखा, अच्छा रेल में पढ़ती रहना—वह जो मेरे अपने दिमाग में आया लिखता रहा हूँ—"

"ओ—उधर मुरब्बा है, इधर रसायन है," रेखा ने चिढ़ाया। "तो ठीक तो है—पहले रसायन का सेवन, फिर मुरब्बे का—"

"नॉटी वुमन !" कह कर भुवन हँसने लगा।

दूसरी तरफ़ भुवन की गाड़ी भी लग गयी। कुली ने कहा, "साहब, सामान रख लीजिए नहीं तो भीड़ हो जायगी।"

"होने दो।" कह कर भुवन कुछ रुका, फिर उस ने कहा, "अच्छा ले चलो।" फिर रेखा की ओर मुड़ कर, "मैं अभी आया।" रेखा के हाथ को उस ने थपथपा दिया।

चार-पाँच मिनट में वह लौट आया। रेखा अपनी कापी में कुछ लिख रही थी, थोड़ा मुस्करा रही थी। भुवन खिड़की पर खड़ा हुआ, तो लिखा हुआ परचा फाड़ कर रेखा ने उसे दिया।

उस ने पढ़ा, "यह जो पड़ोसिन बैठी है, मुझ से पूछ रही थी, ये आप के हज़्बैंड हैं ? मैंने कहा, हाँ। शादी को कितने बरस हुए हैं ? मैंने कहा, सात। बोली, बड़ी भाग्यवती हैं आप ! क्यों ? कि सात बरस बाद भी आप के हज़्बैंड आप को इतना प्यार करते हैं ! भुवन, आकारों में हम क्यों इतना बँध जाते हैं कि आत्मा मर जाय ?"

रेखा की ओर देख कर वह मुस्करा दिया।

थोड़ी देर बाद गाड़ी ने सीटी दी। भुवन ने कहा, "पहुँचते ही लिखना, रेखा ! और नियम से लिखती रहना कि कैसी हो—जल्दी से ठीक हो जाओ !"

"लिखूंगी, भुवन ! रेल ही में से नहीं लिखूंगी, यह कैसे जानते हो ?" वह मुस्करा दी।

गाड़ी चल दी। भुवन ने उस के दूर हटती खिड़की पर रखे हाथ को दबा कर कहा, "गाड ब्लेस यू।"

रेखा के ओठों की गति से उस ने समझ लिया, वह कह रही है, "एंड यू।"

गाड़ी दूर हट गयी। जब उस की गति तेज हुई, तो रेखा के ओझल होते हुए आकार को एक-टक देखते भुवन को एक अजीब अनुभूति हुई; उसे लगा कि गाड़ी उस के सामने से दूर नहीं, उसे भेदती हुई चली जा रही है आर-पार, जहाँ से गुज़र रही है वहाँ एक बहुत बड़ा रिक्त छोड़ती हुई, उस रिक्त को एक असह्य गड़गड़ाहट और गर्म फुफकारती भाप से भरती हुई...

एकाएक उस ने अपने हाथ की ओर देखा—उस में एक कागज़ था। ओ—हाँ... "भुवन, हम क्यों आकारों से इतना बँध जाते हैं कि आत्मा मर जाय ?"

दूसरे प्लेटफ़ार्म पर दूसरी गाड़ी है। उस में भुवन का सामान है। वह उस में सवार होगा, फिर वह भी चल देगी; उसे आर-पार भेदती हुई, एक बड़ा रिक्त बना कर उस में असह्य गड़गड़ाहट और गर्म भाप भरती हुई। और रेखा...

अन्तराल

रेखा द्वारा भुवन को :

वहाँ फूल थे, सुहानी शारदीया धूप थी, और तुम थे ! और मेरा दर्द था ! यहाँ गरम, उद्‌गन्ध, बौखलायी हुई हरियाली है, धूप से देह चुनचुना उठती है : और तुम नहीं हो। और दर्द की बजाय एक सूनापन है जिसे मैं शान्ति मान लेती हूँ. . .

नदी यहाँ भी है, किनारे बनी हुई पक्की रौंस पर दो-तीन सरुओं की ओट में—जो ऐसे बने-ठने रहते हैं कि नकली मालूम हों (और क्या यह समूचा बगीचा ही नकली नहीं है—नकली इटालियन बगीचे की नकल !)—मैं बैठ कर दिन बिता देती हूँ। सामने दक्षिणेश्वर का मन्दिर दीखता है, और घास; उस पार और मेरी रौंस के बीच में गहरी लाल या कभी काली धारीदार सफ़ेद धोतियाँ पहने बंगालिनें आती हैं, नहाने, पानी भरने, कभी झगड़ने; उन के दुबले कमज़ोर शरीर ऐसे लचकते हुए चलते हैं कि जान पड़ता है उन्हें आधार के बिना चलने का अभ्यास नहीं है, मालंच पर पली हुई लता जैसे उस से गिर कर डोल भी नहीं सकती, वैसे ही—और सोचती हूँ कि सारा कलकत्ता ऐसी मालंच-विहीन लताओं से भरा पड़ा है—क्यों ऐसा है कि जो केवल एक सामाजिक स्तर पर हमें स्वाभाविक लगता या लग सकता है, वह वहाँ पर ऊपर से नीचे तक सर्वत्र लक्ष्य होता है ?

मैं क्या लिख रही हूँ, इस से तुम समझ लो कि ठीक हूँ, ठीक बल्कि बहुत अधिक शुश्रूषा पा रही हूँ, ओर सोच करने का अवसर मुझे बिलकुल नहीं मिलता है। यों बैठी रहती हूँ, और बादलों की तरह विचार तिरते हुए आते और चले जाते हैं; पर जिसे सोचना कहते हैं, वह नहीं हो पाता; कभी विचार की छाया भी चेहरे पर पड़ जाय तो मौसी 'बच्ची' को ले कर इतना 'फ़स' करती है कि बच्ची घबरा जाती है, और कान छू लेती है कि फिर कभी नहीं सोचेगी. . .

यों, बच्चों की तरह जीती हूँ ! कितना आसान होता है वयस्क परिपक्व मनोवृत्तियों से फिसल कर बच्चों के दृष्टिकोण अपना लेना ! लोग जब बूढ़े होते हैं, तो ऐसे ही अनजाने फ़िसल कर बच्चों की मानसिक प्रवृत्तियाँ अख्तियार कर लेते हैं, उन्हें पता भी नहीं लगता कि कब दूसरे बचपन में प्रवेश कर गये। क्या मैं भी बूढ़ी हो रही हूँ ?

लेकिन मैं ठीक हो जाऊँगी—जागूँगी—भुवन, तुम कैसे हो ? पत्र जल्दी लिखना. . .

रे०

रेखा द्वारा भुवन को :

भुवन मेरे,

क्यों नहीं तुम पत्र लिखते ? इतने दिन बाट देखते हो गये, और अब नदी को देखना और अच्छा नहीं लगता, न अब मन बच्चों की तरह मुकुर बना बैठा रहता है। मेरे विचार

उमड़ते हैं, तुम तक जाते हैं, तुम्हारी ओर से कोई संकेत नहीं मिलता तो एक भयानक उदासी मन पर छा जाती है, जिस से लगता है कि कभी उबर नहीं सकूँगी। कोई इशारा, कोई संकेत तो दो, भुवन—यों क्यों मुझे छोड़ दिया है तुम ने ?

तुम्हारी ही
रेखा

रेखा द्वारा भुवन को :

भुवन, मैं क्या समझूँ ? तुम क्यों नहीं लिखते ? क्या तुम ने मुझे छोड़ दिया, भुवन ? उस दिन तुम ने कहा था, "अब भी—अब और ज़्यादा"—क्या वह उसी दिन तक था ? ऐसा है, भुवन, तो ऐसा ही लिख दो—जो भी है स्पष्ट लिख दो ! मैं सब सह लूँगी। और सह ही नहीं, समझ भी लूँगी : वैसा ही है, तो शिकायत नहीं करूँगी; फिर भी कृतज्ञ रहूँगी. . .कुछ तो लिखो, मेरे भुवन !

रेखा द्वारा भुवन को :

भुवन,

तो 'इस तरह अन्त होता है सब-कुछ, धड़ाके के साथ नहीं, धड़ाके के साथ नहीं, रिरियाहट के साथ !' क्या हो गया है, भुवन ? कार्य-व्यस्त तुम हो सकते हो, पर क्या मुझे एक पंक्ति लिखने की फ़ुरसत भी तुम नहीं निकाल सकते ? मैं नहीं मानती. . .या कि क्या तुम अस्वस्थ हो ? सोचती हूँ, तुम्हारे प्रिंसिपल को तार दे कर तुम्हारा पता पूछूँ, पर उस में भी संकोच होता है। क्या करूँ ?

कभी सोचती हूँ, हर वक्त इस तरह तुम्हारा ध्यान नहीं करती रहूँगी. . .इसी लिए इधर कुछ काम भी शुरू किया है ! . . .पर अगर सारा दिन भी अपने को उलझाये रखूँ, तो रात को जब सोने जाती हूँ—और फिर नींद में—मैं बिलकुल बेबस हो जाती हूँ, और तुम्हारी सुधि न जाने कहाँ-कहाँ खींच ले जाती है. . .कभी सवेरे सपना देख कर उठती हूँ, तो फिर वह दिन भर छाया रहता है, मुझ से कोई काम नहीं होता, नशे-से मैं बाहर आ कर बैठ जाती हूँ, और नदी को देखती रहती हूँ, पर नदी भी नदी नहीं रहती, उस का प्रवाह मेरा तुम्हारी ओर प्रवाह बन जाता है. . .

भुवन, क्या मेरी सुध नहीं लोगे ?

रेखा

रेखा द्वारा भुवन को :

मेरे भुवन,

आज मैं अकेली लम्बी सैर के लिए गयी थी नदी के साथ-साथ ! बादल घने हो कर झुक आये थे, लग रहा था कि बारिश अब हुई, अब हुई; पर उन के नीचे छोटे-छोटे टुकड़े अलग भटक रहे थे और उन को सूर्य का प्रकाश एक नारंगी सुनहला रंग दे रहा था। भटकते हुए मुझ पर वही गहरी उदासी छा गयी और मैं तुम्हारे लिए छटपटा उठी; यों तो

तुम्हारी इस उपेक्षा में सदैव उदास रहती हूँ और छटपटाती रहती हूँ. . .फिर मन में विचार उठा, तुम्हारे मौन से मुझे जो इतना कष्ट होता है, मैं जो तुम्हारे इस व्यवहार से मर्माहत हो रही हूँ उस का कारण यही है कि जो मुझे मिल चुका है उसी को और पाना चाहती हूँ। और यह लालच कितना अनुचित है. . .मैं क्यों उदास होऊँ ? मान ही लो कि तुम उदासीन हो रहे हो, कि तुम मुझ से दूर चले जाओगे, तो भी विषाद क्यों—अवसाद क्यों ! जो कुछ भी मैं चाह सकती, वह मैं ने तुम्हारे साथ में पाया है—प्यार भी, वासना भी, दोनों का चरम सुन्दर रूप—तब और लालच क्यों ? तुम्हारा मौन मुझे खलता है क्योंकि मैं अधिकाधिक माँगती हूँ और वह सम्भव नहीं है, वह उचित भी नहीं है, अतीत को कोई भविष्य नहीं बना सकता. . .

इस लिए भुवन, मैं पिछले पत्रों में कुछ उलटा-सीधा लिख गयी होऊँ तो मुझे माफ़ कर देना। तुम्हारे मौन पर क्लेश मुझे हुआ है, होता है; मेरा स्नायु-तन्त्र ऐसा जर्जर हो गया है कि ज़रा-सी बात से झनझना उठता है और मैं झल्ला उठती हूँ—पर इस समय मैं शान्त हूँ, और मैं अपनी आकुलता के लिए क्षमा माँगती हूँ। तुम मुक्त हो भुवन, बिलकुल मुक्त, मैं चाहती हूँ कि सर्वदा सगर्व कहती रह सकूँ कि तुम मुक्त हो मेरे भुवन, मुझे भूल जाने के लिए उतने ही मुक्त जितने मुझे प्यार करने के लिए थे और हो. . .तो भुवन, मेरे प्रिय, मेरे क्लेश की परवाह न करो, अगर चिट्ठी लिखने का मन नहीं है तो मत लिखना; या जब वैसा जानोगे तो मुझे एक पंक्ति लिख कर सूचित कर देना कि तुम्हारी भावनाएँ बदल गयी हैं। सह लूँगी. . .

इधर तीन-चार दिन से मैं सोचती रही हूँ कि क्या हमारा भविष्य एक हो सकता है —क्या उस की कोई भी सम्भावना है ? क्या हम फिर कभी मिलेंगे ?. . .मैंने बहुत ठंडे दिल से सोचा है, भुवन; और अब कभी यह भी सोचती हूँ कि क्या मुझे जैसे-तैसे वापस हेमेन्द्र के पास ही नहीं चला जाना चाहिए अगर वह राजी हो ? मैं भीतर मर गयी हूँ, भुवन; तुम से कट कर फिर मैं कहीं भी बह जा सकती हूँ—किसी भी बुरे से बुरे नर-पशु के साथ भी रह सकती हूँ. . .एक तुम्हीं ने मेरी जड़ित आत्मा को जगाया था—था !—और उस के बाद उस के फिर जड़ हो जाने पर मैं पहले से बदतर मृत्यु में सहज ही जा सकती हूँ। इसी लिए सोचती हूँ, क्या वही न ठीक होगा : टूटी हुई रीढ़ वाली इस देह के लिए एक सहारा—एक छत—आत्मा की बात तो अब कौन करे !

यह बात मैं कैसे लिख गयी—मैं—यह नहीं जानती। पर यह आत्मा की जड़ता की ही एक निशानी है, भुवन ! आशा करती हूँ कि यह अधिक नहीं रहेगी—यह आहत पक्षी फिर वैसे ही उड़ सके यह तो असम्भव है, पर—वह अभी नहीं, वह कभी नहीं. . .

मेरी सब शुभाशंसाएँ तुम्हारे साथ हैं, भुवन !

तुम्हारी

रेखा

रेखा द्वारा भुवन को :

एक ज़माना था जब मैं स्त्रियों को ऐसे समय का हिसाब रखते देख कर हँसती कि अमुक घटना 'अमुक बेटे या बेटी के जन्म से तीन मास पहले' हुई थी, या कि 'जब अमुक एक वर्ष का था' या 'जिस साल अमुक की लड़की की शादी हुई'. . .और आज मैं स्वयं हिसाब लगा रही हूँ, तुम से पहली भेंट से दस महीने बाद, तुलियन से आठ महीने बाद, और तुम्हें अन्तिम बार देखा तब से चार महीने. . .कैसे मानव अपने सारे जगत् को अपने छोटे-से जीवन की छोटी-छोटी घटनाओं के आस-पास जमा लेता है, और विराट् का समूचा सत्य उस निजी छोटे-से सत्य का सापेक्ष्य हो जाता है ! लेकिन वह निजी छोटा सत्य छोटा क्यों है ? विराट् असीम को दिखाने वाली मेरी खिड़की—वह लाख छोटी हो, एक तो मेरी है, दूसरे मेरे लिए विराट् को बाँधे हुए है, विराट् का चौखटा है. . .सोचते-सोचते यह ध्यान आता है, यह झरोखे से देखना गलत है, यह अपने को विराट् से अलग रख कर देखना है, उसे बाहर मान लेना ; मुझे चाहिए कि उस में लय हो जाऊँ. . .घर से बाहर निकलूँ, अपनी अनुभूति के पिंजरे से बाहर निकलूँ और विराट् के प्रति अपने को सौंप दूँ, उसी की हो जाऊँ—उस को झरोखे से न देख कर स्वयं उसका झरोखा हो जाऊँ. . . पर क्या यह भी निरा शब्द-जाल नहीं है, घूम-फिर कर अपने तक लौट आना नहीं है ?

तुम्हें देखे हुए चार महीने—तुम से बिछुड़े हुए चार महीने—तुम्हारी ओर से कोई पत्र, सूचना, संकेत पाये हुए चार महीने. . .विश्वास नहीं होता। लेकिन फिर सोचती हूँ, शायद अवचेतन मन में मैंने इसे स्वीकार ही कर लिया है, तभी तो मैं काल-गणना इस ढंग से करने लगी हूँ। क्योंकि हम केवल निजी के सहारे नहीं देखते, उस निजी को अपेक्षा में देखते हैं जो हमारे जीवन में महत्त्व का था लेकिन जो था, यानी अब नहीं है, यानी जिस का बीत जाना, बीत गया होना हम ने स्वीकार कर लिया है. . .'जिस साल मेरा ब्याह हुआ', इस गणना का कारण एक तो वह सुख है जिसे प्रकारान्तर से याद किया जा रहा है; दूसरा यह है कि वह सुख आज दूर चला गया है क्योंकि अगर आज भी निकट और सजीव होता तो उस की बात हम न कर सकते. . .

भुवन, तुम्हें एक ख़बर देनी है, तीन सुनाइयों के बाद अदालत ने फ़ैसला दे दिया है : हमारा विवाह रद्द हो गया है; हेमेन्द्र तो अफ़्रीका चला ही गया है और अब मैं भी मुक्त हूँ। मुक्त—किस से मुक्त—किस लिए मुक्त ? मुक्त स्मृतियों को सेने के लिए, मरने के लिए—मुक्त अतीत के बन्धन में जकड़ी रहने के लिए. . .तलाक़ का विधान अच्छा नहीं है यह कौन कह सकता है, पर कितने अपर्याप्त हैं मानवीय विधान प्रकृति की समस्याओं के सामने—बल्कि मानव की ही समस्याओं के सामने. . .यों तो शायद यह विच्छेद अभी वैकल्पिक है; पक्का होने के लिए छः मास का अन्तराल होता है न ? पर वह तो कम-से-कम इस मामले में कोरी फ़ार्मेलिटी है। आज न सही, पाँच-एक महीने बाद सही. . .रद्द तो वह हो ही गया। लेकिन क्या रद्द हो गया ? वह दर्द ? वह ग्लानि, वह आत्मावसाद,

वे मर्माघात—क्या वे रद्द हो सकते हैं ? कानून मान ले कि उस ने मुक्ति दे दी है, कि एक अन्याय का निराकरण कर दिया है...

अब आगे, भुवन ? मेरा जी नहीं लगता, और अब कलकत्ते नहीं रहूँगी। सोचा है कि मौसी को साथ ले कर तीर्थ-यात्रा को निकल जाऊँ। तुम शायद हँसो, क्योंकि तीर्थ-यात्रा के लिए जो श्रद्धा चाहिए वह तुम ने मुझ में न देखी होगी; मौसी भी तितीर्षु हों, तीर्थों के भरोसे नहीं हैं। फ़िर भी, एक तो घूमने में, निरन्तर दृश्य-परिवर्तन में कुछ शान्ति मिलेगी; दूसरे अपनी श्रद्धा न हो तो श्रद्धावानों की श्रद्धा देख कर ही कुछ सान्त्वना मिलती है या मिल सकती है...दो-तीन दिन में ही हम लोग चल देंगे : पुरी से आरम्भ कर के क्रमशः दक्षिण जहाँ तक जाना हो सके। यह फरवरी है, सोचती हूँ कि गर्मियाँ उधर कट जायेंगी और बरसात लगते इधर लौट आवेंगे।

तुम पत्र तो लिखोगे नहीं, फिर भी कह दूँ कि पता यही काम देगा, यहाँ से चिट्ठियाँ जहाँ भी हम होंगे चली जाया करेंगी।

अच्छा, भुवन विदा दो। चाहती हूँ, झुक कर एक बार तुम्हारे चरणों की धूल ले लूँ।

सदैव तुम्हारी
रेखा

चन्द्रमाधव द्वारा भुवन को :

माई डियर भुवन,

तुम्हें चिट्ठी लिखे, तुम से चिट्ठी पाये या तुम्हारे बारे में भी कोई चिट्ठी पाये बहुत दिन हो गये। लेकिन जानता हूँ, तुम उन लोगों में से नहीं हो जो सम्पर्क छूट जाने पर खो जाते हैं, या जिन का कुछ अनिष्ट हो जाता है...जिस बोतल में कार्क का बड़ा-सा डाट लगा हो, वह पानी के भीतर छिपी रह कर भी डाट के सहारे डूबती-उतराती रहती है; डूब नहीं जाती। उसी तरह तुम्हारी जाति के लोग होते हैं—स्पिरिट के एक लचकी-लेपन का डाट बाहर के बोझ को सँभाले और भीतर के खोखल को छिपाये रहता है और तुम लोग तिर जाते हो, जब कि मुझ जैसे डूब जाते हैं...मैं जानता था कि मैं हलका सफ़र करने वालों में हूँ; बाहर का बोझ मुझ पर नहीं है, पर मैं पुरानी लकड़ी की तरह उतराता हूँ और पानी धीरे-धीरे मुझ में बस जाता है; लकड़ी सड़ जाती है और भारी हो कर डूब जाती है।

तुम कहोगे, यह चन्द्र को क्या हुआ कि ऐसा दर्शन बघारने लगा—और वह भी पराजय का दर्शन ! न, पराजय का दर्शन वह नहीं है, थोड़ा आत्मावसाद है, ठीक है; पर चन्द्र हारने वाला नहीं; मैं अब समझ रहा हूँ कि यह दृष्टान्तों के सहारे जीवन को समझना चाहना ही गलत है, ऊपरी साम्य भीतर के वैषम्य को ओझल कर देता है। लकड़ी गीली हो कर डूबती है, ठीक है, पर वह क्या मैं हूँ ? न, मेरी समझ में आ गया कि वह भी एक

साँचा है, केवल क्लास-भावनाओं का एक पुंज ; मैं नहीं सड़ता, केवल एक भद्रवर्गीय खोल सड़ गया है—सड़ जाने दो, सड़ कर वह झर जायेगा और मुक्त मैं बाहर निकल आऊँगा ! फिर मैं ही उस गली लकड़ी को पैरों से ठुकराऊँगा, उसे स्वयं अपनी ठोकर से अतल गर्त में डुबा दूँगा ! मुझे उस का मोह नहीं है—मुझे किसी चीज़ का मोह नहीं है ।

अवसाद का कारण रहा । लखनऊ में अकेला नहीं रहता रहा । बीबी-बच्चे आये थे, साथ रहते थे । वह अपने जीवन के साथ समझौता करने की मेरी आखिरी कोशिश थी । कामयाबी नहीं हुई और अब जानता हूँ कि कोशिश ही गलत थी क्योंकि यह जीवन ही मेरा जीवन नहीं है । मैं क्यों इस बुर्जुआ ढाँचे के साथ समझौता करना चाहूँ, क्यों उन मान्यताओं से अपना जीवन बाँधने को राजी होऊँ जिन मान्यताओं को पैदा करने वाले समाज को ही मैं नहीं मानता ? उन सब को मैंने घर भेज दिया है । मैं भी लखनऊ छोड़ कर बम्बई जा रहा हूँ दो-तीन विदेशी एजेंसियों का प्रतिनिधि बन कर । यहाँ से सम्बन्ध तो रहेगा पर ऐसा नियमित नहीं; संवाद भेजा करूँगा । बम्बई में ज़िन्दगी है—तेज़ बहती हुई आज़ाद जिन्दगी; वहाँ काम भी कर सकूँगा, और इस मनहूस ढांचे को तोड़ गिराने में भी योग दे सकूँगा—उस नयी दुनिया को बनाने में, जिस में मुझ जैसे मेहनतकशों का राज होगा, दूसरों के राज के निरीह साधन हम न बनेंगे. . .क्या इस बात को तुम समझोगे ? तुम अपने विज्ञान को ले कर ही डूबे हो—लेकिन मैं कहता हूँ, यह विज्ञान ही तुम्हें ले कर डूबेगा : क्योंकि विज्ञान भी वर्ग-स्वार्थों का गुलाम है—तुम सत्य का शोध नहीं कर रहे, सत्य कुछ है ही नहीं, वह केवल एक वर्ग के उपयोगी ज्ञान का नाम है, दूसरे वर्ग का विज्ञान भी दूसरा होगा क्योंकि उस की उपयोगिताएँ दूसरी होंगी । यह तुम ने कभी सोचा है कि तुम्हारा सारा विज्ञान किस काम का है, किस के काम का है, किस के काम आयेगा ?

जाने दो । ये सब बातें केवल तुम्हें थोड़ा प्रोवोक करने को लिख गया कि तुम जवाब जल्दी दो । असल में पत्र तुम्हें खुशखबरी देने को लिख रहा हूँ । अभी मालूम हुआ कि रेखा देवी का डाइवोर्स हो गया है—जज ने फैसला दे दिया है । हेमेन्द्र यहाँ आया हुआ था, वह अफ़्रीका गया—वह तो अपनी मलय मेम से शादी करेगा ही; पर रेखा जी भी अब आज़ाद हैं । औरत के लिए आज़ादी सिर्फ एक खतरा है, इस लिए—रेखा जी में तुम्हारी दिलचस्पी को ध्यान में रखते हुए—तुम्हें दोस्ताना सलाह दे रहा हूँ कि अभी उपयुक्त समय है उन की सेवा का । डिग्री पक्की तो छः महीने बाद होगी, पूरी आज़ादी तो तभी होगी, पर तब तक बैठे रहना तो हिमाकत है । जो मौसम में फूल चाहता है, वह वक्त पर क्यारी तैयार करता है न ! तुम मेरे पुराने दोस्त हो, इस लिए दुस्साहस कर के यह परामर्श तुम्हें दे रहा हूँ और अपने स्वार्थ-त्याग की दुहाई नहीं दूंगा । नहीं तो मैं ही एक बार—पर जाने दो; आइ नो ह्वेन आइ'म लिक्ड ! बेस्ट आफ़ लक टु यू !

तुम्हारा

चन्द्रमाधव

पुनश्च :

बम्बई का पता वहाँ पहुँचते ही लिखूंगा; तब तक दादर के पोस्ट मास्टर की मार-फ़त लिख सकते हो।

चन्द्रमाधव द्वारा रेखा को :

प्रिय रेखा जी,

उस बार आप दिल्ली से अचानक गायब हो गयीं, तब से बहुत दिनों तक कोई पता ही नहीं मिला; फिर मालूम हुआ कि आप कश्मीर में हैं और बहुत बीमार रही हैं, कुछ आपरेशन की भी बात सुनी पर ठीक पता न लगा कि क्या हुआ, कैसी हैं, पता लगा तो यही कि कलकत्ते चली गयी हैं जिस से मैं ने मान लिया कि स्वस्थ ही होंगी। यह भी पता लगा था कि भुवन भी शुश्रूषा के लिए गये थे; सोचा था कि उन से ही पूरे हालात पूछूं पर फिर उन्हें कष्ट देने का साहस नहीं हुआ। सुना है कि वह आज-कल अपनी खोज में ऐसे डूबे हैं कि किसी को पत्र-वत्र नहीं लिखते; बल्कि शायद आयी हुई डाक भी नहीं पढ़ते—किसी से कोई मतलब उन्हें नहीं है, बस वह हैं और कास्मिक रश्मियाँ हैं। वैज्ञानिक में अनासक्ति की यही तो ख़ूबी होती है : न जाने कहाँ से वे कास्मिक रश्मियाँ आती हैं, पृथ्वी के वायुमंडल की परिसीमा से या सूर्य से, या तारा-लोक से या सर्वत्र फैले शून्य में पदार्थ मात्र के बनने-मिटने से—पर वैज्ञानिक का सारा लगाव उन से है, और अपने आसपास की किसी चीज़ का होश नहीं, उन का भी नहीं जिन्हें वह प्रिय बताना चाहता है. . .ठीक कहते हैं लोग, कि वैज्ञानिक प्रेम कर ही नहीं सकता; क्योंकि उस के लिए स्थूल यथार्थ है ही नहीं, सब-कुछ एक एब्स्ट्रैक्शन है, एक उद्भावना. . .और जहाँ एब्स्ट्रैक्शन है, वहाँ प्यार कहाँ ? हम लाल को चाह सकते हैं, हरे को चाह सकते हैं पर लाल-पन या हरे-पन की भावना को कैसे ? प्रकाश को चाह सकते हैं, प्रकाशित होने के गुण को कैसे ?

अभी-अभी दिल्ली की एक चिट्ठी से पता लगा कि आप आज़ाद हो गयी हैं। कुछ दिन पहले हेमेन्द्र से भेंट हुई थी—वह लखनऊ आये थे—तब ज्ञात हुआ था कि तलाक़ की कार्रवाई हो रही है; अभी पता चला कि इसी हफ्ते डिग्री हो गयी है और आप मुक्त हैं। रेखा जी, इस काम के इस प्रकार शान्तिपूर्वक सम्पन्न हो जाने पर मैं आप को सच्चे दिल से बधाई देना चाहता हूँ; बधाई ही नहीं, आप अनुमति दें तो अपनी पूरी सहानुभूति प्रकट करना चाहता हूँ। और कोई होता तो आप को यह याद दिला कर गर्व या सन्तोष महसूस करता कि मैंने पहले से अनुमान कर लिया था कि ठीक यही होगा और इसी प्रकार होगा; पर वैसे आत्म-सन्तोष के भाव मेरे मन में नहीं हैं, मैं केवल आप की उस शान्ति का अनुभव कर रहा हूँ जो इस समाचार से आप को मिलेगी—उस शान्ति का, और साथ ही मुक्ति की बात सुन कर उभर आने वाली अनेक स्मृतियों के दुःख का भी . . .आप ने बहुत दुःख पाया है, रेखा जी; पर उसकी ग्लानि को अब मन में न आने दें—

पुराने दुःखों की भी नहीं, उस नये दुःख और निराशा की भी नहीं जिस से इधर निस्सन्देह आप गुज़री हैं. . .अधिक कुछ कहना नहीं चाहूँगा—कह कर आप के रिजर्व को कुरेदना या आप की संवेदना को चोट पहुँचाना बिलकुल नहीं चाहता. . .

आप स्वस्थ तो हैं ? आशा है कि इस लम्बे विश्राम से आप का स्वास्थ्य सुधर गया होगा। कहता कि और दो-एक महीने विश्राम कर लीजिए पर जानता हूँ कि अनिश्चित अवधि तक निठल्ले बैठ रहना आप के स्वभाव के विरुद्ध है, और आप कहीं बाहर जाना चाहेंगी ही। आप लखनऊ आवें यह सुझाने की धृष्टता तो नहीं कर सकता : मेरी अपात्रता के अलावा लखनऊ की घटनाओं का भी स्मरण कराया जाना आप नापसन्द करेंगी। पर क्या बम्बई का निमन्त्रण दे सकता हूँ ? मेरी अपात्रता तो वहाँ भी उतनी ही रहेगी, पर बम्बई बड़ा शहर है, और वहाँ जीवन है, जागृति है, वह प्राणोद्रेक है जो संघर्षों में पड़ने पर होता है—बम्बई निस्सन्देह आप को अच्छा लगेगा और—मुक्त करेगा अवसादों से, अतीत के बन्धनों से, जर्जर मान्यताओं से, और—आप यह कहने की धृष्टता मुझे करने दें तो कहूँ—स्वयं अपने-आप से, क्योंकि जिसे हम अपना-आप कहते हैं वह वास्तव में है क्या ? अपने भीतर की घुटन, जिसे हम अपनी पीड़ा के मोह में एक मूल्यवान् तत्त्व समझ लेते हैं ! अपना-आप कुछ नहीं है, वह घुटना अयथार्थ है, उस के प्रति हमारा मोह एक धोखा है; सच तो सामाजिक शक्तियों का खेल और खींचातानी और संघर्ष है, जिस में हम या तो सहायक हो सकते हैं, या बाधक. . .आइये, हम सहायक हों; अतीत के बन्धन न मानें बल्कि वर्त्तमान का, नये भविष्य का निर्माण करें. . .

लेकिन यह तो मैं ने बताया नहीं कि बम्बई में कैसे बुला रहा हूँ। लखनऊ में छोड़ रहा हूँ। और लखनऊ कहता हूँ, तो मेरा मतलब है वह सारा ढाँचा जिसे मैं मानता रहा। कौशल्या घर चली गयी है, दोनों बच्चों को ले कर—बल्कि कहूँ कि दोनों को और तीसरे की प्रतीक्षा ले कर; मैं जब उसे वापस घर लाया था तो किसी शर्त या बन्धन के साथ नहीं, वापस लाने और गिरस्ती चलाने के सब दायित्वों को स्वीकार कर के ही. . .पर वह चली नहीं, मेरी पूरी कोशिश के बावजूद भी नहीं। और अब मैं खुश ही हूँ कि वह चली नहीं, क्यों कि वह झूठ थी। गिरस्ती का आइडिया ही असल में झूठ है; एक काल-विपर्यय है; उस वर्ग-जीवन का प्रतीक है जो वर्ग ही आज मर रहा है। क्यों हम उस के द्वारा स्वीकृत एक परिपाटी को मानते चलें, जब कि स्वयं उस में ही हमारी आस्था नहीं है ?

तो मैं बम्बई जा रहा हूँ। अतीत से नाता तोड़ कर जा रहा हूँ और उस के कोई बन्धन, कोई दायित्व आगे मानने का मेरा इरादा नहीं है। अपने वर्ग को मैं छोड़ता हूँ; उस से कुछ और मागूंगा नहीं और इस लिए आगे उसे कुछ देने को, उस से निबाहने को भी बाध्य नहीं हूँ।

आशा है यह पत्र आप को समय पर मिल जायेगा, और आप उत्तर देने का कष्ट

करेंगी। मैं बराबर प्रतीक्षा करूँगा। आप को सर्वदा एक मुक्त व्यक्ति के रूप में ही मैं ने देखा है, आप के पत्र मेरे लिए बड़ा सहारा होंगे।

आप का कृपाकांक्षी
चन्द्रमाधव

चन्द्र द्वारा गौरा को।

प्रिय गौरा जी,

इन दिनों में यह पहली बार नहीं है कि आप को पत्र लिखने बैठा हूँ; और कोई निश्चय कर के ढुलमुल करते रहने वाला स्वभाव भी मेरा नहीं है आप जानती हैं; फिर भी पत्र नहीं लिखा गया इस का कारण यही है कि मैं पाता हूँ, मुझ में और मेरे परिचितों में एक अजीब व्यवधान आ गया है—एक दूरी जिस का कारण समझ में नहीं आता . . .लखनऊ से बनारस कुछ भी दूर नहीं है, लेकिन मैं जब यूरोप में था और आप मद्रास में, तब अपने को इतना दूर नहीं महसूस करता था जितना अब, और कभी जब सोचता हूँ कि स्वयं जा कर मिल आया जा सकता है तब सहसा लगता है कि मैं मानो मंगल तारे तक हो आने के मनसूबे बाँध रहा होऊँ!

ऐसा क्यों, सोचता हूँ तो कोई कारण नहीं पाता। बाह्य कारण तो हो ही क्या सकता है—आखिर लखनऊ से बनारस जितना है सो तो हई है, न अधिक न कम; सब्जेक्टिव ही कारण हो सकता है—पर क्या? आप तो सदा से ही दूर रहती हैं, मुझे अधिक-से-अधिक एक अवहेलना-भरी अनुकम्पा ही मिलती है; उस में कोई परिवर्तन आने का कारण तो हुआ नहीं। तब क्या मुझी में कोई बड़ा परिवर्तन आया है? शायद यही हो। आप मुस्करायेंगी कि चन्द्रमाधव भी इंट्रोस्पेक्शन करने चला—हाँ, यह भीतर देखने की बात मुझे हमेशा नकारेपन की दलील लगती रही है—पर यह देखता हूँ कि मेरे ही अनुभव मुझे अलग ले जा रहे हैं। एक तो इधर का जैसा जीवन रहा—आप कल्पना नहीं कर सकतीं, गौरा जी, कि साधारण जीवन की साधारण मर्यादाओं को निबाहने के लिए मैंने कितना बड़ा तप किया है, कितना क्लेश भोगा है, और अब मैं भी रेखा देवी की कही हुई बात मानने लगा हूँ कि गहरा क्लेश एक व्यक्ति को और सब से पृथक् कर देता है . . .दूसरे इस क्लेश ने मुझे यह सिखा दिया है कि हमारी अधिकतर मान्यताएँ केवल एक ढकोसला हैं—हमारे जीवन को, हमारे वर्ग-स्वार्थों को, वर्ग से मिलने वाली सुविधाओं को बनाय रखने के लिए रचा गया भारी प्रपंच; और यह देख लेने के बाद उसी प्रपंच में फँसे रहना कैसे सम्भव है? यह दूसरा कारण है जिस ने मुझे औरों से अलग कर दिया है—अपने वर्ग से मैं उच्छिन्न हो गया हूँ। और देख रहा हूँ कि वह कितना सड़ा है; अब उसे भस्म कर देने में ही अपनी शक्ति लगाऊँगा. . .इसी लिए कहूँ कि मैं वास्तव में इंट्रोस्पेक्शन नहीं कर रहा हूँ—इंट्रोस्पेक्शन तो आदमी को निकम्मा बनाता है, कर्म-विमुख करता है, कर्म की प्रेरणा नहीं देता।

लेकिन क्या सचमुच उतना दूर चला गया हूँ ? उस दिन दिल्ली में आप से तबला सुना था; वह मानो कल की बात लगती है और उस के बोल अभी तक कानों में गूंज जाते हैं,—संगीत में मेरी पहुँच नहीं है लेकिन उस दिन का अनुभव मानो एक लैंडमार्क बन गया है और उस के सहारे मैं कई चीजों से सम्बन्ध जोड़ लेता हूँ जिन तक पहुँचने का और कोई सूत्र नहीं रहता. . .सेंटिमेंटल बातें मुझे कहनी ही नहीं आतीं, गौरा जी; सच कहता हूँ कि उस दिन की वह भेंट मेरे लिए एक अकथनीय अनुभव था, और कदाचित् वहीं से मेरे जीवन में वह परिवर्तन शुरू हुआ जो आज देख रहा हूँ। मैं ने कभी कल्पना नहीं की थी कि आप इस प्रकार मेरी डेस्टिनी बन जायेंगी—आप ! और आप ने तो की ही क्या होगी, आप ने तो कभी मुझे इस लायक ही न समझा होगा कि मेरी डेस्टिनी भी कुछ हो !

डा० भुवन से भी बहुत दिन से पत्र-व्यवहार नहीं हुआ। आप से परिचय उन के द्वारा हुआ था, पर अजब बात है कि उन तक पहुँच आप ही के द्वारा हो। आशा है आप उन के पूरे समाचार देंगी। यों मैं ने उन्हें पत्र लिखा है, पर आप से जो जान सकूँगा, वह उन से थोड़े ही : वह तो पहले भी एक सीपी में रहते थे, और पिछले कुछ महीनों के अपने अनुभवों के बाद तो बिलकुल ही पहुँच से परे चले गये हैं। मैं समझता हूँ, कोई भी गहरी अनुभूति जब गोपन रहती है, तब धीरे-धीरे गोप्ता को भी ऐसे बाँध लेती है कि फिर वही अज्ञेय हो जाता है, फिर वह चाह कर भी अपने को अभिव्यक्त नहीं कर पाता; उस का रहस्य एक ऐसी दीवार बन जाता है जो कि स्वयं उसी को छिपा लेता है। कभी सोचता हूँ, क्या डा० भुवन फिर कभी हम से, आप से, हमारे आप के साधारण जगत् से साधारण सम्पर्क जोड़ सकेंगे ? इधर आप की उन से भेंट हुई क्या ?

रेखा जी की ख़बर जब-तब मिल जाती है। डाइवोर्स उन का हो गया है। यह जान कर आप को भी निश्चय ही सन्तोष होगा। विवाहित जीवन उन का अत्यन्त यातनामय रहा, फिर जब उन्हें जीवन में कुछ ऐसा मिला जो मूल्यवान् हो, जो जीवन को अर्थ दे, तो फिर विवाह का बन्धन ही बाधा बना. . .अब कदाचित् वह जीवन के बिखरे सूत्र फिर समेट सकें, उस के अर्थ को फिर पा सकें. . .मैं जब भी सोचता हूँ तो इसी परिणाम पर पहुँचता हूँ कि स्त्री-पुरुष का मिलन सब से बड़ा सुख नहीं हो सकता क्योंकि उस में प्रत्येक को साझीदार की, दूसरे की ज़रूरत है, वह परापेक्षी सुख है; सच्चा सुख निरपेक्ष और स्वतः सम्पूर्ण होना चाहिए। पर युक्ति एक बात है, और व्यवहार दूसरी; और वासना दोनों से ऊपर : हम सभी उस अनुत्तम सुख को ही चाहते हैं और पुरुष से अधिक नारी वह चाहती है. . .रेखा जी को मैं असाधारण स्त्री मानता था, पर अब देखता हूँ, उन का असाधारणत्व इसी में है कि वह साधारणत्व का चरमोत्कर्ष है, साधारण स्त्री की साधारण वासना अपने चरम रूप में उन में विद्यमान है। और इसी लिए आज उन की

मुक्ति की सूचना से सन्तोष है : प्रार्थना करना चाहता हूँ कि उन्हे उन का वांछित मिले, तृप्ति मिले, शान्ति मिले...

आप की संगीत-साधना कैसी चल रही है ? संसार की जो गति है, उस में नहीं दीखता है कि संगीत का भविष्य क्या है, विशेपकर भारतीय संगीत का जो इतनी साधना माँगता है, इतनी सूक्ष्मता, जिस का उदय भी रहस्य से होता है और जिस की निष्पत्ति भी रहस्य में है—भविष्य में संगीत होगा तो जन का, वह प्रकृत, पुरुप, सहज तेजस्वी स्वर सब वारीकियों को अपने विवाद में डुवा लेगा...फिर भी, आप की साधना का कायल हूँ, और, और नहीं तो आप की आनन्द-कामना से ही प्रार्थना करता हूँ कि आप को उस की सुविधा और साधन मिले...

मैं लखनऊ छोड़ कर वम्बई जा रहा हूँ। वहीं रहूँगा। पत्र वहीं दें—देंगी न ? पता रहेगा : केयर पोस्टमाटर, दादर, वम्वई।

आप का ही
चन्द्रमाधव

भुवन द्वारा चन्द्रमाधव को :

चन्द्र,

तुम्हारा पत्र मिला। दूसरे दिन तुम्हारा रेखा देवी के नाम लिखा हुआ पत्र भी उन के द्वारा भेजा हुआ, मिला, इस उलाहने के साथ कि मैं तुम्हें पत्र क्यों नहीं लिखता ?

उन्होंने कहा है, इस लिए यह पत्र लिखे दे रहा हूँ। पर चन्द्र, कैसा रहे अगर आज से हम मान लें कि हम दोनों अजनवी हैं ? क्योंकि हम मानें न मानें, वात यही है; हम दो विभिन्न दुनियाओं में रहते हैं जिन में सम्पर्क के कोई साधन नहीं हैं। विज्ञान को तुम मानते नहीं, नहीं तो उस की भाषा में कहता कि हमारे जीवनों के डाइमेंशन अलग-अलग हैं, और इस लिए वे एक-दूसरे को काट कर भी छू नहीं सकते।

और जव हम अजनवी ही हैं, चन्द्र, तो मेरे प्रति किसी मिथ्या लायल्टी का वन्धन तुम न मानो; जिस भी चीज़ पर तुम्हारा लोभ है, उस के लिए निर्वाध हो कर जुगत करो। और मैं तुम से ज़्यादा ईमानदारी से कहता हूँ, वेस्ट आफ़ लक टु यू।

—भुवन

भुवन द्वारा गौरा को :

प्रिय गौरा,

एक वार फिर तुम्हारी ओर से कोंच के विना पत्र लिख रहा हूँ वल्कि अव कभी सोचता हूँ तो ख्याल आता है क्या यह तुम्हारा न कोंचना ही कोंच का एक नया प्रकार नहीं है ? पर इस लिखने में न जाने क्यों, पहले-सा पुण्य-सुख नहीं है। लिखने की वात मैं ने कई वार सोची है, पर न जाने क्यों लिखे विना रह गया हूँ; आज लिखने वैठा हूँ तो अपने को कारण यह वता रहा हूँ कि वार-वार वचन-भ्रष्ट होने के लिए कम-से-कम

माँफ़ी तो माँग लेना आवश्यक है—यद्यपि तुम्हें पत्र लिखने के लिए क्यों कारण ढूंढ़ निकालना ज़रूरी है, यह नहीं जानता, न पहले कभी ऐसा प्रश्न मन में उठा था।

मैंने कहा था, दसहरे में बनारस आऊँगा। कहा था कि शायद, पर तुम्हें शायद कहता हूँ तो उस में अपने लिए छूट नहीं रखता, शायद इसी लिए होता है कि अगर किसी कारण न हो पाये तो तुम्हें निराशा न हो। पर वह नहीं हो सका—रेखा जी की बीमारी के कारण मुझे श्रीनगर जाना पड़ा और छुट्टियाँ उसी में बीत गयीं; फिर सोचा था कि अगली छुट्टियों में चला जाऊँगा, पर अगली छुट्टियाँ भी आ गयीं बड़े दिनों की, और मैं यहीं बैठा हूँ। अब की बार कोई बहाना नहीं है, पर जैसे वही सब से बड़ा कारण है; मैं यहाँ बैठा हूँ, यहीं पड़ा रहूँगा; न जाने का कोई बहाना नहीं है; इस लिए नहीं जाऊँगा; बिना कोई बहाना बनाये मान लूंगा कि मैं नहीं जाता, नहीं जाता; और इस अपराध को ओढ़ कर बैठा रहूँगा। अपराध करने की कोई चाहना मन में नहीं है, पर यों अपराध ओढ़ कर बैठ जाने में न जाने क्यों सान्त्वना का बोध होता है।

देखता हूँ कि यह माफ़ी माँगने का तो ढंग नहीं है। पर गौरा, तुम मुझे क्षमा कर ही देना, और मेरे बारे में कोई चिन्ता न करना। मैं बिलकुल ठीक हूँ, चिन्ता की कोई बात नहीं है, केवल चित्त अव्यवस्थित है, और ऐसी दशा में कहीं किसी के पास नहीं जाना चाहिए, अपने अस्तित्व का ही पता न देना चाहिए। मैं बिलकुल वैसा करता, पर माफ़ी माँगना तो आवश्यक था, इस लिए सम्पूर्ण लोप तो नहीं हुआ; फिर भी वहाँ आ कर तुम्हें क्लेश न दूंगा। कभी आऊँगा, पर कब इस का अब वायदा नहीं करता।

आशा है तुम स्वस्थ और प्रसन्न हो; आशा ही नहीं, विश्वास भी है कि तुम उन्नति कर रही होगी। कभी लागातार बैठ कर तुम से संगीत सुन सकता, तो शायद चित्त को सान्त्वना मिलती—या कौन जाने तब भी न मिलती, अभी यह सोच लेता हूँ और जैसे उस की दूर सम्भावना भी एक सहारा हो जाता है।

पिता जी को मेरा प्रणाम लिखना। आशा है माता-पिता स्वस्थ हैं। कहाँ हैं आजकल?

तुम्हारा
भुवन

भुवन द्वारा रेखा को :

प्रिय रेखा,

जो पत्र लिखने की मैं निरन्तर कोशिश करता रहा हूँ, वह मुझ से लिखा नहीं जा रहा है। न जाने कितनी बार मैं लिखने बैठा हूँ, कभी एक-आध पन्ना लिख भी सका हूँ, लेकिन लिख कर फिर उसे फाड़ दिया है, फिर दुबारा नहीं लिख सका हूँ. . .रेखा, क्या कहूँ और कैसे कहूँ? मैं मानता हूँ कि जो कहना नहीं आता वह इसी लिए नहीं आता कि वह मन के सामने ही स्पष्ट नहीं है—हो सकता है कि मैं स्वयं ठीक नहीं जानता कि

क्या कहना चाहता हूँ—फिर भी भीतर जो घुमड़न है, उस के सामने जैसे कुछ स्पष्ट है, यद्यपि मैं उसे नहीं जान पाया, और वही मानो मेरे और विचारों और कामों को निर्दिष्ट करती है भले ही वे निर्देश मैं नहीं समझता. . .

रेखा, तुम अब भी वही दिव्य स्वप्न हो, जो दीखने की तीव्रता से ही मूर्त्त हो आया था और यथार्थ हो गया था, लेकिन जब कभी मैं अपने साझे जीवन के अंशों को सामने मूर्त्त करता हूँ, तो वे जैसे मिल कर एक रूपाकार नहीं बनते, मूर्ति के टुकड़े-टुकड़े अलग रहते हैं और फिर मेरे हाथों में ही मिट्टी हो जाते हैं। जीवन का एक चित्र, एक मूर्ति नहीं बनती, यद्यपि प्रत्येक खंड यथार्थ है—और अत्यन्त यथार्थ है वह व्यथा की टीस जो किसी-किसी खंड की कल्पना-मात्र से देह-मन को झनझना जाती है. . .

मैं ने कहा कि 'जब कभी'। यह नहीं कि वैसा कभी-कभी होता है। मैं बराबर ही वैसे खंडित स्वप्न देखता रहता हूँ; जागते हुए, काम के बीच में, क्लास में पढ़ाते हुए, लैबोरे-टरी में काम करते हुए, राह चलते सड़क के बीच में, बराबर ही ये स्वप्न-चित्र कौंध कर सामने आते रहते हैं। मानो आँखों के आगे हर वक्त एक काल्पनिक चौखटा बना रहता है, जिस के भीतर का चित्र बराबर बदलता रहता है। बल्कि अधिक बदलता भी नहीं, क्यों कि बार-बार एक ही दारुण दृश्य सामने आता है, और मैं सुनता हूँ तुम्हारी दर्द-भरी आवाज़ मुझे पुकारती हुई, 'प्राण, जान, जान', अन्तहीन आवृत्ति करती हुई एक कराह, जिसे वर्षा की वह अनवरत टपटपाहट भी नहीं डुबा पाती जो कि उस स्मृति का एक अभिन्न अंग है। मैं ने तब तुम्हें कहा था 'हाँ अब भी, अब और भी अधिक' वह ग़लत नहीं कहा था और आज भी अनुभव करता हूँ कि वे क्षण आत्म-दान के—अपने से मुक्त हो कर अर्पित हो जाने के तीव्रतम क्षण थे; पर आज यह भी देखता हूँ कि ठीक उन्हीं क्षणों में मेरे भीतर कुछ टूट गया। टूट गया, मर गया। क्या, यह नहीं जानता। प्यार तो नहीं, प्यार कदापि नहीं, उस से सम्बद्ध कोई जादू, कोई आवेश, जिस से आविष्ट हो कर मैं प्यार की मर्यादा भूल गया था, जो प्रेय है उसे स्वायत्त करना चाहने लगा था ऐसे जैसे वह स्वायत्त नहीं हो सकता. . .और मानसिक यन्त्रणा के उस चरम क्षण में यद्यपि प्यार—प्यार, रेखा, करुणा नहीं—अपने उत्कर्ष पर था, पर उसी क्षण में जैसे मैं ने तुम्हें दोषी भी मान लिया था एक मूल्यवान् वस्तु को नष्ट हो जाने देने का। तुम ने लिखा था कि यदि वैसा न हुआ होता और प्रेम ही मर गया होता या मैं ने तुम्हें छोड़ दिया होता तब क्या होता, और इस प्रश्न का मेरे पास कोई जवाब नहीं है—ऐसा हुआ होता तो निस्सन्देह वह भी घोर दुर्घटना हुई होती—और जो बार-बार मेरे आस-पास होता रहा है, होता है, इसे मैं किस दर्प से असम्भव करार दे दूँ? वह खतरा तो था ही. . .भविष्य के बारे में कोई दावा करना बेमानी है, फिर उस भविष्य के जिस की अब कोई सम्भावना नहीं रही। लेकिन आज भी मैं कितना भी कठोर हो कर सोचूँ तो मानता हूँ कि उस अजात के कारण जो भी ज़िम्मेदारी मुझ पर आती उस से मैं भाग नहीं रहा था, भागने का विचार भी

मुझ में नहीं था, और उसे स्वीकार करने में मुझे खुशी ही होती. . .मैं ने तुम से कहा था कि मैं सुखी होता, आज भी मानता हूँ कि सुखी होता। प्यार मर तो सकता ही है—एक अर्थ में चिरन्तन हो कर भी वह मर सकता है, पर अगर भविष्य में कभी ऐसा होता ही, तो वह कम-से-कम उस शिशु के कारण न होता—उसके कारण हमीं में होते।

इस सब से ध्वनि होती है कि मैं तुम्हें उलाहना दे रहा हूँ—वैसा नहीं है। वैसी भावना मन में कभी आयी भी होती, तो मानना होता कि तुम ने अगर भूल की भी तो उस का भरपूर शोध भी किया—नहीं रेखा, मैं ने जो पहले कहा कि तुम्हें दोषी माना था वह ठीक नहीं है, दोषी तुम मुझ से अलग या अधिक कैसे हो?—अपने एक अंश को नष्ट होने देने के लिए स्वयं अपने को मर जाने दिया, रेखा; उस अंश को, जो स्वयं भी मूल्यवान् था, और उस से बढ़ कर जो एक और मूल्यवान् अनुभूति का फल था—इस सब का अनुभव करते हुए मैं तुम्हारे आगे झुक ही सकता हूँ, समवेदना से भर कर तुम्हारे पास खड़ा हो सकता हूँ, दोष नहीं दे सकता। और जब यह सोचता हूँ कि यह बहुत बड़ा आत्म-बलिदान भी मुझ पर तुम्हारे स्नेह की अभिव्यक्ति थी—तब तो गड़ जाने को जी चाहता है।

रेखा, एक बात को तुम समझोगी—तुम नहीं समझोगी तो कोई नहीं समझ सकेगा—प्यार मिलाता है; व्यथा भी मिलाती है; साथ भोगा हुआ क्लेश भी मिलाता है; लेकिन क्या ऐसा नहीं है कि एक सीमा पार कर लेने पर ये अनुभूतियाँ मिलाती नहीं, अलग कर देती हैं, सदा के लिए और अन्तिम रूप से? अनुभूतियाँ गतिशील हैं, अतीत हो कर भी निरन्तर बदलती रहती हैं और व्यक्तित्व को विकसाती हुई उस में घुलती रहती हैं, लेकिन यह सीमा लाँघ जाने पर जैसे वे गतिशील नहीं रहतीं; स्थिर, जड़ हो जाती हैं; एक न घुल सकने वाला लोंदा, एक वज्र धातु-पिंड। फिर व्यक्ति मानो इन अनुभूतियों को चौखटे में जड़ कर रख लेता है; जीवन एक चलचित्र न रह कर स्थिर चित्रों का संग्रह हो जाता है, और हर नयी सम्भाव्य अनुभूति के आगे व्यक्ति किसी एक चित्र को प्रतिरोधक दीवार की तरह खड़ा कर लेता है। मेरे पास अधिक चित्र नहीं हैं, कह लो कि एक ही है, पर वही—हमारे साझे अनुभवों का सम्पुंजन ही, रेखा!—हमारे बीच में दीवार-सा खड़ा हो जाता है। हम मिलेंगे, लेकिन मानो इस दीवार के आर-पार; हाथ मिलायेंगे, लेकिन मानो इस चौखटे के भीतर से; एक-दूसरे को देखेंगे, लेकिन मानो इस चौखटे में जड़े हुए—तुम उधर से, मैं इधर से. . .रेखा, मैं अब भी तुम्हें प्यार करता हूँ, उतना ही, पर. . .

भुवन द्वारा रेखा को :

रेखा,

तुम्हें पत्र लिखने की कई कोशिशें कीं पर अभी तक पत्र न लिखा गया, और अब मैं ने मान लिया है कि जो पत्र लिखना चाहता हूँ, वह कभी नहीं लिखा जायेगा। इस लिए

लिखने की पिछली अधूरी कोशिश ही अन्तिम कोशिश मान कर वह अधूरा पत्र ही तुम्हें भेज रहा हूँ। और उसे भी फिर पढ़ूँगा नहीं, नहीं तो शायद भेजूँगा नहीं। तुम्हारे सब पत्र मुझे मिल रहे हैं; प्रत्येक पर अपने को और अधिक कोसता रहा हूँ कि तुम्हें क्यों इतना क्लेश पहुँचा रहा हूँ, फिर भी इस से पहले नहीं लिख पाया हूँ, नहीं पाया हूँ। अब भी पाया ही हूँ, यह तो नहीं है, और कदाचित् यह पत्र भेजना भी उतनी ही क्रूरता है जितना पत्र न लिखना——मैं नहीं जानता, रेखा। तुम मुझे क्षमा कर देना यह सोच कर कि मैं इस समय भ्रान्त हूँ।

तुम्हारा
भुवन

भुवन द्वारा रेखा को :

रेखा,

तुम्हारा पत्र पाकर थोड़ी देर विमूढ़-सा सोचता रह गया——क्या सचमुच चार महीने हो गये दिल्ली स्टेशन पर तुम्हें ट्रेन में बिठाये हुए और उस के बाद तुम्हें पत्र लिखे हुए ? पर तुम्हारी गणना ठीक है. . .यों अभी दो-एक दिन पहले मैं ने तुम्हें चिट्ठी डाली है——अब तक तुम्हें मिल गयी होगी।

तो विवाह रद्द हो गया या हो जायेगा। यह बात अपने को कहता हूँ, तो सहसा कुछ स्पष्ट नहीं होता है कि क्या हो गया। क्योंकि किसी चीज़ के होने में, और उस होने के हमारे बोध में, हमेशा ही एक अन्तराल रहता है; यह इतनी बार लक्ष्य करता हूँ कि किसे वास्तव में होना माना जाय यही सन्देह हो आता है। फिर तलाक़ तो एक कानूनी कार्रवाई है और कानून हमारे जीवन की जीवित यथार्थता कभी होता है तो तभी जब हम उसे तोड़ते हैं या तोड़ने की सज़ा पाते हैं, नहीं तो उस से हमें कोई सरोकार ही नहीं होता। फिर यह भी ध्यान आता है कि यही अगर पहले हुआ होता——समय पर हुआ होता——तो तुम्हारा जीवन कितना भिन्न होता। सहसा हार्डी की बात याद आती है, कि 'जब पुकार होती है तब आगन्तुक नहीं आता', और एक तीखा आक्रोश मन में उमड़ आता है. . .

फिर भी, यह मान लेना होगा कि इस प्रकार एक अन्यायपूर्ण, असत्य, अयथार्थ परिस्थिति का अन्त हो गया है——जो तुम हो (या नहीं हो) और जो तुम कानूनन हो, उस का विपर्यय अब मिट गया है। और इस पर सन्तोष होना ही चाहिए।

तुम यात्रा पर निकल रही हो, दक्षिण जा रही हो। अच्छा ही है। शान्ति की बातें कहने वाला मैं कौन होता हूँ, पर इस से तुम्हें सान्त्वना तो मिलेगी ही। क्षण-भर के लिए मन में उठा था, सागर-तट पर तुम्हारे साथ मैं भी खड़ा हो सकता——पर नहीं, उस से व्यथा ही जागेगी शायद; रेखा, उस विशाल एकाकी को, जो न प्रेम करता है न प्रेम पाता है, तुम अकेली ही देखो——तुम्हें अकेले में ही वह सान्त्वना मिले जो मेरा साथ तुम्हें न दे सका——मैंने चाहा था देना, पर दे सका केवल नयी व्यथा. . .'सी, यू शैडो आफ़ आल

थिंग्स, मॉक अस टु डेथ विद योर शैडोइंग...*

कभी सोचता हूँ, इसी तरह मैं भी अकेला सागर पर चला जाऊँ—दर्द तभी तक क्लेश-कर होता है जब तक हम उस से लड़ते हैं, जब तक हम अपने अपनेपन को बनाये रखना चाहते हैं। विशाल के आगे अपने को समर्पित कर देने के बाद सब क्लेश मानो झर जाते हैं या डँसते भी हैं तो उन का डंक निर्विष होता है...शायद मैं भी जाऊँगा कहीं—और सागर के पास ही जाऊँगा।

गाड ब्लेस यू, रेखा।

तुम्हारा
भुवन

गौरा द्वारा भुवन को :

मेरे भुवन दा,

आप चिट्ठी—चाहे यही चिट्ठी—दो चार-दिन पहले लिख देते, तो मैं ही वहाँ न आ जाती? पर अब छुट्टियाँ खत्म हो चुकीं : अब छुट्टी ले कर आ तो सकती हूँ पर उस में कुछ दिन तो लगेंगे और फिर आप के काम के दिनों में मैं आ धमकूँगी तो आप नाराज़ होंगे—न भी होंगे तो मुझे अनुमति तो लेनी चाहिए।

भुवन दा, मैं ने आप को न आने पर या चिट्ठी न लिखने पर कोई उलाहना दिया है कि आप मुझे ऐसी चिट्ठी लिखें? आप बड़े हैं, यही नहीं, मैं यह भी नहीं भूलती कि स्नेह करते हैं; माफ़ी माँगने का कोई प्रश्न नहीं उठता। मैं अबोध हूँ सही, पर मूर्ख नहीं हूँ; यह भी समझती हूँ कि आप कोई बड़ा क्लेश मन-ही मन सह रहे हैं; मेरा कोई दावा होता तो आग्रह कर के पूछती, और जान कर कुछ मदद न कर पाती तो कम-से-कम कुछ बहला तो सकती ही; पर आप बतायेंगे तो स्वयं बतायेंगे, मेरे पूछने से कुछ न होगा यह मुझे मालूम है। इस लिए अगर मैं कहूँ कि मैं आप के किसी भी काम आ सकूँ तो आप इंगित-भर कर दीजिए, तो मेरी बात रामजी की गिलहरी की बात से अधिक कुछ नहीं हो सकती।

भुवन दा, आप के पत्र से मुझे बेहद क्लेश पहुँचता; पर नहीं पहुँचा तो केवल एक बात के कारण—आप ने लिखा है कि 'अपराध ओढ़ कर बैठे रहेंगे, और उस में आप को सान्त्वना मिलती है।' मुझे शायद इस की ओर इशारा नहीं करना चाहिए, चुपचाप वर-दान मान कर इसे ले लेना चाहिए—पर इस में जो वात्सल्य बोल रहा है, उस के सहारे शायद मैं आप तक पहुँच सकूँगी, और—गर्व नहीं करती—आप की कुछ सहायता भी कर सकूँगी। भुवन दा, मुझे अनुमति दे दीजिए न—मैं थोड़े दिन वहाँ आऊँगी—जल्दी ही, जितनी जल्दी छुट्टी मिल सकी क्योंकि इस महीने के अन्त में परीक्षाएँ भी हैं—तब तक

---

* **अरी सागर, तू जो सब कुछ की परछाईं है, अपनी छाया के व्यंग्य से हमारे प्राण हर ले!**
—डी० एच० लारेंस

आप चाहे जो ओढ़े रहिए, पर मेरे आने के वाद आप कम-से-कम अपराध ओढ़े तो नहीं वैठे रह सकेंगे। मैं क्या ओढ़ाना चाहूँगी वह तो नहीं वताती; आप अपने ही मन से ओढ़ेंगे तो वुजुर्गी चाहे ओढ़े वैठे रहिएगा, मैं घर-भर में किलकती रहूँगी।

पर नहीं भुवन दा, आप की शान्ति भंग नहीं करूँगी; सच कहती हूँ। आप मुझे कुछ दिन के लिए आ जाने दीजिए। कहती कि आप वुलाइये, पर उतना मान मेरा नहीं है।

आप ही की
गौरा

गौरा द्वारा रेखा को :

प्रिय रेखा दीदी,

मेरा पत्र पा कर आप को विस्मय हो भी सकता है, नहीं भी हो सकता है; मैं शायद न लिखती। लिख रही हूँ तो इस लिए कि और एक चिट्ठी लिखने से वच जाऊँ।

चन्द्रमाधव जी का एक पत्र मिला है। उस में उन्होंने अपने वम्वई जाने की वात लिखी है, और साथ ही आप के वारे में कुछ सूचना दी है। यों किसी की निजी वातों में हस्तक्षेप करते वड़ी झिझक होती है और विशेष कर आप की, क्योंकि आप के जीवन के वारे में कुछ न जान कर भी मैं इतना जानती हूँ कि आप ने वहुत सहा है और आप की कोई भी निजी वात निजी कष्ट की ही वात होगी—फिर भी यह कहने की अनुमति चाहती हूँ कि चन्द्रमाधव जी की सूचना से शान्ति मिली, और मैं आशा करती हूँ कि आप को भी मिलेगी —अभी भी और भविष्य में भी। छोटे आशीर्वाद नहीं देते, इसे मेरी प्रार्थना समझ लीजिए कि आप का जीवन शान्तिमय हो, कल्याणमय हो।

आप को यह पत्र लिख कर मैं मान लूँगी कि चन्द्रमाधव जी के पत्र का डिस्पोजल हो गया, उन्हें अव उत्तर न दूँगी।

दो महीने हुए, भुवन दा के एक पत्र से ज्ञात हुआ था कि आप पहले वहुत अस्वस्थ रहीं; आशा है अव आप पूर्ण स्वस्थ हैं। उस के वाद भुवन दा का पत्र नहीं आया; पर मुझे वह पत्र शायद ही कभी लिखते हैं। यों वह ठीक ही हैं, यद्यपि उद्विग्न रहते हैं।

रेखा दीदी, मेरे पत्र से नाराज़ तो नहीं होंगी न ?

स्नेहाकांक्षिणी
गौरा

भुवन द्वारा गौरा को :

नहीं गौरा; नहीं, अभी नहीं—आइ फ़ारविड यू ! लेट मी स्ट्यू इन माइ ओन जूस *। थोड़े दिन वाद—शायद; तव मैं आऊँगा या मैं न आया तो तुम्हें वुलाऊँगा—आने की अनुमति नहीं दूँगा। वुजुर्गी मुझ से झड़ गयी है, यह मैंने पिछली वार ही कहा

* मैं मना करता हूँ। मुझे अपनी आँच में पकने दो।

था; और जो तुम ओढ़ाओ सिर आँखों पर, मगर पहले यह अपराध की कँवली झाड़ लूँ तब न !

पर मैं तुम्हारा बहुत कृतज्ञ हूँ, गौरा ; वह कहने के लिए शब्द नहीं हैं मेरे पास।

तुम्हारा
भुवन

भुवन द्वारा रेखा को :

प्रिय रेखा,

तुम इस समय न मालूम कहाँ हो, क्या कर रही हो—शायद रामेश्वर के मन्दिर में बैठी होगी, या कन्याकुमारी के सागर-तट पर—सहसा मुझे जमुना की रेती की याद आती है और ख्याल होता है, उस समय जब मैं बालू का घर बना रहा था तो विधि निस्सन्देह हँसती रही होगी. . .कहाँ चले आये वहाँ से इन थोड़े से दिनों में हम—अब मैं सोचना चाहूँ कि वहाँ तुम ने मुझे मैन फ्राइडे कहा था और मैं ने तुम्हें मिस राबिनसन तो विश्वास नहीं होता। लेकिन क्या अब भी हम कम खोये हुए हैं किसी अज्ञात द्वीप पर—कम असहाय हैं ? इस से क्या कि आसपास जो जलराशि है वह स्थिर सागर नहीं है, वह एक ओर-छोर-हीन भीम-प्रवाहिनी महानदी है—द्वीप तो फिर भी द्वीप है, और सब से सम्पर्क छूट जाने पर उत्पन्न होने वाला करुण आत्म-विश्वास फिर भी करुण।

रेखा, मैं देश छोड़ कर जा रहा हूँ। एक और एक्सपेडीशन डच इंडीज़ में जा रहा है, उसी में जा रहा हूँ। एक वैज्ञानिक अमेरिका से जावा पहुँच रहे हैं—वह भी भारत-वासी ही हैं वैसे—और मैं यहाँ से जावा जाऊँगा। वह तो अप्रैल में पहुँचेंगे, पर मैं पहले ही जा रहा हूँ कि वहाँ कुछ आरम्भिक प्रबन्ध कर रखूँ। कालेज से अभी एक वर्ष की छुट्टी ले ली है और होली की छुट्टी लगते हो चल दूँगा—सात-आठ दिन तैयारी के लिए काफ़ी हैं। परीक्षार्थियों की पढ़ाई तो अब तक लगभग पूरी हो ही जाती है इस लिए कालेज के काम में कोई व्यतिक्रम नहीं होगा।

जहाज कलकत्ते से पकड़ूंगा। पहले सोचा था कोलम्बो जाऊँ—रामेश्वरम् होते हुए जाने का मोह था —पर क्या होगा उस से रेखा. . .

तुम्हें क्या कहूँ, रेखा ? तुम्हारे जीवन की खोज पूरी हो—उसे सार्थकता मिले. . .

भुवन

पुनश्च : फागुन की अष्टमी का धूमिल चाँद देख कर न जाने क्यों लारेंस की कविताएँ निकाल लाया; उस में से एक कविता यह भेज रहा हूँ :

हाइ एंड स्मालर ग्रोज़ द मून : शी इज़ स्माल एंड वेरी फ़ार फ़ाम मी,
विस्टफुल एंड कैंडिड, वाँचिग मी विस्टफुली फ्राम हर डिस्टेंस, एंड आइ सी

ट्रेम्लिंग ब्लू इन हर पैलर ए टीयर दैट शोरली आइ हैव सीन बिफ़ोर,
ए टीयर ह्विच आइ हैड होप्ड ईवन हेल हेल्ड नाट अगेन इन स्टोर।*

गौरा द्वारा भुवन को :

भुवन दा, यह क्या सुनती हूँ—आप जावा जा रहे हैं—और आप ने मुझे ख़बर भी नहीं दी ? आज स्टाफ़ रूम में ही सहसा सुना—बात आप की नहीं थी, यही थी कि एक दल जावा जा रहा है कास्मिक रश्मियों की खोज के सिलसिले में जिस में दो भारतीय वैज्ञानिक होंगे : इस से सहसा कान खड़े हुए तो सुना कि एक आप हैं और एक कोई और...कब जा रहे हैं भुवन दा ? मुझ से मिले बिना आप नहीं जा सकेंगे—मुझे फ़ौरन पता दीजिए—या तो आप बनारस होते हुए जायेंगे या मैं आऊँगी जहाँ आप कहें। चिट्ठी फ़ौरन लिखिएगा, फ़ौरन।

आप की ही
गौरा

गौरा द्वारा भुवन को :

आप को चिट्ठी भेज चुकी तब आप की यह सूचना मिली। आप मुझ से मिल कर नहीं जायेंगे, मुझे भी नहीं आने देंगे...आप की इच्छा, भुवन दा, मैं क्या कहूँ ? आप बनारस के पास से गुजरते हुए चले जायेंगे—बल्कि अब तक तो चले गये होंगे और मैं न मिल सकूँगी...फिर भी, मेरे भुवन दा, इसे मैं आप का अतिरिक्त स्नेह ही मानती हूँ कि आप ने मुझे इस अन्याय के लिए चुना—लेकिन क्यों, भुवन दा, क्यों, क्यों, मेरी कुछ समझ में नहीं आता, क्यों आप मुझ से दूर भागे जा रहे हैं जो आप को अपने पथ का प्रकाश मान कर जी रही है—क्यों ?...

गौरा द्वारा भुवन को :

भुवन दा,

अभी एक चिट्ठी आप को डाल आयी हूँ। उसे वापस तो नहीं लेती, पर उस में एक बात कहना आवेश में भूल गयी थी। आप की यात्रा निर्विघ्न और सफल हो; आप शीघ्र ही स्वदेश लौटें...और इस से आगे अपनी प्रार्थना में यह भी जोड़ दूँ, भुवन दा, कि आप स्वदेश ही नहीं, मेरे पास लौटें तो क्या मेरी प्रार्थना आप की किसी इच्छा से प्रतिकूल चली जायेगी ? वैसा हो, तो कहूँगी, तो आप की इच्छा ही जयी हो, वही पूर्ण हो—[illegible]

*चांद ऊँचा और छोटा होता जाता है : ऊँचा और मुझ से बहुत दूर, उदास [illegible] स्पष्टवादी, अपनी दूरी से उदास-भाव से मुझे देखता हुआ। और उस के पीलेपन [illegible] काँपता हुआ मैं देखता हूँ एक आँसू जिसे मैंने निश्चय ही पहले देखा है और जो [illegible] की थी कि नरक में भी फिर देखने को न मिलेगा !

प्रार्थना यही हो कि मेरी प्रार्थना भी आप की इच्छा के अनुकूल हो, उस की अनुगता हो।

प्रणत
गौरा

पुनश्च : यह चिट्ठी कलकत्ते भेज रही हूँ कि चलने तक मिल जाय।

रेखा द्वारा भुवन को, कुछ पत्र और कुछ पत्र-खंड :

भुवन,

मेरा प्याला भरने में शायद यही कसर थी—तुम भी मुझे दोषी ठहराओगे। यही सही, भुवन, यह भी सही। मैं टूट चुकी हूँ, मुझ में न शक्ति बाकी है, न धैर्य, न युयुत्सा; शायद और व्यथा पाने का भी सामर्थ्य अब नहीं है; तुम जो चाहे कह लो, मुझे कुछ नहीं होगा। और क्यों हो, किस लिए हो—कौन-सी वह आशा है जिस के कारण कोई निराशा, कोई चोट मुझे खले? लेकिन भुवन, तुम क्या नहीं समझते कि मेरे लिए मानवी प्यार की आख़िरी अभिव्यक्ति तुम थे—थे नहीं, हो, रहोगे—और इसी लिए मैं मर गयी और अब नहीं जियूँगी? अगर मैं रो सकती, तो रोती—अतीत के लिए नहीं, अपने लिए नहीं, उस सब के लिए नहीं, जो अब नहीं रहा, रोती इस तुम्हारे अभियोग के लिए—क्यों कि यदि यह अभियोग है तो फिर मुक्ति न मेरे लिए है, न तुम्हारे लिए—मैं जो सोचती थी कि जो भी हुआ, मैं जो टूट गयी, उस की बड़ी व्यथा हमारे चरित्र में फैलेगी, मेरे से अधिक तुम्हारे में, वह सब झूठ होगा; वह व्यथा एक अर्थहीन ट्रैजेडी हो जायेगी क्योंकि उस में अभियोग होगा, और उस की अर्थहीनता हम दोनों को ले डूबेगी। मेरा तो कुछ नहीं, मैं तो डूबी ही हूँ—पर तुम, भुवन, तुम! मेरी सारी आशाओं का केन्द्र तुम हो—मेरे अन्तरतम की सारी व्यथा को इस तरह व्यर्थ न कर दो, भुवन! व्यथा सृजन करती है, मेरी व्यथा बाँझ रह गयी, मुझे भी झुलसा गयी, पर मैं ने मानना चाहा था कि वह तुम्हीं को बनायेगी, और मैं अपनी व्यर्थता तुम्हें अर्पित कर के सार्थक हो जाऊँगी। वह सान्त्वना भी मुझे नहीं मिलेगी...

जाने दो। न मिले। अब और कोई सान्त्वना मुझे नहीं चाहिए, मुझे मर जाने दो, भुवन!

भुवन,

तुम्हारी अधूरी चिट्ठी का जवाब मैं तुरत लिख गयी थी, वह तुम्हें अब तक न मिला हो तो फिर उसे मत पढ़ना—पढ़ चुके हो तो क्षमा कर देना। तुम्हारी चिट्ठी मैं ने फिर पढ़ी है, कई बार फिर, शायद दोष तुम ने नहीं दिया—तुम्हारे पत्र में परिताप ही है जिसे मैं ने अभियोग माना। पर नहीं, मेरे सहभोक्ता, अभियोग वह नहीं है, मैं समझती हूँ; और जो आघात मैं ने पाया था उस का घाव भर गया है—अपना आक्रोश मैं वापस लेती हूँ और क्षमा माँगती हूँ। तुम्हारी चिट्ठी पा कर जानूंगी कि तुम ने माफ़ कर दिया—यद्यपि

मेरे आग्रह से तुम लिखोगे नहीं यह जानती हूँ।

तुम्हारी
रेखा

...आज एक वर्ष होता है जब हम पहले-पहल लखनऊ में मिले थे—चन्द्रमाधव के यहाँ तुम ने मुझे बाद में बताया था, तुमने मुझे क्लान्त और अपनी शक्तियों को समेटती हुई देखा था—वह क्लान्ति आज और बढ़ गयी है और समेटने की शक्ति ही अब मुझ में नहीं रही। मैं केवल स्मरण करती हूँ, और बिखर जाती हूँ—मुझे याद आती है काफ़ी हाउस की हमारी पहली ही बहस—और यह भी आज जैसे विधि का संकेत लगता है कि उस बहस में हम सत्य की वेदनामयता की बात करने लगे थे, और तुम ने एक सन्दर्भ दिया था **'द पेन आफ लविंग यू इज़ आल्मोस्ट मोर दैन आइ कैन बेयर'**...उस दिन पहली पंक्ति में से तुम 'डीयरेस्ट' शब्द छोड़ गये थे, चाहूँ तो मान सकती हूँ कि वह छूट जाना भी विधि का संकेत था, पर नहीं, वह नहीं, इतना ज़रूर है कि आज मैं एक शब्द और छोड़ जाऊँ 'आल्मोस्ट'—क्यों कि सचमुच यह दर्द मेरी सहन-शक्ति से परे है, मैं उसे नहीं सँभाल सकती...कोई भी नहीं सँभाल सकता शायद प्यार का दर्द, इसी लिए शायद प्यार रहता नहीं, दर्द रह जाता है—केवल ईश्वर सँभाल सकता है अगर वह—या कहूँ कि जो सँभाल सकता है वही ईश्वर है..."**प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम्**' कितनी सार्थक वन्दना है यह ईश्वर की, वही सह सकता है, वही एक, और कोई नहीं...

भुवन,

तुम्हारी दो चिट्ठियाँ एक साथ मिली हैं—बहुत भटकती हुई कोई छः सप्ताह बाद। तो तुम जावा जा रहे हो—जा क्या रहे हो, अब तक तो पहुँच भी गये होगे। ठीक है भुवन, जाओ, तुम्हारा मार्ग प्रशस्त हो।

हाँ, मैं हूँ सागर के ही किनारे—कदाचित् तुम भी सागर के किनारे होगे, पर ये किनारे दूसरे-दूसरे हैं—और क्या सागर भी दूसरे-दूसरे हैं भुवन? मैं दिन-भर बैठी लहरें देखती हूँ लेकिन उन की दौड़ मानो गति-हीन, प्रेत-दौड़ है; उन का टकराना सुनती हूँ पर वह भी मानो शब्द-हीन, प्रेत-टकराहट है—केवल दौड़ की, टकराहट की अन्तहीनता ही सजीव है, प्रेत नहीं है।...

एक और वर्ष-गाँठ—आज हम तुलियन पहुँचे थे, और मैं ने गाया था **'लव मेड ए जिप्सी आउट आफ़ मी'**, और...इस प्रेत केलेंडर की वर्ष-गाँठ गिनते-गिनते मैं भी प्रेतिनी हो गयी शायद—जी चाहता है कि ठठा कर हँसूँ—कैसी जिप्सी बनाया प्रेम ने। पिछले वर्ष आज उत्तर मेरु पर थी, आज दक्षिण मेरु पर हूँ, उस दिन दुनिया की छत पर थी, आज—इस से गहरा और कौन-सा पाताल होगा जिस में मैं आज हूँ! और आगे सागर हहराता है आदिहीन और अन्तहीन; और सहसा स्वयं अपनी अन्तहीनता एक भया-

वना स्वप्न वन कर मेरे सामने आ जाती है—भुवन, यह अन्तहीन जिप्सी प्रेतिनी जायगी कहाँ !

तुम ने एक वार मुझे लारेंस की कविता भेजी थी। लो, आज मैं तुम्हें एक का अंश भेजती हूँ। कोई सिर-पैर इस का नहीं है, फिर भी कुछ प्रासंगिकता मानो उस में है।

सर्मथिंग इन मी रिमेम्वर्स एंड विल नाट
फ़ार्गेट;
द स्ट्रीम आफ़ माइ लाइफ़ इन द डार्कनेस
डेथवार्ड सेट।
एंड सर्मथिंग इन मी हैज़ फ़ार्गाटन,
हैज़ सीज्ड टु केयर,
डिज़ायर कम्स अप एंड कटेंटमेंट
इज़ डिबानेयर।
आइ हू एम वोर्न एंड केयरफ़ुल
हाउ मच डू आइ केयर ?
हाउ इज़ इट आइ ग्रिन देन, एंड चक्ल्
ओवर डिस्पेयर ?
ग्रीफ़, ग्रीफ़ आइ सपोज़ एंड सफ़ीशेंट
ग्रीफ़ मेक्स अस फ्री
टु बी फ़ेथलेस एंड फ़ेथफुल टुगेदर
एज वी आल हैव टु बी।*

प्रिय भुवन ;

मौसी अव यात्रा से ऊवने लगी हैं; मैं भी ऊव गयी होती अगर पहले अपने से ही न ऊबी हुई होती, और हम लोग लौट रहे हैं। इस वीच में दो-तीन सप्ताह वीमार भी रही, उस ने मौसी को और उवा दिया। लौटते हुए हम लोग श्री अरविन्द आश्रम भी और श्री

---

*कुछ मुझ में है जो स्मरण करता है और भूल नहीं सकता; अन्धकार में मृत्यु की ओर उन्मुख मेरी जीवन-धारा।

और कुछ मुझ में भूल गया है और परवाह नहीं करता; वासना फिर जागती है और सन्तोष मौज़ में आता है।

मैं जो क्लान्त और चिन्ता-ग्रस्त हूँ—मुझे कितनी परवाह है ? कैसे मैं हँसता हूँ और निराशा पर खिलखिलाता हूँ ?

दुःख, दुःख—मेरी समझ में पर्याप्त दुःख ही हमें स्वतन्त्र करता है एक साथ ही वफादार और बेवफा होने के लिए, जैसा कि हम सभी को होना पड़ता है।

—डी० एच० लारेंस

रमण महर्षि के आश्रम भी होते आये। कोई आध्यात्मिक अनुभव मुझे हुआ हो, ऐसा तो नहीं, पर *आश्रमों का वातावरण अच्छा लगा—यद्यपि था दोनों में कितना अन्तर!* रमण महर्षि के दर्शन भी हुए, मौसी ने उन से कई प्रश्न भी पूछे। उन्होंने क्या-क्या कहा यह न तो याद है न लिखने में कोई तुक है, पर चलते समय मुझ से जो दो-एक बात उन्होंने कहीं उस से उन की मानवी संवेदना का गहरा प्रभाव मुझ पर पड़ा।

अध्यातम की ओर मेरी रुचि नहीं है, भुवन, उधर सान्त्वना खोजने की कोई प्रेरणा भीतर से नहीं है। पर सोचा है कि लौट कर फिर कुछ काम करूँगी—और अब आर्थिक आज़ादी की प्रेरणा से नहीं, आत्म-निर्भरता की प्रेरणा से नहीं, एक डिसिप्लिन के रूप में ....दर्द है तो है; अपना जीवन मैं ने उसे दे दिया, अब कहाँ तक उसे सँजोये फिरूँगी? इस कथन में कुछ विद्रोह का-सा स्वर है; विद्रोह मुझ में नहीं है, सम्पूर्ण नैराश्य ही है; इतना सम्पूर्ण कि अब उस की दुहाई कभी नहीं दूँगी...

तुम अब पत्र लिखोगे, भुवन? तुम्हें गये चार महीने हो चले, तुम ने अभी पहुँच की भी ख़बर नहीं दी! वैसे अखबार में मैंने पढ़ा था; तुम्हें नौ-सेना और वायु-सेना से भी मदद मिली है—गनबोट में तुम लोग माप लेने गये थे...भुवन, तुम्हारे समाचार अख़-बारों से मिला करेंगे, यह नहीं सोचा था। अखबारों में भी निकलेंगे, यह तो विश्वास था, पर मैं भी उन्हीं पर निर्भर करूँगी, यह नहीं!

गाड ब्लैस यू

तुम्हारी
रेखा

भुवन,

अभी वकील की चिट्ठी आयी है कि तलाक़ की कार्रवाई सम्पूर्ण हो गयी—डिग्री को छः महीने हो गये और अब मैं मुक्त हूँ, सर्वथा मुक्त—और उन्होंने मुझे बधाई दी है। और हेमेन्द्र के वकील की भी इसी आशय की चिट्ठी आयी है। उन्होंने यह भी सूचना दी है कि हेमेन्द्र का विवाह अगले महीने हो रहा है और मुझे सलाह दी है कि मैं उसे अपनी शुभ-कामनाएँ भेजूं, कड़ुवाहट बनाय रखने से कोई लाभ नहीं होता। इस सलाह की मुझ आवश्यकता नहीं थी—मुझे हेमेन्द्र से अब कोई शिकायत नहीं है, और उस के विवाह पर मैं बिना मन में कुछ रखे उस की कल्याण-कामना करूँगी—पर वकील ने अनिवार्य कर्त्तव्य से आगे जा कर यह सब मुझे लिखा है इस के लिए मैं उस की कृतज्ञ ही हूँ। उन्होंने मेरे लिए भी आशा प्रकट की है कि मैं पुराने आघातों को ही न सहलाती रह कर भविष्य का निर्माण करूँगी—उन्हें मेरे भविष्य में विश्वास है, और उन का अनुरोध है कि जब भी कुछ महत्त्वपूर्ण मेरे जीवन में घटे तो उन्हें सूचित करूँ। इस का क्या उत्तर दूं; भुवन? हँस दूं? लिख दूं कि आप का आवेदन देर से आया—महत्त्वपूर्ण तो सब घट चुका?

वह सब मैं सोच लूंगी, भुवन! अभी मेरे मन में तुम्हारे भविष्य का विश्वास उमड़ आया है, और मैं तुम्हें आशीर्वाद दे रही हूँ। तुम्हारे पिछले पत्रों में जो गहरी निराशा

थी, उसे मैं नहीं स्वीकार करती; तुम उस में से निकल आओगे। जिस चौखटे की, जिस दीवार की बात तुम ने कही है, उस से भी तुम ऊँचे उठोगे। मुझे छूने के लिए नहीं—मैं गिनती में नहीं हूँ—अपनी बाँहों में दुनिया को घेरने के लिए! निराश मत होओ, भुवन, अपने जीवन को परास्त-भाव से नहीं, स्रष्टा-भाव से ग्रहण करो; एक विशाल पैटर्न है जो तुम्हें बुनना है; तुम्हारी प्रत्येक अनुभूति उस का एक अंग है, प्रत्येक व्यथा एक-एक तार—लाल, सुनहला नीला. . .मैं—मैं भी उसी ताने-वाने के तारों का एक पुंज हूँ—तुम्हारे जीवन-पट का एक छोटा-सा फूल। मेरे विना वह पैटर्न पूरा न होता, लेकिन मैं उस पैटर्न का अन्त नहीं हूँ—मैं इस में सुखी हूँ कि मैं ने भी उस में थोड़ा-सा रंग दिया है —शायद थोड़े-थोड़े कई रंग. . .सब उज्ज्वल नहीं हैं, लेकिन कुल मिला कर यह फूल कभी अप्रीतिकर या तुम्हारे पैटर्न में बेमेल नहीं होगा यही मनाती हूँ। मेरा आशीर्वाद लो, भुवन, और आगे बढ़ो, जहाँ भी तुम जाओ, जो भी करो, मेरा प्यार और आशीर्वाद तुम्हारे साथ है। मेरा विश्वास तुम में अडिग है।

और मैं? मेरी चिन्ता मत करो। काल के पास एक अमोघ मरहम है। मैं भी काम कर रही हूँ। दो महीने से स्वयंसेविका नर्स का काम मैंने लिया है, साथ काम सीख भी रही हूँ; पूरा नर्सिंग सीखने में तो अधिक समय लगता पर प्रबन्ध का काम भी मैं करती हूँ; मेरे लिए वह आसान है पर नर्सों में प्रबन्ध-कुशल कम मिलती हैं और इस लिए वह काम मुश्किल समझा जाता है—या उस काम के लिए कार्यकर्त्ता पाना मुश्किल समझा जाता है। फलतः मेरा काम बराबर बढ़ता जाता है, और सोचने के लिए मुझे कम अवकाश मिलता है. . .कुछ सोचती हूँ तो कभी जब बीमार होती हूँ—और बीमार बीच-बीच में हो जाती हूँ—मेरी वाइटैलिटी बहुत कम हो गयी है। और भुवन, श्रीनगर में मैं मर कर भी नहीं मरी, पर तब से अधूरी मृत्यु कई बार हो चुकी है; अब डाक्टर ने कहा है कि एक आपरेशन फिर करना पड़ेगा नहीं तो इस तरह घुल कर मर जाऊँगी। मरने में और नया कुछ होगा यह तो नहीं लगता, पर घुल कर घिसट कर मरना नहीं चाहती. . .लेकिन आवृत्ति भी नहीं चाहती—नहीं, आवृत्ति तो नहीं हो सकती पर आजकल बड़े जोरों की बारिश होती रहती है, यह ज़रा थम ले तो. . .वैसे भी बारिश का मौसम अच्छा नहीं होता। डाक्टर का कहना है, अगले महीने या अक्टूबर में आपरेशन हो जाय—और अगर दार्जिलिंग जा सकूँ तो और अच्छा, या कहीं पहाड़ पर। देखें. . .

भुवन द्वारा गौरा को :

गौरा,

आज छः महीने बाद तुम्हें फिर पत्र लिखने बैठा हूँ। इन छः महीनों में तुम्हारा भी कोई पत्र नहीं आया है। तुम्हारा पत्र क्यों नहीं आया, इस का एक कारण तो यही है

कि मैंने पता नहीं दिया। न देने पर भी तुम पता लगा कर चिट्ठी भेज सकती थीं यह मैं जानता हूँ, पर यह भी जानता हूँ कि फिर भी तुम चुप रहीं तो यह मान कर ही चुप रही होंगी कि मैं ने वैसा चाहा है—या कि उस में मेरा हित है। तुम्हारा जो पिछला पत्र मुझे मिला था—कलकत्ते नहीं, सिंगापुर मिला वह—उस से भी यह स्पष्ट होता है। यह सब जान कर भी, मैं अपने को समझा लेना चाहता हूँ कि तुम मुझे भूल गयीं क्योंकि, क्यों कोई मेरे हित को ले कर इतना चिन्तित हो, क्यों कोई मेरे अन्याय, मेरे आघात सहे? यह सब स्नेह, करुणा, वात्सल्य—सब मानो एक बोझ-सा मुझे दबाये डालता है. . .एक नये बोझ-सा, क्योंकि एक बोझ पहले ही मेरे कन्धों पर है—मानो एक सजीव बोझ, एक सजीव शाप का बोझ, सिन्दबाद के कन्धों पर सवार सागर के बूढ़े-सा, जो विवश न मालूम किधर ले जा रहा है। कई महीनों से जानता हूँ कि मेरा जीवन किसी नयी अज्ञात, अकल्पित दिशा में बहा जा रहा है, और शायद एक ट्रैजेडी की ओर। ठीक क्या नहीं सोच पाता; और न काम में अपने को सोचने का मौका ही देता हूँ। पर कभी-कभी बहुत वृष्टि में काम बन्द हो जाता है, अपने बाँस और लकड़ी के घर में बन्दी हो कर केवल वर्षा की टपाटप सुनता रहता हूँ जैसे आज तीन दिन से सुन रहा हूँ, सब कपड़े, कागज़, खुली हुई कोई भी चीज़ सील जाती है; तब खाली बैठ कर सोचने को बाध्य हो जाता हूँ. . .तब लगता है, इस सागर-यात्रा के साथ जिस जीवन से निकला, उस में अब लौटना नहीं है, कुछ मेरे भीतर बराबर मरता जा रहा है और कुछ नया उस के स्थान पर भरता जाता है जो स्वयं भी मरा है या जीता है नहीं मालूम . . . यहाँ काम समाप्त होगा तो शायद लौटना ही होगा, पर मानो लौटने का, लौट कर किसी से भी मिलने का मुझे डर है, जैसे मैं स्वयं अपना प्रेत हो गया हूँ, और डरता हूँ कि लौट कर जब लोगों से मिलूँगा तो पाऊँगा कि मैं तो अब सच नहीं हूँ, केवल प्रेत हूँ—और वैसा पाना मैं नहीं चाहता, नहीं चाहता!

लेकिन न जाने क्यों तुम से मिलने को, तुम से बात करने को, तुम्हें न जाने क्या कुछ बताने को मन होता है. . .मुझे लगता है कि मैं खड़े-खड़े बहुमूल्य वस्तुओं को नष्ट होते, मरते देखा किया हूँ, अकेले देखा किया हूँ और इस लिए साथ ही स्वयं भी मरता रहा हूँ; अगर उस अकेलेपन से निकल सकता, जो देखा है वह कर सकता, तो शायद उस मृत्यु से भी उबर सकता. . .

नहीं, गौरा! ये सब बातें लिखने की नहीं हैं। मैं अच्छी तरह हूँ, काम रुचिकर है और शायद कुछ उपयोगी भी। कास्मिक रश्मियों के साथ-साथ रेडियो का भी काम हम लोग कर रहे हैं। वैसे यहाँ अशान्ति है और बढ़ रही है, पर हमारा काम ऐसा है कि हमें सब कुछ से अलग ले जाता है। तुम क्या कर रही हो? आशा है कि अपने लिए अनुकूल परिस्थितियाँ बना सकी हो, और अपने काम में तृप्ति पा रही हो—काम से अभिप्राय सिर्फ़ सिखाने का नहीं है, उस की बात कह रहा हूँ तुम जिसे अपना काम जानती हो,

जिस में तुम्हारी अभिव्यक्ति है। लिखना ज़रूर। माता-पिता का भी हाल लिखना।

तुम्हारा
भुवन

गौरा,

नहीं, मेरा मन यहाँ से उचट चला—चला नहीं, एकदम असह्य रूप से उचाट हो गया. . .जगह बहुत सुन्दर है, लोग बड़े हँस-मुख, स्त्रियाँ रूपवती—उन के खुले कन्धों और बाँहों में ऐसी एक कान्ति है कि कही नहीं जाती, जैसे अखरोट की लकड़ी की पुरानी और पालिशदार मूर्ति पर कोई पारदर्शी ओप चढ़ा हो—पर नहीं, लकड़ी कैसे उस जीवित त्वचा की बराबरी कर सकती है ? नृत्य भी मैंने देखे हैं, मन्दिरों में चर्मवाद्यों का संगीत भी—पर नहीं, नहीं, नहीं ! सहसा भीतर कुछ उभर आया है कि नहीं, यह तुम्हारा स्थान नहीं है, चलो ! और यह निरी 'होम सिकनेस' नहीं है—यहाँ का न होने में देश की भावना बिलकुल नहीं है, सारी परिस्थिति से असन्तोष है। मैं जैसे किसी सुदूर पोत-भंग का एक टूटा, वह कर आया हुआ विपन्न तख्ता हूँ—फ्लाट्सम—लहरों के थपेड़े खाता लुढ़कता-पुढ़कता कहीं लगा हूँ और जानता हूँ कि नहीं, वह ठिकाना नहीं है, और वह पोत तो अब हई नहीं जिस का मैं अंश हूँ—था ! अपने को ऐसे बहते देखा जा सकता है एक प्रकार की तटस्थता से और निरन्तर देखते रहने से एक मोहावस्था भी हो जाती है, पर सहसा वह टूटती है तो. . .

तुम सोचोगी कि इस उच्चाटन की सूचना देने का क्या अर्थ हुआ अगर साथ यह नहीं कह रहा हूँ कि मैं वापस आ रहा हूँ। पर नहीं। वापस तो नहीं आ रहा। और 'वापस' शब्द ही समझ में नहीं आता—वापस कोई कभी गया है ? फिर भी मन हुआ कि इस मनःस्थिति की सूचना तुम्हें देनी चाहिए, वह दे दी...अगर इसे तुम उद्भ्रान्ति समझो, तो ठीक है, उदभ्रान्त तो मैं हूँ. . .

तुम्हारा स्नेही
भुवन

मेरी प्रिय गौरा,

इस स्थान के तीन ओर पानी है—समुद्र तो नहीं, पर समुद्र से लगी हुई खारी झील का—मैं चार महाकाय सागौन वृक्षों और छः-सात ताल वृक्षों की ओट में से उसे देखता हूँ, और यह ओट उसे और भी विस्तार दे देती है। पीछे एक छोटी हरी पहाड़ी है। पेड़ों की आड़ में पानी के दूसरी पार की नीची पहाड़ियों की शृंखला है, और सागौन के बड़े-बड़े पत्तों के गवाक्ष में से दीख जाती हैं थिरकती हुई पालदार नौकाएँ। और मैं 'होम-सिक' हूँ—मान लेता हूँ कि होम-सिक हूँ—यद्यपि यह मेरे लिए एक शब्द ही है, मैं तो निर्गृह ही हूँ और यह केवल ऊब का दूसरा नाम है ! पर नहीं, सच कहूँ तो तुम्हारी स्मृति से भर गया हूँ। मेरा शरीर आज ठीक नहीं है; मैं दोपहर से ही आराम-कुर्सी पर बैठा हूँ,

अब रात हो गयी है; इन छः-सात घंटों में मैंने कुछ नहीं किया है सिवा तुम्हारी बात सोचने के, एक-टक तुम्हें देखते रहने के। तुम्हारी पलकों की एक-एक झपक देखता रहा हूँ; और वेणी को किरीटाकार पहन हुए तुम्हारे सिर के—क्योंकि जिसे देखता रहा हूँ, वह आज की संगीत-शिक्षिका नहीं, कई बरस पहले की विद्यार्थिनी है!—एक-एक उड़ते ढीठ बाल को मेरी आशीर्वाद-भरी दृष्टि ने गिन डाला है। तुम ने नहीं जाना—मेरा यह अवलोकन बिलकुल नीरव, निराग्रह, निःसम्पर्क है—मैं दूर, बहुत दूर वन की साँस हूँ, स्पर्शातीत . . .

पश्चिम धीरे-धीरे रंजित हुआ, फिर लाल, फिर और लाल, फिर उस लाली में उदासी आने लगी. . .मैंने कहा, गौरा, एक दिन तुम्हें मैं अपनी कहानी सुनाऊँगा, लाल और उदास. . .फिर धीरे-धीरे अँधेरा हो चला, आकार ओझल होने लगे और एक हलकी-सी हवा झील की ओर ले वह निकली। मैंने कहा, नहीं गौरा, कुछ नहीं सुनाऊँगा, सुनाने को है ही क्या, चुपचाप सिर झुका लूँगा और प्रतीक्षा करूँगा कि तुम्हारे क्षमा-भरे, करुणा-भरे हाथ मेरे माथे को छू दें. . .क्या ऐसा नहीं हो सकता कि हवा के झोंके से तरंगायित यह झील एकाएक सूख जाय, लुप्त हो जाय, कि उसे निरन्तर भागते हुए वाष्पयानों के धक्के न सहने पड़ें, समुद्र में मिल कर खारा न होना पड़े—खारेपन में अपने को खो देते हुए भी समुद्र के बेदर्द थपेड़े न खाने पड़ें—इस दुर्गति को आत्म-समर्पण न करना पड़े! फिर ध्यान आया, ये सब रूपक व्यर्थ हैं, यह सब सुनने-समझने की फुरसत किसे है. . . कोई भविष्य नहीं है, कोई अतीत नहीं है, अतीत से अपने को उच्छिन्न कर लिया है इस लिए और भी कोई भविष्य नहीं है, क्योंकि भविष्य होता क्या है? अतीत का स्फुरण. . . केवल वर्तमान जीता है और उस वर्तमान को चाहे समझ लो—तीन ओर पानी, सामने सागौन के पेड़, दूर पहाड़ियाँ, तिरती पालदार नावें, सान्ध्य आकाश, अर्थात् सौन्दर्य और शान्ति—बाह्य वर्तमान; चाहे समझ लो एकाकीपन, ऊब, सूना, उच्चाटन, उत्कंठा अर्थात् आन्तरिक वर्तमान; दोनों एक ही हैं, एक ही वर्तमान, आगे अपनी-अपनी पसन्द है. . .

सवेरे। रात में दो-तीन बजे वर्षा शुरू हो गयी बड़े जोरों से; अब कुछ ठंड है। मेरा शरीर भी कुछ ठीक है। कल से शायद काम करने लायक हो जाऊँ, आज अभी और आलस करने का जी है। पत्र भी लिखता रह सकता हूँ—पर सोचता हूँ, इसे इतना ही छोड़ दूँ। और लिखा तो अलग भेज दूँगा।

तुम्हारा
भुवन

गौरा द्वारा भुवन को :

भुवन दा, मेरे भुवन दा! आज मेरी साधना फली है, और जी होता है, आप की चिट्ठी सामने रख कर गा उठूँ, कोई वाद्य ले कर—सितार, नहीं वीणा ले कर बजाने बैठूँ मोहन रागिनी, और घंटों बजाती रहूँ, जब तक कि हाथ सन्न न हो जायें—हाय ही, मेरा उत्साह

नहीं, मेरे प्राणों की वह हँसी नहीं जो किसी तरह आप तक पहुँच कर आप के पैरों से लिपट जाना चाहती है !

लेकिन फिर दुबारा आप की चिट्ठी पढ़ती हूँ, और मेरी मोहन रागिनी सहसा धीमी पड़ कर नीलाम्बरी में बदल जाती है। भुवन दा, यह सब क्या है, आप क्या सोचते हैं, क्या वह कष्ट है जो आप इस तरह छिपाये बैठे हैं ? छिपाये भी नहीं, कष्ट है यह तो दीखता ही है, और कष्ट के कारण आप इतना अन्याय भी कर जाते हैं कि अगर कष्ट दीखता न होता तो आप का पत्र पाने वाला मर्माहत हो कर बैठ जाता—क्या है यह कष्ट कि आप उस से ऐसे हो गये ? मैं बार-बार पत्र पढ़ती हूँ, और सोचती रह जाती हूँ कि क्या यह भुवन दा का ही पत्र है, मेरे भुवन दा का. . .आप मुझे लिखिए—बताइये कि क्या बात है —क्या मैं किसी काम नहीं आ सकती ? एक बार आप ने कहा था, 'गौरा, अब से तुम से बराबर-बराबर बात करूँगा', बराबर तो मैं कभी नहीं हो सकती पर अगर आप बिलकुल छोटी ही नहीं मानते तो क्या मुझे अपना पूरा विश्वास देंगे ?

ऐसी बुरी-बुरी बातें मत सोचिए, भुवन दा ! मैं तो कहती हूँ, आप आइये, आ कर आप पायेंगे कि आप का डर बिलकुल निर्मूल है। यह नहीं कि आप सच नहीं हैं, जैसा आप ने लिखा है, बल्कि आप ही सच हैं—क्योंकि आप दूसरों को भी जीवन देते हैं। सच भुवन दा, आप कब तक जावा में बैठे रहेंगे ? अब आ जाइये न।

पिता जी मसूरी ही हैं, माँ भी। अब वहीं रहेंगे—वहाँ अपना मकान ले लिया है। अब की बार मैं जाऊँगी तो उस को ठीक-ठाक सजा दूँगी। और आप जब आवेंगे तो आप को पहले सीधे वहीं आना होगा—मैं हुई तो भी, और न हुई तो भी क्योंकि तब खबर मिलते ही आ जाऊँगी—फिर चाहे जहाँ आप जावें ! पिताजी आप को बहुत याद करते हैं। आप जो ऐसे चुपके से चले गये, उस का उन्हें खेद भी है—यद्यपि कभी कहेंगे नहीं।

मैं बहुत परिश्रम कर रही हूँ, सोचती हूँ, अगले साल फिर दक्षिण चली जाऊँ; कम-से-कम एक वर्ष के लिए और हो सका तो दो के; पर अभी कुछ स्पष्ट नहीं सोच पायी हूँ। आप का परामर्श चाहती—पर आप आवेंगे तभी पूछूँगी। कब आवेंगे आप ? मैं दिन गिनती रहूँगी।

आप की ही
गौरा

भुवन दा,

बस अब आप आ जाइये वापस—मैं पापा को लिख रही हूँ कि आप आ कर मसूरी रहेंगे, और एक कमरा आप के लिए तैयार कर दिया जाय--वह आप के लिए तैयार ही रहेगा, आप जब भी आवें। वह आप का ही कमरा रहेगा, भूलिएगा नहीं।

गौरा

भुवन दा,

आप फिर चुप लगा जायेंगे ? जब से आप को जाना, तब से कभी नहीं सोचा कि ऐसा होगा—यों आप चिट्ठी नहीं लिखते थे पर वह इस लिए नहीं होता था कि आप कुछ नहीं बताना चाहते, वह इसी लिए होता था कि बताने की जरूरत नहीं, मुझे मालूम है. . .पर अब ? आहत हो कर मैं ने सीख लिया कि नहीं, ऐसा भी हो सकता है कि आप मुझे बहुत-सी बातों से दूर रखना चाहें—कुछ सीख कर फिर मैं ने उसे भी स्वीकार कर लिया; आप ही ने दूर हटा दिया तो मैं कौन-सा मुँह ले कर पास आने या बुलाये जाने का आग्रह करूँ ? अब फिर—आप ने मझे माफ कर दिया है, मूर्च्छा से जगा दिया है—अब फिर आप दूर ठेल कर डूब दे जायेंगे ? जैसे कोई दुःस्वप्न देख कर जब जागता है तो आँख खोलते डरता है—कि न जाने क्या दीख जाये, न जाने कहीं सपने के भयावने आकार सचमुच न सामने आ जायें यद्यपि आँख खोलने में ही उन से निस्तार है—स्वप्न की मोहावस्था से छुटकारा है—वैसी ही मैं हो रही हूँ ; दुःस्वप्न से डर गयी हूँ पर प्रकाश में आँखें खोलते डर रही हूँ; धीरे-धीरे आँख खोल रही हूँ, कि प्रकाश की अभ्यस्त हो जाऊँ, फिर चारों ओर नज़र डालूँ—भुवन दा, मुझे फिर डरा न दीजिएगा, प्रकाश में मैं फिर वे भयावने आकार न देखूँ. . .मैं तो यह भी कर सकती हूँ कि अब आँखें मीचे ही पड़ी रहूँ, जब तक आप ही आ कर न जगायें और कहें कि उठो, कहीं कोई डर नहीं है, देखो मैं हूँ . . .आप कहेंगे कि यह वयस्क दृष्टि नहीं है, बच्चों की-सी बात है—कह लीजिए; आप के सामने बच्चा बनते भी मुझे डर नहीं है। आप ने कन्धों चढ़ाया था, सिर चढ़ाया था; मैं उसी की आदी हो गयी हूँ। आप पटक दीजिए; तब बिना रोये चल भी लूँगी, तब तक अपने-आप तो अपनी जगह से हटती नहीं।

आप कहेंगे इतरा रही हैं—रही हूँ न ? नहीं भुवन दा, आप कहेंगे तो तुरत हट जाऊँगी, नहीं भी कहेंगे, तो जभी जानूँगी कि आप वैसा चाहते हैं, चाह सकते हैं, या उस में आप का हित या सुख या शान्ति है, तो भी हट जाऊँगी।

आप बिलकुल स्वस्थ हैं न ? मुझे शीघ्र पता दीजिए।

आप की

गौरा

भुवन दा, आप बड़े अच्छे हैं। पिता जी का पत्र आया है कि आप की चिट्ठी उन्हें मिली है; चलिए आप ने मुझे न लिख कर उन्हें तो लिखा, अच्छा ही किया। पर उन्होंने यह भी लिखा है कि आप फिर और कहीं दूर जाने की सोच रहे हैं—यह क्या मामला है ? क्या इसी लिए मुझे पत्र नहीं लिखा—कि मैं दुःखी हूँगी ? पर भुवन दा, मेरे लिए कितनी भी दुःखद खबर क्यों न हो, आप सीधे मुझे लिखिए। खबर कैसी भी हो, उस से मुझे जितना क्लेश होगा उस से ज्यादा इस बात से कि वह मुझे सीधे आप से नहीं मिली, औरों के जरिये मिली. . .मैं ने तो सोचा था—पर जाने दीजिए जो सोचा था !

आज तक किस का हुआ सच स्वप्न जिस ने स्वपन देखा ?
कल्पना के मृदुल कर से मिटा किस की भाग्य-रेखा ?[1]

भुवन दा, मुझे आशीर्वाद दीजिए, बल दीजिए कि आप दूर हों चाहे पास, आप के स्नेह से मँज कर शुद्ध हो कर मैं चमकती रहूँ; असफलता और निराशा मुझे कड़वा न बना सकें...

आप की ही
गौरा

रेखा द्वारा भुवन को :

भुवन,

यह पत्र तुम्हें अस्पताल से लिख रही हूँ—नहीं, तुम घबराना नहीं, यह नर्सिंग होम है, और मैं अब बिलकुल ठीक हूँ। और शुश्रूषा पा रही हूँ। मौसी भी साथ हैं, और कलकत्ते से डाक्टर भी साथ आये थे, वह भी यहीं हैं। बीच में चले गये थे, अब मुझे लिवाने फिर आये हैं—दीवाली के दिन मैं कलकत्ते पहुँच जाऊँगी और दीवाली घर पर ही होगी। तुम उस समय कहाँ होगे ? दिया जलाओगे ? और नहीं तो एक आकाश-दीप जला देना —मैं प्रेतात्मा तो नहीं हूँ—या कि हूँ, भुवन ?—पर मेरी शुभाशंसा तुम्हारे चारों ओर मड़रायेगी और तुम पथ दिखा दोगे तो तुम्हें छू जायगी...

हेमरेज फिर हुआ था—बहुत—उस का तात्कालिक उपचार कर के डाक्टर रमेशचन्द्र मुझे यहाँ ले आये थे। कुछ ग्रोथ थी भीतर। यहाँ आपरेशन हो गया; अधिक कष्ट नहीं हुआ और तब से मैं बिलकुल स्वस्थ हूँ। दार्जिलिंग का जलवायु और यह शरद ऋतु की धूप—एक अलस, ताप-स्निग्ध तन्द्रा देह पर छायी रहती है, पर उस अलसानेपन में भी शरीर का पुनर्निर्माण हो रहा है, और बहुत दिनों के बाद उसे स्वस्थता का बोध हो रहा है—जैसे अब जब वह हिले-डुलेगा, कर्म-रत होगा, तो कर्तव्य भावना के कारण नहीं, शून्यता के भय के कारण नहीं, कुछ करने की माँग के कारण, स्फूर्ति के कारण, प्रवृत्ति के कारण...कैसी अद्भुत लगती है यह भूल गयी-सी भावना ! और इस का श्रेय बहुत-कुछ डाक्टर रमेशचन्द्र को है। आपरेशन उन्होंने नहीं किया—मैंने ही उन्हें नहीं करने दिया—पर शुश्रूषा-चिकित्सा सब उन की रही; चिकित्सा से भी बढ़ कर उन्होंने एक गहरी संवेदना मुझे दी जिस में मेरी गाँठ बँधी हुई कचोट मानो द्रव हो कर धीरे-धीरे बह गयी... वह भी तुम्हारी तरह धुनी और कार्य-व्यस्त जीव हैं, तुम्हारी तरह कम बोलते हैं, पर जिस से भी मिलते हैं, उस पर उन का गहरा असर होता है—थकी, झुकी, अवसन्न चेतना को जैसे उन की संवेदना तुरत सहारा दे कर सीधा कर देती है। 'राइज़ अप एंड वाक'[2] और 'वेरिली ही थ्रू अवे हिज़ क्रचेज़ एंड वाक्ड, एंड द पीपुल मार्वेल्ड'[3]...तुम न मालूम

---

[1] नरेन्द्र शर्मा

[2] उठ और चल

[3] सचमुच उस ने अपनी बैसाखियाँ फेंक दीं और चलने लगा और लोग चकित हो गये।
—बाइबिल

स्वदेश कब लौटोगे, नहीं तो तुम से कहती, उन से मिलना—तुम्हें उन से मिल कर खुशी होती, मुझे पूरा विश्वास है।

तुम कैसे हो भुवन ? तुम ने पिछले पत्र में मुझे लारेंस की जो कविता भेजी थी उसी से अनुमान लगाऊँ तुम्हारी मनःस्थिति का तो वह स्वीकार नहीं होता—नहीं भुवन, दर्द को, परिताप को जी से चिपटा कर मत बैठो—देखो, यह तुम से मैं कहती हूँ, मैं ! एक निग्रो कविता है :

आइ रिटर्न द बिटरनेस
ह्विच यू गेव टु मी;
ह्वेन आइ वांटेड लव्लिनेस
टॅटॅलैंट एंड फ़्री ।
आइ रिटर्न द बिटरनेस
इट इज वाश्ड बाइ टीअर्स
नाउ इट इज़ लव्लिनेस।
गार्निश्ड थ्रू द यीअर्स ।
आइ रिटर्न इट विद लव्लिनेस
हैविंग मेड इट सो :
फ़ार आइ वोर द बिटरनेस
फ़्राम इट लांग ऐगो।*

इस के पहले पद को उलहना न समझना सार की बात अन्तिम पद में है : हम अपने भीतर पका कर व्यथा को सौन्दर्य बनाते हैं—यही सृष्टि का रहस्य है, बल्कि यह तुम ने मुझे बताया था ! पकाने में समय बीत जाता है, हम बूढ़े भी हो जा सकते हैं, परास्त भी हो सकते हैं, हमारी आकांक्षाए अधूरी भी रह जा सकती हैं—पर उस सब का कोई महत्त्व नहीं है, बूढ़े होने का नहीं, हारने का नहीं—महत्त्व है उस आन्तरिक शान्ति का जो पकने में मिलती है, उस तन्मयता का. . .मैं तो यही अनुभव करती हूँ, तुम मालूम नहीं ऐसा करते हो कि नहीं, पर उस गम्भीर शान्ति का बीज मुझ में तुम्हीं ने बोया था, और उस की जड़ें निरन्तर गहरी होती जा रही हैं। मैं शान्त हूँ; जो भावनाएँ मुझे तोड़ती-मरोड़ती, चिथड़े कर के रख देती थीं, अब मुझे छूती भी नहीं। और

---

*मैं लौटाती हूँ वह कटुता जो तुम ने मुझे दी थी, जब कि मैं चाहती थी सौन्दर्य, मुक्त और दोलायमान ।

मैं लौटाती हूँ वह कटुता; अब वह आँसुओं से धुल गयी है—अब वह वर्षों बीन-बीन कर संग्रह किया हुआ सौन्दर्य है ।

मैं उसे लौटाती हूँ सौन्दर्य के रूप में, जो मैं ने बनाया है, क्यों कि कटुता तो उस में से मैं ने कब की धो डाली ।

यह नहीं कि मैं हृदय-हीन हो गयी हूँ, संवेदनशून्य हो गयी हूँ—नहीं, मैं अधिक संवेदन-शील भी हूँ, पर अधिक अनासक्त भी...

लेकिन मैं बहुत बक रही हूँ—अपने बारे में बहुत बातें कर रही हूँ! भुवन, एक बार जड़ता की सीमा को छू आ कर ही जीवन वास्तव में शुरू होता है; मुझे लगता है कि तुम भी उस अवस्था में से गुज़र रहे हो...एक बार अपने को मर जाने दो—अपनी ही राख में से फिर तुम उदित होगे—परिशुद्ध हो कर, कान्तिवान्...

यह सब तुम्हें दम्भोक्ति या प्रलाप लगे तो ध्यान कर लेना कि मैं नर्सिंग होम की आराम-कुर्सी से लिख रही हूँ—ए जैबरिंग ओल्ड सिक हैग !*

मेरा हार्दिक स्नेह लो।

तुम्हारी
रेखा

भुवन,

तुम्हारी चिट्ठी मिली है। मैं कृतज्ञ हूँ। शायद सात महीने बाद तुम्हारी यह चिटठी है, लेकिन इसे पढ़ कर मुझे लगा कि हम दोनों की मानसिक प्रगति लगभग समान्तर होती रही है। फिर मैंने तुम्हारे पिछले दो-चार पत्र भी निकाल कर पढ़े, और उस से यह भावना और भी पुष्ट हो गयी। समान सोचते हैं तो दूर नहीं हैं; इतना ही नहीं, मुझ में जो परिवर्तन—ठीक परिवर्तन वह नहीं है, विकास, प्रस्फुटन, भीतरी और घटना-जन्य सम्भावनाओं का स्फुरण—हो रहा है उसे लक्ष्य कर के तुम्हारे बारे में आश्वस्त भी हो सकती हूँ...मैंने एक बार प्रतिज्ञा करनी चाही थी कि अपने कारण तुम्हारा कोई अहित नहीं होने दूँगी; फिर सहसा इस डर से रुक गयी थी कि क्या जाने, चाह कर भी इसे निभा पाऊँगी कि नहीं; इस लिए यही शपथ ली थी कि जहाँ तक हो सकेगा नहीं होने दूँगी...अब जानती हूँ कि वह प्रतिज्ञा शायद टूटी नहीं—अहित बिलकुल नहीं हुआ यह तो नहीं कह सकती, पर जहाँ तक सकी—नहीं, जितना हुआ, उसे घातक होने से शायद बचा सकी हूँ, और मेरी आशाएँ तुम में जी सकेंगी, सुफल हो सकेंगी...

तुम भटक रहे हो, भटकोगे, और भटकना चाहते हो, यायावार हो जाना चाहते हो। चाहते हो तो क्यों नहीं हो जाते? भुवन, मैं तो स्त्री हूँ, और मेरा स्वास्थ्य भी चौपट ही है, लेकिन मैंने भी कई बार चाहा है यायावार हो कर बन्धन-हीन विचरना। पर जहाँ, जैसे, जैसी हूँ, मैं जान गयी हूँ कि वह नहीं है मेरे लिए, कि कभी-न-कभी—और शायद जल्दी ही—मुझे कहीं टिक जाना होगा; स्थिर हो जाना होगा, मान लेना होगा कि पड़ाव आ गया—इस लिए नहीं कि मेरी आकांक्षा की दौड़ वहीं तक थी, इस लिए कि मेरी सकत की दौड़ आगे नहीं है...पर तुम, तुम घूमो, महाराज, मुक्त विचरण करो, प्यार दो और पाओ, सौन्दर्य का सर्जन करो, सुखी होओ, तुम्हारा कल्याण हो...

---

*एक बड़बड़ाती हुई बीमार बुढ़िया !

मैं बिलकुल ठीक हूँ; काम मैंने फिर आरम्भ कर दिया है। डा० रमेशचन्द्र के आग्रह और प्रयत्न से मैं अस्पताल से हट कर केवल व्यवस्था के काम में लग गयी हूँ: उन का आग्रह था कि मैं रोग और रोगियों के वातावरण में न रहूँ। और मैं अब अनुभव कर रही हूँ कि ठीक ही था—उस का मेरे मन पर निरन्तर बोझ रहता था; और इस व्यवस्था के काम में बढ़ते हुए उत्तरदायित्व से कुछ प्रेरणा भी मिलती है, कुछ सान्त्वना भी।

उधर युद्ध के बादल घिर रहे हैं। तुम कब तक उधर रहोगे, भुवन ? अब तो फिर जाड़े आने लगे ! कभी पढ़ा था, जाड़े आते हैं तो वसन्त भी दूर नहीं है—पर अब मालूम होता है कि यह बात भी किसी 'इनफ़ीरियर फिलासफ़र' की कही हुई है, जिस से बचना चाहिए ।

तुम्हारी
रेखा

भुवन द्वारा गौरा को :

गौरा,

खबर तुम ने सुनी ? ज़रूर सुनी होगी ! बड़े धड़ल्ले के साथ जापान युद्ध में कूद आया। और एक ही चोट में उस ने अमेरिका को कितना बड़ा आघात पहुँचाया है। देश में बहुत होंगे जो इस पर खुश हो रहे होंगे—चालीस-एक बरस पहले जब जापान ने रूस को हरा दिया था और यूरोप चकित हो कर देखता रह गया था कि एक छोटे-से एशियाई द्वीप-राज्य ने एक यूरोपीय साम्राज्य-शक्ति को पछाड़ दिया, तब जो एशियाई गर्व जागा था, उसे आज नया प्रोत्साहन मिलेगा। पर उस में और इस में जो अन्तर है, उस की लोग उपेक्षा कर पायेंगे : तब गर्व करना उचित था, क्यों कि एक दबी हुई जाति ने सिर उठाया था और उस में दूसरी उत्पीड़ित जातियों के लिए आशा का संकेत था; पर अब ? अब जापान भी एक उत्पीड़क शक्ति है, साम्राज्य भी और साम्राज्यवादी भी—और आज उस को बढ़ावा देना, एक नयी दासता का अभिनन्दन इस आधार पर करना है कि वह दासता यूरोपीय की नहीं, एशियाई प्रभु की होगी। कितना घातक हो सकता है यह तर्क ! परदेशी गुलामी से स्वदेशी अत्याचार अच्छा है, यह एक बात है, यह मानी जा सकती है; पर क्या एशियाई नाम जापान को यूरोप की अपेक्षा भारत के अधिक निकट ले आता है, जापानी को यूरोपीय की अपेक्षा अधिक अपना बना देता है ? जाति की भावना गलत है, श्रेष्ठत्व-भावना हो तो और भी गलत—हिटलर का आर्यत्व का दावा दम्भ ही नहीं, मानवता के साथ विश्वासघात है; पर अपनापे या सम्पर्क की बात कहनी हो तो मानना होगा कि यूरोप ही हमारे अधिक निकट है, आर्यत्व के नाते नहीं, सांस्कृतिक परम्परा और विनिमय के कारण, आचार-विचार, आदर्श-साधना और जीवन-परिपाटी की आधारभूत एकता के कारण. . .यह हमारे भारत के एक स्थानीय प्रश्न (विश्व की भूमिका में हिन्दू-मुस्लिम प्रश्न को स्थानीय ही मानना होगा) से उत्पन्न कटुता के कारण है

कि हम नहीं देख सकते कि न केवल यूरोप के बल्कि निकटतर मुस्लिम देशों के—'मध्य-पूर्व' के—साथ हमारा कितना घनिष्ट सांस्कृतिक सम्बन्ध न केवल रहा है बल्कि आज भी है, और हम चीन से, और चीन की मारफ़त जापान से सांस्कृतिक आदान-प्रदान का नाता जोड़ते हैं। फ़ाह्यान और यूवान च्वांग थे, ठीक है; पर अतीत का ऐतिहासिक सम्बन्ध आज का सजीव सम्बन्ध नहीं भी हो सकता है; और केवल मूर्ति-कला को ले कर हम कहाँ तक दौड़े जायेंगे, धर्म और दर्शन, गणित और विज्ञान, आचार और विचार के सम्बन्धों की अनदेखी कर के? और हाँ, अत्याचार और उत्पीड़न, दास-दासियों के क्रय-विक्रय, लूट और व्यापार और घर्षण और विवाह के सम्बन्धों की, रक्त के, रीति-रस्म के, कला और साहित्य के, भोजन-वसन के, भाषा के, नामों के मिश्रण की अनदेखी कर के? हम किसी देश का, किसी देश की जनता का, अहित नहीं चाहते, पर एशियाई नाम को ले कर जापानी साम्राज्य-सत्ता का अनुमोदन करना या उस के प्रसार को उदासीन भाव से देखना, खंड के नाम पर सम्पूर्ण को डुबा देना है, अँग्रेजी कहावत के अनुसार अपन मुँह से लड़ कर अपनी नाक काट लेना है; मानवता के साथ उतना ही बड़ा विश्वासघात करना है जितना उन्होंने किया था जो मुसोलीनी द्वारा अबीसीनिया या हिटलर द्वारा चेकोस्लोवाकिया के ग्रास के प्रति उदासीन थे...

पर यह सब मैं क्या लिख रहा हूँ? कहना यह चाहता हूँ कि इस ख़बर ने मुझे झकझोर दिया है। यहाँ काम भी अब आगे नहीं हो सकता—बड़ी तेज़ी से फ़ौजी संगठन हो रहा है और और सब काम रुक गया है। हम तुरत यहाँ से जा रहे हैं—आजकल में शायद वायुयान से सब सामान समेत सिंगापुर ले जाये जायेंगे; वहाँ से आगे जैसा हो। मैं भारतवर्ष लौट रहा हूँ। क्रिसमस से पहले नहीं तो मासान्त तक अवश्य पहुँच जाऊँगा। यह नहीं कह सकता अभी कि कलकत्ते पहुँचूँगा, या कोलम्बो, या कहाँ—जैसा प्रबन्ध हो जाय। पक्का पता लगते ही तार से तुम्हें सूचित करूँगा। मेरे मन में अनेक विचार उठ रहे हैं—अनेक प्रकार के इरादे—पर अभी कुछ स्पष्ट नहीं है, उस बारे में अभी नहीं लिखूँगा; पर सोचता हूँ, तुम से मिल कर बात-चीत करूँ, तो विचार भी कुछ स्पष्ट हों, और आगे का मार्ग भी कुछ दीखे। गौरा, अगर मैं सीधा तुम्हारे पास न आ सका, और तुम्हें मैं ने मिलने के लिए बुलाया, तो आ सकोगी न—आओगी न? या कि रूठ जाओगी? तुम ने एक पत्र में लिखा था, "आप बुलावें, उतना मान मेरा नहीं है,"—तुम क्या जानो कि कितना है! पर वह जो हो, उस की बात मिलने पर; अभी इतना ही कि शायद बुलाऊँ ही—तो आना, क्षमामयी गौरा!

जल्दी में—सहसा बहुत-सा काम करने को हो गया है!

तुम्हारा

भुवन

गौरा के नाम भुवन का केबल :

सुरक्षित हूँ लौट रहा हूँ सब को सूचित कर दो निश्चित स्थान तारीख अनन्तर सूचित करूँगा ।

भुवन

गौरा के नाम भुवन का केबल :

सिंगापुर सकुशल पहुँचा आशा है कल कलकत्ता प्रस्थान पहुँचने की अनुमानित तिथि २३ दिसम्बर सको तो मिलो पता मारफत कुक या डच एयरलाइन ।

भुवन

गौरा का जवाबी तार, एक प्रति टामस कुक, नकल के० एल० एम० डच लाइन क़लकत्ता :

सन्देश डा० भुवन के लिए अनुमानित पहुँच २३ दिसम्बर कृपया पहुँचा दीजिए सन्देश आरम्भ मसूरी प्रतीक्षा करती हूँ सीधे आइये असम्भव हो तो तार दें कहाँ मिलूँ आऊँगी मिलना आवश्यकीय स्नेह पिताजी के आशीर्वाद गौरा सन्देश समाप्त पहुँचाने पर या देरी होने पर तार से सूचित कीजिए ।

मिस नाथ सुकेत मसूरी

गौरा का पत्र, भुवन के नाम, उपर्युक्त दोनों पतों पर :

तो आप आ रहे हैं, भुवन दा ! मैं ने तार दिया है कि आप मसूरी आ जाइये । पापा का स्वास्थ्य बहुत अच्छा नहीं है और मैं उन के पास हूँ । फिर भी आती ही—चिन्ता की कोई बात नहीं है—पर आप २३ दिसम्बर को पहुँचते हैं तो कालेज तो तुरत जाना नहीं होगा, इस लिए यहाँ आ सकेंगे यह मैं ने मान लिया है । यहाँ आप को भी अच्छा लगेगा, पापा को भी; और मैं भी आप की सेवा कर सकूँगी—कलकत्ता तो कैसी जगह है. . .न जाने । पर अगर कोई कठिनाई हुई तो मैं तुरत आऊँगी—कलकत्ते या और जहाँ आप कहें । मैं तैयार बैठूँगी—आप का तार आते ही चल दूँगी । भुवन दा, आप आ रहे हैं, सोच कर मैं पागल हुई जा रही हूँ—इतनी कि उस दुर्घटना को ही धन्य कह देती जिस के कारण आप को जावा छोड़ना पड़ा—पर नहीं, इतना अविवेक नहीं !

ओ मेरे सुख धीरे-धीरे गा अपना मधु-राग
ऊँचे स्वर से सोयी पीड़ा जावे कहीं न जाग. . .'

आप की, आप ही की
गौरा

गौरा

गौरा को कमरे में प्रवेश करते हुए भुवन ने न देखा था, न सुना था; उस की उपस्थिति को उस ने सहसा चौंक कर जाना तो बैठा-का-बैठा रह गया, गौरा ने उस के कोट के बटन-होल में नरगिस का एक डाँठा लगा दिया और उँगलियों के हलके स्पर्श से पल्ला सहलाती हट गयी तो भुवन ने पूछा, "ये कहाँ से—इस वक्त ?"

रात का भोजन कर के भुवन अपने कमरे में आ कर बैठा था। सहसा लम्बी यात्रा का अवसाद और दिन-भर के अनुभवों की थकान उस पर छा गयी थी तो कुरसी खिड़की की ओर खींचकर, बदली से घने हो रहे आकाश की पृष्ठिका पर खिंचे हुए पत्रहीन गुड़हल के आकार पर एक नज़र डाल कर उस ने हथेलियों से आँखें ढँक ली थीं और स्पष्ट आकार-विहीन किसी विचार में डूब गया था। तनी हुई थकान ढीली पड़ कर मीठी-मीठी फैलने लगी थी।

सुकेत छोटा-सा अच्छा बँगला था; ढाल पर बना हुआ, दुमंजिला ; निचली मंज़िल सामने को खुली थी, ऊपर की मंज़िल से सामने से सीढ़ी उतरती थी, पर पिछवाड़े भी उतरने का रास्ता था—ढाल के कारण पिछवाड़े दो-तीन सीढ़ियाँ ही उतरनी पड़ती थीं, फिर एक रास्ता धीरे-धीरे उतरता हुआ सामने की सड़क में आ मिलता था। ड्राइंग रूम और एक बड़ा बरामदा ऊपर था, उस के साथ गौरा के पिता का अध्ययन-कक्ष और फिर सोने का कमरा और एक छोटा कमरा; निचली मंज़िल में भी एक ड्राइंग-डाइनिंग रूम था और तीन सोने के कमरे, पर निचला ड्राइंग-रूम प्रायः काम में नहीं आता था—या किसी बहुत ही औपचारिक ढंग की भेंट के लिए ही सुरक्षित था; और भोजन भी प्रायः ऊपर के बरामदे में होता था। गौरा के माता-पिता ऊपर की ही मंज़िल में रहते थे और पिछवाड़े के रास्ते ही उतर कर टहलने जाते थे; सामने की सीढ़ी शायद ही कभी काम में आती थी—गौरा ही उस से आती-जाती थी। नीचे वाला एक शयन-कक्ष उस का था, दूसरा प्रायः खाली रहता था और उस में गौरा ने पुस्तकालय और वाद्य-यन्त्र रखने का स्थान बना रखा था, वहीं वह संगीत का अभ्यास करती थी। तीसरा कुछ अलग था और उस के बाहर एक बहुत छोटा-सा अलग बाड़ा भी था—यह मेहमान कमरा था और इसी में भुवन को ठहराया गया था।

"मैं अपने कमरे से लायी हूँ।"

भुवन ने लक्ष्य किया कि उस के पल्ले पर लगी हुई चार फूलों वाली एक डाँठी ही नहीं, गौरा एक गहरे ऊदे रंग का फूलदान ले कर आयी है जिस में नरगिस भरे हैं। उस ने ग्रीवा एक ओर को झुका कर गहरी साँस से कोट में लगे वृन्त की सुवास लेते हुए कहा, "सारे ले आयीं—वहाँ नहीं रखे ?"

गौरा ने उत्तर नहीं दिया। चुपचाप थोड़ी देर उसे देखती रही। एक बहुत हलकी मुस्कान—मुस्कान भी नहीं, एक खिलापन—उस के चेहरे पर था। फिर बोली, "आप को सर्दी तो नहीं लगेगी? रात को वारिश हुई थी—आज फिर हो सकती है।"

"नहीं, गौरा, इतनी ठंड तो नहीं है।"

गौरा ने चारों ओर नज़र डाली। "मैंने दो कम्बल और भी रख दिये हैं—और अँगीठी में लकड़ियाँ भी चिनी रखी हैं—कहिए तो आग जला दूँ—"

यह भुवन ने नहीं लक्ष्य किया था—क्यों कि कोर्निस के आगे लकड़ी की एक छोटी तिरस्करणी रखी थी जिस से अँगीठी छिपी हुई थी।

"और डोल में चीड़ की कुकड़ियाँ भी रखी हैं—जलती भी अच्छी हैं और सुगन्ध भी देती हैं—"

भुवन ने कुछ अधिक तत्परता से कहा, "नहीं गौरा, नहीं—मुझे आग जला कर सोने की आदत नहीं—"

एक सन्नाटा-सा छा गया। गौरा कोर्निस के सहारे खड़ी हो गयी। दोनों अनमने से एक-दूसरे की ओर देखते रहे। फिर सहसा गौरा ने कहा, "आप थके हैं—मैं जानती हूँ—किसी चीज़ की ज़रूरत हो तो आवाज़ दे दीजिएगा—"

भुवन ने भी मानो अपने को समेटते-से कहा, "नहीं, गौरा, तुम ने किसी जरूरत की गुंजाइश कहाँ छोड़ी—", फिर गौरा की पीठ को देखते हुए उसे मानो ध्यान आया कि वह उस की कुछ अवज्ञा कर गया है—गौरा वात करने आयी थी—उस ने कहा, "बैठो—अभी क्या वक्त हुआ है?"

गौरा क्षण-भर ठिठकी। फिर मुड़े विना ही उस ने कहा, "नहीं, आप सो जाइये। सुवह—अगर आप वुलायेंगे तो घूमने चल सकती हूँ।"

भुवन ने कहा, "सुवह?" कुछ ऐसे ढंग से जो न प्रश्न था न उत्तर, न इनकार और न स्वीकृति; गौरा भी बात को वहीं छोड़ कर पीछे आहिस्ता से किवाड़ वन्द करती हुई चली गयी।

भुवन ने उठ कर बत्ती बुझा दी, और फिर पूर्ववत् बैठ गया। उस का शिथिल हुआ मन धीरे-धीरे मानो एक-एक कदम वढ़ता हुआ प्रत्यवलोकन करने लगा।

गौरा के पिता ने सरल और खुले आनन्द से उस का स्वागत किया था; वह प्रणाम करने झुका था तो हाथ वढ़ा कर हाथ मिलाया था, दूसरे हाथ से भी कलाई पकड़ते हुए, फिर खींच कर गले-सा लगा लिया था। "तुम आ गये भुवन—गौरा तो चिन्ता करके सूख गयी थी!"

भुवन को पहुँच जाना चाहिए था बारह वजे, वह साढ़े चार बजे पहुँचा था; पर किसी ने उस से पूछा नहीं कि इतनी देर कहाँ लगी। वात यह हुई थी कि कलकत्ते से उस ने दूसरा तार दिया था अपने पहुँचने के दिन का; देहरादून स्टेशन पर वह उतरा तो गौरा

प्लेटफ़ार्म पर खड़ी थी—वह सुवह की सर्विस से चली आयी थी। भुवन को देखते ही वह लपकी हुई दोनों हाथ वढ़ा कर उस की ओर दौड़ी थी, भुवन ने उस के दोनों हाथ अपने हाथों में पकड़ लिये थे और कुछ वोल नहीं सका था; थोड़ी देर वाद गौरा ने धीमे से कहा था, "आप आ गये. . ." और फिर धीरे-धीरे उस के हाथ छोड़ दिये थे। लेकिन जव सामान वग़ैरह सँभाल कर भुवन ने पूछा था, "अभी अड्डे पर चलना होगा—या मैं मुँह-हाथ धो लूँ वेटिंग रूम में ?" तो गौरा स्वयं अपने को विस्मित करती कह गयी थीं, "धो लीजिए—इस सर्विस से नहीं जायेंगे मसूरी !"

भुवन ने विना कुछ कहे मान लिया था। मान ही नहीं लिया था, मानो उस क्षण से वागडोर गौरा को सौंप दी थी कि जैसा वह कहेगी वैसा ही चलता जायगा। केवल जव मुँह-हाथ धो कर वह निकला था और गौरा ने पूछा था, "नाश्ता करेंगे ?" तो उस ने पहले पूछा था, "तुम्हारा क्या हुक्म है ?" लेकिन फिर गौरा के कुछ कहने से पहले ही कहा था, "नहीं, चलो स्टेशन से बाहर निकलें।"

ताँगा लेकर वे मैदान तक गये थे, वहाँ से पैदल टहलते हुए डालनवाला की ओर निकल कर रिसपना के किनारे पहुँच गये थे; नीचे सूखी नदी के पाट में उतर कर पत्थरों में वे चलते रहे थे; फिर एक ऊंचे कगारे पर एक पेड़ देख कर उस के नीचे वैठे गये थे। चलते हुए दोनों बहुत थोड़ा वोले थे; गौरा ने छोटे-छोटे प्रश्न पूछे थे—कव चले, कैसे आये, कहाँ कितना ठहरे, यात्रा कैसे हुई, इत्यादि—और भुवन ने वैसे ही छोटे-छोटे जवाव दे दिये थे; पर वैठ कर दोनों बिलकुल ही चुप हो गये। भुवन सामने पड़े हुए कंकड़ों में से एक-एक उठा कर निरुद्देश्य-सा नीचे फेंकने लगा; गौरा देखती रही। थोड़ी देर वाद वह भी यन्त्रवत् एक-एक कंकड़ उठा कर भुवन को देने लगी; भुवन अन्यमनस्क-सा कंकड़ ले लेता और मानो पहले फेंके हुए पत्थर का निशाना वाँधता हुआ-सा फेंक देता। इस प्रकार एक-एक कंकड़ से समय का एक-एक अन्तराल लाँघते हुए वे काल की या अस्तित्व की ही किसी अज्ञात दिशा में वढ़ते रहे।

सहसा गौरा ने कहा, "चलें अव।"

इतनी देर तक नीरवता अलक्षित थी, अव इन शब्दों से वह मानो दोनों की चेतना में घनी उभर आयी। भुवन ने कहा, "गौरा, तुम्हें कुछ कहना नहीं है ?"

"और तुम्हें ?" सहसा गौरा कह गयी। फिर कुछ सकपका कर सँभलती हुई, "आप ने तो लिखा था बहुत कुछ बताना है—सलाह करनी है—" वह खड़ी हो गयी।

भुवन ने हाथ बढ़ा कर उस का हाथ सहारे के लिए पकड़ कर उठते हुए कहा, "और तुम्हें तो और भी अधिक सलाह करनी थी।"

गौरा हँस पड़ी। "चलिए, मसूरी चल कर सलाह ही सलाह होगी—अभी थोड़ी देर में आप तो वुज़ुर्ग हो जायेंगे—वुज़ुर्गी आने से पहले—मैं—थोड़ी देर चुप-चाप आप के पास वैठना चाहती थी।"

भुवन ने मुस्करा कर कहा, "बुजुर्गी तो गयी गौरा, सदा के लिए।" फिर सहसा गम्भीर हो कर, "लेकिन हम सीधे तुरत मसूरी नहीं गये—इस के लिए तुम्हारा कृतज्ञ हूँ। मुझे डर था—"

"क्या डर था ?"

"कि कहीं—कहीं हम अजनबी न हों—कहीं मुझे बेयरिंग्स न खोजनी पड़ें—"

गौरा ने उमड़ कर हाथ उस की ओर बढ़ाया और कुछ घनी आवाज़ में कहा, "भुवन दा ?" फिर तुरत संयत होती हुई बोली, "तो आप साल-भर से कम में इतने साहब हो गये कि देश की बेयरिंग्स भूल गये ? और जावा तो ऐसा साहब भी नहीं है—"

भुवन हँस दिया।

धीरे-धीरे वे लौटे थे और अगली सर्विस उन्होंने पकड़ ली थी। रास्ते में फिर बहुत कम बात हुई थी, गौरा सुकेत का नकशा उसे समझाती रही थी, बस। बीच-बीच में भुवन उस की ओर देखता था; वह मुस्करा देती थी और वह भी मुस्करा देता था। किनक्रेग उतर कर वे पैदल चढ़ाई चढ़ने लगे तो बात हो ही नहीं सकती थी; बँगले पर पहुँच कर गेट के भीतर घुस कर गौरा दौड़ती हुई छोटे रास्ते से ऊपर चढ़ गयी थी पुकारती हुई कि "पापा, पापा, भुवन दा आ गये !" भुवन जब तक गेट से प्रविष्ट हो कर भीतर पहुँचे, तब तक पापा बाहर आ कर सामने की सीढ़ी से उतरने लगे थे, सीढ़ी के नीचे ही दोनों की भेंट हुई थी। गौरा कहीं अदृश्य हो गयी थी, और फिर लगभग घंटे भर बाद तक नज़र नहीं आयी थी; आयी थी तो सूचना देने कि चाय तैयार है। पिता ने पूछा था, "बेटी, चाय ही है कि कुछ खाने को भी ?" और मुड़ कर भुवन से, "खाना खा कर चले थे ?"

भुवन ने कहा था, "जी, मोटर-यात्रा से पहले कम ही खाता हूँ—" और गौरा ने साथ ही उत्तर दिया था, "जी खाने को भी रखा है पर ये तो कुछ खाते ही नहीं, और अब तो जावा से पूरे साहब हो कर आये होंगे—"

भुवन ने आँख बचा कर इशारे से ही उसे घुड़क दिया था।

तीसरे पहर थोड़ी देर उस ने आराम किया था, फिर चाय पी थी और फिर गौरा के पिता के साथ घूमने गया था; इस बीच गौरा ने उस का कमरा सजा दिया था। लेकिन शाम को भी गौरा से विशेष बात नहीं हुई थी, खाने पर तो होती ही क्या।

और अब...भुवन ने फिर अपने को हिलाया। इस समय निस्सन्देह गौरा बात करने आयी थी—और फूल ले कर...और उस ने पूछा ही नहीं...कदाचित् वह आहत हो कर चली गयी। क्यों नहीं उसे ध्यान आया ? बाद में उस ने कहा था, अवश्य; पर बाद में कहने से क्या फ़ायदा।

सवेरे ? शायद। गौरा ने तो स्पष्ट घूमने का निमन्त्रण दिया था। शायद वही अच्छा है; सवेरे टहलते हुए बात होगी तो और ढंग की होगी, रात को कमरे में बैठे-बैठे शायद बहुत उदास हो जाती...यह नहीं कि वह वैसा चाहता...पर मन जैसा है सो तो है ही,

फिर रात का अपना असर होता है. . .और सवेरे का अपना, टहलने का अपना. . .

भुवन उठ कर अँधेरे में ही कपड़े बदलने लगा। बदल चुका, तो क्षण भर जा कर खिड़की पर खड़ा रहा; बदली अभी थी, कहीं-कहीं एक-आध तारा दीखता था; यहाँ की रात, यहाँ की हवा, यहाँ की नीरवता में जावा की रात और हवा और नीरवता से कितनी भिन्नता थी—मात्रा की नहीं, प्रकार की, स्वभाव की. . .

वह धीरे-धीरे जा कर लेट गया। थोड़ी देर बाद सहसा उठा, कोट टटोल कर उस ने उस में लगा हुआ नरगिस का डाँठा निकाला और सिरहाने रख कर फिर लेट गया। फूलदान के नरगिसों की भारी, सालस, स्तब्ध गन्ध सारे कमरे में फैल गयी थी, सिरहाने रखे एक वृन्त की गन्ध अलग नहीं पहचानी जाती—पर वह एक वृन्त उपयोगिता के विचार से थोड़े ही वहाँ रखा गया है. . .क्या यह वृन्त भी बात करना चाहता है ? अच्छा तो अब की उस से चूक नहीं होगी, वह सुनेगा, और वृन्त को कान के पास रख कर सुनेगा निहोरे कर के—उस के तन्द्रिल मन में एक अधूरा पद तैर आया : 'लपितु किमपि श्रुतिमूले'—श्रुतिमूल में कुछ धीरे से कहने को—कौन ? क्या वह ऊँघ गया. . .

* * *

गौरा जाग कर उठ बैठी। किसी अनवरत शब्द ने उसे जगाया था। उस ने सुना : पैरों की चाप, पाँच-सात पगों के बाद एक अन्तराल, फिर पाँच-सात पद। भुवन के कमरे से आ रही है आवाज़, तो भुवन कमरे में चक्कर काट रहा है—लेकिन चाल भी समान नहीं है; क्या गौरा कल्पना कर रही है, कि सचमुच वह पद-चाप उद्वेग की सूचक है ? उस ने घड़ी देखी : साढ़े-बारह; फिर उस ने एक चादर कन्धों पर और अपने खुले बालों पर डाली और दबे पाँव कमरे से बाहर हो गयी।

भुवन के द्वार पर वह ठिठकी। पैरों की चाप और भी असम हुई, फिर सहसा रुक गयी।

गौरा ने सावधानी से किवाड़ खोला; वह ज़रा-सा चरमराया और फिर चुपचाप खुल गया। भीतर हो कर किवाड़ फिर धीरे से उढ़का कर गौरा वहीं खड़ी रही, आगे नहीं बढ़ी; इधर-उधर सटे हुए पर्दों में से एक को हाथ से पकड़े हुए, आधी पर्तों की ओट। कमरे के फीके अन्धकार में खोजती हुई उस की आँखों ने देखा, भुवन खिड़की के पास फ़र्श पर बिछे गलीचे पर बैठ गया है, कुछ वैसी मुद्रा में जैसी चित्रों पर धनुष पर चिल्ला चढ़ाते हुए कुमार राम की होती है—लेकिन वैसी कसी हुई नहीं, परास्त; एक घुटना भूमि पर, दूसरे पर कोहनी टिकी हुई; उठा हुआ हाथ धीरे-धीरे माथे पर आ टिका और माथे को पकड़े रहा. . .

कहाँ है भुवन ? किस चिन्ता में है—नहीं, चिन्ता तो निरी विचार की अवस्था होती है, किस गहरी अनुभूति में है ?

लेकिन—यह भुवन का निजी क्षण है, निजी अनुभूति है; ऐसे उसे देखते रहना चोरी है। बड़े कोमल स्वर में गौरा ने कहा, "भुवन दा, क्या बात है, नींद नहीं आती? बत्ती जला दूं?"

भुवन बड़े ज़ोर से चौंका। खड़ा हो गया। थोड़ी देर बाद हक्का-बक्का-सा उसे देखता रहा। "गौरा, तुम—तुम!"

गौरा ने फिर कहा, "थोड़ी देर आप के पास बैठूं? आप कुरसी पर बैठिए।" और वह स्वयं अँगीठी के आगे से तिरस्करिणी हटा कर, अँगीठी के लकड़ी के चौखट पर बैठ गयी, कुरसी के सामने।

भुवन कुछ अतत्पर भाव से बैठ गया। फिर जैसे शून्य को भरने के लिए कुछ कहना ही है, ऐसे बोला, "मैं सो गया था, फिर—चौंक गया।"

"क्यों—कोई सपना देखा था?"

"शायद। नहीं—कोई रोया था!"

"रोया था? नहीं भुवन दा—रोने की आवाज़ कहाँ से आ सकती है—"

"हाँ," भुवन ने साग्रह कहा, "चिड़िया का बच्चा रोया था।"

गौरा ने विस्मय को दबा कर क्षण-भर बाद फिर कहा, "बत्ती जला दूं?"

"न। अच्छा, जला दो।"

गौरा ने टेबल लैम्प जला दी। लचकीले तार के स्टैंड वाली लैम्प थी, उसे दबा कर उस ने नीचा कर दिया, प्रकाश दीवार पर पड़ने लगा और वहाँ से प्रतिबिम्बित हो कर कमरे में फैला।

भुवन ने हाथों से आँखें ढंक लीं, जैसे चौंध लगती हो। उस का शरीर एक बार सिहर गया।

गौरा ने कहा, "मैं आग जला देती हूँ, सर्दी बहुत है! और आप कुछ ओढ़ लीजिए।"

भुवन ने तड़प कर कहा, "नहीं गौरा, आग नहीं!"

गौरा बिस्तर पर से कम्बल उठाने मुड़ी थी, ठिठक गयी। फिर उस ने कम्बल उठा कर धीरे से भुवन के कन्धों पर डालते हुए कहा, "क्या बात है भुवन दा—चीड़ की आग तो बड़ी स्निग्ध होती है—आप को अच्छी लगेगी—"

"नहीं, नहीं, मुझे आग में चेहरे दीखते हैं!"

गौरा ने पीछे खड़े-खड़े ही दोनों हाथ भुवन के कन्धों पर रखते हुए कोमल स्वर से पूछा, "किस के चेहरे, भुवन दा?"

"चेहरे—मृत चेहरे—बच्चों के चेहरे।" गौरा के हाथों के नीचे उस का शरीर एक बार फिर सिहर गया।

गौरा क्षण-भर अनिश्चित खड़ी रही। फिर उस ने सहसा भुवन के सामने जा कर कहा, "भुवन दा, अब और नहीं मानूंगी। बताइये क्या बात है।" जैसे साहस बटोर कर

उस ने दोनों हाथ-भुवन के कानों पर रखे, उन के हलके दवाव से भुवन का मुँह ऊपर उठाते हुए कहा, "देखिए मेरी तरफ़ देखिए—आप को वताना होगा !"

उन की आँखें मिलीं, दोनों स्थिर एक-दूसरे को देखते रहे। गौरा ने लगभग अश्रव्य स्वर में कहा, "मैं पूछती हूँ, भुवन, नहीं बताओगे तुम ?"

भुवन ने उत्तर नहीं दिया; दोनों वैसे ही देखते रहे। फिर गौरा के हाथ धीरे-धीरे शिथिल होने लगे—वह हार गयी है—और भुवन नहीं वोलेगा, कि भुवन ने कहा, "अच्छा गौरा, बताता हूँ। अच्छा, तुम वैठ जाओ।"

गौरा उस के सामने की ओर, अँगीठी के सामने विछे गलीचे पर वैठने लगी। अध-वैठी ही थी कि भुवन ने जल्दी से और एक अजव रुखाई के साथ कहा, "रेखा को तुम जानती हो—आइ लव्ड हर।"[१]

गौरा वैठती-वैठती रुक गयी। धीरे से बोली, "जानती हूँ।" थोड़ा-सा रुक कर, "आइ लव हर टू।"[२]

भुवन ने चकित भाव से कहा, "गौरा !" फिर रुकते-से, "लेकिन तुम ने तो उसे देखा ही नहीं—"

"मैं—मिली थी। लेकिन—यह—मिलने से अलग वात भी है।"

भुवन ने बात काटते हुए पूछा था, "कव ?" पर वह प्रश्न वीच ही में डूव गया, दोनों चुप बैठे रह गये।

कई मिनट वाद भुवन ने कहा, "कहानी लम्वी है गौरा। पर—वहुत छोटी भी है।" सहसा एक कठोर, निष्करुण भाव से, "आइ लव्ड हर। वी वेयर टु हैव ए चाइल्ड। आइ किल्ड हिम।"[३]

"अ—" गौरा के मुँह से निकला; दोनों की आँखें मिलीं तो भुवन ने देखा, गौरा की आँखों में व्यथा है, विमूढ़ता है, और—अविश्वास है। गौरा धीरे-धीरे वोली, "झूठ मत वोलिए, भुवन दा; अपने को ऐसे क्यों कोस रहे हैं ?"

भुवन ने सहसा उवल कर कहा, "कोसूँ भी नहीं गौरा—तुम नहीं जानती कि मैंने क्या किया है !"

"एक रूखी वात कहूँ, भुवन दा ? आप कहना चाहते हों तो—वात कहें, जजमेंट आप मुझे न दें—वह करना होगा तो मैं स्वयं करूँगी।" सायास मुस्करा कर गौरा वोली, "उतनी कठोर भी हो सकती हूँ—आप की शिष्या हूँ आखि़र !"

फिर एक लम्वा सन्नाटा रहा। फिर भुवन ने कहा, "अच्छा गौरा, आग जला दो। मैं कहता हूँ।"

---

[१] मैं उसे प्रेम करता था। [२] मैं भी उसे प्रेम करती हूँ। [३] मैं उसे प्रेम करता था। हमारी सन्तान होने वाली थी। मैंने उसे मार दिया।

गौरा ने कहा, "सच, भुवन दा? आप नहीं चाहते तो कोई ज़रूरत तो नहीं है—"

"नहीं, जला दो। अगर दीखेगा ही तो देखता जाऊँगा और कहता जाऊँगा।"

गौरा ने आग जला दी। क्षण ही भर में चीड़ की कुकड़ियों ने आग पकड़ ली, प्रकाश जहाँ-तहाँ नाचने लगा, चीड़ के सोंधे, उदार, हृद्य गन्ध-धूम ने वातावरण को छा लिया, जैसे खुले वनाकाश की साँस वहाँ आ कर बस गयी हो।

"गौरा, मैं भाग गया था—तुम से भागा था—पर तुम से भागने के लिए ही नहीं—एक बोझ मुझे दबाता लिये जा रहा था—मेरे कन्धों पर सवार सागर का बूढ़ा—" भुवन कुरसी से उतर कर नीचे गलीचे पर बैठ गया, आग के निकट आ कर आगे झुका हुआ बड़ी-बड़ी अपलक आँखों से आग की लपटों को देखता हुआ। गौरा भी अपलक उसे देखने लगी; भुवन की आँखों में ऐसा आविष्ट, मन्त्र-मुग्ध भाव उस ने कभी देखा नहीं था—मानो भुवन उसे भूल गया है, देश-काल-परिस्थिति सब भूल गया है, केवल लपटों में ही उस का अस्तित्व केन्द्रित हो गया है, उसी में से वह प्राण खींच रहा है...

एक अद्भुत भाव गौरा के भीतर उमड़ अया: कुछ डर, कुछ आशंका, कुछ जुगुप्सा, कुछ श्रद्धा, और सब के ऊपर एक आप्लवनकारी स्नेह...कुछ बहुत निजी, बहुत पवित्र, जिसे उघड़ा नहीं देखते, बहुत निकट से नहीं देखते—ऐसे भाव भर कर वह उठी और भुवन के पीछे जा कर कुरसी पर बैठ गयी। भुवन मानो अकेला हो कर, कुछ और भी आगे झुक कर, धीरे-धीरे बोलने लगा।

"तुम उस के बारे में बुरा नहीं सोचोगी, गौरा; वह—वैसे लोग दुर्लभ होते हैं दुनिया में—और—उस ने मुझे बहुत प्यार किया था, जितना—" वह तनिक रुका और फिर कह गया, "जितना किसी ने नहीं किया। और अब भी करती है। और..."

गौरा सुनती रही। भुवन का स्वर पहले असम था, धीरे-धीरे सम, सधा हुआ होने लगा; और उसी अनुपात में दूर, निर्व्यैक्तिक, रागमुक्त, असम्पृक्त; मानो गौरा के आगे एक सजीव व्यक्ति नहीं, शब्द का एक झरना हो, जो अजस्र भाव से बहता जा रहा हो; कौन पास है, कौन उस के झरझर बहते हुए अभिप्रायों को सुनता है या नहीं सुनता, उस की संवेदना की झिलमिल छायित-द्योतित पन-चादर को देखता है या नहीं देखता, इस से सर्वथा असंलग्न...

और कमरे में चीड़ की आग के आलोक की शिखाएँ नाचती रहीं, लकड़ी की और चीड़ की कुकड़ियों की हलकी चटपट और विस्फूर्जित वाष्पों की फुरफुराहट जैसे स्वर-पृष्ठिका बन कर भुवन की बात को अतिरिक्त बल देती रही....

"...मैं उसे वहीं छोड़ कर चला आया; चलते वक्त उस ने एक कापी और अपनी नीली साड़ी पैकेट बना कर मुझे दी थी जो मैंने बाद में देखी; कापी में बहुत-सी बातें थीं और बाइबल के 'सांग आफ़ सांग्स' के बहुत-से अंश—'**माइ बिलवेड स्पेक एंड सेड अंटु मी, राइज़ अप, माइ लव, माइ फ़ेयर वन, एंड कम अवे; फ़ार लो, द विंटर इज़**

पास्ट, द रेन इज़ ओवर एंड गान, द फ्लावर्स एपीयर,' वगैरह, फिर मैं श्रीनगर चला गया—"

गौरा ने दबे-पाँव उठ कर आग में चीड़ की कुकड़ियाँ और डाल दीं, भुवन की ओर एक बार भी नहीं देखा; फिर पूर्ववत् उस के पीछे आ कर बैठ गयी।

"...तुलियन में हम चार दिन रहे; फिर मैं उसे पहुँचाने पहलगाँव आया; रास्ते में नदी के आर-पार पड़े एक तख्ते के बीच में खड़े हो कर उस ने कहा—उस ने मुझे कहा —मुझ से पूछा कि जीवन में मेरी आकांक्षा क्या थी। मैंने बताया, सर्जन होने की; वह स्वयं बीनकार होना चाहती थी—फिर उस ने कहा, 'उसे मैं वीणा भी सिखाऊँगी, और सर्जन भी बनाऊँगी'—फिर वह चली गयी और मैं तुलियन लौट गया काम करने—..."

आग लपकती और गिरती; कभी एक अध-जली लकड़ी बीच में से टूट कर गिरती और आग का एक भाग दब कर अँधेरा या नीलाभ हो जाता, फिर फुरफुरा कर एक छोटी-सी शिखा उस में से उमग आती और बढ़ जाती। उसी प्रकार भुवन का स्वर कभी मद्धिम पड़ जाता, कभी धीरे-धीरे ऊँचा उठ जाता, कभी उस की वाणी क्षण-भर अटक कर फिर कई-एक द्रुत चिनगारियाँ फेंक देती—यद्यपि साधारण रूप से उस की बात फुलझड़ी-सी नहीं थी, न उस में तारा-फूलों की लड़ियाँ थीं, न घटती-बढ़ती कलाओं का आकर्षण, न वह चटचटाहट जो स्फूर्ति देती है, न वह रंग-बिरंग चमक जो लुभा लेती है...वह थी महतावी की तरह, जिस के भीतर से अंगारे बूँद-बूँद टपकते हैं, पिघली हुई आग के आँसुओं की तरह, जो हवा में भी झरते हैं, पानी के नीचे भी झरते हैं, चुप-चाप, बेरोक झरते जाते हैं, जलते जाते हैं..

"...लेकिन दुबारा जब मैं गया तब—वह बदल गयी थी—मेरी सात-आठ दिन की अनुपस्थिति में उसे ऐसी चिट्ठियाँ आयी थीं कि—मेरी बात उसे आश्वस्त नहीं रख सकी थी और उस ने—उस ने आपरेशन करा लिया था। यह बात मेरे ध्यान में भी न आयी थी —पर मुझे उसे छोड़ कर नहीं जाना चाहिए था क्योंकि तब शायद उस का विश्वास न टूट जाता—मैं..."

भुवन का स्वर धीरे-धीरे बदलने लगा। गला भरा आया; क्रमशः वाक्तन्त्रों की झंकृति कम, और केवल वायु का स्वर बढ़ता चला, यहाँ तक कि बात केवल एक तीखी फुसफुसाहट हो गयी जो कभी-कभी टूट कर स्वनित हो जाती थी, बस..गौरा के रोंगटे खड़े हो गये—वह आवाज़ मानो मानवीय ही नहीं थी, मानो वातावरण में भटकती हुई कोई प्रेत-व्यथा वहाँ पुंजीभूत हो कर स्वरित हो रही हो। वह निश्चल सुनती न रह सकी, पर भुवन को रोक भी न सकी; दबे-पाँव उठ कर उस ने टेबल लैम्प बुझा दी और फिर वहीं आ कर बैठ गयी; भुवन आग को देख रहा था, उसे मालूम ही नहीं हुआ कि पीछे प्रकाश कम हो गया है, वह वैसे ही अमानुषी ढंग से बोलता रहा...

"वह कलकत्ते चली गयी। दिल्ली तक मैं साथ आया था, यहाँ रेल में बिठाया था।

रेल में एक और सवारी ने उस से पूछा था, ये कौन हैं ? तो उस ने कह दिया मेरे—हज-वैंड, सात साल हुए शादी हुई थी। पड़ोसिन उसे बधाई देने लगी—"

सहसा स्वर बन्द हो गया।

निस्तब्ध निश्चलता—आग की जीभें भी उठ रही थीं तो मानो इसी लिए कि पहले से उठ गयी हैं और अब रुकना ही गति होगा, उठते रहना तो अगति है; वैसी ही साँसें—उठतीं और गिरतीं क्यों कि सदा से गिरती आयी हैं, वैसी ही क्षणों की धारा बहती क्योंकि अजस्र बहती आयी है...

न जाने कितनी देर बाद, भुवन की एक शब्द-हीन विरस हँसी—"यह सब मैं क्या कह रहा हूँ।" फिर एक लम्बा मौन; फिर भुवन का रुकता-सा, सोचता-सा स्वर : "यही है मेरी कहानी, गौरा—और तब से मैं आग में देखता हूँ चेहरे—मृत बच्चों के चेहरे—स्वयं अपना चेहरा क्यों कि मैं भी तो मर गया हूँ उस के साथ।"

फिर मौन। फिर भुवन सहसा सिहरता है, एक काला बादल-सा उस के सिर-माथे पर छा गया है और चारों ओर से बहता हुआ-सा उसे डुबाये जा रहा है—वह लड़खड़ा जायगा और धँस जायगा—आँखों के आगे अँधेरा हो रहा है—टटोलते से हाथ वह अपने सिर की ओर, सिर के ऊपर उठाता है—

ऊपर गौरा का झुका हुआ सिर है; उस के खुले बाल आगे ढरक आये हैं और भुवन के चेहरे पर छा गये हैं—भुवन का हाथ स्तब्ध रुका रह जाता है, वह बादल भी स्थिर रुका रह जाता है—फिर टप से एक बूंद उस के माथे पर बरस जाती है—

भुवन के दोनों हाथों की उँगलियों ने ढरके हुए बालों की एक-एक लट पकड़ ली। फिर एक हाथ उस ने छोड़ दिया, हाथ बढ़ा कर गौरा के माथ को धीरे-धीरे थपकने लगा।...

"राह चलते जिस दिन बैठे-बैठे जानूंगा कि मेरे पीछे कोई है और मुड़ कर नहीं देखूंगा, और वह झुक कर अपने खुले बाल मेरी आँखों के आगे डाल देगी, उस दिन मैं जान लूंगा कि मेरी खोज—मेरे लिए खोज समाप्त हो गयी और पड़ाव आ गया।"

यह किस ने कहा था ? मानो किसी पुस्तक में पढ़ी हुई भविष्यवाणी है यह—

सहसा भुवन ने कहा, "गौरा, अब तुम इस सारी बात को भूल जाओ—शायद मुझे तुम्हें कहनी ही न चाहिए थी, व्यर्थ..."

गौरा ने दोनों हाथ भुवन के कन्धों पर रख दिये, और धीरे-धीरे सीधी खड़ी हो गयी। पीछे खड़ी-खड़ी ही बहुत धीमे, खोये-से स्वर में बोली, "तुम—तुम कभी पछताओगे तो नहीं मुझे यह सब बता देने पर ? मैं—"

भुवन ने कहा, "नहीं गौरा, यह तो नहीं लगता। मुझे तो लगता है, कि वह जो बोझ मुझ पर था—वह सागर का बूढ़ा जो मेरे कन्धों पर सवार था, वह उतर गया। सोचता हूँ, पहले ही तुम से कहा होता...पर—शायद कहने का समय नहीं आया था—"

"अब—तुम भागोगे तो नहीं? बोझ उतर गया तो—बताओ, फिर चले तो नहीं जाओगे?"

भुवन थोड़ी देर नही बोला। फिर उस ने एकाएक कहा, "गौरा, बत्ती कैसे बुझ गयी?"

गौरा ने हटते हुए सिर ज़ोर से झटक कर बाल पीछे कर लिये; मेज़ की ओर बढ़ कर टेबल लैम्प उस ने जला दी, कुछ बोली नहीं। भुवन भी नीचे से उठ कर अँगीठी के जँगले पर बैठ गया, ढेर-सी कुकड़ियाँ उस ने आग में डाल दीं। आग भड़क उठी तो उस ने पूछा, "गौरा, कुछ कहोगी नहीं?"

गौरा चुपचाप उस के पास नीचे बैठ गयी। भुवन का एक हाथ नीचे लटक रहा था, उसे अपने हाथों में ले कर धीरे-धीरे सहलाने लगी।

भुवन ने फिर कहा, "गौरा, तुम्हें कुछ कहना नहीं?"

गौरा फिर भी चुप रही।

भुवन ने अपना हाथ खींचते हुए धीमे, कुछ हताश स्वर से कहा, "समझ गया, गौरा। लेकिन एक बार मुँह उठा कर वैसा ही कह दो—"

गौरा ने मुँह उठा कर थरथराते मर्माहत स्वर में कहा, "आप इतने—तुम इतने अबूझ कैसे हो सकते हो? फिर तत्काल संयत, "आप—रेखा दीदी से नहीं मिलेंगे?"

भुवन ने कुछ विस्मित स्वर से कहा, "मैं कलकत्ते मिलता आया हूँ।"

तीन बजे के लगभग गौरा अपने कमरे में चली गयी।

रेखा से भेंट की बात बताते हुए भुवन खड़ा हो गया था, फिर धीरे-धीरे न जाने कैसे दोनों खिड़की के पास जा खड़े हुए थे। भुवन रेखा की बात कह कर चुप हो गया; फिर थोड़ी देर बाद उस ने हठात् पूछा, "गौरा, तुम रेखा से कब मिली थीं, यह तो तुम ने बताया नहीं?"

"वह मिलने आयी थीं—पिछली गर्मियों में।" कुछ रुक कर, "तुलियन से लौटने के बाद। चन्द्रमाधव जी मिलाने लाये थे।"

"ओह।" कह कर भुवन चुप हो गया। आगे कुछ पूछने का उस का मन नहीं हुआ।

"आप चन्द्रमाधव जी से नाराज़ हैं, भुवन दा?"

भुवन सहसा कुछ नहीं बोला, बाहर रात की ओर देखता रहा।

"क्यों नाराज़ हैं भुवन दा? वह आप के मित्र रहे—"

"मित्र!" भुवन ने कड़वे स्वर से कहा। फिर, जैसे इस प्रसंग को यहीं छोड़ देना चाहिए, वह चुप लगा गया।

गौरा ने उस के बात काटने की उपेक्षा करते हुए अपना वाक्य पूरा किया, "और—इतने बड़े भी नहीं हैं कि आप उन के ऊपर गुस्से का भार ढोते चलें—छोड़िए गुस्सा!"

भुवन थोड़ा-सा मुस्करा दिया। फिर धीरे-धीरे बोला, "तुम ठीक कहती हो—उस

गर गुस्सा व्यर्थ है। और अब है भी नहीं। पर मैंने चिट्ठी-पत्री बन्द कर दी थी"—फिर सहसा नये विचार से, "तुम्हें उस की चिट्ठी-विट्ठी आती है? कहाँ है?"

"नियमित आती हो, ऐसा तो नहीं, हाँ, बन्द नहीं हुई। पिछले महीने आयी थी एक बम्बई से। आप क्यों नहीं उन्हें एक चिट्ठी लिख देते—यहीं से?" तनिक रुक कर वह फिर बोली, "सुना है, वह फिर शादी कर रहे हैं—"

"अच्छा?"

फिर थोड़ी देर मौन रहा, दोनों सूनी रात को देखते रहे। लोग एक ही आकाश को एक ही बादल को, एक ही टिमकते तारे को देखते हैं, और उन के विचार बिलकुल अलग लीकों पर चलते जाते हैं, पर ऐसा भी होता है कि वे लीकें समान्तर हों, और कभी ऐसा भी होता है कि थोड़ी देर के लिए वे मिल कर एक हो जायें; एक विचार, एक स्पन्दन जिस में साझेपन की अनुभूति भी मिली हो। असम्भव यह नहीं है, और यह भी आवश्यक नहीं है कि जब ऐसा हो तो उसे अचरज मान कर स्पष्ट किया ही जाय, प्रचारित किया ही जाय—यह भी हो सकता है कि वह स्पन्दन फिर द्विभाजित हो जाय, विचार फिर समान्तर लीकें पकड़ लें...

गौरा ने कहा, "यह बड़ा दिन है, भुवन दा। 'आल पीस आन अर्थ, गुडविल टु मेन।' सोचती हूँ, तो ख्याल आता है कि कितनी सुन्दर भावना है यह—और लगता है कि सचमुच इसे कोई सम्पूर्णतया अनुभव कर सके तो—शिशु ईशा के साथ उस का भी नया जन्म हो जाता होगा।"

भुवन ने सोचते हुए-से कहा, "बिना पीड़ा के जन्म नहीं होता, गौरा—देव-शिशु का भी नहीं। शान्ति की भावना से शान्ति नहीं मिलती—"

"मैं कब कहती हूँ? बल्कि बिना पीड़ा के यह व्यापक कल्याण-भावना भी तो नहीं जागती—'आल पीस आन अर्थ' कह ही वह सकता है जो पीड़ा से गुज़रा है, नहीं तो इस भावना के ही कोई अर्थ नहीं होते।"

फिर एक मौन हो गया। भुवन ने पूछा, "क्या सोच रही हो, गौरा?"

"बहुत कुछ।"

"क्या?"

"पर कह नहीं सकती।"

"नहीं सकतीं, या नहीं चाहतीं?"

"ठीक चाहती ही नहीं, ऐसा तो नहीं कह सकती—पर—सकती नहीं।"

"मेरे गुरु कहा करते थे, 'जो विचार स्पष्ट कहना नहीं आता, वह असल में मन में ही स्पष्ट नहीं है। स्पष्ट चिन्तन हो तो स्पष्ट कथन अनिवार्य है'।" भुवन ने कुछ गम्भीरता से, कुछ चिढ़ाते हुए कहा।

"चिढ़ा लीजिए। पर मैं जो सोच रही हूँ, वह मेरे आगे बिलकुल स्पष्ट है। कह नहीं

सकती तो—इसलिए कि सोचना चित्रों से, प्रतीकों से होता है, कहना शब्दों से; और—शब्द—अधूरे हैं।"

"ऊँहुक्! विचार शब्दों के साथ हैं—शब्द अधूरे हैं तो विचार ही अधूरा है!" भुवन ने ज़िद की।

गौरा ने सहसा घूम कर, दोनों कोहनियाँ खिड़की पर टेक कर उसकी ओर मुँह कर के कहा, "आप—मुझे चैलेंज कर रहे ह ? "

"वैसा समझो तो—" गौरा एकदम गम्भीर हो गयी है, यह उस ने लक्ष्य किया, पर वह खिलवाड़ कर रहा है ऐसा उसे नहीं लगा, उस का ढंग चिढ़ाने का था पर नीचे गम्भीरता थी। "तो—अच्छा, वही सही।"

"तो सुनिए। शब्द अधूरे हैं—क्यों कि उच्चारण माँगते हैं। मैं कह नहीं सकती थी, पर लिख सकती थी चाहती तो। लेकिन आप कहलाना चाहते हैं—लीजिए: मैं सोच रही थी—किसी तरह, कुछ भी कर के, अपने को उत्सर्ग कर के आप के ये घाव भर सकती—तो अपने जीवन को सफल मानती—"

भुवन ने स्तब्ध भाव से कहा, "यह मत कहो गौरा—मैं और नहीं सुन सकता, और अब आगे—हलका ही चलना चाहता हूँ"—

"मैं—तुम्हें कुछ दे नहीं रहीं; वह मेरी ही साधना होती, मैंने इस से बढ़कर कभी कुछ नहीं माँगा कि तुम्हारे काम आ सकूँ और आज भी नहीं माँगती।"

भुवन उस के और पास आ गया। क्षण-भर उस की उठी हुई ठोड़ी के नीचे कंठ की नाड़ी का स्पन्दन देखता रहा, फिर उस की ओर सिर झुकाता हुआ बोला, "तुम मेरी कृतज्ञता लो, गौरा; तुम जो कह रही हो—जो मैंने कहला लिया वही बहुत है—और—आइ एम आल्रेडी हील्ड, नहीं तो तुम से कह पाता ?"

गौरा ने एक हाथ से उस के बाल उलझाते हुए कहा, "न—भुवन—मुझे कृतज्ञता से डर लगता है—उस की ओट में तुम—फिर दूर चले जाओगे न ?"

भुवन सीधा हो गया। "क्या करूँगा, गौरा, यह तो नहीं जानता; यह जानता हूँ कि विधि ने मुझे मेरी पात्रता से अधिक दिया है। और यह अच्छा नहीं लगता। लोगों से—अपने स्नेहियों से—अधिक ले सकता हूँ, उन का कृतज्ञ हो सकता हूँ; विधि से नहीं, क्योंकि उस के प्रति कृतज्ञता का कोई मतलब नहीं होता।"

गौरा के सामने से हट कर वह कमरे में टहलने लगा। गौरा वहीं खड़ी उसे देखती रही।

"गौरा, रात बहुत हो गयी—बल्कि यह तो भोर है—जाओ, सोओ अब। सवेरे उठोगी ?"

"हाँ—घूमने चलोगे ? पर अभी जाने को जो नहीं है। आग बड़ी सुन्दर जल रही है।"

"तुम तो इतनी दूर खड़ी हो आग से--" भुवन ने सहसा कॉर्निस की देख कर कहा, "और ये तुम्हारे नरगिस तो इस गर्मी में मुरझा गये--मैंने पहले ध्यान नहीं दिया --" उस ने बढ़ कर कॉर्निस से फूलदान उठाया और कमरे के पार मेज़ की ओर ले चला। गौरा ने रास्ते में आगे बढ़ कर उस से फूलदान ले लिया, बोली, "सूँघिए इनको।" भुवन ने फूलों में मुँह छिपा कर लम्बी सांस खींची।

"बस, अब मुरझा जायें!" कहती हुई गौरा ने फूलदान मेज पर रख दिया। "और बहुत हैं--रोज लाऊंगी।"

भुवन ने स्नेहपूर्ण आग्रह से कहा, "अच्छा, अब सोने जाओ।"

"मैं तो सोयी ही थी। तुम्हीं तो नहीं सो पाये--अकेले डर लगता है!" गौरा ने चिढ़ाया।

भुवन ने मुस्करा कर स्वीकार किया कि वह दोषी है।

"अच्छा, अब तो नहीं डरोगे?" कुछ रुक कर, कोमलतर स्वर से, "आग से तो नहीं डरोगे अब--"

"नहीं। अब नहीं। यह आग तो तुम्हारी आग है।"

गौरा ने एक क्षण चारों ओर देखा।। फिर आगे जा कर बहुत-सी कुकड़ियाँ आग में डाल दीं। बोली, "हाँ, यह मामूली आग थोड़े ही है--आप की नींद के लिए खास सुगन्धित आग जलायी गयी है--हां।"

भुवन खड़ा मुस्कराता रहा। गौरा ने पास आ कर आँख भर कर उसे देखा, फिर बोली, "अच्छा मैं जाती हूँ--तुम सो जाना अभी, हाँ?"

भुवन ने धीरे से सिर हिलाया, "हाँ।"

गौरा ने सहसा खिल कर कहा, "बच्चे हो तुम भी--बिल्कुल शिशु! अच्छा, अब से तुम्हें यही कहूँगी--बड़े-बड़े वैज्ञानिक नामों से डर लगता है।"

वह चल पड़ी। किवाड़ खोल कर आधी बाहर जाते-जाते मुड़ कर शरारत से बोली, "शिशु?" और चली गयी, पीछे उस ने भुवन का स्वर सुना, "जुगनू।"

भुवन सो कर देर से उठा, नींद खुलने के साथ ही एक वाक्य उस के मन में गूँज गया: "शब्द अधूरे हैं--क्योंकि उच्चारण माँगते हैं, मैं कह नहीं सकती थी, पर लिख सकती थी चाहती तो।" और सहसा उस की सब इन्द्रियों की चेतना सजग हो आयी, सब से दीर्घ-सूची घ्राणेन्द्रिय की भी, उस के नासा-पुटों में चीड़ के धुएँ और नरगिस के फूलों की मिश्रित गन्ध भर गयी और उस ने जैसे उस में दोनों गन्धों को अलग-अलग पहचान लिया।

"यह आग तो तुम्हारी आग है।" और यह गन्ध? यह गन्ध? भुवन अकुलाया-सा उठा, जल्दी से उस ने मुँह-हाथ धोया और ड्रेसिंग गाउन लपेट कर फिर पलँग के सिरे पर बैठ गया।

क्यों उस ने गौरा को वाध्य किया था वोलने को ? अपनी वात वह कहना चाहता था, उसे कहनी चाहिए थी, उस से वह भार-मुक्त भी हुआ, वह ठीक था—पर गौरा से क्यों उस ने कहलवाया जो कहलवा कर छोड़ नहीं दिया जा सकता--कुछ कर्म माँगता है ?

यह नहीं कि गौरा ने कहा नहीं था। जव वह अपनी कहानी कह रहा था तव गौरा जिस प्रकार से अदृश्यप्राय हो गयी थी--फिर सहसा उस ने अपने केशों से उसे छा लिया था--उसे जिस ने गौरा को कहा था कि जव वैसा होगा तव वह जान लेगा कि खोज पूरी हो गयी--फिर उस का अधिकार-पूर्वक चन्द्रमाधव की ओर से पैरवी करना; ये सव क्या हैं अगर नहीं हैं एक आत्म-विश्वास के सूचक, ऐसे आत्म-विश्वास के, जो किसी गहरे भावैक्य से, सम्पर्क से पैदा होता है ? शब्द अधूरे हैं—उच्चारण माँगते हैं; गौरा अनुच्चारित सम्पूर्ण वात कह गयी है।

भुवन खड़ा होकर इधर-उधर टहलने लगा। नहीं यह असम्भव स्थिति है, ऐसा नहीं चल सकता ! वह भी अधूरा है, वल्कि पंगु है, क्या हुआ वह पंगुता घाव नहीं है तो—सम्पूर्ण को वह कैसे स्वीकार कर सकता है ? कुछ भी कैसे स्वीकार कर सकता है जो केवल स्वीकार है, दान नहीं है ? 'दो, दो, दो, जव तक कि तुम्हारा हृदय मुक्त न हो जाय !' —देने में ही मुक्ति है—स्वास्थ्य है--यह तो किसी ने नहीं कहा कि ले लो, सव स्वीकार करते चलो---दुर्भाग्य हो, व्यथा हो, हाँ, तव स्वीकार है : **'आमार भार लाघव करि नाई वा दिले सान्त्वना, वहन जेन करिते पारि'**;*—-पर यह. . .यहाँ स्वीकार से पहले वहुत सोचने की ज़रूरत है . . .उसे याद आयी रेखा की वात, "और भी वातें सोचने की हैं न, इसी लिए यह वांत सोचने की नहीं रही—-यह तभी सोची जा सकती है जव एक और अद्वितीय हो, दूसरी किसी वात से असम्वद्ध हो।. . ." वह प्रसंग दूसरा था, और तव वह झल्लाया था, पर रेखा की वात ठीक थी—-रेखा की सव वातें ठीक थीं, क्या हुआ वह फिर भी हारी तो—-वल्कि इसी लिए तो हारी वह; मानव का विवेक सम्पूर्ण नहीं है, पर या तो वह विलकुल अमान्य है, या वह अनिवार्यतः सर्वदा मान्य है . . .नहीं, वह गौरा से कह देगा, आज ही कह देगा।

वह उद्विग्न-सा वाहर जाने लगा। किवाड़ उस ने खोले, फिर क्षण-भर वहीं ठिठका रहा; दिन तो वहुत चढ़ गया है, क्या इसी रूप में वाहर घूमना उचित होगा, या वह कपड़े पहन ले ?

दूसरी ओर किवाड़ खुला। उनींदी आँखों को झपकती हुई गौरा निकली। उसे किवाड़ में खड़ा देख कर वोली, "अरे, तो आप अभी उठे हैं—-मैं समझी अकेले घूमने चले गये होंगे—मैं तो घवरा गयी थी—मैं अभी मुँह-हाथ धो कर आयी, आज तो वड़ा दिन है—-

---

* मेरा भार हलका करके सान्त्वना चाहे न भी देना, उस भार को वहन कर सकूँ (ऐसा ही हो)। —रवीन्द्रनाथ ठाकुर

मेरा बड़ा दिन--" सहसा रुक कर उस ने आँखें बड़ी कर के देखा, क्यों कि भुवन तब तक कुछ बोला ही नहीं था; भुवन के चेहरे का गूढ़ भाव देख कर फिर बोली, "क्या सोच रहे हो सवेरे-सवेरे, शिशु ?" उस की मुस्कराहट के उत्तर में भुवन भी सायास मुस्कराया; वह लौट कर फिर कमरे में चली गयी।

भुवन भी किवाड़ खुला छोड़ कर कमरे में लौट गया, और मेज़ के पास लगी कुरसी पर बैठ गया, एकाएक असहाय। वह कहेगा—कह देगा; पर अभी नहीं, आज के बड़े दिन नहीं . . .

सामने मेज़ पर पड़े नरगिस अपनी अनझिप आँखों से उस की ओर देखते हुए फीके-से मुस्करा दिये।

हाँ, यह गन्ध भी तुम्हारी गन्ध है—आग की भी, फूल की भी . . .

* * *

गौरा अपने कमरे में जाकर तुरन्त सोयी नहीं।

उस के कमरे की दो खिड़कियों में से छोटी खुली थी, बड़ी नही, क्यों कि उस ओर हवा का रुख था; अब उस ने बड़ी खिड़की भी खोल दी। हवा के झोंके ने एक हलकी सिहरन उस की देह में दौड़ा दी; वह उसे अच्छा लगा। वह खिड़की में जा कर खड़ी हो गयी। इस खिड़की के नीचे गेंदे के चार-पाँच बड़े-बड़े पौधे थे; बिजली की रोशनी में उन के बड़े-बड़े पीले और कत्थई फूल चमक गये। क्या बेतुका फूल है गेंदे का भी; यूरोपियन मेमों को जब भारत आते ही एकाएक साड़ी पहनने का शौक सवार होता है तब वे जो, जैसी, जिन चटक रंगों की साड़ियाँ—और जैसे !--पहनती हैं, उस पर मानो नीरव अन्योक्ति है गेंदे का फूल ! इस तुलना पर गौरा तनिक-सी मुस्करा दी, फिर वह बत्ती बुझाने को मुड़ी कि इन फूहड़ मेम साहबों की उपस्थिति से छुट्टी पा जाय पर इरादा बदल कर वहीं लौट आयी। गेंदों की ओर उस ने फिर देखा, स्थिर दृष्टि से; कल्पना की जा सकती है कि ये झाड़ियाँ जल रहीं हैं—झाड़ियों के भीतर छिपायी गयी आग फूट कर बाहर निकल रहीं है. . .भुवन के कमरे से बड़ी स्निग्ध गरमाई थी—भुवन शीघ्र सो जाय शायद, उसे अभी नींद नहीं आ रही है और इस कमरे में आकर तो और भी नहीं, यह ठंड शरीर को नयी स्फूर्ति दे रही है।

उसने कल्पना की भुवन की उस मुद्रा की, जिस में वह उसे छोड़ आयी थी कमरे के बीच में खड़ा हुआ; और भुवन की आवाज़ उस के कानों में गूंज गयी, "जुगनू !" न जाने बचपन में वह इस नाम से इतना क्यों चिढ़ती थी; अब भी भुवन ने उसे चिढ़ाने या पुरानी चिढ़ की याद दिलाने के लिए ही इस नाम से पुकारा था, पर वह उसे अच्छा लगा था, और लग रहा था : वह नाम मानो एक सेतु था इतने दिनों के व्यवधान और दुराव के पार उस के बचपन के सुखमय दिनों तक, जब वे एक-दूसरे की बात नहीं सोचते थे पर

एक-दूसरे को जानते थे, सहज भाव से...सहज भाव अब नहीं है, अब वे सोचते हैं, कहते हैं, दूर हटते हैं और फिर दूरी को उलाँघते हैं : बचपन के साथी पास होते हैं, यौवन के साथी पास आते हैं—लेकिन आने की अवस्था ही क्या होने की श्रेष्ठ अनुभूति नहीं है ?

वह भुवन से क्या कह आयी है—कितना कह आयी है ? कुछ भी कह आयी हो, वह कुछ भी कह नहीं पायी है यह वह जानती है, और भुवन सुन कर भी क्या सुनता है वह नहीं जानती।

"आप मुझे चैलेंज कर रहे हैं ! तो सुनिये—" किस दुस्साहस से वह कह गयी थी.. .लेकिन उसे अच्छा लगा कि वहाँ वह साहस कर आयी—सचमुच वह भुवन का दर्द धो देने के लिए कुछ भी कर सके तो सहर्ष तैयार है। भुवन के लिए नहीं,अपने लिए, क्यों कि सुखी भुवन उस के जीवन के लिए आवश्यक है—उसके आधार पर उस ने अपने जीवन का दर्शन खड़ा किया है..."मैं कह नहीं सकती थी अगर चाहती तो,"—अगर भुवन उसे फिर चुनौती देता कि अच्छा देखूँ, लिखो—तो...क्या वह लिखती ? शब्द अधूरे हैं, उच्चारण माँगते हैं; लेकिन शब्दों के अन्तराल, पदों-वाक्यांशों की यति में, उस यति के मौन में एक शक्ति है जो उच्चारण के अधूरेपन को ढँक देती है, सम्पूर्णता देती है; और लिखने में वह नहीं है, लिखना बहुत पड़ता है...जैसे स्पर्श में—हलके-से-हलके भी स्पर्श में—कहने की जो शक्ति है वह किसी दूसरी इन्द्रिय में नहीं है—स्पर्श-संवेदना सब से पुरानी संवेदना जो है, और बाकी सब उस के विस्तार...

गौरा धीरे-धीरे खिड़की से हट कर बिछौने पर बैठ गयी, पास की छोटी मेज़ के निचले ताक से उस ने पैड और कलम उठाया और गोद में रख लिया। नहीं, वह कुछ लिखना नहीं चाहती है, लिख कर कहना तो और भी नहीं; पर केवल एक आत्मानुशासन के रूप में—केवल अपने को स्थिर-चित्त करने के लिए वह दो-चार वाक्य लिखेगी—और नहीं तो इस प्रकार अपना प्रतिबिम्ब देखने के लिए—उस के भीतर जो है वह कितना खरा है ? कितना अच्छा है ? कितना गहरा, सच्चा, अर्थाविष्ट है ? या नहीं है...

वह रुक-रुक कर बारीक अक्षरों में एक-एक दो-दो पंक्ति लिखने लगी।

"सचमुच मेरे जीवन का सब से बड़ा इष्ट यही है कि तुम्हें सुखी देख सकूँ—तुम्हारा व्रण ठीक कर सकूँ। मेरे स्नेह-शिशु, मैं तुम्हारे ही लिए जीती हूँ, क्यों कि तुम में जीती हूँ...

"मेरा सहज बोध मुझे बताता था—पर तुम दूर थे, तुम और दूर भागते रहे और मैं विश्वास नहीं जुटा पाती थी—मैं अन्तर्यामी तो नहीं हूँ। मैंने मान लिया, भक्त कवि ही ठीक कहते हैं, प्रिय को पाना ही निष्पत्ति नहीं है, विरह का भी रस है, और वह रस भी एक मार्ग है...

"मेरे शिशु, स्नेह-शिशु। भक्तों ने जो कृष्ण के बाल-रूप की

बहुत बड़ी कल्पना है. . .जिसे मैं गोद खिलाती हूँ, वह अवतार भी है, भगवान् भी है--यशोदा जिसे पालने डुलाती है, वात्सल्य देती है, उसी को अपार श्रद्धा भी देती है, राधा जिस दही-चोर को धमकाती है, उसी के पैर भी पूजती है--कोई भी प्यार नहीं है जो वत्सल नहीं है; कोई भी दान नहीं है जो विनीत नहीं है. . .

"तुम मेरा भविष्य हो, इस लिए मैं तुम्हें बनाती हूँ।

"तुम ने मुझे विश्वास दिया है; मैं तुम्हारी बहुत कृतज्ञ हूँ। मुझे लगता है, मैंने बहुत बड़ी निधि पायी है, ऐश्वर्य पाया है। और तुम से। मेरे जीवन के सारे तन्तु तुम्हारे चारों ओर लिपट गये हैं। वे बहुत सूक्ष्म हैं, तुम्हें बाँधेंगे नहीं, पर तुम उन्हें छुड़ा नहीं सकोगे, तोड़ ही सकोगे--और सब नष्ट कर के ही। उन का कोई बोझ तुम पर नहीं होगा. . .

"आग से तुम नहीं डरोगे अब--किसी चीज़ से नहीं डरोगे! आग को मैं सुगन्धित कर दूंगी, शिशु; ज़रूरत होगी तो स्वयं उस में होम हो जाऊँगी पर तुम नही डरोगे, मुझे वचन दो; अपने को नहीं सताओगे--डर से नहीं, परिताप से नहीं. . .और हाँ, प्यार से भी नहीं--वह तुम्हें क्लेश दे तो उसे भी हटा देना! तुम देवत्व की साँस हो, देवत्व की शिखा हो जिसे मैं अन्तःकरण में पालूंगी. . ."

पन्ना उलट कर गौरा रुक गयी। पिछले तीन घंटों का दृश्य उस के मन में फिर उभर आया। उसे ध्यान आया, उस ने जब-जब पूछा था कि तुम भाग तो नहीं जाओगे, तब-तब भुवन ने बात पलट दी थी, उत्तर नहीं दिया था। तो क्या वह उसे छोड़ कर चला जायेगा--क्या वैसा इरादा उस ने कर रखा है?

गौरा से अभी नहीं सोचेगी। वैसा ही है, तो वैसा ही हो। वह साँस, वह शिखा, छोड़ कर चली जाये तो चली जाये। उस साँस से वंशी वंशी है, जिस में समूचे वन-प्रान्तर की आकांक्षा बोलती है, नहीं तो केवल बाँस की एक पोर; फिर भी. . .

फिर उस ने लिखना आरम्भ किया:

"वचन दो कि तुम अपने को अनावश्यक संकट में नहीं डालोगे. . .जो आवश्यक है, उस से मेरी होड़ नहीं, वह तुम्हें पुकारे, उसे तुम वरो; पर जो अनावश्यक है, उसे तुम नहीं पुकारोगे!"

पैड को थोड़ा परे सरका कर, उस ने निःस्वन ओठों से पुकारा, "भुवन. . ." फिर वैसे ही दुबारा, "भुवन. . ."

"मैं तुम्हें पुकारती हूँ। बार-बार पुकारती हूँ, यहाँ तक कि मेरी पुकार ही सम्मोहिनी बन कर मुझे शान्त कर देती है, मेरी माँग को सुला देती है।"

उठ कर उस ने दो-तीन चक्कर लगाये। फिर धीरे से बाहर निकल कर वह भुवन के कमरे तक गयी; किवाड़ से कान लगा कर उस ने सुना, कोई शब्द नहीं था। किवाड़ों के बीच की दरार से झाँका, भीतर अंधेरा था; आग की बहुत हलकी-सी लोहित आभा

थी, बस। लौटती हुई क्षण-भर वह बीच के कमरे के आगे ठिठकी, उस का मन हुआ कि भीतर से सितार निकाल कर बजाने बैठे; पर फिर वह आगे बढ़ कर अपने कमरे में चली गयी। किवाड़ बन्द कर के बत्ती बुझा कर लेट गयी।

दूर बहुत हलके चार खड़के, पर गौरा ने नहीं सुना।

बड़ा दिन...गौरा भुवन को नाश्ते के लिए ऊपर ले गयी; नाश्ते के बाद सब लोग टहलने निकले। अधिक नहीं घूमे, शाम को दुबारा घूमने जाने की ठहरी। लौट कर गौरा के पिता बरामदे में आराम-कुरसी पर लेट गये और भुवन उन के पास बैठा बातें करता रहा। दोपहर का भोजन हुआ, उस के बाद पिता फिर उसी कुरसी पर बैठ कर तिपाई पर पैर फैला कर ऊँघते रहे; गौरा से यह संकेत पा कर कि 'लंच के बाद पापा आराम करेंगे', भुवन अपने कमरे में चला गया। बड़े दिन को कभी विशेष महत्त्व उस ने नहीं दिया था, पर गौरा की बात का असर उस पर था, बैठ कर उस ने चन्द्रमाधव को एक छोटी-सी चिट्ठी लिख डाली; फिर रेखा को भी एक, और अपने कालेज को भी दो-एक; फिर रात के जागरण के कारण उसे भी ऊँघ आने लगी और वह सो गया। दो-ढाई घंटे की नींद के बाद कोई पाँच बजे जब वह उठा, तो गौरा के कमरे से सितार के बहुत हलके स्वर आ रहे थे। उस का मन हुआ, अगर वह गा सकता...पर नहीं, गाता तो शायद कुछ उदास गान ही गाता, और गान को उदास होना हो तो मौन ही क्या बुरा है? वह अलसाया-सा लेटा सुनता रहा; सितार के तार झनझना भी देते हैं, पर विचलित भी नहीं करते, जैसे किसी सोये को कोई थपकी दे-दे कर उद्बोधन करे...

सितार बन्द हो गया, उस के दो-चार मिनट बाद गौरा चाय का ट्रे लिये उस के कमरे में प्रविष्ट हुई। ट्रे रखते हुए बोली, "सोये?"

"हाँ, खूब। तुम?"

"थोड़ा। दिन में सो नहीं पाती—जाड़ों में।"

"रात तो सोयी थीं—जा कर क्या करती रहीं?"

"और रतजगा थोड़े ही करती?" गौरा ने टाला।

भुवन ने ताड़ते हुए पूछा, "क्या करती रहीं?"

"आवृत्ति।"

"क्या—काहे की?"

गौरा ने एक बार नकली झल्लाहट की अर्थ-भरी दृष्टि से उस की ओर देखा, और मुस्करा कर बोली, "शिशु, शिशु, शिशु।"

भुवन ने भी मुस्करा कर उस की नकल करते हुए कहा, "जुगनू, जुगनू," और क्षण-भर की अवधि दे कर, खिल कर, "हिडिम्बा!"

चाय पीते-पीते भुवन ने पूछा, "घूमने की पक्की है न—मैं तैयार हो जाऊँ?"

"आप को शर्म नहीं आयेगी माल पर एक हिडिम्बा के साथ घूमते?"

भुवन ने अप्रस्तुत भाव से कहा, "धत् !" फिर सँभल कर, "पर मैं तो पिता जी के साथ जाऊँगा न—"

"वह तो चले गये पहले—आप सो रहे थे तब। ज्यादा ठंड में वह नहीं रहना चाहते न !"

गौरा जब तैयार हो कर आयी तो भुवन ने कहा, "ओ, यह हिडिम्बा का माया-रूप है न, इतना सुन्दर !"

गौरा तनिक-सी झेंप गयी, पर उस के चेहरे की कान्ति ढलती धूप में और भी दमक उठी। भुवन अचम्भे में भरा देखता रहा, जैसे पहले-पहल उसे देखा हो।

* * *

सप्ताह बहुत छोटा होता है—बहुत जल्दी बीत गया। उस में कुछ लम्बा था तो उन की बहसें, लेकिन वे भी किसी परिणाम पर नहीं पहुँचीं; प्रायः ही बात-चीत के बाद परिणाम निकलता कि घूम आया जाये—या कभी-कभी गौरा सितार बजाने बैठ जाती, कभी भुवन अकेला सुनता, कभी गौरा के माता-पिता भी रहते।

नये साल के दिन भुवन भी सवेरे जा कर बहुत से फूल खरीद कर लाया, गौरा भी। गौरा पहले लौटी थी और फूल सजा रही थी जब भुवन पहुँचा; भुवन की 'अरे !' सुन कर वह उठी, भुवन के हाथों में वही-वही फूल देख कर 'अरे' का अर्थ तुरत समझती हुई उस ने भुवन के हाथ से सारे फूल ले लिये और बोली, "ये सब मैं अपने कमरे में रखूँगी। आप चल कर सजा दीजिए न—"

भुवन ने कहा, "गौरा, नया वर्ष शुभ हो तुम्हारे लिए—"

"और आप के—"

गौरा के कमरे में पहुँच कर भुवन ने एक नज़र चारों तरफ डाली; गौरा ने फूल उसे पकड़ाते हुए कहा, "ज़रा इन्हें लीजिए, मैं फूलदान ले आऊँ।" पानी-भरे फूलदान ला कर उस ने खिड़की में रख दिये और बोली, "लीजिए, अब अपने मन से इन्हें सजा दीजिए।"

भुवन सजाने लगा। गौरा ने कहा, "मैं अभी आयी," और बाहर चली गयी; भुवन के कमरे में फूल रख कर वह लौटी तो वह एकाग्र चित्त से फूल सजा रहा था, एक फूलदान उस ने पलँग के सिहारने रख दिया था, दो और सजा रहा था। गौरा का आना उस ने लक्ष्य नहीं किया। वह क्षण-भर उसे निहारती रही, फिर एकाएक आगे बढ़ कर उस ने भुवन के पैरों में झुकते हुए धीरे-से कहा "मेरा प्रणाम लो, शिशु—"

भुवन ने बिलकुल अचकचा कर कहा, "यह क्या गौरा—शिशुओं को प्रणाम करते हैं ?" उस के हाथ का फूल छूट कर गौरा की पीठ पर गिया।

"हाँ—देव-शिशु को प्रणाम ही करते हैं।" गौरा धीरे-धीरे उठी, उठते-उठते उस ने

एक हाथ पीछे मोड़ कर पीठ पर गिरा फूल पकड़ लिया कि नीचे न गिरे, फिर उसे बालों में खोंस लिया।

तीसरे पहर की सर्विस से, पूर्व-निश्चय के अनुसार, भुवन नीचे चला गया, दूसरी तारीख को उसे कालेज पहुँचना था।

* * *

संगीत-शिक्षित गौरा अपने कालेज में सर्वप्रिय थी; पर मसूरी से लौट कर कालेज जाने पर मानो लोगों ने उसे नयी दृष्टि से देखा। "मसूरी आप को बहुत माफ़िक़ आयी है।" "मिस नाथ, आप कोई कम्प्लेक्शन क्रीम लगाती हैं—हमें भी बता दीजिए!" "मसूरी की हवा में कुछ जादू मालूम होता है।" इस प्रकार के बीसियों वाक्य उसे रोज़ सुनने पड़ते—अन्य अध्यापिकाओं से भी, छात्राओं से भी; कभी वह मन-ही-मन झल्ला उठती पर चेहरे पर एक सूक्ष्म अन्तर्मुखीन मुस्कराहट लिये वह अपने काम में लीन घूमती रहती, कुछ कहती नहीं; कभी इन बातों से वह थोड़ा-सा झेंप जाती और धीरे-धीरे कुछ गुनगुनाने लगती; कभी एकान्त में बैठ कर देर तक सितार या तबला भी बजाती रहती, उस की यों ही ढीली रहने वाली कबरी खुल जाती और बाल कन्धे पर झूल जाते, एक-आध उड़ कर माथे पर आ जाता या आँखों के नीचे कुंडल बना देता और उस की छवि और भी मनोहारिणी हो आती...अध्यापिकाओं में गौरा का कबरी-बन्धन पहले ही एक मज़ाक था: अध्यापिका, फिर युक्त प्रान्त की—बालों को कस कर, चिपका कर बाँधने का उन के निकट बहुत महत्त्व था और गौरा की इस महत्त्वपूर्ण विषय में इतनी उपेक्षा को वे सहज भाव से न ले पाती थीं। दो-एक मलाबारिनें भी ढीले बाल बाँधती थीं, पर वह दूर द्राविड देश है, और रामायण पढ़ने वाली महिलाओं के मन में अब चेतन रूप से यह बात तो रहती ही है कि विन्ध्य के पार सब जंगल है—और दूर दक्षिण में तो बनौकस रहते हैं, जानी बात है। लेकिन गौरा दक्षिणी नहीं है...पर छात्राओं को यह प्रकृत रूप अच्छा लगता, वे कभी मज़ाक भी करतीं तो प्रीति-भाव से।

महीने के अन्त में—जनवरी १९४२—गौरा और भुवन के एक-दूसरे को लिखे गये पत्र दोनों को लगभग साथ-साथ मिले। भुवन ने गौरा को बसन्त की शुभ कामनाएँ भेजी थीं और यह सूचना दी थी कि वह फिर बाहर जा रहा है—ठीक विदेश नहीं, पर सागर-पार; हिन्द महासागर में कहीं—कदाचित् अंडमान में—रेडियो के नये प्रयोग के लिए एक छोटा-सा केन्द्र बन रहा है, उसी में। केन्द्र सैनिक नियन्त्रण में होगा और इस अन्वेषण का इस समय सामरिक महत्त्व ही अधिक है यद्यपि आगे वह अत्यन्त उपयोग होने वाला है। अधिक दिन के लिए नहीं जा रहा है; नये सेशन से पहले ही लौट आयेगा शायद। गर्मियों की छुट्टियों में गौरा तो दक्षिण होगी शायद, हो सकता है कि लौट कर वह उधर आये...अन्त में एक वाक्य और था, "मैं असुखी नहीं हूँ गौरा, न—उन पिछली बातों से

तप रहा हूँ; तुम चिन्ता न करना, और अपनी देख-भाल करना।"

गौरा की चिट्ठी भी मुख्यतया सूचना के लिए थी। गर्मियों का अवकाश वह दक्षिण में ही बितायेगी—मद्रास या बंगलौर में किसी संगीताचार्य के पास—और तभी वहीं निश्चय कर लेगी कि और एक वर्ष भी उधर ही रह जाय या वापस बनारस आवे। पत्र के साथ उस ने बम्बई के अखबार की कतरन भेजी थी: "इस कटिंग में अवश्य तुम्हें दिलचस्पी होगी: मैं तो अवाक् हो कर सोचती हूँ कि चन्द्रमाधव कैसे कम्युनिस्ट हो सकते हैं—मनसा भी, और उन के इधर के काम तो बिल्कुल इस के विरुद्ध जाते हैं, और यह विवाह...फिर भी आशा है तुम उन्हें शुभ कामनाओं का एक पत्र लिख दोगे। मैं भी लिख रही हूँ। बधाई का भाव तो मन में नहीं उठता—झूठ क्यों बोलूंगी—पर सत्कामनाएँ भेजूंगी।" अन्त में उस ने भी अधिक निजीपन से लिखा था, "मैं 'तुम' लिख गयी हूँ—बिना इजाज़त लिये ही—बुरा तो न मानोगे? बोलने में, लगता है अब भी मिलूँगी तो 'आप' ही कहूँगी, पर चिट्ठी में 'तुम' लिखना ही आसान भी और ठीक भी जान पड़ रहा है, बल्कि सोचती हूँ, 'आप' अब कैसे लिखूं? आप नाराज़ तो न हो जाइयेगा, देव-शिशु?"

इस के साथ जो कतरन थी उस में चन्द्रमाधव के विवाह का समाचार और विवरण था। उस का सारांश यह था कि बम्बई में २७ जनवरी सन् १९४२ को सुप्रसिद्ध जर्नलिस्ट कामरेड चन्द्रमाधव का विवाह आर्य-समाजी पद्धति से मिस चन्द्रलेखा से हुआ। मिस चन्द्रलेखा प्रसिद्ध अभिनेत्री हैं। विवाह के पूर्व शुद्धि-संस्कार का उल्लेख था जिस से विदित होता था कि मिस चन्द्रलेखा अहिन्दू रहीं। विवाह के बाद पार्टी हुई जिस में सिनेमा जगत् के अनेक सितारे उपस्थित थे, और बम्बई के भद्र-समाज के कई अग्रणी व्यक्ति—इन की सूची भी थी। कामरेड चन्द्रमाधव स्थानीय 'प्रोग्रेसिव जर्नलिस्ट बिरादरी' के उप-प्रधान और प्रमुख प्रोग्रेसिव बौद्धिक और लेखक थे; अनेक जर्नलिस्ट और प्रोग्रेसिव लेखकों तथा कम्युनिस्ट केन्द्रीय समिति के कुछ सदस्यों ने भी उत्सव में भाग लिया था और कामरेड चन्द्रमाधव को बधाई दी थी।

भुवन का उत्तर गौरा को एक महीने बाद मिला। किसी सैनिक डाकघर की उस पर मुहर थी; गौरा ने अनुमान से जान लिया कि अंडमान से आया होगा। चन्द्रमाधव को भुवन ने शुभ कामनाएँ भेज दी थीं; गौरा के दक्षिण जाने का निश्चय पक्का हो गया यह जान कर उसे प्रसन्नता हुई थी और आशा थी कि वह उसे शीघ्र मिलेगा—जहाँ वह था वहाँ काम तो बहुत था पर इस की सम्भावना कम थी कि अधिक दिन रहना पड़े। (इस से गौरा ने अनुमान लगाया कि कदाचित् वहाँ संकट आने की सम्भावना है।) और चन्द्रमाधव के विषय में गौरा ने पूछा था, उस का उत्तर देते हुए लिखा था: "राजनीति के बारे में मेरा कुछ कहना अनधिकार है—मेरा वह क्षेत्र बिलकुल नहीं है। पर जैसा मैं देखता हूँ, हमारे देश में कम्युनिस्ट दो प्रकार के हैं—एक तो जो वास्तव में

मज़दूर हैं, दूसरे मध्य या उच्च वर्ग के कुछ लोग जो अपनी परिस्थितियों के उत्तर-दायित्व से भागते हैं—या भाग गये हैं। यह तुम्हारा प्रश्न ठीक है कि ऐसे आदमी कैसे कम्युनिस्ट हो सकते हैं; मेरा ख्याल है कि ऐसे सम्पन्न साम्यवादी, साम्यवादी क्षेत्र में भी उतने ही अविश्वसनीय होते हैं जितने उस क्षेत्र में जिस से वे भागते हैं—यानी जिन के उत्तरदायित्व से भागते हैं पर जिस की सहूलियतों और विशेषाधिकार को नहीं छोड़ना चाहते। और मैं समझता हूँ कि वे तब तक अविश्वससीय रहते हैं, जब तक कि कोई बड़ी कुंठा उन्हें सदा के लिए पंगु नहीं बना देती—कुंठित व्यक्ति ही विश्वास्य वर्गवादी बन सकता है. . .मज़दूर वर्ग के जो हैं, उन्हें तो सामाजिक वर्गीकरण का और वर्ग-स्वार्थों का उत्पीड़न कुंठित किये ही रहता है, जो वर्ग-समाज में ऊँचे पर होते हैं वे किसी दूसरे प्रकार से कुंठित हो कर पक्के हो जाते हैं। चन्द्रमाधव भी अत्यंत कुंठित व्यक्ति है—जब तक नहीं था, तब तक उस में असन्तोष बहुत था पर यह रूप उस ने नहीं लिया था: अब वह कुंठित हो चुका है और उस का असन्तोष युक्ति से परे हो गया है—कुंठित होना अब उस के जीवन की एक आवश्यकता बन गया है, उस की कुंठा और उस का वाद परस्पर-पोषी हैं, और एक-दूसरे को और गहरा पहुँचाते हैं। किसी पर दया करना पाप है, नहीं तो मैं चन्द्र को दया का पात्र मान लेता। अब इतना ही कहूँ कि वह भी 'वन **मोर ट्रायम्फ़ फ़ार डेविल्स एंड सारो फ़ार एंजेल्स** * है...''

पत्र में अन्तरंग बात कुछ नहीं थी। गौरा को कुछ निराशा तो हुई, पर अधिक नहीं; उसे इसी में स्वाभाविकता दीखी, कुछ यह भी लगा कि यही उस की वर्तमान स्थिति को सहनीय बनाता है, नहीं तो वह व्याकुल हो उठती। पत्र में कुछ औपचारिक आत्मीयता की बात होती तो अधिक क्लेशकर होती, आत्मीयता की कोई बात ही न होना उदासीनता का नहीं, अनुशासन का द्योतक था; और आत्मानुशासन अगर भुवन के लिए सहल है तो उस के लिए और भी सहल होना चाहिए—सहल और हाँ, उपयोगी भी क्योंकि वह जीवन को माँजेगा और और एक नयी कान्ति, नयी गहराई भी देगा. . .

गौरा के जीवन की एक लीक बनने लगी—न बहुत गहरी कि उस से उबरा न जा सके, न बहुत कड़ी कि उसे मिटा कर नयी लीक न डाली जा सके, फिर भी एक लीक। प्राणी जब शरीर को बाँध कर रखता है, तब उस का विद्रोह मिट्टी को खूँदने के रूप में प्रकट होता है, जब मन को बाँधता है, तब वह विद्रोह एक पटरी पर निरन्तर आती-जाती गति के रूप में प्रकट होता है—जब तक कि वह विद्रोह है; यह दूसरी बात है कि धीरे-धीरे भीतर वह विद्रोह मर जाय, पटरी क्रमशः फ़ौलादी लीक बन जाय जिस से इधर-उधर हटना मुक्ति नहीं, पटरी से गिर जाना हो, उलट जाना हो...

रेखा को भी उस ने एक-आध पत्र लिखा; रेखा का उत्तर भी आया। उत्तर में

---

* शैतान की एक और विजय, देवताओं का एक और दुःख—ब्राउनिंग

अपनापा भी था, पर एक तटस्थता भी; कुछ यह भाव कि मेरी तरफ़ से कोई यन्त्र या सीमा नहीं बनायी गयी है, पर मैं स्वयं अपने भीतर के अन्वेषण में खोयी हुई हूँ और बाहर से मेरा सम्बन्ध उदार दृष्टि का ही है, बाहर की ओर बहने का नहीं...इतना उसे ज्ञात हुआ कि रेखा फिर अस्वस्थ है,-अस्वस्थ ही रहती है, और यत्न कर रही है कि उस का काम उसे विदेश ले जाय—कदाचित् पश्चिम की ओर वह चली भी जायेगी।

होली पर उस ने भुवन को एक लिफ़ाफ़े में भर कर थोड़ा अबीर और अभ्रक का चूर भेजा; साथ यह आग्रह कर के कि इसे वह गौरा की ओर से अपने मुँह पर मल ले; कुछ दिन बाद उत्तर आ गया, और अगली डाक से एक पैकेट में कुछ सूखे फूल। पत्र में भुवन ने लिखा था कि होली उस ने खेल ली, दो-एक फ़ोटो भी रंगे मुँह के लिये गये थे जो वह शायद बाद में भेज सके; अलग डाक से वह कुछ फूल भेज रहा है जो स्थानीय श्रेष्ठ उपहार है—एक केवड़े का, और कुछ नाग-केशर के: केवड़ा तो ख़ैर परिचित है, पर नाग-केशर उस ने पहले नहीं देखा था और गौरा ने भी कदाचित् न देखा होगा—इस का भव्य वृक्ष और इकहरे सफ़ेद जंगली गुलाब-सा फूल दोनों ही दर्शनीय हैं। और गन्ध—गन्धमादन पर्वत जहाँ भी रहा हो, उस का नाम ज़रूर नाग-केशर की गन्ध के कारण ही पड़ा होगा...

फिर उस ने लिखना आरम्भ किया था कि "ये फूल तुम पहन लेना"—लेकिन इस वाक्य को काट कर लिखा था "तुम तक पहुँचते फूल तो सूख जायेंगे—पर गन्ध शायद बनी रहे; उसे सूँघो तो स्मरण कर लेना कि मेरे स्नेह की साँसें भी तुम्हारी स्मृति को घेरे हैं।"

लेकिन जो सूखे फूल गौरा तक पहुँचे उन में गन्ध भी नहीं थी। यह सूचना उस ने भुवन को दे दी—"तुम्हरे भेजे हुए फूल मिले—पर उन की गन्ध तो उड़ गयी। काश! मैं भी ऐसे ही उड़ जा सकती—उड़ कर शून्य में विलीन होने नहीं, उन पेड़ों तक पहुँचने को, जिन के नीचे बैठ कर तुम उन की सुगन्ध नासा-पुटों में भरते होगे, जिन के नीचे तुम्हें मेरी याद आयी। तुम्हारो साँसें मेरी स्मृति को घेरती हैं—(?)—पर मुझे भुवन, मुझे? मुझ से तुम दूर-ही-दूर जाते हो और जाते रहे हो। अच्छा, जाओ, जहाँ भी जाओ, मुक्त रहो; जो दूर रहना चाहता है, उस के पास जाने की कोशिश क्यों—और तुम्हारी वैसी साधना है तो उसे मैं क्यों विफल करने लगी! मैं ने सोचना चाहा था कि तुम जा नहीं सकोगे, पर नहीं सकी, और अब यत्न भी नहीं करती। तुम पहले भी चले गये थे; 'धागा-मनका तोड़ कर' चले गये थे, फिर तुम वापस आये—पर कहाँ आये, मैं ने ही समझ लिया क्योंकि वैसा ही मैं मानना चाहती थी! पर उन बातों को छोड़ो; प्रतीक्षा करना भी अच्छा है—आशापूर्वक भी, निराशापूर्वक भी क्योंकि आशा और निराशा दोनों प्रतीक्षा में ही सार्थक हैं।"

जिन अध्यापिकाओं और मुँह-लगी छात्राओं ने मिस नाथ के कम्प्लेक्शन और मसूरी के जलवायु के प्रताप की चर्चा की थी, वे अब जब-तब कहने लगीं, "मिस नाथ, आप को यहाँ अच्छा नहीं लगता ? आप फिर मसूरी हो आइये न—आप का चेहरा न जाने कैसा हो रहा है ? नहीं,अस्वस्थ नहीं, पर न जाने कैसा एक कठोर भाव उस पर आता जाता है।" ऐसी बात सुन कर गौरा को सहसा स्वयं बोध हो आता, हाँ, उस के चेहरे पर एक तनाव है जो नहीं होना चाहिए, क्षण-भर आयासपूर्वक वह चेहरे के स्नायु-तन्तुओं को ढीला कर के हँस कर कहती, "कुछ नहीं, शायद मास्टरनियों वाला चेहरा हुआ जा रहा होगा—मास्टरनी का चेहरा एक अलग किस्म का होता है—जिस तरह आदमी और सिख दो अलग-अलग जातियाँ होती हैं उस तरह औरत और मास्टरनी भी दो अलग जातियाँ होती हैं।" बात हँसी में उड़ जाती; पर पीछे गौरा सोचने लगती, क्या सचमुच ऐसे उस का चेहरा कठोर हो जायगा—क्यों ? अनुशासन बाहर से आरोपित किया गया हो; जो भीतरी है, जो साधना है, और जो आनन्ददायिनी भी है, वह क्यों कठोर रेखाएं लावे—उस की रेखाएँ तो मृदु होनी चाहिएँ—पुस्तकों में तो यही लिखा है कि साधना से चेहरे पर एक कान्ति आती है, शरीर भले ही कृश हो जाय। उसे, कुमार-सम्भव' की तपस्या-रत हिमालय-सुता की याद आ जाती, कालिदास की पंक्तियाँ वह धीरे-धीरे दुहरा जाती :

मुखेन सा पद्मसुगन्धिना निशि
प्रवेयमानाधरपत्रशोभिता।
तुषारवृष्टिक्षतपद्मसम्पदां
सरोजसन्धानमिवाकरोदपाम्॥

फिर सहसा इस में निहित तुलना की अहम्मन्यता पर वह लज्जित हो जाती और कोई वाद्य ले कर बजाने बैठ जाती कि उस में लज्जा और उस समूची विचार-परम्परा को डुबा दे...और वास्तव में वह बजाते-बजाते विभोर हो उठती, तब वे सब रेखाएं मिट जातीं और सचमुच एक अद्भुत कान्ति उसके चेहरे पर छा जाती—मसूरी के जल-वायु से पायी कान्ति से भी अधिक आभायुत—लेकिन वह स्वयं उसे न जान पाती; वादन समाप्त कर के वह उठती, तो उस के चेहरे पर एक मृदुल स्थिरता का भाव होता जैसा सद्यः सो कर उठे स्वस्थ शिशु के चेहरे पर होता है।

इसी प्रकार सेशन पूरा हो गया, छुट्टियाँ लगीं; गौरा तीन-चार दिन के लिए मसूरी हो कर, भुवन को अपने दक्षिण जाने की सूचना दे कर मद्रास चली गयी।

* * *

६ अप्रैल सन् १९४२ को भारत में पहला जापानी बम गिरा। गौरा उस दिन मसूरी

में थी; समाचार मिलते ही उस ने रेखा को पत्र लिखा; उस का कुशल-समाचार पूछा और यह सम्भावना प्रकट की कि रेखा का काम अब बहुत बढ़ जायेगा—क्या वह इतना परिश्रम कर सकेगी, और क्या उस का विदेश जाने का विचार अभी है कि बदल जायेगा ? भुवन के बारे में भी उस ने चिन्ता प्रकट की—भुवन न जाने कहाँ है, कैसी स्थिति में और कब लौटेगा या आगे क्या करेगा...पत्र उस ने डाल दिया, फिर भुवन के बारे में चिन्ता ने सहसा उसे जकड़ लिया, उस ने कुशल पूछने का तार लिखा और भेजने चली पर न जाने क्या सोच कर उस ने तार नहीं दिया, एक-दो लाइन का पत्र ही लिख कर डाल दिया।

मद्रास पहुँच कर उसे मसूरी से लौटा हुआ भुवन का पत्र मिला। पत्र बहुत छोटा था, पर अभिप्राय-भरा, उसे पढ़ कर गौरा बहुत देर तक सन्न बैठी रही, फिर उस ने पत्र से ही आँखें ढँक कर दोनों हथेलियों से उसे आँखों और माथे पर दबा लिया।

भुवन ने सूचित किया था कि भारतीय भूमि पर जापानी बम पड़ने के बाद वह अपना कर्तव्य स्पष्ट देख रहा है : उसी दिन वह सेना में भरती हो रहा है। युद्ध घृण्य है, और कोरी देश-भक्ति भी उस के निकट कोई माने नहीं रखती बल्कि घृणा और युद्ध की जननी है, पर इस संकट से भारत की रक्षा करना देश-भक्ति से बड़े कर्त्तव्य की माँग है—वह मानव की बर्बरता से मानव के विवेक की रक्षा की माँग है; बर्बरता के सब साधन विज्ञान ने ही जुटाये हैं; अतः विज्ञान को यह सब बड़ी ललकार है : या तो वह अपनी शिवता, कल्याणमयता को प्रमाणित करे—या सदा के लिए नष्ट हो जाये। विज्ञान एक ओर ज्ञान-दर्शन है, दूसरी ओर यन्त्र-कौशल; बर्बरता ने दूसरे पक्ष को लिया है पहले का खंडन करते हुए; सभ्यता अगर कुछ है तो वह पहले का उद्धार करने को बाध्य है—उद्धार कर के उसी के द्वारा दूसरे को अनुशासित रखने को। "मैं नहीं सोच सकता कि मैं कैसे किसी भी प्रकार की हिंसा कर सकता हूँ, या उस में योग दे सकता हूँ—पर अगर कोई काम मैं आवश्यक मानता हूँ, तो कैसे उसे इस लिए दूसरों पर छोड़ दूं कि मेरे लिए वह घृण्य है ? मुझे मानना चाहिए कि वह सभी के लिए—सभी सभ्य लोगों के लिए—एक-सा घृण्य है, और इस लिए सभी का समान कर्तव्य है..."

पत्र के अन्त में 'पुनश्च' कर के दूसरे दिन जोड़ी हुई सूचना थी कि वह बर्मा भेजा जा रहा है।

इसके बाद तीन महीने तक गौरा को भुवन का कोई समाचार नहीं मिला। कालेज से उस ने अवेतन छुट्टी ले ली और संगीत के अभ्यास में ही अपने को डुबा दिया। उस के चेहरे की रेखाएँ फिर कभी कठोर, कभी मृदु होने लगीं, और कभी संगीत के आप्लवन में बिलकुल लुप्त; कभी उस के चेहरे की आत्म-विस्मृत मुग्ध स्थिरता को कँपाते हुए-से दो आँसू उस की आँखों में चमक आते—आँसू वैसे ही अकारण, बेमेल, अपदस्थ, जैसे

कमल के पत्ते पर पानी की बूँदें...फिर जब समाचार उसे मिला, तो भुवन के पत्र से नहीं, रेखा द्वारा भेजे एक तार से।

और अनन्तर भुवन की एक कापी से।

*　　　*　　　*

रेखा को भुवन के सेना में भरती हो जाने की सूचना समाचारपत्र से ही मिली थी। फिर यह पता उस ने स्वयं पूछ-ताछ कर के लगाया था कि वह वर्मा में कहीं भेजा गया है। इस समाचार के बाद कुछ दिन तक तो उस ने कुछ नहीं किया, फिर भुवन को एक पत्र लिखा :

भुवन,

मुझे पता लगा कि तुम सेना में भरती हो कर बर्मा गये हो; यह भी पता लगा कि वहाँ भेजा जाना तुम ने स्वयं चाहा था—नहीं तो तुम-से वैज्ञानिक को शायद पश्चिम भेजा जाता—या लंका में। कई दिन तक मैं इस समाचार को ग्रहण न कर सकी, पर अब मैं ने उसे स्वीकार कर लिया है, तुम्हारे भीतर की अनिवार्य प्रेरणा को कुछ-कुछ समझ भी लिया है; और जैसे पाती हूँ कि इस में मेरे लिए मार्ग का भी संकेत है। बीच में एक दिन तुम्हारी निकट उपस्थिति की एक तीव्र व्यथा मन में उठी थी; सम्भव है तुम उस दिन कलकत्ते रहे होगे या कलकत्ते से गुज़रे होओ—यद्यपि आये होते तो मुझे सूचना दी होती ऐसा मैं अब भी मानती रहना चाहती हूँ...फिर एक दिन स्वप्न में तुम्हें देखा था—देखा कि तुम हमारे घर आये हो—हमारे घर, मेरे माता-पिता और छोटे भाई सब की उपस्थिति में, और सब से मिले हो, पिता तुम्हें बाहर नदी के किनारे की रौंस पर मेरे पास बिठा गये हैं; फिर हम लोग कागज़ की नावें बना कर नदी में डालते हैं और उन का वह जाना देखते हैं। नावें कभी दूर-दूर तक चली जाती हैं, कभी पास आ जाती हैं, कभी टकरा भी जाती हैं; कभी नदी में बहते हुए शैवाल से उलझ जाती हैं। सहसा देखती हूँ कि उन्हीं हमारी कागज़ की नावों में हम भी बैठे हैं—रौंस पर बैठे देख भी रहे हैं, पर नावों में भी हैं; फिर नावें एक बालू के द्वीप में जा लगती हैं जहाँ हम उतर कर नावों को खींचने लगते हैं—पर नावों में बैठे भी रहते हैं। अब हम रौंस पर से देखते भी हैं, नावों में बैठे भी हैं, नावों को खींच भी रहे हैं! फिर देखती हूँ, बहुत से द्वीप हैं, हर एक पर हम नाव में भी बैठे, नाव को खींच भी रहे हैं—और रौंस पर बैठे देख तो रहे ही हैं। सहसा नदी का पानी बहती हुई सूखी बालू हो जाती है, और तुम्हारा चेहरा तुम्हारा नहीं, कोई और चेहरा है; तुम मुस्कराते हो तो वह चेहरा तुम्हारा भी है, पर नहीं भी हैं; मैं कहती हूँ, यह सपना है, जागेंगे तो तुम्हारा चेहरा दूसरा हो जायेगा, तुम कहते हो, सपना थोड़ी देर और देखो न, फिर चेहरा बदल नहीं सकेगा। फिर मैं तुम्हारी मुस्कान देखती रही; थोड़ी देर में जाग गयी। सपनों के सिर-पैर नहीं होते—होते हों जैस

मनोविश्लेषक जताते हैं तो उन का अर्थ जानने की ज़रूरत नहीं होती—पर मैं जागी एक मधुर भाव ले कर, फिर ध्यान आया कि तुम तो बर्मा में कहीं होगे...

भुवन, तुम्हें एक समाचार देना चाहती हूँ। नहीं जानती कि तुम्हें कैसा लगेगा, पर —जानती हूँ तुम प्रसन्न ही होगे। मुझे आशीर्वाद दो, भुवन। डाक्टर रमेशचन्द्र ने मुझ से विवाह का प्रस्ताव किया था; मैंने उन्हें स्वीकृति दे दी है। इसी महीने के अन्तिम सप्ताह में विवाह हो जायगा। सम्भव है कि विवाह के दो-एक महीने बाद वह 'मिडल ईस्ट' की तरफ़ कहीं जावें—मैं भी साथ ही जाऊंगी शायद। काम मैं ने अभी नहीं छोड़ा है, पर आठ-दस दिन बाद छोड़ दूंगी।

विवाह के लिए हम दार्जिलिंग जावेंगे—रमेश का आग्रह है। कोई समारोह नहीं होगा—लेकिन क्यों कि 'कानूनी आधार' आवश्यक है—यह लीगैलिटी, भुवन!—इस लिए रेजिस्ट्रेशन तो होगा ही।

यह क्या है, भुवन? बरसों मैं श्रीमती हेमेन्द्र कहलायी, उस के क्या अर्थ थे? अब अगले महीने से श्रीमती रमेशचन्द्र कहलाऊंगी—उस के भी क्या अर्थ हैं? कुछ अर्थ तो होंगे, अपने से कहती हूं; पर क्या, यह नहीं सोच पाती... मैं इतना ही सोच पाती हूँ कि मेरे लिए यह समूचा श्रीमतीत्व मिथ्या है, कि मैं तुम्हारी हूँ, केवल तुम्हारी; तुम्हारी ही हुई हूं, और किसी की कभी नहीं, न कभी हो सकूंगी...ये पार्थिवता के बन्धन, ये आकार, ये सूने कंकाल...महाराज, मेरे त्रिभुवन के महाराज, किस साज में तुम आये मेरे हृदय-पुर में—और कैसे तुम चले गये, मेरा गर्व तोड़ कर, भूमि में लुटा कर—पर नहीं भुवन, तोड़ कर नहीं, तुम्हीं मेरे गर्व हो, तुम्हारे ही स्पर्श से '**सकल मम देह-मन वीणा सम बाजे...**

रमेश को मैं धोखा नहीं दे रही। मैं ने उन्हें बताया है। पर क्या बताया है, क्या मैं बता सकती हूँ, भुवन? उन में बड़ी उदारता है, गहरी संवेदना है, वह समझते हैं। तुम उन्हें जानते, तो बहुत अच्छा होता—तुम्हें निश्चय ही वह अच्छे लगते। मैं कल्पना करती हूं, मैं तुम दोनों को समीप ला सकती—मिला सकती—दोनों को जिन से मैंने बहुत कुछ पाया है, जिन्हें मैंने बहुत कुछ दिया है...शायद भविष्य में वह कभी हो सके, मैं नहीं मानना चाहती कि यह सम्भव नहीं है क्योंकि वैसा मानना, मुझे लगता है, दोनों के प्रति विश्वासघात होगा...

भुवन, अपनी बात तो मैं कह चुकी। तुम्हारी बात जानना चाहती हूँ। तुम भटक रहे हो, भटक ही नहीं रहे, मुझे लगता है कि भाग रहे हो। पहले अपने को कोसती थी कि मुझ से—यद्यपि मेरे कारण तुम्हारे मन पर बोझ न आये इसकी पूरी कोशिश करती रही हूँ, देवता साक्षी हैं; सफल कहाँ तक हुई वह दूसरी बात है...पर अब नहीं कोसती; वह कोसना भी अहंकार ही था क्योंकि अब लगता है, नहीं मुझ से नहीं, कुछ और है जिस से तुम भागते हो, क्योंकि उस से तुम बँधे हो; जिस से तुम्हारी नियति गुंथी है, और यह भागना केवल अन्तःशक्तियों का वह कर्ष-विकर्ष है जो अन्ततोगत्वा अनुकूल स्थिति

लावेगा. . .मैंने एक बार तुम से कहा था, हम जीवन की नदी के अलग-अलग द्वीप हैं—ऐसे द्वीप स्थिर नहीं होते, नदी निरन्तर उन का भाग्य गढ़ती चलती है; द्वीप अलग-अलग हो कर भी निरन्तर घुलते और पुनः बनते रहते हैं—नया घोल, नये अणुओं का मिश्रण, नयी तल-छट, एक स्थान से मिट कर दूसरे स्थान पर जमते हुए नये द्वीप. . .

मेरी इन बातों को अनधिकार प्रवेश न समझना, भुवन, मुझ से पृथक् जो भी तुम्हारा निजी है, निज के लिए अर्थवान् है, उस से मुझे ईर्ष्या नहीं, न कोई अनुचित कौतूहल उस के विषय में है : वह अर्थवान् है तो और अधिक अर्थवान् हो, यही मेरी प्रार्थना है।

भुवन, तुम्हारे पत्र की, तुम्हारे आशीर्वाद की, तुम्हारे समाचार की उत्कट प्रतीक्षा करूँगी। तुम्हारी शुभ-कामनाएँ पा कर रमेश भी प्रसन्न होंगे।

तुम्हारी ही
रेखा

भुवन का उत्तर तार से आया : हार्दिक शुभ-कामनाएँ और आशीर्वाद, और पत्र वह लिख रहा है। एक सप्ताह बाद पत्र भी आया—एक पार्सल में बन्द, पार्सल में किसी प्राचीन बर्मी ग्रन्थ का चित्र-लिखित वेष्टन, और ताल-पत्र पर खिंचे हुए चित्र थे; ग्रन्थ पूरा नहीं था। "यह ग्रन्थ क्या है मैं नहीं जानता, लिपि भी मैं नहीं पढ़ सकता न तुम पढ़ सकोगी; पर चित्र सुन्दर हैं और वेष्टन भी मुझे सुन्दर लगा—मैंने सोचा कि ऐसे अवसर पर जो उपहार भेजूँ उस का सुन्दर होना ही आवश्यक है, बोधगम्य होना उतना नहीं—वैसे आज मेरी प्रार्थना है कि विधि का विधान सुन्दर हो, आज हम उसे जानें भले ही न, उस का क्रमिक प्रस्फुटन सुन्दर से सुन्दरतर दीखता चले. . ."

दार्जिलिंग से एक पत्र रेखा ने भुवन को और लिखा :

भुवन,

आज अभी थोड़ी देर पहले मैं रजिस्टर में पहले-पहल 'रेखा रमेशचन्द्र' नाम से हस्ताक्षर कर के आयी हूँ। उस के बाद न जाने क्यों भीतर कुछ कहता है कि मेरा पहला काम होना चाहिए तुम्हें सूचना देना, तुम्हें पत्र लिखना। भुवन, कभी सौ वर्षों में भी मेरी कल्पना में यह बात न आती कि अन्त में मेरा ठिकाना यह होगा—इस घाट आ कर मैं किनारे लगूँगी. . .जीवन की अजस्र तीव्र धारा कैसे सब को खींचती ठेलती बहाती लिये जाती है, कैसा भौंचक कर देने वाला है उस का प्रवाह—जिस में तसल्ली के लिए यही है कि हमीं नहीं, दूसरे भी उतने ही भौंचक बहे जा रहे हैं। यह उद्यम की अवहेलना नहीं, उद्यम तो अपने स्थान पर है ही, पर कैसा दुर्निवार, बेरोक, विवशकारी है यह प्रवाह. . .

तुम्हारा पत्र मिला था, भुवन, तुम्हारा वह दर्द-भरा, पर मधुर, सुन्दर आशीर्वाद; और तुम्हारा उपहार भी। उस आशीर्वाद के लिए मैं कितनी कृतज्ञ हूँ, भुवन, क्या मैं कह सकती हूँ कभी? और तुम्हारा उपहार भी सुन्दर है—हाँ, दुर्बोध तो है ही विधि, और शायद उसे जान लेना चाहना मानव की भी दुःस्पर्द्धा है, वह स्वतः स्फुट होती चले. . .

लेकिन तुम्हें मैं जानती हूँ, भुवन, तुम्हें मैंने जाना है और तुम में जो जाना है वह जीवन-मरण से परे है—पाने और खोने से परे है।

इस के बाद दो महीने तक रेखा को भी भुवन की ओर से कोई समाचार नहीं मिला; जब मिला तो भुवन का पत्र नहीं, फौजी अस्पताल से एक नर्स का टेलीफ़ोन मिला कि वह अस्पताल आ कर मेजर भुवन को देख जावे।

*　　　*　　　*

क्षण-भर के लिए रेखा को लगा कि सारी स्थिति में कही कुछ विपर्यय है, कोई विरोधाभास—कि अस्पताल के लोहे के पलँग पर उस बरसाती दिन में लाल कम्बल ओढ़े भुवन नहीं, वही पड़ी है, और भुवन उसे देख रहा है, और वह असहाय भाव से धीरे-धीरे कह रही है, 'जान, प्राण, जान. . ' एक ज्वार-सा उसके भीतर उमड़ आया; इतनी व्यथा, इतने गहरे में पर इतनी सहज आह्वेय, उसमें संचित है, इसके तात्कालिक अनुभव से वह लड़खड़ा-सी गयी। फिर तुरन्त सँभल कर उस ने धीरे से पुकारा, "भुवन।" लेकिन भुवन ने पहले ही उसे पहचान लिया था, उस के चेहरे पर एक मुस्कान थी और वह कोशिश कर रहा था कि कम्बल के भीतर से एक हाथ निकाल कर रेखा की ओर बढ़ाये।

रेखा ने दोनों हाथ उस के गालों पर रख कर आग्रह से पूछा, "यह क्या कर आये भुवन ? तुम्हें मैं ऐसे देखूंगी, ऐसी सम्भावना ही कभी मन में न आयी थी।"

"कुछ नहीं, रेखा !" और भुवन के दुर्बल स्वर में एक नयी गहराई थी जो रेखा को दहला गयी—मानो कोई व्यक्ति नहीं, कोई दूर पहाड़ी जगह बोल रही हो—कोई कन्दरा, या किसी बड़ी-सी चट्टान के नीचे की छाया, "मलेरिया है। अंडमान से शुरू हुआ था शायद—शायद बर्मा के जंगलों ने बढ़ा दिया, और पेचिश साथ जोड़ दी। वैसे मैं ठीक हूँ—बिलकुल ठीक।"

"जी हाँ, ठीक हैं, सो तो शक्ल ही बता रही है। दुष्ट मलेरिया और पेचिश, वैसे ठीक हैं—और क्या लाते वहाँ से ?"

"क्यों—"

"रहने दीजिए, लगेंगे सम्भाव्य बीमारियों के नाम गिनाने, यही न ! बताया भी नहीं।"

"जब बताने से कुछ फ़ायदा होता, तब बता तो दिया—"

रेखा बात करते-करते पलँग की बाहीं पर बैठ गयी थी। अब उठ कर एक स्टूल पर बैठती हुई बोली, "लो अब बाक़ायदा विजिट करूँगी। पहले तुम्हारा हाल पूछूँ।"

"फिर शुरू से बीमारी का इतिहास, फिर पथ्य, फिर—" भुवन मुस्कराया, फिर सहसा बात बदल कर बोला, "तुम अकेली आयी हो रेखा ?"

प्रश्न समझ कर रेखा ने कहा, "हाँ, भुवन। रमेश यहाँ नहीं है। बम्बई गये है। हफ़्ते-

भर में लौट आयेंगे, तब लाऊँगी। हम लोग जा रहे हैं विदेश—"

"अच्छा—कब ? मैं हफ़्ता-भर यहीं रहूँगा शायद—हम सब दक्षिण भेजे जा रहे हैं —बंगलोर—स्वास्थ्य-लाभ के लिए। यहाँ तो प्रबन्ध के लिए रुके हैं—जहाज़ से आये थे, अब रेल से जाना होगा—"

रेखा ने कुछ उदास हो कर कहा, "ओ।" फिर कुछ देर बाद, "बंगलोर—गौरा तो मद्रास में है, उसे ख़बर दे दूँ, वह बंगलोर ज़रूर जा सकेगी—"

भुवन ने संक्षिप्त भाव से कहा, "हाँ।" फिर काफ़ी देर बाद, "तुम से उस का पत्र-व्यवहार रहा है ?"

"हाँ—तुम जो नहीं लिखते ; तो मैं गौरा से ही पत्र-व्यवहार कर लेती हूँ।"

भुवन ने फिर संक्षिप्त ढंग से ही कहा, "हूँ।" थोड़ी देर बाद बात को निश्चित रूप से नयी दिशा देने के लिए उस ने कहा, "रेखा, विवाह कर के—कैसा लगता है—हाउ डू यू फ़ील ? या कि—न पूछूँ ?"

"नहीं, पूछो ! आइ डोंट फ़ील एट आल। वन डज़ंट फ़ील, वन जस्ट इज़। मैं भी हूँ, होना ही काफ़ी है, अनुभूति क्यों ज़रूरी है ?" रेखा थोड़ी रुकी। "लेकिन—भुवन, रमेश में यथेष्ट अंडरस्टैंडिंग है, नहीं तो . . ."

भुवन ने कहा, "आइ एम सो ग्लैड, रेखा।" उस ने हाथ रेखा की ओर बढ़ाया। रेखा ने उस का हाथ अपने दोनों हाथों में ले लिया और धीरे-धीरे सहलाने लगी।

"भुवन, मेरा तो हुआ, पर तुम ? तुम भविष्य की ओर नहीं देखते ? ज़रूर देखते होगे—बल्कि मैं चाहे न देखूँ, तुम तो रह नही सकते, तुम्हारे मन का संगठन ही ऐसा है—"

भुवन हँसा। अब की बार रेखा ने लक्ष्य किया, उस के स्वर में जो गहराई है, वह एक हद तक शायद इस लिए भी है कि कहीं कुछ खोखला है, शून्य है—ऐसी सूनी थी वह हँसी, जैसे उस के नीचे अनुभूति या आनन्द की कोई पेंदी न हो, अधर में ही वह फूट पड़ी हो। "मैं ! शायद सोचता भी—पर अभी तो ज़रूरत ही नहीं मालूम होती। वहाँ—भविष्य का भरोसा ले कर कौन बैठता है जहाँ जीवन का ही भरोसा नहीं—"

"वह तो कहीं भी नहीं है—यहीं क्या भरोसा है ? रोज़ सुबह होती है, सूरज निकलता है; हम आदी हो जाते हैं और मान लेते हैं कि न केवल सूरज कल निकलेगा बल्कि हम भी उसे कल देखेंगे। प्रकृति का स्थायित्व देख कर ही मानव अपने लिए स्थायित्व माँगता है, प्रकृति के रूपान्तर देख कर ही वह अपने रूपान्तर की कल्पना करता है या उन के द्वारा अमरत्व की आशा—"

"हाँ, लेकिन वह सब यहाँ होता है। वहाँ—वहाँ चीज़ें उलट जाती हैं, आदमी अपने को देख कर ही प्रकृति के बारे में निर्णय करता है। और—मेरा क्या भरोसा, कल रहूँ

या न रहूँ : यह सोच कर वह सब विचार स्थगित कर देता है। बल्कि इस विचार का सहारा आवश्यक भी हो जाता है।"

रेखा ने विरोध करते हुए कहा, "लेकिन यह तो पलायन है, भुवन !"

"पलायन !" भुवन वही खोखली हँसी हँसा, "तो फिर ? "

रेखा अचकचायी-सी उसे देखती रही। भुवन कहता है कि 'तो फिर ?' पलायन है, तो फिर ?...

भुवन ही फिर बोला, "सुनो रेखा ; बात यह है कि युद्ध बुरी चीज़ है, घृण्य है, व्यक्तित्व के लिए घातक है—सब कुछ है। पर जब लड़ें हों, तब जो कुछ रक्षणीय है उसे बचाने के लिए आवश्यक है कि युद्ध की मशीन ठीक से चले, सब कल-पुर्जे ठीक काम करते रहें, हर व्यक्ति—हर पुर्ज़ा या जुज़ एक काम लेता है और आवश्यक है कि उसे वह ठीक से करे। और ठीक से काम करने के लिए आवश्यक होता है कि विचारों को स्थगित कर दिया जाय—चाहे जैसे भी। कोई शराब पी कर करते हैं, कोई और भी भयानक तरीकों से—कोई इतना ही मान कर कि जीवन कभी भी समाप्त हो सकता है और उस के बारे में सोचना व्यर्थ है—कम-से-कम अभी व्यर्थ है, अभी जो अनुभव-संचय हो जाय, उस के आधार पर बाद में भी सोचा जा सकता है।"

"पर भुवन, तुम—तुम ? तुम्हारा तो सारा काम ही सोचने का है, तुम्हें तो मार-काट नहीं करनी—तुम कैसे सोच स्थगित कर सकते हो ?"

"वह तो है, सोच तो नहीं स्थगित करता, पर सोचने की शक्ति की लीकें बाँधता हूँ—सिर्फ़ काम के बारे में सोचता हूँ—मशीन को चलाने के बारे में सोचता हूँ, मशीन के बाहर जो जीवन है, वह—वह तो जीवन है, इस लिए उस का भरोसा क्या ? मेरी बात समझीं—?"

रेखा चुपचाप देखती रही। भुवन की युक्ति ठीक थी, पर कुछ था जो उसे स्वीकार्य नहीं हो रहा था, वह कुछ क्या है इसे वह पकड़ नहीं पा रही थी . . .

रात-भर यह असमंजस उसे कोंचता रहा। रात को उस ने गौरा को एक छोटा-सा पत्र लिख कर भुवन के वहाँ होने की सूचना दी और यह भी लिखा कि उस के मन की दशा अजब है, रेखा की समझ में नहीं आ रही। वह और कुछ लिखने जा रही थी पर रुक गयी; फिर उस ने लिखा कि भुवन कदाचित् बंगलोर जायेगा, गौरा उसे मिले और हो सके तो उस के पास रहे—उस का मनःस्वास्थ्य यह माँगता है कि गौरा उस की देख-भाल करे। दूसरे दिन वह रजनीगन्धा के बीस-एक डाँठों का गुच्छा ले कर फिर अस्पताल पहुँची। फूल सजा कर वह थोड़ी देर भुवन की ओर देखती रही। फिर जैसे एक बड़ा दुस्साहस कर ही डालने का निश्चय कर के बोली, "भुवन, मैंने एक डिस्कवरी की है। यू आर इन लव। और मैं जानती हूँ कि किस से।"

भुवन अपने चेहरे पर हंसी फैलाता हुआ बोला, "सच ? हाउ इंटरेस्टिंग, लेकिन तुम्हें

बड़ी निराशा होगी, रेखा, मेरी कोई भी नर्स ऐसी रूपवती नहीं है।"

और भी दुस्साहस भर कर, लेकिन मुस्कराते हुए ही रेखा ने कहा, "टालो मत भुवन, मैं नर्सों की बात नहीं कर रही हालाँकि नर्सें सब रूपवती हैं या होंगी।" सहसा उसे बोध हुआ कि उस का दिल धक्-धक् कर रहा है, पर वह रुकी नहीं, "मेरा मतलब है गौरा।"

भुवन चमक गया। उसका चेहरा तमतमा आया, ओठों का धनु एक तीखी रेखा बन गया, वह बोला, नहीं।

रेखा ने भी थोड़ी देर बाद कुछ सँभल कर कहा, "मैं माफ़ी चाहती हूँ, भुवन—है यह मेरा दुस्साहस, पर अगर उस से मेरा अपराध कुछ कम होता हो तो कहूँ, मैंने मज़ाक नहीं किया, बहुत सीरियसली कह रही हूँ, क्यों कि मुझे लगा कि तुम इसी बात से पलायन कर रहे हो और वह पलायन ग़लत है।"

भुवन ने सतर्क स्वर से, किसी तरफ़ से भी रेखा की बात को न मानते हुए, न काटते हुए, पूछा, "तुम क्या कहना चाहती हो?"

"गौरा से मैं मिली थी, भुवन; उस से मैंने एक वायदा भी किया था जो—पूरा न निभा सकी। गौरा के मन को मैं जानती हूँ।"

भुवन ने न कुछ कहा न कुछ पूछा, चुपचाप उस की ओर देखता रहा मानो कहता हो, तुम कहती चलो, मैं सुन रहा हूँ।

रेखा ने फिर कहा, "और मैं कहती हूँ, वह पलायन ग़लत है, भुवन!" सहसा नये निश्चय के साथ, "ग़लत है, अकरुण है और व्यर्थ है।"

भुवन ने वैसे ही दूर, पकड़ाई न देते हुए कहा, "तुम मुझे क्या करने को कह रही हो?"

"मैं? करने को?" रेखा क्षण-भर सोचती रही। "कुछ नहीं। केवल यही: तुम में जो सत्य है, उस के प्रति अपने को बन्द मत करो—उस के प्रति खुलो। तुम ने मुझे सुनाया था—भुवन, तुम ने! 'द पेन आफ़ लविंग यू'—उस व्यथा के प्रति अपने को खोल दो—और मुझ में कुछ कहता है कि वह तुम्हारे लिए कल्याणप्रद होगा, भुवन! गौरा के मन को मैं जानती हूँ क्योंकि स्त्री हूँ; और तुम्हारे मन को बिलकुल न जानती होऊँ, ऐसा तो तुम नहीं मानोगे; आखिर स्त्री हूँ।"

रेखा जैसे हाँप गयी थी। चुप हो गयी, लम्बे-लम्बे साँस लेने लगी। थोड़ी देर बाद जैसे पहले के किसी अधूरे वाक्य को पूरा करते हुए, उस ने फिर कहा, "वह वरदान है, भुवन; उसे स्वीकार करो, चाहे कल—चाहे कल जीवन न रहे, तुम न रहो, भुवन, फिर भी!"

भुवन भी चुप पड़ा रहा। काफ़ी देर बाद बोला, "रेखा, मैं तो समझता था तुम्हारा औचित्य का ज्ञान बहुत बड़ा है, पर देखता हूँ तुम्हें इतना भी नहीं आता है कि बीमार से

या न रहूँ : यह सोच कर वह सब विचार स्थगित कर देता है। बल्कि इस विचार का सहारा आवश्यक भी हो जाता है।"

रेखा ने विरोध करते हुए कहा, "लेकिन यह तो पलायन है, भुवन!"

"पलायन!" भुवन वही खोखली हँसी हँसा, "तो फिर?"

रेखा अचकचायी-सी उसे देखती रही। भुवन कहता है कि 'तो फिर?' पलायन है, तो फिर?...

भुवन ही फिर बोला, "सुनो रेखा; बात यह है कि युद्ध बुरी चीज़ है, घृण्य है, व्यक्तित्व के लिए घातक है—सब कुछ है। पर जब लड़ें ही, तब जो कुछ रक्षणीय है उसे बचाने के लिए आवश्यक है कि युद्ध की मशीन ठीक से चले, सब कल-पुर्जे ठीक काम करते रहें, हर व्यक्ति—हर पुर्जा या जुज़ एक काम लेता है और आवश्यक है कि उसे वह ठीक से करे। और ठीक से काम करने के लिए आवश्यक होता है कि विचारों को स्थगित कर दिया जाय—चाहे जैसे भी। कोई शराब पी कर करते हैं, कोई और भी भयानक तरीकों से—कोई इतना ही मान कर कि जीवन कभी भी समाप्त हो सकता है और उस के बारे में सोचना व्यर्थ है—कम-से-कम अभी व्यर्थ है, अभी जो अनुभव-संचय हो जाय, उस के आधार पर बाद में भी सोचा जा सकता है।"

"पर भुवन, तुम—तुम? तुम्हारा तो सारा काम ही सोचने का है, तुम्हें तो मार-काट नहीं करनी—तुम कैसे सोच स्थगित कर सकते हो?"

"वह तो है, सोच तो नहीं स्थगित करता, पर सोचने की शक्ति की लीकें बाँधता हूँ—सिर्फ़ काम के बारे में सोचता हूँ—मशीन को चलाने के बारे में सोचता हूँ, मशीन के बाहर जो जीवन है, वह—वह तो जीवन है, इस लिए उस का भरोसा क्या? मेरी बात समझीं—?"

रेखा चुपचाप देखती रही। भुवन की युक्ति ठीक थी, पर कुछ था जो उसे स्वीकार्य नहीं हो रहा था, वह कुछ क्या है इसे वह पकड़ नहीं पा रही थी...

रात-भर यह असमंजस उसे कोंचता रहा। रात को उस ने गौरा को एक छोटा-सा पत्र लिख कर भुवन के वहाँ होने की सूचना दी और यह भी लिखा कि उस के मन की दशा अजब है, रेखा की समझ में नहीं आ रही। वह और कुछ लिखने जा रही थी पर रुक गयी; फिर उस ने लिखा कि भुवन कदाचित् बंगलोर जायेगा, गौरा उसे मिले और हो सके तो उस के पास रहे—उस का मनःस्वास्थ्य यह माँगता है कि गौरा उस की देख-भाल करे। दूसरे दिन वह रजनीगन्धा के बीस-एक डाँठों का गुच्छा ले कर फिर अस्पताल पहुँची। फूल सजा कर वह थोड़ी देर भुवन की ओर देखती रही। फिर जैसे एक बड़ा दुस्साहस कर ही डालने का निश्चय कर के बोली, "भुवन, मैंने एक डिस्कवरी की है। यू आर इन लव। और मैं जानती हूँ कि किस से।"

भुवन अपने चेहरे पर हंसी फैलाता हुआ बोला, "सच? हाउ इंटरेस्टिंग, लेकिन तुम्हें

बड़ी निराशा होगी, रेखा, मेरी कोई भी नर्स ऐसी रूपवती नहीं है।"

और भी दुस्साहस भर कर, लेकिन मुस्कराते हुए ही रेखा ने कहा, "टालो मत भुवन, मैं नर्सों की बात नहीं कर रही हालाँकि नर्सें सब रूपवती हैं या होंगी।" सहसा उसे बोध हुआ कि उस का दिल धक्-धक् कर रहा है, पर वह रुकी नहीं, "मेरा मतलब है गौरा।"

भुवन चमक गया। उसका चेहरा तमतमा आया, ओठों का धनु एक तीखी रेखा बन गया, वह बोला नहीं।

रेखा ने भी थोड़ी देर बाद कुछ सँभल कर कहा, "मैं माफ़ी चाहती हूँ, भुवन—है यह मेरा दुस्साहस, पर अगर उस से मेरा अपराध कुछ कम होता हो तो कहूँ, मैंने मज़ाक नहीं किया, बहुत सीरियसली कह रही हूँ, क्यों कि मुझे लगा कि तुम इसी बात से पलायन कर रहे हो और वह पलायन ग़लत है।"

भुवन ने सतर्क स्वर से, किसी तरफ़ से भी रेखा की बात को न मानते हुए, न काटते हुए, पूछा, "तुम क्या कहना चाहती हो?"

"गौरा से मैं मिली थी, भुवन; उस से मैंने एक वायदा भी किया था जो—पूरा न निभा सकी। गौरा के मन को मैं जानती हूँ।"

भुवन ने न कुछ कहा न कुछ पूछा, चुपचाप उस की ओर देखता रहा मानो कहता हो, तुम कहती चलो, मैं सुन रहा हूँ।

रेखा ने फिर कहा, "और मैं कहती हूँ, वह पलायन ग़लत है, भुवन!" सहसा नये निश्चय के साथ, "ग़लत है, अकरुण है और व्यर्थ है।"

भुवन ने वैसे ही दूर, पकड़ाई न देते हुए कहा, "तुम मुझे क्या करने को कह रही हो?"

"मैं? करने को?" रेखा क्षण-भर सोचती रही। "कुछ नहीं। केवल यही: तुम में जो सत्य है, उस के प्रति अपने को बन्द मत करो—उस के प्रति खुलो। तुम ने मुझे सुनाया था—भुवन, तुम ने! 'द पेन आफ़ लविंग यू'—उस व्यथा के प्रति अपने को खोल दो—और मुझ में कुछ कहता है कि वह तुम्हारे लिए कल्याणप्रद होगा, भुवन! गौरा के मन को मैं जानती हूँ क्योंकि स्त्री हूँ; और तुम्हारे मन को बिलकुल न जानती होऊँ, ऐसा तो तुम नहीं मानोगे; आखिर स्त्री हूँ।"

रेखा जैसे हाँप गयी थी। चुप हो गयी, लम्बे-लम्बे साँस लेने लगी। थोड़ी देर बाद जैसे पहले के किसी अधूरे वाक्य को पूरा करते हुए, उस ने फिर कहा, "वह वरदान है, भुवन; उसे स्वीकार करो, चाहे कल—चाहे कल जीवन न रहे, तुम न रहो, भुवन, फिर भी!"

भुवन भी चुप पड़ा रहा। काफ़ी देर बाद बोला, "रेखा, मैं तो समझता था तुम्हारा औचित्य का ज्ञान बहुत बड़ा है, पर देखता हूँ तुम्हें इतना भी नहीं आता है कि बीमार से

कैसी बातें करनी चाहिएँ। तुम स्वयं हाँप गयीं—और एक्साइटमेंट से रोगी का क्या होगा ? और तुम तो नर्सिंग—"

"हाँ, एक श्लथ रोग होता है—रोगी का दिमाग नहीं चलता। उस का यही इलाज है, मैं जानती हूँ।"

फिर एक मौन रहा, उस में न जाने क्यों अपने दुस्साहस पर रेखा स्वयं आतंकित हो आयी, क्या कह गयी वह, कैसे कह गयी वह ; ऐसा हस्तक्षेप कैसे कर सकी वह. . .उस का मन हुआ, भुवन के पास से उठ कर भाग जाय, और फिर कभी उसे मुँह न दिखाये—कैसे अब वह मुँह दिखा सकेगी. . .लेकिन वह उठ भी न सकी; उठना मानो फिर अपनी ओर ध्यान आकृष्ट करना है और वह वहीं धँस जाना चाहती है, लुप्त हो जाना चाहती है. . .एक झेंपी-सी हँसी हँस कर उस ने कहा, "देखा, भुवन !—दिस इज़ व्हट मैरेज़ डज़ टु ए वुमन—आज अपनी शादी हो, कल से सारी दुनिया के नर नारियों की जीवन-व्यवस्था करने में लग जावें; यह स्त्री-स्वभाव ही है कि पुरुष के जीवन के लिए वह निरन्तर साँचे वनाती चले।"

भुवन का मन भटक रहा था। उस ने खोये-से भाव से कहा, "हूँ।"

रेखा ने क्षण-भर उस की ओर देखा फिर वह उठी, "अच्छा मैं जाती हूँ भुवन, कल फिर आऊँगी। कुछ लाऊँ—कुछ मँगाना तो नहीं ?"

"न," भुवन ने रेखा का एक हाथ अपने हाथ में ले लिया और बोला, "नहीं रेखा, तुम ने कह दिया, अच्छा ही किया। और यह भी समझता हूँ कि इसी लिए कह सकीं कि—मैं तुम्हारा कृतज्ञ हूं, रेखा; तुम्हारी बात ठीक है या ग़लत है, वह प्रश्न दूसरा है।"

रेखा ने कहा, "स्त्री की बात हमेशा ग़लत होती है भुवन, सिवा एक मामले के, और वहाँ वह हमेशा ठीक होती है।" वह हँस दी। सहसा उस ने झुक कर ओठों से भुवन का माथा छुआ। "जल्दी अच्छे हो जाओ—दक्खिन जाना है।" और मुस्कराती हुई ही वह बाहर चली गयी। ओट होने तक भुवन उसे देखता रहा, फिर उस ने करवट ली और आँखें बन्द कर लीं।

पर अगले दिन जब रेखा उसे देखने गयी तब वह दक्खिन जा चुका था। मालूम हुआ कि वह अच्छा हो रहा था, और उसे कन्वेलेसेंट छुट्टी पर कर के आगे भेज दिया गया था : दो दिन में अस्पताली गाड़ी बंगलोर पहुँच जायेगी।

लौट कर रेखा ने गौरा को तार दे दिया।

* * *

कतार में लगी कैनवस की आराम-कुरसियों पर अस्पताली पाजामे और जाकेट पहने कई एक व्यक्ति लान में बैठे थे, पर गौरा को ढूँढ़ना नहीं पड़ा, बिना इधर-उधर

देखे वह सीधे एक कुरसी की ओर बढ़ी चली गयी। पास पहुँच कर उस ने धीमे, बहुत शान्त स्वर में कहा, "भुवन।"

भुवन पढ़ रहा था। सहसा चौंका और सिर उठाता हुआ पीछे मुड़ा।

"गौरा।"

गौरा ने धीरे-धीरे फिर कहा, "भुवन!" उस का स्वर भर्राया था। वह डेढ़ कदम आगे बढ़ कर भुवन के पैरों के पास घास में बैठ गयी।

देर तक दोनों चुप रहे। फिर गौरा ने वैसे ही भर्राये, काँपते हुए स्वर में पूछा, "क्या पढ़ रहे हो?"

"कविता—लारेंस," कह कर भुवन ने सहसा गोद में पड़ी खुली पुस्तक बन्द कर दी।

"क्यों--पढ़ो--"

भुवन के दोनों हाथ खोजते से बढ़े, गौरा ने यन्त्रवत् अपने दोनों हाथ उठा कर उन में रख दिये। भुवन की मुट्ठियाँ उन पर कस गयीं; उन की जकड़ मज़बूत थी पर एक कम्पन लिये हुए; गौरा थोड़ी देर वैसे बैठी रही, फिर उस ने आगे झुक कर अपनी आँखें मुट्ठियों पर रख दीं। भुवन ने एक हाथ छोड़ कर उस का सिर धीरे-धीरे थपक दिया; उस में कुछ निर्देश था मानो—गौरा सीधी हो कर बैठ गयी। भुवन ने पूछा, "तुम्हें कब पता लगा? तुम—"

और गौरा ने कहा, "तुम कब पहुँचे?"

भुवन भी यही कहने जा रहा था कि 'तुम कब पहुँचीं?' गौरा बात काट कर बीच में बोल उठी थी पर दोनों के वाक्य समाप्त एक साथ ही हुए। भुवन मुस्करा दिया, उस की ओर देख कर गौरा मुस्करा दी, फिर सहसा हँस पड़ी, मानो कोई अवरोध हट गया, उमड़ती हुई बोली, "भुवन, मेरे भुवन दा—आप. . .भुवन, तुम आ गये, कहाँ खो गये थे तुम, मेरे शिशु. . ."

और भुवन के मन में भी एक साथ कई प्रश्न, कई वाक्य घूम गये जो उक्ति माँगते थे, पर जो कहा उस ने गौरा का ही वाक्य था, "शब्द अधूरे हैं क्यों कि उच्चारण माँगते हैं. . .लेकिन अब भागूँगा नहीं, इतना कह दूँ. . ."

थोड़ी देर बाद गौरा ने सहसा उलाहने से कहा, "तुम ने मुझे खबर भी नहीं दी—यहाँ आते और चले जाते?"

"नहीं गौरा, इतना बुरा तो नहीं हूँ। मैंने आज तुम्हें पत्र लिखा है—अभी चाहे गया न हो—मैंने सोचा था, खाट पर पड़े देखने न बुलाऊँगा, जिस दिन उठूँगा उसी दिन—"

"इतने बुरे हो तुम।" कह कर गौरा रुक गयी। "हो तुम—हैं आप निरे मास्टर

साहब ही—जो सिखाते हैं, स्वयं नहीं सीखते—दूसरों की बात आप कभी नहीं सोचते ?"

भुवन ने सोचते-से कहा, "दूसरों की !" और धीरे-धीरे आवृत्ति की, "दूसरों की . . ." थोड़ी देर बाद बोला, "गौरा, अब तक दूसरा मैं अपने को ही मानता आया, तुम्हारी शिकायत असल में यही है कि तुम्हें पहला और अपने को दूसरा क्यों माना मैंने; और मेरी मुश्किल यह है कि मैं वैसा मानने को ग़लत नहीं समझ पाता—अब भी नहीं !"

गौरा ने कहा, "ऐसा नहीं हो सकता कि कोई बात—ग़लत न हो, लेकिन—" तनिक रुक कर, "बुरा न मानना—लेकिन अहंकार हो ? मैं जजमेंट नहीं दे रही, पर बात कहने का साहस कर रही हूँ क्यों कि तुम ने सिखाया है; यह भी तो एक पक्ष हो सकता है ?"

भुवन सोचता-सा काफ़ी देर तक चुप रहा, फिर खोया-सा बोला, "शायद तुम ठीक कहती हो, गौरा : ग़लत नहीं है, पर अहंकार हो सकता है । मैंने तुम्हें बहुत कष्ट दिया है न, गौरा ?"

गौरा बोली नहीं, भुवन के स्वर में सहसा जो कोमलता आ गयी थी उस से उस की आँखों में कुछ चमका; उस ने चेहरा भुवन की ओर उठाया और उसकी दृष्टि भुवन के चेहरे को दुलरा गयी ।

* * *

दिन छिप गया था, पर गौरा ज्यों-की-त्यों बैठी थी, बत्ती जलाने का उसे ध्यान नहीं आया । वह भी वैसी ही कैनवस की आराम-कुरसी पर बैठी थी जैसी पर भुवन को उस ने देखा था, उस की गोद में पुस्तक नहीं तो कापी पड़ी थी—भुवन की कापी । कैसा अद्भुत था यों बैठ कर दोहरा जीवन जीना : वह गौरा भी थी, जो अपने को भुवन के प्रतिबिम्ब के रूप में देख रही थी, भुवन की बातों को समझ रही थी, उन पर होने वाली अपनी मानसिक प्रतिक्रियाओं की सूक्ष्मतम छाप ले रही थी और ले कर मानो एक निधि में जमा करती जा रही थी, जो मसूरी में लिखे गये अपने उन विचारों को याद कर रही थी जो भुवन के प्रति निवेदित हो कर भी भुवन को दिये नहीं गये; और वह भुवन भी थी—आराम-कुरसी पर बैठा हुआ भुवन, गोद में पुस्तक या कापी में एक-एक दो-दो वाक्य लिखता और लिख कर उन पर और उन के हेतु गौरा पर विचार करता हुआ भुवन . . .

"स्नेह-शिशु, तुम्हें छोड़ कर नहीं भागा । भागा ज़रूर, पर सच कहूँ कि जब भागा तो कुछ अगर साथ लिया तो तुम्हारी प्रतिच्छवि—और मेरे विक्षत मन के कसैले विराग को एकदम कटु हो जाने से बचाया तो उसी ने . . . अब पीछे देखता हूँ तो लगता है, मुझे यह पहले देखना चाहिए था—जिस उथल-पुथल ने मुझे पकड़ लिया, (जिस की बात तुम से कर चुका) उस से पहले देखना चाहिए था . . . वह मुझे छोड़ कर चली गयी 'ए वाइज़र बट ए सैडर मैन'—उस दुःखमय विवेक ने मुझे बताया कि क्या चीज़ है जो अब भी

जीवन में आस्था नहीं मिटने देती. . .फिर भी तुम से दूर क्यों गया—क्यों जाना चाहा ? इस लिए कि सीखा, स्नेह में जब मोह भी होता है तब आघात मिलता है—मिलता ही नहीं, तब व्यक्ति स्वयं उसी को आहत करता है जिसके प्रति स्नेह है। इसी लिए सोचा, तुम जानो, उस से पहले ही दूर चला जाऊँ। स्नेह से दूर नहीं, स्नेह के लिए दूर. . .

"तुम ने मेरी बात नहीं समझी थी। तुम आहत हुई। शायद अब भी न समझो। और शायद न समझना ही अच्छा है, समझना सब मानो मेघाच्छन्न होना है, और वह मुझ-जैसों के लिए ही अच्छा है जो बीत गये हैं, जिन का जीवन आन्तरिक हो गया है, जो अपनी समझ की मेघ-छाया में रहने के आदी हो गये हैं। तुम्हारे लिए नहीं, जिस का भविष्य आगे है, भविष्य जो सुनहला हो, जिस में हँसी हो, बालारुण की आभा हो, आलोक हो. . . मैं जैसे तमिस्रा का पोष्य पुत्र हूँ—इसी लिए आलोक को पूजता आया हूँ, कभी दूर से, जैसा कि ठीक है, कभी निकट से, जैसा कि विपज्जनक है; कभी छूने को ललचाया हूँ, जो महान् मूर्खता है, क्योंकि छूने से आलोक बुझ जाता है !"

"रवि ठाकुर ने कहीं लिखा है : 'मैं उस विशाल मरु की तरह हूँ जो घास की एक हरी पत्ती को पकड़ लेने के लिए हाथ बढ़ाता है'—मैं कहूँ कि मैंने इस की विडम्बना जान ली है, घास की पत्ती को निकट लाने के लिए मरु फैलता नहीं, सिमटता है; सिमट कर अकिंचन हो कर ही वह पत्ती को पकड़ तो नहीं, लगभग छू सकता है।"

"स्नेह-शिशु तुम ने मुझे कहा था : मैं किसी तरह नहीं सोच पाता कि यह नाम मैंने नहीं ढूँढ़ा था, कि मैंने नहीं तुम्हें दिया था। तुम्हारी ही चीज तुम्हें लौटाता हूँ, लेकिन शतगुण स्नेह से, गौरा !"

"तुम ने मुझ से वचन माँगा था, अपने को अनावश्यक संकट में न डालूँगा। क्या यह अनावश्यक संकट है ? संकट भी है ? या कि यहाँ न आना ही संकट होता—वहाँ रहना ही संकट होता है ?"

"जंगल, घने बादल, तीन बजे दिन में अँधेरा-सा; हाथियों के झुंड-से बादल—गड्ड-मड्ड होते हुए हज़ारों हाथियों के महायूथ-से. . .एक आकृति दूसरी में घुल जाती है, लेकिन कलौंस ज़रा भी कम नहीं होती; भीतर न जाने क्या-क्या माँगें उठती हैं और उतनी ही नीरवता में, उतनी ही निष्पत्तिहीन विलीन हो जाती हैं. . .मैं सोच नहीं सकता, ध्यान केन्द्रित नहीं कर सकता; एक ही स्पन्दन जैसे हर बात में गूँज जाता है और उस को सुनने के सिवा चारा नहीं है . . .पर साथ ही उसे सुन कर भी काम नहीं चलता—उधर ध्यान दूँ तो वह ऐसा अभिभूत कर लेगा कि बस. . ."

"आज से छः महीने पहले तुम्हारे साथ आग के पास बैठा था—आग के डर से मुक्त हो कर. . .और आज—! वह बड़ा दिन था। यों आज वास्तव में बड़ा दिन है—उत्तरा-यण के एक-आध दिन ही इधर-उधर—और वह दिन के हिसाब से तो छोटा ही दिन था ! मैं देखता हूँ वह आग : हम दोनों से एक-दूसरे की ओर झरती हुई सान्त्वना और आश्वा-

सन की धारा—यह मेरा अहंकार तो नहीं है कि 'एक-दूसरे की ओर' कह रहा हूँ ?

"मैंने कहा था, यह तुम्हारी आग है। तुम ने कहा था, आग से डरना मत। तब से मैं मानो उसे लिये-लिये कहाँ-कहाँ फिर रहा हूँ..."

"मैं लेटा था, किसी ने आ कर पूछा, रेडियो सुनोगे ? और लगाया : सहसा शून्य में से क्या आवाज़ आयी जानती हो ? '**मोर वीणा उठे कौन सुरे बाजि—कौन नव चंचल छन्दे। ए अम्बर प्रांगण माझे निःस्वर मंजीर गुंजे**'*—आकाश ही मेरा घर है, जिस में वह छन्द गूंजता है..."

"मैंने तुम्हें खबर नहीं दी। अब कभी-कभी विचार उठता है—क्या भूल की ? क्यों कि अब यह ज़रा-ज़रा-सा लिखना भी कठिन होता जाता है—मेजर भुवन मास्टर साहब का एक काला धुँधला खोल भर है, शक्ति-हीन, लगभग निर्जीव...लेकिन यही ठीक है गौरा—यही ठीक है...जब तक मुझे होश रहेगा, तुम्हें आशीर्वाद देता रहूँगा—अगर न रहेगा—तो भी वह अशीर्वाद रह जायेगा ! इस जीवन से आगे कुछ नहीं है गौरा, यही सम्पूर्ण है, यही अन्त है। लोग ऐसा मानने से डरते हैं, मुझे लगता है, यही तो जीवन को अर्थ देता है। इस जीवन का दर्द इस लिए मूल्यवान् नहीं है कि किसी दूसरे जीवन में उस का पुरस्कार मिलेगा; इस लिए मूल्यवान् है कि इस जीवन से आगे और कुछ नहीं है। क्यों कि मूल्य किसी पड़तालिये के लिए नहीं होता जो रोकड़ मिला कर तय करे कि क्या हाथ आया, मूल्य है तो उस व्यक्तित्व के लिए जो उस दर्द में से गुज़र रहा है और मूल्य उसी अवस्था में है..."

"भुवन केजुएल्टी हो गया। उसे देश वापस भेजा जा रहा है ठीक होने के लिए। क्यों जी, ठीक होगे तुम ?

"अपने से ही मध्यम पुरुष में बात करने लगे कोई...सुना है, जेलों में फांसी के कैदी ऐसा करने लगते हैं। लेकिन अपने से उबरने के दूसरे भी तरीके हो सकने चाहिए।

"अपने से उबरने के। अपना क्या ? क्या कोई अपनी भावनाओं से, अपने रागों से उबरना चाहता है ? या कि केवल एकातिरिक्त सब रागों से ही ? क्यों जी, तुम्हारी क्या राय है ?"

"न, गौरा, लगता है यह तुम से विश्वासघात होगा—यद्यपि वचन मैंने नहीं दिया था। मैं ठीक हो जाऊँगा। ज़रूर हो जाऊँगा—और तुम से मिलूँगा भी..."

"देश का आकाश...तुम कहाँ हो, गौरा ? मैं लिखना चाहता हूँ—"

"नहीं। मैं वापस ही जाऊँगा ! आगे नहीं देखूंगा। भविष्य नहीं सोचूँगा, क्यों कि वह नहीं है, वह वर्त्तमान का ही स्फुरण है। सोचता हूँ, बीच में विचार क्यों बदल गये थे, तो रैबेल की बात याद आती है : शैतान बीमार हुआ तो उस ने साधु होना चाहा :

*रवीन्द्रनाथ ठाकुर

द डेविल वाज़ सिक, द डेविल ए मंक वुड बी :
द डेविल ग्रू वेल, द डेविल ए मंक वाज़ ही !

पर यहाँ शायद साधु ही बीमार हो कर शैतान होना चाह रहा है !"

"बहुत सुन्दर है लताओं-पत्तियों की झाँझरी यह
पर मुझे आकाश प्यारा है ..."

कापी गौरा पढ़ चुकी थी। उस के वाक्य आगे-पीछे उस के अन्तःक्षितिज से उठते और विलीन होते जाते थे। क्या भुवन का यह कहना ठीक है कि जो है, यही जीवन है, आगे कुछ नहीं है, परलोक नहीं है, पुनर्जन्म नहीं है ? वह मान सकती है कि पुनर्जन्म नहीं है, परलोक भी नहीं है—इस जीवन का कर्म-फल भोगने के लिए पुनः जन्म लेने की कोई आवश्यकता उसे नहीं दीखती क्यों कि भोग सब इसी जीवन में भुगता दिये जाते हैं, देना-पावना सब राई-रत्ती यहीं चुक जाता है ऐसा वह मान ले सकती है। पर क्या यह जीवन ही सब कुछ है—यह हमारा हमारी चेतना की मर्यादाओं से मर्यादित देश-काल से बँधा जीवन ? क्या हम एक के बाद एक नहीं, एक साथ ही एकाधिक जीवन नहीं जीते, एकाधिक लोकों में नहीं रहते—हाँ, एकाधिक चेतना द्वारा उस के या उन के प्रभावों को ग्रहण नहीं करते ? सदा न करते रहते सही, जीवन-शक्ति की उत्तेजना के क्षणों में ही सही; पर कभी भी अगर हम दूसरे स्तर पर, दूसरे लोक में दूसरे जीवन में प्रविष्ट हो सकते हैं, तो वह है...वही अभी गौरा भी है, भुवन भी है, आज की गौरा भी है, पुरानी भी, आज का भुवन भी है, पुराना भी, कापी पढ़ने वाली भी है, लिखने वाला भी, लिखने वाले की अनुभूति के कई स्तर भी, कई काल भी—और सब परात्पर नहीं, सब एक साथ, एक क्षण में...

और नहीं, वह कहीं—वह कहीं पृष्ठभूमि में रेखा भी है, रेखा की व्यथा भी और विशालता भी, अकिंचनता भी और दानशीलता भी—वह व्यक्ति का जीवन नहीं, निर-पेक्ष जीवन है, सर्वस्पर्शी, सर्वत्र स्पन्दित ...

वह उत्तेजित हो कर खड़ी हो गयी। कापी उस की गोद से फिसल कर गिरी, उस के शब्द ने उसे चौंका दिया। गौरा ने आगे बढ़ कर बत्ती जलायी, और रेखा को तार लिखने लगी कि भुवन वहाँ है, ठीक है, कि उसे बाहर निकलने की इजाज़त भी मिल रही है कल से ।

* * *

"गौरा, आज फिर मैं तुम्हारा अतिथि हो कर तुम्हारे कमरे में बैठा हूँ।"

"ऐसा क्यों कहते हो, भुवन ?" गौरा ने उस की बात का अभिप्राय न समझते कुछ आहत स्वर में कहा ।

"मुझे याद आता है मसूरी का वह पहला दिन—वह रात जो चलते-चलते

दिन हो गयी थी---तब भी तो तुम्हारा मेहमान हो कर बैठा था।"

"वह तो तुम्हारा कमरा था---मेहमान-कमरा ही था वह। मेरे कमरे में तो---मेरे कमरे में तुम कब आये थे तुम्हें याद है ?"

भुवन ने उठ कर एक कोने की ओर बढ़ते हुए कहा, "खूब याद है---नये वर्ष के दिन मैं तुम्हारा कमरा सजाने गया था---" उस ने तिपाई पर रखे फूलदान से एक फूल निकाल लिया था, उसे लिये हुए गौरा की ओर मुड़ते हुए बोला, "और मेरे हाथ से एक फूल तुम्हारे ऊपर गिर गया था।" कहते-कहते उस ने वह फूल गौरा के कबरी-बन्ध में अटका दिया।

"ऐसे नहीं गिरा था, ऐसे गिरा था---" कहते-कहते गौरा उस के पैरों की ओर झुक गयी। "मेरा प्रणाम लो, शिशु!"

भुवन ने जल्दी से झुक कर उस के दोनों हाथ पकड़े और उसे खींच कर उठा लिया, हाथ छोड़े नहीं और एक-टक उसे देखता रहा।

देर बाद उस ने धीरे-धीरे कहा, "गौरा, अब मैं फिर जल्दी ही चला जाऊँगा---पर अब भागूँगा नहीं। और---" कहते-कहते वह एक घुटने पर झुका, "प्रणाम मुझे करना चाहिए, क्यों कि तुम---"

हड़बड़ा कर गौरा ने कहा, "नहीं, नहीं भुवन, नहीं।" और उस के हाथ खींचने लगी, भुवन रुक गया पर उठा नहीं। उसे खींचने के लिए गौरा तनिक निकट बढ़ आयी थी, भुवन ने धीरे-से अपना सिर उस के पार्श्व में टेक दिया, गौरा ने एक-एक हाथ छुड़ा कर उस के सिर पर रखा और धीरे-धीरे बाल सहलाने लगी।

दो-चार दिन भुवन अस्पताल के अहाते में टहला था, फिर उसे बाहर जाने की अनुमति मिली तो गौरा उसे टैक्सी में घुमा लायी थी। दूसरे-तीसरे दिन एक संगीत-गोष्ठी में भी ले गयी थी। पर अपने यहाँ ले जाने की बात उस ने तब तक नहीं की जब तक भुवन को अनुमति नहीं मिल गयी कि वह चाहे जहाँ जा सकता है, केवल अपने को थकायेगा नहीं, सावधानी से खायेगा, और रात के भोजन के समय वापस लौट जायगा। तब गौरा फिर उसे लिवाने आयी, अस्पताल से वे टहलते हुए निकले; कुछ देर बाद गौरा ने पूछा, "भुवन, मेरे यहाँ चलोगे ?"

भुवन ने एक बार उस की ओर देखा और बिना उत्तर दिये ही उस के साथ मुड़ गया।

"मुड़ तो गये, यह भी जानते हो कि किधर जाना है ?

भुवन ने भोलेपन से कहा, "न, तुम ले जा रही हो, मैं जा रहा हूँ। दैट इज़ आल आइ नो एंड आल आइ नीड टु नो।" *

***इतना ही मैं जानता हूँ और इतना ही जानने की ज़रूरत है।**

"मेरा यहाँ तो क्या है, होटल का कमरा है एक। पहले भी वहाँ रह चुकी हूँ। पर थक तो नहीं जाओगे--टैक्सी लें ?"

"बहुत दूर है ? नहीं तो पैदल ही चलें--लौटते समय चाहे टैक्सी ले लूँगा। चलना अच्छा लगता है--नये सिरे से सीख रहा हूँ।"

कमरा साफ़-सुथरा था; होटल के कमरों से उस में अन्तर इतना था कि फर्नीचर कम था, एक तरफ़ एक तख्त पड़ा था जिसे गौरा ने अपने ढंग में सजा रखा था। इसी पर गौरा ने भुवन को विठाया था।

गौरा की उँगलियाँ भुवन के बालों में से तिरती हुई पार निकल जातीं और फिर लौट आतीं; फिर उस ने सहसा बाल हिला कर उलझा दिये और मधुर स्वर में पूछा, "भुवन, अब वचन दोगे ?"

"हाँ, गौरा। अब वचन देता हूँ।"

गौरा फिर धीरे-धीरे बाल सहलाने लगी।

"अब नहीं भागूँगा। पहले बहुत भागा। पहले जानने से भागा; पिछली बार--मसूरी में जब वह सम्भव न रहा तो स्वीकृति से भागा। मसूरी में--मैंने सहसा देखा कि मेरे आगे एक मेघ है और वह तुम्हारे बालों का है--तो जान लिया--जान क्या लिया, तुम ने कह दिया और मुझे लगा कि जान कर ही तुम ने कहा है, नहीं तो तुम भी कैसे कह पातीं ? मैंने तुम्हें कहा था--कुछ हँसी में ही सही, कहा तो था--कि जिस दिन ऐसा होगा जान लूँगा कि कि मेरी खोज--मेरे लिए खोज--समाप्त हो गयी और पड़ाव आ गया। पर--" वह चुप हो गया। फिर सहसा उठ कर उस ने पूछा, "गौरा, तुम सोचा करोगी न कि मैं कितना बुद्धू हूँ ?"

गौरा खोयी-सी मुस्करा दी। "सोचा करूँगी ! क्यों, भविष्य की क्यों--शिशु तो तुम हो ही, अब भी हो, हमेशा ही थे--"

"और तू बड़ी सयानी आयी है कहीं से चल के !" भुवन ने हलका-सा चपत उस के गाल पर लगा दिया। फिर तख्त पर बैठते हुए, बदले स्वर में बोला, "गौरा, तुम्हारा संगीत तो मैं ने सुना ही नहीं कभी--मसूरी में चोरी से ही सुना था सितार--"

"सुनाऊँगी--"

"कब ? अभी नहीं ?"

"न ! अभी गा सकती, पर तुम्हारे सामने गाऊँगी नहीं, और यहाँ पर तो नहीं ही। फिर एक दिन--"

"फिर एक दिन !" भुवन का स्वर थोड़ा उदास हो आया। "थोड़े-से तो दिन और हैं, फिर मैं वापस जो चला जाऊँगा--"

"थोड़े-से ? ऐसा मत कहो, शिशु, देखो, मैं भी नहीं कहती--बहुत दिन आयेंगे आगे।

नहीं तो मैं यहीं बैठी रहूँगी, फ़्रंट पर तुम जाओगे; दिनों की लघुता में जानती कि तुम !"

भुवन अचम्भे में उसे देखने लगा। देखता रहा। गौरा ने पूछा, "क्या ताक रहे हो ?"

"मसूरी में तुम्हारे चेहरे पर एक कान्ति देखी थी, जो पहले नहीं देखी थी। वही देख रहा था। चाहता हूँ, हमेशा उसे देख सकूँ—"

गौरा ने रुकते-रुकते कहा, "मेरी कान्ति तो तुम हो, पगले !"

* * *

बंगलौर से भुवन मद्रास गया; छुट्टी से लौट कर वहीं रिपोर्ट करने का आदेश उसे मिला था, वहीं से जहाज़ में वह फिर फ़्रंट पर जायेगा। तीसरे पहर उसे बन्दर पर हाज़िर होना था; दोपहर को वह गौरा के साथ समुद्र की ओर गया—वहीं विदा ले कर वह चला जायेगा, गौरा बन्दर पर नहीं जायेगी. . .ऐसा ही उस ने चाहा था, और गौरा ने उस की बात समझ कर मान ली थी।

भुवन ने कहा, "गौरा, कुछ आदिम जातियों का विश्वास है कि आत्मा शरीर से अलग रखी जा सकती है—उन के वीर जब युद्ध करने जाते हैं तो आत्मा किसी चीज़ में घर रख जाते हैं—पोटली बाँध कर खूँटी पर भी टाँग जाते हैं।"

गौरा ने अविश्वास से कहा, "नहीं !"

"हाँ, सच ! और अब की—मैं अपनी आत्मा तुम्हारे पास रखे जा रहा हूँ—उसे सँभाल रखोगी न ?"

गौरा ने उस की ओर देख-भर दिया। उस की साँस जल्दी चलने लगी, वह बोल नहीं सकी।

"और पोटली बाँध कर नहीं रखूँगा—तुम्हीं में है वह—"

"मैं जानती हूँ भुवन, मेरी साँस है वह—"

"मैं लौटूँगा, गौरा। काम वहाँ बहुत है, बहुत कड़ा है; तुम्हारा भी काम है—पर—काम अपने-आप से टूट कर नहीं है—" वाक्य उस ने अधूरा छोड़ दिया, मानो भूल गया है कि वह क्या कह रहा है।

वर्दी की जेब से एक पुस्तक उस ने निकाल कर गौरा को दी।

"यह लो गौरा, कुछ कविताएँ हैं, लारेंस की। अस्पताल में तुम आयी थीं तब यही पढ़ रहा था। एक कविता है—" कहते-कहते उस ने पुस्तक खोली, 'ए मैनिफ़ेस्टो'। वही तब पढ़ रहा था। आज बता देता हूँ। तुम पढ़ना—तुम्हें अचम्भा होगा। पढ़ इस लिए रहा था कि उस के अंश मैं अपनी कापी में लिखना चाहता था, पर मेरे शब्द अधूरे थे, लारेंस कह गया था. . ." वह रुक गया। फिर बोला, "वह तो तुम अपने-आप पढ़ना; एक दूसरी

है जिस की तीन-चार पंक्तियाँ तुम्हें सुना देता हूँ—मुझे याद हैं।"

क्षण-भर वह सोचने को रुका, गौरा प्रतीक्षा में नीचे बालू की ओर देखने लगी।

"आइ एम नाट एट आल, एक्सेप्ट ए फ्लेम——" भुवन ने सहसा रुक कर कहा, "नहीं गौरा, मेरी ओर देखो——" और आँखों से उस की आँखें पकड़े हुए वह बोलने लगा :

"आइ एम नाट एट आल, एक्सेप्ट ए फ्लेम दैट माउंट्स आफ़ यू——
ह्वेयर आइ टच यू, आइ फ्लेम इंटू बीइंग ; बट इज़ इट मी, आर यू ?
हाउ फुल एंड बिग लाइक ए रोबस्ट फ़्लेम
ह्वेन आइ एनफ़ोल्ड यू, एंड यू क्रीप इंटू मी,
एंड माइ लाइफ़ इज़ फ़ियर्स ऐट इट्स क्विक
ह्वेयर इट कम्स आफ़ यू !"*

सहसा आगे झुक कर उस ने गौरा का माथा सूंघा और बोला, "अच्छा, गौरा——"

तीन-चार पग की दूरी से उस ने मुड़ कर देखा और कहा, "वह कान्ति, गौरा——मेरी जुगनू——"

और गौरा कोहनी से दोनों हाथ उठाये निःस्वर शब्दों में इतना कह पायी, "हाँ मेरे शिशु, हाँ, शिशु——"

* * *

गौरा को एक पार्सल मिला।

उस में रेखा का एक पत्र था, और एक छोटी-सी डिबिया ; डिबिया उस ने खोली, उस में एक अँगूठी थी। गौरा ने अँगूठी पहचान ली, कुछ चकित-सी वह पत्र पढ़ने लगी :

गौरा,

यह मैं उसी दिन तुम्हें दे ही देती, पर तुम ने कहा था कि मैं इसे तुम्हारी ओर से रख छोड़ूँ, तुम फिर कभी माँग लोगी। मैं अधिक आग्रह नहीं कर सकी थी——तुम ने पूछा था कि माँ ने यह मुझे कब दी थी, और उस से मुझे बहुत-सी बातें याद आ गयी थीं जिन्हें मैं याद नहीं करती और जिन की प्रतिध्वनियों से भरा हुआ मन ले कर यह नहीं देना चाहती थी. . .

गौरा, तुम तो कभी माँगोगी नहीं, पर अब मैं स्वंय भेज रही हूँ ; मुझे बार-बार तुम्हारी

---

* मैं कुछ नहीं हूँ सिवा एक शिखा के जो तुम से उठती है ; जहाँ मैं तुम्हें छूता हूँ वहीं दीप्त हो उठता हूँ——किन्तु वह होना मैं हूं या तुम ?

पुष्ट अग्निशिखा-सा विशाल और सम्पूर्ण मैं तुम्हें घेरता हूँ और तुम मुझ में छिप जाती हो ; मैं और मेरे जीवन की प्रचंडतम दीप्ति है उस जीवन्त बिन्दु पर जहाँ वह तुम से उद्भूत होती है।

याद आती है और भीतर कुछ कहता है कि यह जो तुम ने मेरे पास रखी कि फिर कभी भेज दूं, वह इसी समय के लिए था। मेरा आशीर्वाद लो, गौरा, और मेरा स्नेह ; माँ ने आशीर्वाद के साथ यह अँगूठी मुझे दी थी, मुझे आशीर्वाद नहीं फला अपनी अपात्रता के कारण (पर जीवन के प्रति अकृतज्ञ मैं नहीं हूँ, न कभी हूँगी, गौरा ; और इस के लिए ऋणी हूँ तुम्हारे 'मास्टर साहब' की) ; पर तुम पात्र हो, और मैं गर्व कर के यह भी कह जाऊँ कि मेरा आशीर्वाद भी अधिक सार्थक है, क्यों कि उस के पीछे वह है जो माँ ने नहीं जाना था. . .

गौरा, जीवन में आनन्द सब कुछ नहीं है, पर बहुत बड़ी चीज है; और है वह सुखों में नहीं ; है वह मन की एक प्रवृत्ति। मैं बहुत लालची थी, मैंने एक साथ ही सारे तारों-भरे आकाश को बाँहों में घेर लेना चाहा था। तुम में अधिक धैर्य है। तुम आकाश की छत को छू सकोगी। और एक-एक तारा तुम्हारी एक-एक सीढ़ी होगी. . .जीवन की चरम एक्स्टैसी तुम जानो, गौरा ; उसे जाने बिना व्यक्ति अधूरा है; पर यह फिर कहूँ : आनन्द अनुभूति में नहीं है, किसी अनुभूति में नहीं, आनन्द मन की एक प्रवृत्ति है, जो सभी अनुभूतियों के बीच में भी बनी रह सकती है।

तुम्हें सीख नहीं दे रही, गौरा ; हर व्यक्ति एक अद्वितीय इकाई है, और हर कोई जीवन का अन्तिम दर्शन अपने जीवन में पाता है, किसी की सीख में नहीं। पर दूसरों के अनुभव वह खाद हो सकते हैं, जिस से अपने अनुभव की भूमि उर्वरा हो. . .

उस समान आनन्द की कामना तुम्हारे लिए करती हूँ, गौरा—तुम्हारे लिए, और भुवन के लिए।

तुम्हारी
रेखा दीदी

गौरा ने अँगूठी हाथ में ले कर पत्र और डिबिया सँभाल कर रख दी, फिर अँगूठी को देखती हुई टहलने लगी। कटहला उस ने कभी पहना नहीं था—और यही मानती आयी थी कि वह कुछ साँवले रंग पर सुहाता है। रेखा के हाथ पर वह अच्छा लगता था. . . एकाएक वह देख सकी : रेखा के दोनों हाथ वैसे बढ़े हुए जैसे उसे अँगूठी पहनाने के लिए दिल्ली में बढ़े थे—विशेष सुन्दर नहीं थे वे हाथ, पर अत्यन्त संवेदना-प्रवण, और अँगूठी बढ़ाये हुए उन की वह मुद्रा स्वयं एक इतिहास थी. . .गौरा ने अँगूठी पहन ली, और एक विचित्र भाव उस के मन में उमड़ आया। आलमारी तक जा कर उस ने एक पुस्तक निकाली—वही पुस्तक जो भुवन उसे जाते वक्त दे गया था—और वह कविता पढ़ने लगी जो भुवन अस्पताल की पहली भेंट के समय पढ़ रहा था—'ए मैनिफ़ेस्टो'।

'ए वुमन हैज़ गिवन मी स्ट्रेंग्थ एंड एफ़्लुएंस—ऐडमिटेड !'

दो-चार पंक्तियाँ उस ने और पढ़ीं, लेकिन फिर पहली पंक्ति की ओर लौट आयी—

'ए वुमन हैज़ गिवन मी स्ट्रेंग्थ एंड एफ़्लुएंस—ऐडमिटेड !'—एक नारी ने मुझे शक्ति और ऋद्धि दी है. . .मैं स्वीकार करता हूँ !

गौरा ठिठक गयी। भुवन चाहे जैसे वह पुस्तक पढ़ता रहा हो, अस्पताल में बैठे-बैठे उस का चाहे जो अर्थ लगाता रहा हो, लेकिन वह पंक्ति ठीक कहती है : एक नारी ने—नारी ने ही. . .सहसा वह कागज़ लेने के लिए बढ़ी : वह रेखा को पत्र लिखेगी और यह पुस्तक रेखा को भेज देगी। पत्र में क्या लिखेगी, उस के वाक्य अभी ही उस के मन में स्पष्ट तिरने लगे थे. . ."तुम्हारी वह मूल्यवान् भेंट लौटाऊँगी नहीं, रेखा दीदी; लौटायी तब भी नहीं थी। अँगूठी मैंने पहन ली है, तुम्हारे आशीर्वाद के आगे नत-मस्तक हूँ,—पात्रता की बात मैं नहीं जानती, पर आशीर्वाद के लिए पात्रता क्या, वह तो पात्रता के प्रश्न के परे जो स्नेह दिया जाता है वह है।. . .रेखा दीदी, भेंट के बदले में नहीं, अपने ट्रिब्यूट के रूप में एक चीज़ भेज रही हूँ। यह भुवन की पुस्तक है जो वह जाते समय मुझे दे गये हैं। मैंने उन से पूछा नहीं, न पूछूँगी; वह अवश्य समझ सकेंगे।. . .इस पुस्तक में एक कविता है, 'ए मैनिफ़ेस्टो'—इसी कविता के लिए यह पुस्तक उन्होंने मुझे दी थी—उस की पहली पंक्ति है : 'ए वुमन हैज़ गिवन मी स्ट्रेंग्थ एंड एफ़्लुएंस—ऐडमिटेड !' मेरा विश्वास है कि इस पंक्ति को वह आप से छिपाना न चाहेंगे, न मैं ही चाहूँगी; वह आप ही की है और इसी लिए यह पुस्तक भी।. . .रेखा दीदी, मेरे पास दर्शन अभी कुछ नहीं है, एक आस्था है, और कुछ श्रद्धा, और सीखने की, सहने की, और यत्किंचित् दे सकने की लगन है; इन के और आप के स्नेह के सहारे मुझे लगता है कि मैं चारों ओर बहते अजस्र प्रवाह में खड़ी रह सकूँगी; एक नगण्य व्यक्तिपुंज, अस्तित्व का एक छोटा-सा द्वीप, लेकिन जो फूलना चाहता है, फूल झरा कर नदी के बहते जल को सुवासित कर देना चाहता है—फिर नदी चाहे जो करे, उन फूलों की गन्ध ही पहुँच जाय दूर, दूर, दूर. . ."

उपसंहार

'वहाँ', 'वर्मा फ्रंट में कहीं पर', भौगोलिक अनिश्चितता की धुन्ध में खो कर भुवन जब-तब गौरा को छोटे-छोटे पत्र लिखता रहा था। लेकिन क्रमशः भौगोलिक अनिश्चितता के कृत्रिम वातावरण ने उसे छा लिया था, यह जानते हुए भी कि वह कहाँ है, वह मानो कहीं नहीं रहा था। फिर दो महीने तक उस ने कोई पत्र नहीं लिखा।

लेकिन अक्टूबर १९४२ में सहसा उस ने पाया कि अपने बाँस के घर में वह बिलकुल अकेला है। बाँस के उन घरों का वह आदी था––कीचड़ में खड़ी बाँस की चटाई की दीवारें, कीचड़ पर बिछी बाँस की चटाई का फ़र्श, बाँस की चटाई की टट्टियों से ढँकी खिड़कियाँ, बाँस की खाट पर बाँस की चटाइयों के पलँग, बाँस की चटाई से ढँके चौखटे की मेज़ें. . .और जंगल में अकेलापन भी कोई नया अनुभव नहीं था––यों तो उस भीड़ में रह कर सभी अपने भीतर के अकेलेपन में खिंच जाने के आदी थे, पर उसके अलावा शारीरिक अकेलापन भी वहुधा हो जाता था। पर इस अकेलेपन में कुछ विशेष था। उस का घर जो उस का दफ्तर भी था, वास्तव में तीन अफ़सरों का संयुक्त घर-दफ्तर था, जंगल में औरों से अलग और कँटीले तारों से घिरा हुआ : वहाँ पर नाना प्रकार के रेडियो और विद्युत् यन्त्रों से घिरे हुए वे तीनों निरन्तर प्रयोग करते थे, अनुलेखों का संग्रह करते थे, और केन्द्रित रेडियो-रश्मियों द्वारा अदृश्य चीज़ों को पहचानने के नये आविष्कार को सम्पूर्ण सफल और व्यावहारिक वनाने के काम में योग देते थे। पर उस दिन सवेरे उस के दोनों साथी शिविर में गये थे और अव तक लौटे नहीं थे; उधर लड़ाई की आवाज़ भी उस ने सुनी थी; निकट ही कहीं जापानी हैं यह ज्ञात था और आक्रमण की सम्भावना भी की जा रही थी। क्या हुआ ? वह नहीं जानता था। क्या होगा, यह भी नहीं। सम्भव है, रात में उठ कर उसे और कुछ दूर पर वने दूसरे वासे में रहने वाले आर्डरली-अफ़सर को एकाएक सब यन्त्र वगैरह विस्फोटक से उड़ा कर जंगल में निकल जाना पड़े, अकेले-अकेले; सम्भव है वह भी अवसर न मिले, पकड़े ही जायें; और––यह भी सम्भव है कि शाम को उस के साथी कुछ अच्छा समाचार ले कर लौट आवें, अखवार और डाक ले आवें ––अजव होता है युद्ध-मुख का भाई-चारा, जिस में अजनवी भी एक-दूसरे को अपने अन्तरंग पत्र सुनाते हैं. . .

भुवन की इच्छा हुई कि पत्र लिखे। पर वह वैठा नहीं, उसे टालने के लिए इधर-उधर यन्त्रों को देखता हुआ घूमने लगा। पर नहीं, कहीं कुछ करने को नहीं था। सहसा उस ने एक यन्त्र के सामने पड़ी हुई कापी निकाली, क्षण-भर उस के चार-खाने पन्नों को देखता रहा, फिर पेंसिल से द्रुत गति से उन्हें रँगने लगा।

गौरा,

फिर दो महीने से मैंने तुम्हें पत्र नहीं लिखा। जहाँ हूँ, वहाँ पत्र भी अवास्तव लगते हैं

--केवल मन के भीतर जो है वही वास्तव लगता है। तुम ने एक बार शब्द को अधूरा बताया था उच्चारण की मर्यादा के कारण; पर सभी कुछ अधूरा है जिस के साथ गोचर होने की शर्त है--सम्पूर्ण वही है जो बिना इन्द्रियों के माध्यम के ज्ञात है. . .

आज भी पत्र लिखने लगा हूँ तो यथार्थता कुछ अधिक नहीं है, कदाचित् और भी कम है, क्योंकि आज बिलकुल भरोसा नहीं है कि यह चिट्ठी डाक में पड़ेगी या नहीं, कभी जायेगी या नहीं। फिर भी लिख रहा हूँ, यह एक तो मानव की सहज प्रतिकूलता है; दूसरे इस का एक तात्कालिक कारण है। मुझे कुछ कहना है--कुछ पूछना है। और जब पूछ लूँगा तब तुम यह भी जान लोगी कि दो महीने में चुप क्यों रहा।

गौरा, मैं लौट कर आऊँगा या नहीं, क्या पता; कब आऊँगा यह भी कौन जाने। पर अगर आया--आने के साथ यह 'अगर' न होता तो शायद अब भी मैं यह पत्र न लिख पाता!--अगर आया तो क्या तुम मुझ से विवाह करोगी? तुम्हें जानते हुए मैं जानता हूँ कि तुम स्वतन्त्र निर्णय करने के योग्य होते हुए भी चाहोगी कि मैं तुम्हारे पिता से पूछूँ; वह मैं पूछूँगा जब पूछने का समय होगा, अभी तुम्हीं से जानना चाहता हूँ कि उन से पूछूँगा भी या नहीं. . ."

लिखते-लिखते भुवन रुक गया। गौरा के पिता का चित्र उस के सामने आ गया, फिर मसूरी के घर का, फिर गौरा के साथ बिताये हुए उस एक सप्ताह का, अपनी आत्म-स्वीकृति का; क्षण-भर के लिए वह केशों का मेघ उस की आँखों के आगे छा गया, फिर उस में झलकती हुई चीड़ की सुगन्धित आग: 'गौरा, यह आग तो तुम्हारी है'...वह फिर लिखने लग गया और भी द्रुत गति से; चार-पाँच पृष्ठ लिख कर वह फिर रुका, पेंसिल घिस कर उस की नोक निकाली, और उसे हाथ में साधे हुए फिर चित्र देखने लगा।

व्यक्ति के सभी कर्मों का बीज सभी दूसरे कर्मों में निहित है; कार्य-कारण-सम्बन्धों की खोज और उन का निरूपण एक वैज्ञानिक समय है, नहीं तो सभी कार्य कारण हैं और उन की यह परस्परता व्यक्ति के जीवन-वृत्त में ही बँधी नहीं है, बाहर तक फैली है। सब कुछ है, क्योंकि और सब कुछ है. . .फिर भी, हम लोग काल के बिन्दु चुनते हैं जहाँ से घटनाओं का आरम्भ मानते हैं--वह भी एक ऐतिहासिक समय है. . .गौरा के प्रति उस के जो भाव हैं, जो भाव थे--क्या वे अलग हैं?

"समर्पण है तो वह न बाँधता है, न अपने को बद्ध अनुभव करता है; केवल एक व्यापक कृतज्ञता मन में भर जाती है कि तुम हो, कि मैं हूँ। एक-दूसरे को पहचानने के बाद आश्चर्य यह नहीं है कि प्रेम है, कि हम प्यार करते हैं; आश्चर्य यही है कि हम हैं; होना ही एक नये प्रकार का संयुक्त होना है। मैं पहले भी था, अब भी हूँ; पर क्या दोनों 'होने' एक हैं? हाँ, पर नहीं. . सोचता हूँ, यह परिवर्तन कब से हुआ, तो नहीं जानता; लगता है कि जो हुआ, वह पहले भी था, नहीं तो हुआ कैसे? पर वह परिवर्त्तन चेतना में कब आया, यह जानता हूँ. . .तुम कह सकती हो कब? तुम्हें अचम्भा होगा। एक वर्ष पहले,

जब लम्बी चुप्पी के बाद मैंने जावा से तुम्हें दो-तीन पत्र लिखे थे, तब जब मैं अस्वस्थ था और तुम्हें 'होम-सिक' होने की बात लिखी थी. . .तभी मैंने जाना था कि मैं तुम से भाग कर वहाँ गया था, तुम्हीं से; और यह जान कर आसपास फैली विशालता में खो गया था और फिर मैंने जाना था कि वह विशालता भी तुम हो। तुम ने मुझे घेर लिया था, छिपा लिया था; और उस में एक सान्त्वना थी, एक मरहम था. . . सहसा मुझे लगा कि उसी विशालता के आगे हथियार डाल कर—अपने सब कवच-बन्धन-रक्षण छोड़ कर मैं स्वस्थ हो जाऊँगा, मेरे क्षत भर जायेंगे. . .मैं कहता हूँ तभी, पर 'तभी' का कोई मतलब नहीं है, क्यों कि अगर मैं पहले नहीं जानता था, तो भागा क्यों था ? 'शब्द, शब्द, शब्द'—शब्द अधूरे हैं, सभी कुछ अधूरा है. . .और इतिहास तो बिलकुल ही अधूरा है. . ."

भुवन उठ कर टहलने लगा। सब कुछ अधूरा है, और ज्यों-ज्यों वह आगे पूरेपन की ओर बढ़ता है, नयी अपूर्णताएं भी उस के आगे स्पष्ट हो जाती हैं. कितना बड़ा है जीवन, कितना विस्तृत, कितना गहरा, कितना प्रवहमान; और उस में व्यक्ति की ये छोटी-छोटी इकाइयाँ—प्रवाह से अलग जो कोई अस्तित्व नही रखतीं, कोई अर्थ नहीं रखतीं, फिर भी सम्पूर्ण हैं, स्वायत्त हैं, अद्वितीय हैं, और स्वतःप्रमाण हैं, क्यों कि अन्ततोगत्वा आत्मानुशासित हैं, अपने आगे उत्तरदायी हैं; स्वर्ग और नरक, पुण्य और पाप, दण्ड और पुरस्कार, शान्ति और तुष्टि, ये सब बाहर हैं तो केवल समय हैं, सत्य तभी हैं जब भीतर से उद्भूत हों. . .

वह फिर लिखने बैठ गया:

"वह रूपक मेरा नहीं है, पर बार-बार मुझे याद आता है और मैं पाता हूँ कि उस में नया अभिप्राय है: हम सब नदी के द्वीप हैं, द्वीप से द्वीप तक सेतु है। सेतु दोनों ओर से पैरों के नीचे रौंदा जाता है, फिर भी वह दोनों को मिलाता है, एक करता है. . .गौरा, मैं तुम्हारी ओर हाथ बढ़ाता हूँ—अनुरोध के हाथ; क्या तुम भी अपने हाथ मेरी ओर बढ़ाओगी—वरद हाथ; कि इस प्रकार हम एक सेतु बन सकें जिस पर ईश्वर अगर है तो उस का आसन है ?"

वह फिर उठ कर टहलने लगा। उस बँगला गीत के बोल उस के मन में गूँज गये जो उसने कुछ दिन पहले वहीं सुना—'तोमार-आमार एइ विरहेर अन्तराल कत आर सेतु बांधि सुरे-सुरे ताल-ताल ?' पहले वह पत्र की ओर बढ़ा कि यह भी गौरा को लिख दे, लेकिन पत्र पर झुक कर उसे लगा कि नहीं, पत्र इस के बिना ही सम्पूर्ण है; और वह फिर चक्कर काटने लगा। फिर एक चक्कर उस ने यन्त्रों की ओर लगाया। सहसा उस का ध्यान केन्द्रित हो आया; थोड़ी देर बाद उस ने दूर विमानों की घरघराहट सुनी—एकसाथ कई विमानों की—और विमान-भंजकों की पटापट. . .यह क्या है ? आक्रमण कि प्रत्याक्रमण ? अभी थोड़ी देर में वह क्या कर रहा होगा—यन्त्रों की सँभाल या कि विस्फोटकों की—? अभी उसे खबर मिलेगी—फ़ोन से या रेडियो से—

खिड़की के आगे खड़े हो कर बाँस की टट्टी को उस ने पूरा हटा दिया। ढल
रोशनी में उस ने देखा, उस के सहयोगी आ रहे हैं। उन की चाल देख कर अपने प्रश्न
उत्तर उस ने जान लिया : कोई चिन्ता की बात नहीं है।

फिर वह पूर्ववत् टहलने लगा।

थोड़ी देर में उस के साथी वहाँ पहुँच जायेंगे; यह जो अप्रत्याशित एकान्त उसे मिल
उसका अन्त हो जायेगा। और कल के—कल क्यों, अभी थोड़ी देर बाद के बारे में अनि
श्चय ने जो मुक्ति उसे दे दी थी, उस का भी अन्त हो जायेगा। यों जीवन में किस बा
का भरोसा है, पर तत्काल यह मानने का कोई कारण नहीं रहेगा कि कल का भरोसा नह
है—कि कल का सूर्योदय देखने की आशा रखना मूर्खता है।

भुवन ने अनुद्विग्न भाव से चिट्ठी के पन्ने समेटे, उन के कोने और सिरे बराबर-बराब
मिलाये, और फिर सहसा उन्हें फाड़ डाला। फाड़ कर स्टोव के पास की एक काली ट्रे
रख दिया जहाँ प्रायः ही वह और उस के साथी जलाने से पहले अपने कागज़ रखा कर
हैं—अभी वह उन्हें जला देगा।

कल—अब तो यह मान लिया जा सकता है कि कल होगा!—वह गौरा को अपने
कुशल-समाचार का और पत्र लिख देगा। उस से अधिक कुछ लिखना क्यों आवश्यक है?
दो महीने के अन्दर उस ने अगर जान लिया है कि हाँ, वह गौरा से यह प्रश्न पूछेगा, प्रश्न
पूछने के और उस का उत्तर पाने के लिए अपने को तैयार कर लिया है, तो उतना ही
यथेष्ट है। उस से आगे—जब समय आयेगा तो प्रश्न का पूछा जाना भी अपने आप हो
जायेगा—उत्तर भी अपने आप मिल जायेगा! तब तक—गहरी अनुभूतियाँ संचयधर्मा
ही होती हैं; उन के आन्तरिक दबाव का संचय इतिहासों को बदल देता है, इतिहास के
मलबे को साफ़ कर देता है—नयी नींवें खोद देता, ईंटें पका देता है...

एक बार फिर भुवन खिड़की पर जा कर खड़ा हो गया। अब शायद दो-तीन मिनट ही
उस के पास हैं : और फिर साँझ हो जायेगी, मच्छरों से रक्षा की कार्रवाई शुरू हो जायेगी,
—यन्त्र फिर उसे जकड़ लेगा। मानो चक्की के पाटों के बीच दाने को क्षण-भर की स्वतन्त्रत
मिल गयी थी—किन्तु कितना मूल्यवान् हो सकता है ऐसा क्षण—सम्पर्क का क्षण—

मूल्यवान् क्षण? मूल्यवान् किस के लिए? सम्पर्क का क्षण? किस के साथ सम्पर्क?
हाँ, मूल्यवान्—नश्वर किन्तु मूल्यवान् जिन का सम्पर्क है सभी के लिए चिरन्तन औ
मूल्यवान्; सम्पृक्त—जो प्रतीक्षा करते हैं उन से सम्पृक्त, वे चाहे बोलें या न बोलें; प्रश्न
से सम्पृक्त और उस के उत्तर से सम्पृक्त—प्रश्न चाहे न भी पूछा जाये, उत्तर चाहे न भी
दिया जाये। मूल्यवान् और सम्पृक्त क्षण क्योंकि प्रतीक्षा के क्षण—वह प्रतीक्षा चाहे
कितनी लम्बी हो, कर्म की इस अजस्र-प्रवाहिनी नदी से भी लम्बी; भुवन प्रतीक्षा करेगा।
जैसे कि, निस्सन्देह, गौरा भी प्रतीक्षा करेगी...क्योंकि प्रतीक्षाएँ भी अजस्र, अनाद्यन्त
काल की नदी में स्थिर, झिलमिल ...